# विषय-सूची

शिवजी मुद्रणालय, किनारी बाजार, गली बरफवाली देहली।

# भूमिका

## (अ) भूगोल का इतिहास से सम्बन्ध

**भूगोल का इतिहास पर प्रभाव**—गगनचुम्बी अट्टालिकाओं में शयन करने वाला तथा विद्युत-गति से चलने वाला बीसवी सदी का वर्तमान मनुष्य सदैव से ऐसा न था, जैसा वह इस समय दृष्टिगोचर होता है। उसकी यह वर्तमान अवस्था लाखों तथा करोड़ों वर्षों के सतत् परिश्रम का फल है। सृष्टि के आरंभ काल में सम्यता का यह दावेदार एक हिंसक पशु की भांति वृक्षों के पत्र-पुष्प खा, गिरि कन्दराओं की शरण में नग्न जीवन व्यतीत करता था। प्राणि जगत पर विजय प्राप्त करने के लिए तथा सभ्यता की वर्तमान स्थिति पर पहुँचने के लिए, उसे अनेक हिंसक पशुओं तथा अन्य बाधाओं से संघर्ष करना पड़ा। परन्तु यह संघर्ष सर्वत्र एक ही प्रकार का न था, देश-देश की भौगोलिक स्थिति तथा जलवायु ने इसमें भिन्नता उत्पन्न कर दी, जैसे कि यदि टंड्रा में रहने वालों को बर्फीली हवा से टक्कर लेनी पड़ी तो अरब के रेगिस्तानियों को बालू की आंधियों का सामना करना पड़ा। इस भौगोलिक भिन्नता ने देश-देश के मनुष्यों के रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान, धार्मिक, मानसिक तथा साहित्यिक विचार में भिन्नता पैदा कर दी। इस प्रकार किसी देश के इतिहास तथा सभ्यता के अध्ययन के लिए वहाँ की भौगोलिक स्थिति पर दृष्टि डालना आवश्यक हो गया। इसलिये भारतवर्ष का इतिहास लिखने से पहले हम यहाँ की भौगोलिक स्थिति तथा उसके प्रभाव का अध्ययन करेंगे।

**हमारा देश**—एशिया महाद्वीप के दक्षिण में भारतवर्ष १८०० मील लम्बा और १८०० मील चौड़ा देश है। इसका क्षेत्रफल लगभग १५ लाख वर्गमील है। यद्यपि राजनैतिक परिस्थिति ने पंजाब तथा बंगाल प्रांत के विभाजन कर उसे एक पृथक राज्य कर दिया परन्तु, स्मरण रहे कि १९४७ ई० तक यह सम्पूर्ण देश एक ही रहा। अत. उस समय तक के ऐतिहासिक वर्णन के लिए हम इस समूचे देश को एक ऐतिहासिक इकाई समझेंगे।

**उत्तरी सीमा तथा उसका प्रभाव**—हिन्दुस्तान के उत्तर में १५०० मील लम्बा हिमालय पहाड़ है। यह संसार की सबसे ऊंची श्रेणी है। इसकी विशालता का

अनुभव करने के लिए इतना कहना काफी होगा कि यूरोप का सबसे बड़ा पहाड़ आल्पस इसकी एक घाटी में समा सकता है। यदि हिमालय न होता तो तिब्बत की सर्द हवायें उत्तरी भारत में मनुष्यों का रहना कठिन कर देतीं, साथ ही साथ भारत-भूमि को उपजाऊ बनाने वाली नदियाँ जिनका उद्गम हिमालय है कहीं भी न होतीं और न दक्षिण-पूर्व तथा दक्षिण-पश्चिम से आने वाली हवाएँ उत्तरी मैदान में मूसलाधार वर्षा ही करतीं। परिणाम यह होता कि पंजाब तथा दोआबे जैसे उपजाऊ प्रान्तों के बदले यहाँ एक विशाल ऊसर प्रदेश दृष्टिगोचर होता। अतः यहाँ साहित्य, कला धर्म तथा सभ्यता का वह विकास न हो पाता जिसके कारण भारत अपने आपको जगद्गुरु कहलाने का अधिकारी ठहराता है। उस समय भारतीय इतिहास की रूप रेखा बिल्कुल दूसरी ही होती।

उत्तर-पूर्व की ओर यह पर्वत श्रेणी कुछ नीची हो गई है इसलिए इस ओर से कुछ आवागमन होता रहा है और ऐसा प्रतीत होता है कि उधर से कुछ मंगोलियन आकर आसाम तथा पूर्वी बंगाल में बसे। परन्तु इस ओर का प्रदेश जङ्गलों से ऐसा घिरा है कि इस ओर से भारत का अन्य देशों से व्यापारिक और मानसिक सम्बन्ध मुमकिन न हो सका। इसके विपरीत हिमालय पहाड़ की उत्तरी-पश्चिमी नीची घाटियों के खैबर, बोलान इत्यादि दर्रों ने भारतवर्ष के इतिहास पर अपनी छाप लगादी है। इन्ही दर्रों से आर्य, ग्रीक, कुशन, सिथियन, हूण, अफगान और तुर्क भारतवर्ष में आये जिन्होंने यहाँ की राजनीति, समाज और सभ्यता पर क्रान्तिकारी प्रभाव डाला। इन्ही रास्तों से ११वीं शताब्दी तक मध्य एशिया, पूर्वी एशिया और यूरुप से व्यापार भी होता रहा और साहित्य, कला व दर्शन के विचार भी अन्य देशों मे जाते रहे। इस प्रकार हिमालय पहाड़ की बनावट भारतीय इतिहास पर सदैव अपना प्रभाव डालती रही।

उत्तर का मैदान—उत्तर का मैदान जिसमें सिंध, गंगा, ब्रह्मपुत्र और उनकी सहायक नदियाँ बहती हैं भारत का महत्वपूर्ण भौगोलिक भाग है—यह दुनिया के बड़े उपजाऊ और आबाद प्रदेशों में गिना जाता है। कलकत्ते से पेशावर तक चले जाइये कहीं कोई पहाड़ी या टीला न मिलेगा—कहीं कोई रेगिस्तान न मिलेगा—हर जगह हरे भरे खेत लहलहाते हैं। यहाँ कृषि के लिए इतना परिश्रम नहीं करना पड़ता जितना इङ्गलिस्तान, फ्रान्स इत्यादि ठंडे प्रदेशों में करना पड़ता है। इसलिए मशीन युग से पहिले यहाँ के लोगों को अन्य देशों की अपेक्षा बौद्धिक विकास का अधिक समय मिला। यही कारण है कि प्रचीन काल में यहाँ विशेष धार्मिक, साहित्यिक तथा दार्शनिक प्रगति हुई। दूसरे सदा से कृषि

अरब सागर
खाड़ी बंगाल
अरावली पर्वत
बुन्देलखंड
१५०० से नीचे
१५०० से ऊपर
३००० से ऊपर
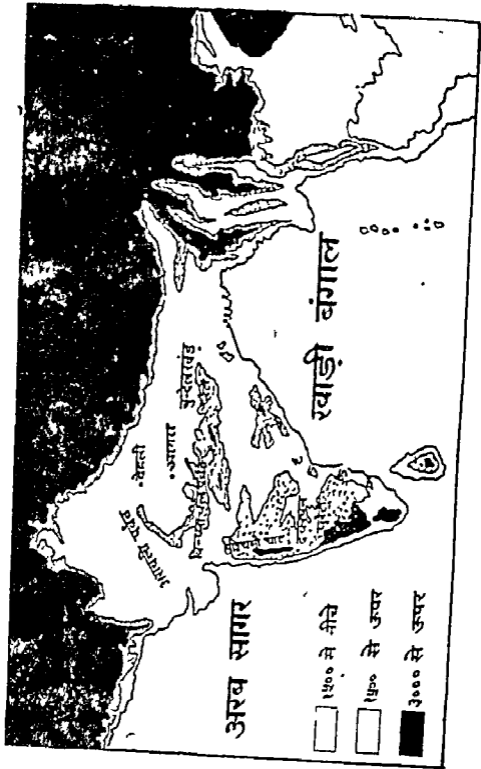
ही यहाँ का प्रधान उद्योग रहा है। सारी सभ्यता पर कृषि की प्रधानता की मुहर लग गई है। अधिकतर जनता कृषकों की बस्तियों अर्थात् गाँवों में रहती है, गांव ही जीवन का केन्द्र है, राजनैतिक संगठन का आधार है, आर्थिक जीवन का मूल है—कोई प्राकृतिक रुकावट न होने के कारण इस समस्त मैदान में सभ्यता, संगठन, धर्म एक से ही रहे। छोटी मोटी भिन्नता अवश्य थी परन्तु कोई मौलिक भेद न था। जहाँ प्रकृति और सभ्यता की इतनी एकता हो वहाँ राजनैतिक एकता का प्रयत्न अनिवार्य है। यही कारण है कि ब्राह्मण ग्रन्थों के समय अर्थात् १००० वर्ष पूर्व मे ही समुद्र के एक किनारे से दूसरे किनारे तक फैलने वाले राज्य की कल्पना हुई। मौर्य्य, आन्ध्र, गुप्त तथा गुर्जर प्रतिहार वंशों ने इसे चरितार्थ कर दिया। परन्तु रेल, डाक, तार के सुलभ साधनों के अभाव में इतने विशाल साम्राज्य का अधिक दिन तक एक सूत्र में रहना कठिन था। इसलिए कभी इस साम्राज्य का निर्माण, तो कभी पतन होता रहा। यही नहीं साम्राज्य में भी दूरवर्ती प्रान्तों को बहुत कुछ स्वतन्त्रता देनी पड़ी। अठारहवी सदी तक भारत का राजनैतिक इतिहास इसी चक्र पर घूमता रहा। ऐसा होना भौगोलिक कारणों से अनिवार्य था। पुराने ग्रीस से इसकी तुलना करो स्पष्ट हो जायगा कि यहाँ ऐथन्स जैसे नगर राज्य न बन सकते थे और न वैसा राजनैतिक जीवन ही पैदा हो सकता था। सिंध, गंगा का मैदान इतना बड़ा है कि प्राचीन यातायात के साधनों के अभाव यहाँ जन सत्ता के लिए राज्य के सब लोगों का इकट्ठा होना या प्रतिनिधियों का भी अच्छी प्रकार मिलना जुलना कठिन था—यही कारण है कि जनसत्ता का सिद्धान्त मानते हुए भी यहाँ केन्द्रीय शासन में जनसत्ता का रूप लाना टेढ़ी खीर थी।

राजपूताने का रेगिस्तान—उत्तरी मैदान के बीच में राजपूताने का विशाल रेगिस्तान है—यह रेगिस्तान भारतीय इतिहास मे अपना स्पष्ट प्रभाव रखता है। उत्तर पश्चिम से आने वाली विदेशी जातियों से हार कर उत्तरी मैदान की जातियो ने इस रेगिस्तान में शरण ली। चूंकि वहाँ आना जाना कठिन था इसलिए वे वहाँ अपनी सभ्यता, मानमर्यादा तथा अस्तित्व की रक्षा कर सकती थी। हर्षवर्धन के बाद जब मुसलमान आक्रमणकारियों ने उत्तरी भारत पर अपना प्रभुत्व जमा लिया तो बहुत से राजपूत वंश इस क्षेत्र को छोड़कर राजपूताने में जा बसे और वहाँ अपने राज्य स्थापित कर कई सदियों तक अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाये रहे। इनमे मेवाड़ जैसी रियासत ने अपनी वीरता तथा भौगोलिक स्थिति के कारण अकबर जैसे महान् सम्राटों के भी दाँत खट्टे कर दिये।

विन्ध्याचल तथा सतपुड़ा पहाड़ों का प्रभाव—उत्तरी मैदान के दक्षिणी

किनारे पर सतपुड़ा और विन्ध्याचल की श्रेणियां हैं। इनके कारण उत्तर से दक्षिण जाना कठिन रहा—अतः उत्तर और दक्षिण में कुछ भेद अवश्य हो गया—जाति का कुछ अन्तर बना रहा, भाषायें कुछ भिन्न रही, राजनैतिक इतिहास बहुधा अपने अलग २ रास्तो पर चलते रहे—उत्तर पश्चिम से आने वाली जातियाँ या तो दक्षिण तक पहुँची ही नही या थोडी सख्या मे पहुँची। परन्तु पूर्व की ओर इन श्रेणियो के नीचे होने के कारण दक्षिणी भारत का उत्तरी भारत के साथ सम्पर्क बना रहा इसलिए दोनो भागो में सभ्यता के प्रधान तत्व एक हो गये। धर्म के वही सिद्धान्त दोनो ओर प्रचलित रहे।

दक्षिण का पठार तथा उसका प्रभाव—भारत का दूसरा प्राकृतिक विभाग दक्षिण का पठार है—नर्मदा और कृष्णा के बीच का यह देश इतना चौरस नही है और न इतना उपजाऊ है जितना कि उत्तरी मैदान। इस कारण इसमे व्यापार की मात्रा भी उतनी नही हो सकती थी परन्तु समुद्र तट के निकट होने के कारण यहा के निवासियो का समुद्री व्यापार में भाग लेना तथा समुद्री मार्ग से भारतवर्ष की सभ्यता का दूर देशो में ले जाना तथा अन्य देशो के आचार-विचार का यहाँ लाना आवश्यम्भावी था।

तटवर्ती मैदान तथा उनका प्रभाव—दक्षिणी पठार के पूर्वी तथा पश्चिमी किनारो पर मैदानो की एक तग पट्टी फैली हुई है इनको पूर्वी तथा पश्चिमी घाट की पर्वत मालायें दक्षिणी पठार से अलग करती है। इन पर्वतमालाओ ने इतिहास पर बडा प्रभाव डाला। पठार को जीतने वाली जातियो से हार कर यहाँ के निवासी इन पहाड़ियो में शरण ले सकते थे और घाटियो तथा जगलो की आड में वह अपने अस्तित्व—अपनी भाषा और रीति रिवाजो की रक्षा कर सकते थे—तटवर्ती मैदानो मे बसने वाले उनके सहधर्मी आक्रमणकारियो पर छापा मार इन पर्वत-मालाओ में छिप सकते थे—यही कारण था कि मरहठो ने इस प्रदेश में बहुत से दुर्ग बना गुरिला युद्ध द्वारा मुगल सेनाओ को परेशान कर दिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतवर्ष के भूगोल का यहाँ के इतिहास से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। वह सदैव यहाँ के इतिहास पर अपनी छाया डालता रहा है।

## प्रश्न

१—ससार के भिन्न भिन्न भागो में मनुष्य सघर्ष क्यो भिन्न भिन्न रहा—उदाहरण देकर समझाओ।

२—भारत की उत्तरी सीमा ने भारतीय इतिहास पर क्या प्रभाव डाला ?

३—उत्तरी मैदान ने भारतीय इतिहास की क्या मुख्य धारायें निश्चित की ?

४—विन्ध्याचल और सतपुड़ा पहाड़ों ने दक्षिण तथा उत्तर के इतिहास में क्या भिन्नता तथा एकता आई ?

५—दक्षिणी पठार तथा तटवर्ती मैदानों ने भारतीय इतिहास पर क्या प्रभाव डाला ?

६—राजपूताने के रेगिस्तान का हमारे इतिहास में क्या महत्व है ?

# १ (आ) भारतीय जन

आदि भारत—संसार के लगभग सब भागों की भाँति भारतवर्ष में जो चिन्ह मिले हैं, उनका अध्ययन कर विद्वान इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि भारत का आदि निवासी कच्चा माँस और जंगली कन्द मूल खा जीवन निर्वाह करता था। वह पत्थर या हड्डी के भद्दे औजार बनाकर शिकार करता था। यह प्राचीन पाषाण युग था। बहुत समय बीतने पर औजारों की शक्ल और शक्ति सुधर गई, परन्तु वह पत्थर के ही बनते रहे। इतिहास के इस युग को विद्वानों ने नये पाषाण युग का नाम दिया। इसके बाद धीरे-धीरे उन्नति हुई और काँसे के हथियार बनने लगे, जिससे यह युग काँसे का युग कहलाया। इन युगों का परिमाण हजारों वर्षों का है। इस बीच में जानवरों को पालने की प्रथा आरम्भ हो गई। इसके बाद खेती शुरू हुई। और वह नदियों तथा झीलों के किनारे जहाँ सिंचाई आदि की सुविधा थी रहने लगा। इस तरह मनुष्य स्थिर जीवन व्यतीत करने लगा और उसका आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन आरम्भ हुआ। असभ्यता और अर्द्ध सभ्यता की यह हजारों वर्ष की कहानी याद रखने योग्य है। परन्तु हिन्दुस्तान की यह प्राचीन कहानी किस वंश में आरम्भ हुई इस प्रश्न का उत्तर देना असम्भव है। प्राप्त खोपड़ियों और हड्डियों पर बहुत गौर किया गया परन्तु न तो उनका ठीक काल ही निश्चित हो सका और न यह ही पता लग सका कि वे आदमी जिनकी वे खोपड़ियाँ आदि हैं कौन थे और उनका संसार की अन्य जातियों से क्या सम्बन्ध था।

भूगर्भ वेत्ताओं का कथन है कि सृष्टि के आरम्भ में हिन्दुस्तान आस्ट्रेलिया तथा अफ्रीका से जुड़ा हुआ था। सम्भव है कि उसी समय मनुष्य की उत्पत्ति हुई हो और यहाँ तथा इन दो देशों में एक ही जाति रहती हो। आगे चल कर समुद्र ने इन्हें अलग अलग कर दिया और इन देशों के निवासी अपने अपने रंग पर अपनी निराली सस्थाओं की रचना करने लगे। मनुष्य के प्राचीनतम चिन्हों का दक्षिण में मिलना तथा उनके समकालीन वैसे ही चिन्हों का अफ्रीका, जावा, सुमात्रा इत्यादि पूर्वी द्वीप समूह से आस्ट्रेलिया तक मिलना इस विश्वास को और दृढ़ता प्रदान करता है। अतः सम्भव है कि भारतवर्ष की आदि सभ्यता का विकास इन लोगों में ही हुआ हो।

इसके हजारों वर्ष बाद कहीं वही जमीन सूख जाने या आबादी बढ जाने या दूसरो की सपत्ति पर अधिकार प्राप्त करने की लालसा से भिन्न भिन्न जातियाँ एक दूसरे से मिलती बिछुड़ती रही और इधर से उधर जाती रही। यह उथल पुथल इतनी बार हुई है, और कभी-कभी इतने बडे पैमाने पर हुई है, कि ससार की कोई भी जाति मिलावट से बची न रह सकी। भारत में भी ऐसा ही हुआ—अत वह आदि जाति जिसमें मनुष्य का प्रारम्भिक विकास आरम्भ हुआ अनेकों जाति उपजातियो का सम्मिश्रण होगई।

भारत की इस मिश्रित जनसख्या मे निश्चित रूप से यह पता लगाना कि इनमे ससार की कौन कौन जातिया मिली हुई हैं कठिन ही नही वरन् असम्भव है। फिर भी आकृति अध्ययन द्वारा भारत निवासियो की सिर तथा नाक की बनावट से हमें इनमें निम्नलिखित जातियो की प्रधानता प्रतीत होती है।

( i ) कोल, भील, सथाल आदि चपटी नाक वाली भारत की जगली जातियाँ—यह भारत के सबसे प्राचीन निवासी प्रतीत होते हैं। यह पश्चिमी बगाल मे राजमहल की पहाडियो, छोटा नागपुर, उडीसा और मध्यप्रात की पहाडियों में रहते हैं। यह मु डा नामक भाषा बोलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समय सम्पूर्ण भारत इनके अधिकार मे था। परन्तु जब इनसे अधिक शक्तिशाली जातियाँ भारत आई तो उन्होने इनको परतन्त्र कर भारत के अच्छे भागों को छोडने तथा जगली प्रदेशो में शरण लेने को बाध्य कर दिया।

परन्तु यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि कोल, भील, सथाल भारत के आदि निवासी थे या ये किसी अन्य देश से भारत आये। इनमे तथा अफ्रीका इत्यादि देशो की जगली जातियो में समानता होने के कारण हो सकता है कि ये भारत के आदि निवासी हो और भूमिवेत्ताओ के मतानुसार इसकी समानता भारत, अफ्रीका व आस्ट्रेलिया से जुडा होने के कारण हो या वहा से ये यहा आये हो या इसके विपरीत इनका एक दल वहाँ चला गया हो।

(ii) हमने अभी बताया कि मध्यभारत व पश्चिमी बँगाल की पहाडियों तथा जँगलो में कोल, भील, सँथाल नामक एक ही प्रकार के समूह रहते है। जिनकी भाषायें मिलती जुलती हैं, रीति रिवाज मिलते जुलते हैं। जान पडता है कि ये लोग किसी समय मैदानो मे रहते थे। पर किसी जोरदार जाति के हमलों से तँग आकर इन्हे पहाडियो की शरण लेनी पडी। यह जोरदार जाति द्राविड प्रतीत होती है। इनका रग काला, कद नाटा और नाक चौडी होती है। इस

समय इनके वंशज मद्रास राज्य के उस भाग में दिखाई देते हैं जहां तामिल, तेलगू, कन्नड़ और मलायलम भाषायें बोली जाती हैं। द्राविड़ कौन थे, कहाँ से आये, इसका उत्तर निश्चय पूर्वक नहीं दिया जा सकता। बिलोचिस्तान के एक हिस्से में ब्राहुई भाषा बोली जाती है, जो दक्षिण की उपरोक्त द्राविड़ भाषाओं से मिलती जुलती है और आस पास की किसी भी भाषा से सम्बन्ध नहीं रखती। इसलिए या तो द्राविड़ लोग उत्तर-पश्चिम से आये, और बिलोचिस्तान में अपना एक समूह छोड़, या वहाँ के किसी समूह पर अपनी छाप लगाकर तुरन्त ही या कुछ दिन बाद किन्हीं कारणों से दक्षिण को चले गए। या हो सकता है कि कोल, भील, संथालों की भाँति वह भारत के आदि निवासी हों, और उन्होंने अपने आपको उन्नत तथा शक्तिशाली बना लिया हो। इसके बाद प्रभुता तथा गौरव-प्राप्ति के लिए उन्होंने कोल, भील, संथाल जातियों को भारत के उपजाऊ भागों से निकाल कर उनपर अधिकार कर लिया हो। पीछे आर्यों ने इनको उत्तर से निकाल दिया हो, या उत्तरी भारत-स्थित द्राविड़ों को अपने में मिला लिया हो, या किसी कारण से एक टुकड़ा उत्तर-पश्चिम में रह गया हो। दोनों धारणाओं में से किसी का पूर्ण प्रमाण नहीं मिलता। परन्तु यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि आर्यों के आने के बहुत पहिले तथा-कथित द्राविड़ जाति ने सभ्यता में बहुत उन्नति कर ली थी। १९२२ ई० की मोहिनजोदड़ो तथा हड़प्पा की खोज, जिसका आगे चलकर उल्लेख किया जायेगा, इसको पूर्णतया प्रमाणित करती है।

(iii) तीसरी मनुष्य जाति जो भारतीय जनता में दृष्टिगोचर होती है मंगोलियन जाति से मिलती जुलती है। इनका रंग पीला, माथा चपटा तथा नाक चौड़ी है। ये जातियाँ आसाम राज्य में तथा हिमालय वर्ती पहाड़ी भागों में पाई जाती हैं।

(iv) तीसरी मनुष्य जाति, जिसका वर्तमान भारतीय जन में विशेष सम्मिश्रण है, आर्य हैं। गौर वर्ण, लम्बा कद, लम्बी नाक, विशाल मस्तक वाले भारत निवासियों में इस जाति का विशेष भाग विद्यमान है। आर्य कौन थे कहाँ से आये, किस प्रकार भारत में फैले इसका विस्तार पूर्वक वर्णन हम अगले अध्याय में करेंगे।

आर्यों से बाद में आने वाली ईरानी, यूनानी और हूण इत्यादि जातियों का भी भारतीय जनता में समावेश हो गया। इन लोगों ने विजेता की हैसियत से भारत में प्रवेश किया। परन्तु धीरे-धीरे यहाँ की जातियों में इनका इतना मिश्रण हो गया कि अब कोई मनुष्य ऐसा नहीं जिसे यह कहा जा सके कि वह सिथियन, यूनानी या अन्य वाह्य जाति का है।

(v) मध्यकाल में अरबो और तुर्कों ने आक्रमणकारी के रूप मे भारत में प्रवेश किया। उनके समय में फारिस, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, मंगोलिया से किसी न किसी रूप मे अनेक मुसलमान यहां आते रहे। यद्यपि भारत की पहिली जातियों में इनका समावेश न हुआ तो भी धर्म-परिवर्तन कर भारत की अनेकानेक जातियो के सदस्य इनमें सम्मिलित हो गए। अन्तर्जातीय विवाह की प्रथा मुसलमानो मे आरम्भ से प्रचलित है, अतः आने वाले मुसलमानो ने भारतीय मुसलमानो से शादी विवाह कर उन्हें अपने में मिला-जुला लिया। इस प्रकार अपना भिन्न धर्म, भिन्न सभ्यता, भिन्न रीति-रिवाजो के होते हुए भी ये लोग अपनी विशुद्धता कायम न रख सके।

(vi) वर्तमान समय में भी यह सम्मिश्रण जारी रहा—व्यापारियो की हैसियत से भारत में आने वाली यूरोपीय जातियाँ विशेषतया अंग्रेज शासक के रूप में यहाँ कई सौ वर्ष तक रहते रहे। उनमे से कुछ ने अन्तर्जातीय विवाह द्वारा भारतीय सम्मिश्रण में सहयोग दिया। बहुत से भारतीयों ने भी अंग्रेज महिलाओ से विवाह कर लिया। इस प्रकार एंग्लो इण्डियन जाति बनी और यूरोपियन संस्कृति ने भारतीय संस्कृति पर अपना प्रभाव डाल इसको और मिश्रित किया।

विविधता में एकता—यद्यपि भारतवर्ष मे अनेकानेक धर्म हैं। इस्लाम धर्म को छोड़कर अन्य सब धर्म वैदिक परिछाया लिए हुए हैं। उनके स्वय के कुछ अन्तर होते हुए भी उनका मूल स्रोत एक ही प्रतीत होता है। अन्य धर्मों के सम्पर्क से इस्लाम धर्म पर भी प्रभाव पडा और उसके रीति-रिवाज, त्योहार इत्यादि बाह्य क्रियाओं मे भारतीयता आ गई। इसी प्रकार भारतवर्ष की १५० भाषायें तीन भाषाओं का अंग प्रतीत होती हैं (प्रथम) कोल, सथाल जातियो की भाषायें जो मुंडा भाषा का अङ्ग है। जो साहित्य की दृष्टि से विशेष महत्व नही रखती। (दूसरी) तामिल, तैलगु, कन्नड़ मलायलम आदि द्रविड भाषा का जो दक्षिणी भारत मे बोली जाती हैं। (तीसरी) काश्मीरी, हिन्दी, पंजाबी, बंगाली, मराठी, गुजराती, नैपाली इत्यादि संस्कृत भाषा का अंग हैं। भाषाओं के ये तीनों भाग भी एक दूसरे के सम्पर्क से एकता की ओर गए। इस तरह भारत के भिन्न धर्मों में तथा भिन्न २ भाषाओं में एकता आई। इसी तरह जैसा कि पहिले बताया गया भिन्न २ जातियो में एकता आई अतः हमारा यह समझना कि अमुक आर्य हैं, और अमुक द्राविड, तथा अमुक हूण हैं या सिथियन सर्वथा मिथ्या तथा भ्रमात्मक है। अन्तर्जातीय विवाह, खान-पान, जाति तथा धर्म परिवर्तन जिसके अनेकानेक उदाहरण इतिहास मे मिलते हैं, इसके प्रकट प्रमाण हैं। वर्तमान भारत निवासी भारतीय हैं और उनका यही समझना सत्य

भारतवर्ष में निवास
करनेवाली जातियाँ
मंगोलियन
भारतीय आर्य्य
द्रविड
मंगोलीय-द्रविड
आर्य्य-द्रविड
सीदियन द्रविड
तुर्क-इरानी
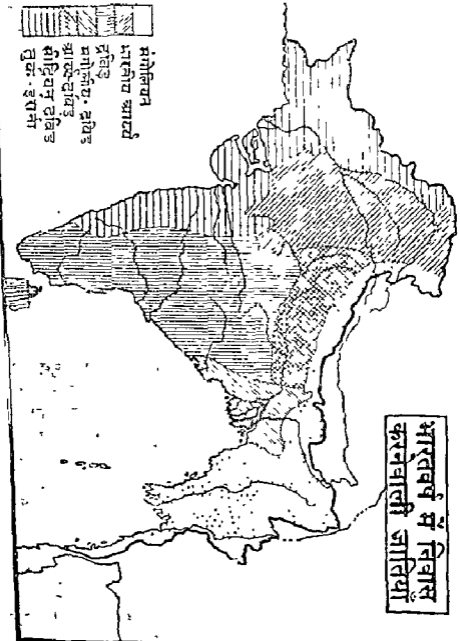
तथा श्रेयस्कर है। भौगोलिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से भी हिन्दुस्तान की एकता प्रमाणित होती है। पुराने समय में भी जब यातायात के साधन इतने सुलभ न थे भारतवासियों ने अच्छी तरह समझ लिया था कि हमारा देश एक है। रामायण और महाभारत काल में भारतवर्ष नाम से काश्मीर से कन्या कुमारी तक का बोध होता था। प्रकृति ने भी हिमालय तथा हिन्दमहासागर की प्राकृतिक सीमायें प्रदान कर इस समस्त देश को भौगोलिक एकता प्रदान की। गंगा, जमुना, सरस्वती, सिंध, नर्वदा, गोदावरी और कावेरी इत्यादि हिन्दुओं की मान्य तथा पवित्र नदियाँ देश के सब भागों से ली गई। आठवीं शताब्दी में शंकराचार्य ने बद्रीनाथ, केदारनाथ रामेश्वर, द्वारिका और जगन्नाथपुरी आदि भारतीयों के प्रधान तीर्थ देश के एक एक कोने पर स्थापित कर भारतवर्ष की एकता का परिचय दिया। हरिद्वार, प्रयाग, बनारस, गया, उज्जैन इत्यादि मान्य स्थानों का सम्पूर्ण देश में फैला होना भारतीय एकता का प्रतीक है। प्राचीन समय में तक्षशिला, नालन्द, विक्रमशिला इत्यादि विद्यापीठों में देश के कोने कोने से विद्यार्थियों का आना भारत की एकता का प्रमाण है। अशोक, समुद्रगुप्त, अलाउद्दीन खिलजी, मोहम्मद तुगलक आदि सम्राटों ने भी इस एकता का अनुभव कर भारत में एक राज्य की स्थापना की। इस प्रकार हम देखते हैं कि इतनी विविधता होते हुए भी हिन्दुस्तान की एकता नक्शे पर तथा इतिहास में स्पष्ट लिखी हुई है। इसलिए प्रांतवाद, भाषावाद, जातिवाद तथा अन्य भिन्नता सूचकवाद विवादों को तिलाजलि देकर हम भारतवर्ष के एक्यवाद को मानें तथा दृढ बनावें यही सच्ची भारतीयता है।

### प्रश्न

१—भारतीय समाज मे किन किन मुख्य जातियों का सम्मिश्रण है ?

२—भारतवर्ष के धर्मों तथा भाषाओं मे क्या मौलिक एकता है ?

३— भारत की विविधता में भी एकता है" इससे क्या समझते हो ?

---

## अध्याय १ (इ)

# प्राचीन भारतीय इतिहास की महत्ता तथा उसके जानने के साधन

महत्ता —इतिहास की एकता तथा उसके विकास को पूर्णतया मानते हुए पढाई की सुगमता के लिए हम भारतवर्ष के इतिहास को तीन भागों में बाँट सकते हैं। एक

प्राचीन युग जो बहुत ही प्राचीन समय से लेकर ग्यारहवीं सदी तक रहा, जिसकी सभ्यता की परम्परा कभी टूटने न पाई, जिसके धर्म, समाज, राजनीति, साहित्य तथा कला की धारायें सारे देश में एक ही ढग से बेखटके चलती रहीं। ग्यारहवीं सदी में उत्तर पश्चिम में नई जातियाँ, नया धर्म, नई संस्कृति लेकर यहा आई जिन्होंने देश की राजनैतिक अवस्था बिल्कुल बदल दी और साहित्य व कला के मार्गों पर अपना गहरा प्रभाव डाला। यह युग अठारहवीं शताब्दी तक रहा। इसके बाद हमारे इतिहास का अर्वाचीन भाग प्रारम्भ होता है जिसमें योरपियन प्रभावों से देश की राजनैतिक और आर्थिक अवस्था फिर उलट-पुलट हो गई और जीवन के मुख्य अंग बड़ी शीघ्रता से रंग बदलने लगे। अन्य देशों की भांति भारत का भी अर्वाचीन इतिहास सबसे उपयोगी है क्योंकि वह यहाँ की वर्तमान स्थिति पर सबसे अधिक प्रकाश डालता है। परन्तु कई कारणों से भारतवर्ष के पुराने इतिहास का समझना भी अत्यन्त आवश्यक है–एक तो वर्तमान भारतीय सभ्यता पर पुरानी संस्कृति की छाप अब तक विद्यमान है। बहुत से पुराने रीति रिवाज अब तक जीवित हैं। पुराने वेदान्त की प्रभुता अब तक बनी हुई है। पुरानी संस्कृत साहित्य आज भी भाषा साहित्यों पर पूरा प्रभाव डाल रहा है। पुराने धर्मों के सिद्धान्त अब भी माने जाते हैं। दूसरे माध्यमिक और अर्वाचीन इतिहास के मर्म पुराने इतिहास के अध्ययन बिना कोई नहीं समझ सकता। तीसरे प्राचीन समय में पश्चिमी तथा पूर्वी एशिया में भारतीय धर्म तथा संस्कृति का ऐसा प्रभाव पड़ा था कि वह आज तक नहीं मिटा है। इन सुदूरवर्ती देशों की सभ्यता और उसके विकास को समझने के लिए भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास पढ़ना आवश्यक है। चौथे विज्ञान की दृष्टि से पुरानी भाषा, धर्म, काव्य, गणित, ज्योतिष एवं सामाजिक और राजनैतिक संगठन का महत्व है। प्राचीन काल में बहुत सी रचनायें हुई जो आजकल की सामाजिक विद्याओं, दर्शनों और भाषा इत्यादि के बड़े काम की हैं। पाँचवें, प्राचीन इतिहास प्रत्येक राष्ट्र की अमूल्य निधि है विशेषतया भारत का जहाँ वह अत्यन्त उज्ज्वल और प्रकाशमय हो। उपरोक्त कारणों से भारत का प्राचीन इतिहास हमारे लिए विशेष महत्व रखता है।

# प्राचीन इतिहास जानने के साधन

ऐतिहासिक सामग्री :—आधुनिक युग के विद्यार्थी को भारत के प्राचीन इतिहास का परिचय प्राप्त करने के लिए कितनी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उसे कभी कभी यह निश्चय करना भी कठिन हो जाता है कि किस घटना के पश्चात् कौन सी घटना हुई। एक ही समस्या पर किन्हीं २ स्थानों में दो भिन्न मतों

में से कौन सत्य तथा कौन असत्य है ऐसा निश्चय करना भी दुस्तर हो जाता हैं। फिर भी प्रिन्सेप, फलीट, भाण्डारकर इत्यादि विद्वानो की महत्व पूर्ण खोजो से नगरो की खुदाई से प्राप्त चिन्हो, भांति २ के प्राप्त सिक्कों, चित्रकला के नमूनो तथा प्राप्य-साहित्य से भारत के प्राचीन इतिहास की काफी सामग्री मिल गई है। यह सामग्री तीन प्रकार की है —

( १ ) देश की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक घटनाओं का वर्णन।

( २ ) उनका क्रम। ( कौन सी घटना पहिले तथा कौन सी बाद में घटित हुई। )

( ३ ) उनका निश्चित काल व समय।

हिन्दूकाल विभाजन '—तीनो प्रकार की सामग्री को दृष्टि में रखते हुए हम हिन्दूकाल को दो भागो में विभक्त कर सकते हैं —

(१) ६५० B. C. से पूर्व (२) ६५० B. C. के पश्चात। ६५० B. C. से पूर्व काल का इतिहास जानने के लिये उपर्युक्त तीनो प्रकार की सामग्री प्राप्त नहीं होती। उसमे सबसे अधिक कठिनाई तिथियों की पड़ती है। उन तिथियो तथा अवशेषों को काल कवलित कर चुका है। अत उस काल का क्रमानुसार इतिहास लिखना जटिल समस्या रही है। यदा कदा निश्चित रूप से यह निर्धारित करना भी कठिन हो जाता है कि कुछ विशिष्ट घटनाओं में से कौन-सी पहिले और कौन सी बाद में हुई। किन्तु यह समझ बैठना कि ६५० B. C. से पूर्व का भारतीय इतिहास अब तक सर्वथा अन्धकारमय है कतिपय महानुभावो की महत्वपूर्ण खोजो के साथ अन्याय करना है। पाश्चात्य व भारतीय विद्वानो का अथक परिश्रम उस काल का सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक, धार्मिक व आर्थिक व्यवस्था का विवरण देने में पूर्णतया सफल हुआ है। परन्तु उसे पूर्णतया काल क्रम बद्ध नहीं कर सका। हां, ६५० B C. के पश्चात् का इतिहास सकलित करने के लिये पर्याप्त सामग्री विद्यमान है। उसे कालबद्ध व क्रमबद्ध भी किया गया है। इस सम्पूर्ण विवरण का निष्पक्ष अध्ययन सर्वथा सिद्ध कर देता है कि भारतीय सभ्यता कितनी प्राचीन व कितनी उत्कृष्ट है। हिन्दूकाल के दोनो भागो की ऐतिहासिक सामग्री निम्न-लिखित साधनो से मिलती है।

(अ) देशी साधन, (ब) विदेशी साधन।

(अ) देशी साधन पांच भागों में विभक्त किये जा सकते हैं।

(I) साहित्य (II) शिला लेख (III) सिक्के (IV) प्राचीन मन्दिर, भवन व शिल्पकला (V) किंवदन्तियां।

(i) साहित्य :—प्राचीन भारतीय साहित्य में ऐतिहासिक सामग्री की पुस्तकें कम मिलती हैं। किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि यहाँ के निवासी इतिहास की ओर उदासीन रहे। भारतीय शासक भी वर्तमान शासकों की भांति अपने काल की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन संकलित कराने के प्रेमी थे। वे इस कार्य के लिये अपनी सभा में कुशल कवि, भाट, जगा इत्यादि स्थायी रूप से रखते थे। परन्तु इन लोगों द्वारा एकत्रित सामग्री अब पर्याप्त मात्रा में प्राप्त नहीं होती। इसके कई कारण हैं। प्रथम तो भारतवर्ष की जलवायु गर्म है जिससे दीमक आदि कीड़ों के कारण पुस्तकें, जब तक उनकी पूर्ण सावधानी न रक्खी जावे, स्वयं ही नष्ट हो जाती हैं। दूसरा कारण प्रेस का अभाव था। पुस्तकों की प्रतियाँ हस्तलिखित होने के कारण इतनी नहीं होती थी कि किसी न किसी के पास सुरक्षित मिल सकतीं। तीसरा कारण इस सामग्री के लोप होने का यह भी है कि सन् १००० ई० से अब तक भारत अनेक राजनैतिक क्रांतियों में से हो कर गुजरा है जिससे उसकी साहित्यिक निधि सर्वथा निधन हो चुका है। फिर भी वेद, उपनिषद्, पुराण, महाभारत, रामायण जैसे ग्रन्थ कुछ सीमा तक प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत करते हैं। वेदों से हमें भारतवर्ष की पुरातन सभ्यता, रीति-रिवाज, धार्मिक, आर्थिक व राजनैतिक व्यवस्था का पता लगता है। उपनिषद् भारतवर्ष के बौद्धिक विकास के परिचायक हैं। रामायण, महाभारत व पुराणों से भी बहुत सा ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त होता है। उदाहरण स्वरूप 'विष्णु पुराण' से 'मौर्य वंश' के इतिहास की रूपरेखा प्राप्त होती है। 'मत्स्य पुराण' में 'आंध्र वंश' के विषय में उचित सामग्री विद्यमान है। इसी प्रकार 'वायु पुराण' में 'चन्द्रगुप्त प्रथम' के साम्राज्य के विस्तार का समुचित उल्लेख उपलब्ध होता है। 'सूत्रसाहित्य' से उस समय के सामाजिक रीति रिवाज, धार्मिक व आर्थिक व्यवस्था का पूर्ण विवरण प्राप्त होता है। सम्भव है कि पौराणिक साहित्य, जिसकी ओर अन्वेषकों का पूर्ण ध्यान अब तक नहीं गया, हिन्दूकाल के प्राचीन इतिहास पर यथेष्ट प्रकाश डाले। यह तो रही धर्म-ग्रन्थों की ऐतिहासिक सामग्री की चर्चा। इनके अतिरिक्त "कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र" मौर्य वंश के राज्य-प्रबन्ध के विषय में परिचय देता है। प्रसिद्ध महापुरुषों की जीवनियाँ भी निस्सन्देह ऐतिहासिक सामग्री में वृद्धि करती हैं। जैसे कि महाकवि 'बाण' का 'हर्ष चरित्र' ( ६२० A. D. ), 'बिल्हन' का 'विक्रमांक देव चरित्र' 'चन्द्रवरदाई' का 'पृथ्वीराज रासो', 'पद्मगुप्त' का 'नवशशांक चरित्र' 'कल्हन' की बारहवीं शताब्दी में लिखी गई 'राजतरंगिणी' प्राचीन इतिहास पर मूल पुस्तकें हैं। ऐतिहासिक नाटक जैसे 'मुद्राराक्षस' तथा 'शकुन्तला' इत्यादि उस समय के रीति-रिवाज व सामाजिक व्यवस्था पर सुचारु रूप से प्रकाश डालते हैं। जैन व बौद्ध साहित्य भी प्राचीन ऐतिहासिक संकलन में सहायक हैं।

(ii) शिलालेख :—प्राचीन शिलालेख हिन्दूकाल का इतिहास जानने का सर्वोत्तम साधन है। ईसा से २०० वर्ष पूर्व का कोई ऐतिहासिक शिलालेख अब तक प्राप्त नही हुआ है। सम्भव है खोज करने पर भविष्य मे कही पाया जावे। शिलालेख पत्थर की शिलाओ, ताम्रपत्रों तथा लाटो पर पाये जाते हैं। इन पर प्राचीन समय की घटनाएँ, धार्मिक नियम तथा उनकी तिथियाँ खुदी हुई है। इनमे सबसे प्रसिद्ध सम्राट अशोक के लेख है। वे देश व्यापी हैं। उन पर बौद्ध धर्म के नियम, बौद्ध धर्म की पुस्तकों के उद्धरण, उसकी शासन व्यवस्था तथा उसकी प्रजा में सुख और शान्ति की स्थापना के साधन अ कित हैं। इसी प्रकार दूसरे प्रसिद्ध राजाओ के बहुत से शिलालेख मिलते हैं,जिनमे इलाहाबाद स्थित अशोक की लाट पर समुद्रगुप्त के साम्राज्य का विस्तार खुदा हुआ है। इनके अतिरिक्त अनेक ताम्र-पत्र व शिलालेख, राजस्थान, धार, मालवा, गोरखपुर व मद्रास प्रान्त मे पाये जाते हैं जिनसे उपयोगी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है।

(iii) सिक्के :—भिन्न-भिन्न राजाओं के सिक्के हमे उन राजाओ के साम्राज्य विस्तार, उनके धर्म व उनकी व्यक्तिगत मनोवृत्तियों का परिचय देते हैं। उदाहरण स्वरूप समुद्रगुप्त के सिक्के उसकी गान-प्रियता तथा उसके ब्राह्मण धर्म के अनुयायी होने के द्योतक हैं। इसके अतिरिक्त सिक्कों पर शाही पौराणिक गाथायें उद्धृत हैं। जो ताम्रपत्रो व शिलालेखों की भाँति प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री जुटाते हैं। सिक्को पर तिथि उन सम्राटो को काल बद्ध करने में पूर्ण सहयोग प्रदान करती है। वैक्ट्रियन व पार्थियन राजाओ के विषय का जो कुछ ज्ञान हमे प्राप्त हुआ है वह अधिकतर सिक्को द्वारा ही हुआ है।

विद्यार्थियो को स्मरण रखना चाहिये कि शिलालेख व सिक्के ऐतिहासिक दृष्टि से अमूल्य सामग्री हैं क्योंकि इतिहास सकलन करने की तीनों प्रमुख आवश्यकताएँ अर्थात् घटना, क्रम तथा काल इनसे पूर्ण होती हैं। परन्तु इनकी लिपियाँ प्राचीन होने के कारण वर्तमान लिपि से भिन्न हैं। अत. उन्हे पढवाने के लिये विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है।

(iv) प्राचीन भवन, मन्दिर व शिल्पकला :—प्राचीन भवन व मन्दिर उस समय की भवन निर्माण कला पर काफी प्रकाश डालते हैं—उदाहरण स्वरूप तक्षशिला की खुदाई से पता चला है कि कुशान वंशीय सम्राटो की भवन व नगर निर्माण कला कितनी उन्नत तथा वैज्ञानिक थी। उनके भवन, मन्दिर और स्तूप पुरातन सभ्यता के ज्वलन्त उदाहरण हैं। इसी प्रकार हड़प्पा, मोहनजोदड़ो की खोज

सिन्धु नदी तलहटी की सभ्यता का परिचय देती है। उनके भव्य भवन, पक्की ईंटों के मकान, स्नानागार, नालियाँ तथा पालतू जानवरों के चिह्न प्रदर्शित करते हैं कि प्राचीन काल में वहाँ एक सभ्य जाति निवास करती थी। सारनाथ की पच्चीकारी भारतवर्ष की ललित-कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है। देवगढ़ का पत्थर का मन्दिर भीता गाँव (कानपुर) का ईंटों का मन्दिर, अजन्ता व एलिफेन्टा गुफाओं की चित्रकारी, नालन्दा की बुद्ध जी की ताँबे की मूर्ति गुप्तयश की उन्नति का सबल प्रमाण हैं। विशेषज्ञ इन प्राचीन चिह्नों का अध्ययन करके पता लगाते हैं कि उनमें कौन कौन समकालीन हैं और उनमें क्या समानता है। इस प्रकार एक विशेषकाल की ललितकला तथा उसकी दूसरे काल में भिन्नता व समानता का परिचय मिलता है।

(v) किंवदन्तियाँ—संस्कृत व तामिल तथा पाली भाषाओं का जैन व बौद्ध साहित्य तथा उनमें लिखी हुई कहानियां व किंवदन्तियाँ भी प्राचीन ऐतिहासिक संकलन में सहायक हैं। राजा विक्रमादित्य तथा भोज के समय की ऐतिहासिक घटनाओं का परिचय पर्याप्तरूप से किंवदन्तियों द्वारा मिल जाता है।

(ब) विदेशी साधन—भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास पर उन विदेशी यात्रियों के जो हिन्दूकाल में समय-समय पर आये, लिपि-बद्ध लेख काफी प्रकाश डालते हैं क्योंकि यह लोग दूसरे देशों के रहने वाले थे अत. उनका वर्णन अधिक विश्वसनीय तथा निष्पक्ष है। सिकन्दर महान् के साथ आने वाले यूनानी विद्वानों तथा तत्पश्चात ईराक व मिश्र के भारत-स्थित राजदूतों ने इस देश की शासन व्यवस्था का पूर्ण उल्लेख किया है। इसमें मेगस्थनीज के प्रसिद्ध विवरण व पटोलमी द्वारा लिखित भारतीय भूगोल अधिक सुविख्यात है। ऐरियन नामक यूनानी ने भारतवर्ष व सिकन्दर के आक्रमण का बड़ा रोचक व आलोचनात्मक वर्णन किया है।

चीनी यात्री, सुपमाचीन, फाह्यान, ह्वानसांग के वर्णन अपने समकालीन इतिहास पर पूर्ण प्रकाश डालते हैं। इतिहास साहित्य के जन्मदाता सुपमाचीन ने भारतवर्ष का विस्तृत रूप से वर्णन किया है। फाह्यान, ह्वानसांग के वर्णन गुप्तकाल तथा हर्षवर्धन के विषय में अधिकार पूर्ण ग्रंथ कहे जा सकते हैं। प्रसिद्ध गणितज्ञ, ज्योतिषी तथा संस्कृति के विद्वान अलबरुनी ने जो महमूद गजनवी के साथ भारत आया था 'भारत की खोज' नामक पुस्तक लिखी है। इसमें हिन्दुओं के रीति-रिवाज, विज्ञान, कला व साहित्य के विषय में पूर्ण परिचय मिलता है।

उपर्युक्त साधन इतिहास की प्रचुर सामग्री जुटाते हैं। हिन्दू काल की गौरवमयी गाथायें, चमकते हुए रत्न, सभ्यता की पराकाष्ठा इन सब साधनों में निहित है।

## प्रश्न

१—भारत का प्राचीन इतिहास क्यों महत्वपूर्ण समझा जाता है ?

२—किस देश का इतिहास जानने के लिए कितने प्रकार की सामग्री आवश्यक होती है ?

३—सामग्री प्राप्ति के विचार से हम हिन्दू काल को किन ऐतिहासिक भागों में बाँटते हैं और क्यों ?

४—प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के क्या साधन हैं ।

---

अध्याय २

# सिन्धु प्रदेश

## (भारतवर्ष का प्राचीनतम सभ्य प्रदेश)

सन् १६२२ की खोज—प्रलयो, भूकम्पो तथा कालकुचक्रो ने न मालूम कितनी सभ्यताओ को पद-दलित किया है। यदि सम्पूर्ण विश्व को खोदा जावे तो न मालूम भू भार से दबी हुई कितनी सभ्यताये सिसकती हुई मिलेंगी। भारत में भी पुरातत्व विभाग की देख रेख में जो नगर खोद कर निकाले गये हैं उनसे प्राप्त सजीव मूर्तियाँ, भोग-विलास के साधन, ललित कलाओ की झाँकी तथा सिक्के इत्यादि भारत की प्राचीन सभ्यता पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। और सभ्यता को उस सीमा तक पहुँचने में मानव को कितनी शताब्दियो तक तपस्या करनी पडी होगी यह विचार भारतीय सभ्यता की प्राचीनता को और भी दृढ करता है। सन् १६२० ई० से पूर्व की खोजों के आधार पर अजन्ता की गुफाओ तथा अलौरा के मन्दिरो ने भारत की सभ्यता को प्राचीनतम् ठहराया था। किन्तु सन् २२ में सिन्धु प्रदेश के लरकाना जिले में मोहनजोदडो व मोन्टगुमरी जिले में हडप्पा की खोज ने इतिहासकारो को नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया है।

सिन्धु प्रदेश की सभ्यता—पुरातत्व विभाग की देख रेख में हडप्पा तथा मोहनजोदडो की खुदाई कराई गई। जो वस्तुएँ इस प्रयास से प्राप्त हुई उनका अध्ययन करने से पता चलता है कि ईसा से ३१०० वर्ष पूर्वकाल में यहाँ उच्चकोटि की सभ्यता विद्यमान थी। दूसरे जिन मनुष्यों ने ऐसे भव्य भवनो का निर्माण किया उन्हें सहस्रो वर्षों का अनुभव प्राप्त होगा। अत यह निर्विवाद है कि भारतीय सभ्यता मिश्र तथा बैबीलोनिया की सभ्यता से कही अधिक प्राचीनतम तथा उच्चतर है।

पहिनते थे। किन्तु कंकरण, कड़े और करधनी केवल स्त्रियां ही पहनती थी। स्नान एक धार्मिक कृत्य समझा जाता था। स्नानागारो के निर्माण पर विशेष ध्यान दिया जाता था। वे लिखना भी जानते थे। कुटुम्ब में प्रायः ऐसे ही बर्तन प्रयोग में आते थे जैसे कि अब हिन्दुओं के घरों मे देखने में आते हैं। मुर्दों के विषय में ठीक नही कहा जा सकता कि लोग कौन सी प्रणाली को अपनाये हुये थे—जलाने की या गाड़ने की—क्योंकि कही मृतक की राख और कही २ शव गड़े हुये मिले हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये किसी विशेष प्रणाली के अनुयायी नहीं थे। दोनों ही प्रथायें प्रचलित थी। हो सकता है कि आरम्भ मे मुर्दें गाडे जाते हों और बाद मे आर्यों के सम्पर्क से जलाने की प्रथा पड़ गई हो। गाडने की दशा में शव को एक बड़े बर्तन में रखते थे; और खाना, कपड़ा व अस्त्र-शस्त्र व इसी प्रकार की अन्य वस्तुयें साथ में रखकर उसे समाधिस्थ करते थे।

**उनका धर्म :**—सिन्ध प्रदेश के पुरातन निवासी किस धर्म के अनुयायी थे इसका परिचय हमें खोदकर निकाली हुई मूर्तियाँ देती हैं। उनसे पता चलता है कि लोग एशिया-माइनर तथा मिश्र इत्यादि के निवासियों की भाँति दुर्गा पूजा करते थे। मोहरों पर अंकित चित्रों से प्रतीत होता है कि वे शिव की पशुपति के रूप में उपासना करते थे। हिन्दुओं में आज भी यह प्रथा प्रचलित है। शिवलिंग की उपासना का भी रिवाज था। मुहरों पर खुदे हुये चित्रों से यह भी प्रकट होता है कि वे कुछ विशेष वृक्षों तथा पशुओं की भी पूजा करते थे। आज भी हिन्दुओं में पीपल तथा गाय इत्यादि की पूजा विद्यमान है। सिन्धु नदी की तलहटी के मूल निवासी तथा बैबीलोनिया के सुमेरियन लोगो में धार्मिक समानता प्रतीत होती है। परन्तु निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि दोनो देशो के मूल निवासी एक ही धर्म के अनुयायी थे या नही।

**उनकी सभ्यता का विस्तार :**—विशेषज्ञों का कहना है कि मोहनजोदड़ो के खंडहर ईसा से लगभग ३२५० वर्ष पूर्व के हैं। यह सभ्यता कई शताब्दियों तक जीवित रही होगी। खुदाई करने से ऐसी ही वस्तुएँ पंजाब के मोन्टगुमरी जिले में स्थित हड़प्पा व कराँची तथा अन्य स्थानो में पाई गई हैं। बिलोचिस्तान में भी ऐसी ही वस्तुऐं मिली हैं। अतः प्रतीत होता है कि यह सभ्यता बहुत दूर तक विस्तृत थी। गोदावरी के तट पर तथा सुदूर दक्षिण मे इन लोगों की समाधियों से समानता रखती हुई समाधियाँ पाई जाती हैं, जिससे अनुमान लगाया जाता है कि यह जाति आर्यों से परास्त होकर उस ओर चली गई हो। इस सभ्यता का जन्म देने वाले द्राविड़ थे या नहीं यह भी विवादग्रस्त विषय है।

मोहनजोदड़ों की सम्यता सिन्धु नदी की सम्यता के नाम से अधिक प्रसिद्ध है क्योंकि सिन्धु तथा उसकी सहायक नदियाँ इसके प्रसार एवं विकास में बहुत सहायक हुईं। इसका यह अभिप्राय कभी नहीं है कि यह सम्यता यहीं तक सीमित थी। संसार के इतिहास में इसका विशेष स्थान है। यह उस सम्यता का जो मिश्र से भारत तक फैली हुई थी, एक विशेष अंग प्रतीत होती है। बिलोचिस्तान, इराक व मैसोपोटामिया में भी इसी प्रकार की मोहरें मिलती हैं जिससे सिंधु प्रदेश का इन देशों से सम्बन्ध पुष्ट होता है। सिंधु नदी की घाटी की सम्यता और बैबीलोन के सुमेरियन लोगो की सम्यता में बहुत समानता प्रतीत होती है। परन्तु अभी यह प्रमाणित नही हो सका कि इन लोगो मे रक्त सम्बन्ध था या किसी और प्रकार का परन्तु यह निश्चित है कि ये लोग आर्यों से भिन्न थे। उनकी और आर्यों की सम्यता मे कोई समानता नही दिखाई देती। इस तरह हम देखते हैं कि सिन्ध प्रदेश की सम्यता का विस्तार देश तथा विदेश दोनों में ही था।

**सिन्धु प्रदेश की सम्यता का क्षय :**—सिन्धु प्रदेश की सम्यता किस प्रकार नष्ट हुई यह अभी कल्पना का ही विषय है। सम्भव है अपने से बलिष्ठ आर्य या किसी अन्य जाति द्वारा परास्त होकर ये लोग दक्षिणी भारत या लंका की ओर चले गये हों और विजेता जाति ने उस सम्यता को नष्ट भ्रष्ट कर डाला हो। हो सकता है कभी सिन्धु नदी ने इस सम्यता को जल-मग्न कर दिया हो या सिन्धु नदी के धीरे २ दूर हटने पर स्वयं ही ये लोग इन नगरों को त्यागकर चले गये हों। या सम्भव है कि किसी भयंकर भूचाल में ये नगर वसुधांक में विलीन हो गये हों। कुछ भी हो, परिवर्तन हुआ। सम्यता विलीन हुई। परन्तु यह सत्य है कि भारतवर्ष अब से ६००० वर्ष पूर्व भी उन्नति के शिखर पर था और जब विश्व की आधुनिक सम्य जातियाँ अज्ञानता के अन्ध कूप में डुबकियाँ लगा रही थी हमारे पूर्वज भव्य भवनों, गगन चुम्बी प्रासादों व अतुलनीय वैभवों के स्वामी थे। ललित कलाओं में वे इतने दक्ष थे जितने कि पाश्चात्य देश अब हैं।

## प्रश्न

१—सिंधु नदी की घाटी की सम्यता का कब पता चला ?

२—मोहनजोदडो और हड़प्पा की खुदाई से सिंधु नदी की घाटी की सम्यता पर क्या प्रकाश पड़ा है ?

३—सिंधु प्रदेश की सम्यता तथा वैदिक सम्यता अपनी समकालीन सम्यताओं से क्या सम्बन्ध रखती थी ?

४—सिंधु घाटी की सम्यता किस प्रकार नष्ट हुई ?

## अध्याय ३

# आर्यों का आगमन

**ऋग्वेद** :—आर्यों के सामाजिक जीवन पर पर्याप्त रूप से प्रकाश डालने वाला धार्मिक ग्रन्थ ऋग्वेद ही प्राचीनतम वेद है। इसका रचनाकाल विवादग्रस्त है। यह निश्चित है कि ऋगवेद ई० पू० १२०० में अवश्य मौजूद था। परन्तु ऋगवेद की सभ्यता इससे कहीं अधिक प्राचीन है। यह एक उच्च श्रेणी की सभ्यता है अतः इसके विकास में सैंकडो क्या हजारों ही वर्ष लगे होंगे। इसी प्रकार ऋग्वेद की भाषा ने भी जो पर्याप्त रूप से समुन्नत है अपने विकास मे सैंकडो ही वर्ष लिये होंगे। यह सारी सभ्यता जिस जाति में प्रारम्भ हुई तथा जिसमे इसका विकास हुआ उसे स्वयं ऋगवेद ने आर्य बताया है। आर्य शब्द का अर्थ है श्रेष्ठ। अतः प्रतीत होता है कि ये अन्य मनुष्यों से अधिक सभ्य थे या अपने को औरों से अधिक ऊँचा मानते थे, यद्यपि अपने आपको स्वयं आर्य कहना उनके स्वाभिमान का परिचायक है। ऋगवेद में ही इस बात के कई प्रमाण हैं कि आर्य लोग भारत में कहीं बाहर से आये। वे यहाँ के आदिम निवासी नहीं थे। ऋग्वेद में यमुना नदी तक ही मिलने वाले दृश्यों; पशुओं एवं वनस्पति का उल्लेख है। कुछ कालान्तर के साहित्य में यमुना से आगे के पूर्वी प्रदेश जैसे उत्तर प्रदेश, मगध इत्यादि का नाम तथा वर्णन मिलता है। इससे प्रकट होता है कि आर्य पश्चिम से आकर पहिले पंजाब में बसे और तत्पश्चात् आगे बढ़े। ऋग्वेद में अनार्यों के साथ युद्धों का भी वर्णन है। इससे प्रतीत होता है कि बाहर से आने वाले आर्यों को भारत के प्राचीन निवासियों से बहुत वर्षों तक युद्ध करना पड़ा। प्रश्न है कि आर्य भारत आने से पूर्व कहाँ रहते थे? अन्य जातियों मे इनके क्या सम्बन्ध थे? किस मार्ग से वे भारत में प्रविष्ट हुये तथा किस प्रकार विकसित हुये?

**आदि स्थान** :—आर्य कहाँ रहते थे? इनका अन्य जातियों से क्या सम्बन्ध था? ये ऐसे जटिल प्रश्न हैं जिनका उत्तर समुचित रूप से नहीं दिया जा सकता। विद्वानों का मत है कि आरम्भ में मनुष्यों का एक छोटा सा समुदाय था। उनकी इच्छायें सीमित थीं; उनके रहन सहन इतने साधारण थे कि बहुत थोड़े से शब्दों में ही वर्णन किये जा सकते थे। वे आदि शब्द भिन्न २ भूभागों में भिन्न २ परिस्थितियों के कारण कुछ परिवर्तित होकर ज्यो के त्यों बने हुये हैं। संस्कृत, पश्तो, फारसी आदि एशियाई भाषाओं में तथा ग्रीक लैटिन, जर्मन, फ्रेंच तथा इङ्गलिश और रशियन आदि भाषाओं में बहुत से समान शब्द हैं—इनमें पिता, माता, भाई, द्वार, गौ इत्यादि अनेकों शब्द एवं बहुत सी क्रियायें पर्याप्त समानता लिये हुये हैं। इस आधार पर

१६ वी शताब्दी में विद्वानो की धारणा हुई कि ये सब भाषायें एक ही आदि भाषा की रूपान्तर हैं, तथा इन भाषाओं के बोलने वालो के पूर्वज उस आदि भाषा के बोलने वाले एक ही समुदाय के अग थे। इन विद्वानो ने उस समुदाय को "आदि समुदाय" तथा एक ही स्थान विशेष का वासी ठहराया है। इस धारणा का मैक्समूलर इत्यादि विद्वानो ने लेखा द्वारा इतना प्रसार किया कि वह सर्व मान्य सी हो गई। परन्तु यह आदिस्थान क्या था इस पर विद्वानों के भिन्न २ मत हो गये। बहुतो की राय थी कि यह स्थान मध्य एशिया था जो प्राचीनकाल में हरा भरा था परन्तु धीरे धीरे शुष्क होने पर आर्य इसे छोडकर दक्षिण तथा पूर्व में जा बसे। कुछ विद्वानो की राय थी कि यह आदिम स्थान पूर्वी रूस था। कुछ सम्मतियो के अनुसार यह देश फिनलैण्ड था जहाँ आज भी सस्कृत से मिलती जुलती भाषा बोली जाती है। कुछ विद्वानो का कथन है कि यह आदिस्थान मध्य योरुप में डैन्यूब नदी के निकट आधुनिक जैकोस्लावेकिया था जहाँ के वृक्ष, पशु इत्यादि पुरानी ऋचाओं में वर्णित से प्रतीत होते हैं। बाल-गगाधर तिलक की राय थी कि यह स्थान उत्तरी ध्रुव के पास था। कहने का तात्पर्य यह है कि भिन्न २ विद्वानो ने भिन्न २ स्थान 'आदि स्थान' सिद्ध करने की चेष्टा की है। किन्तु मनुष्य की बनावट तथा उसके दाँतो से यह बात अवश्य स्पष्ट है कि जन्म से मनुष्य दूध तथा फल खाने वाला व्यक्ति था। उसके दाँत सिद्ध करते हैं कि वह माँसाहारी नही था अत आदिस्थान चाहे कही हो पर उस स्थान पर फल तथा अन्न इत्यादि अवश्य थे ऐसा अनुमान है।

**अन्य विचार धारायें**—अभी यह प्रश्न तय भी न हो पाया था कि अन्य दिशाओं से भाषा आधार की सम्पूर्ण धारणा पर ही आपत्तियो की बौछार होने लगी। कुछ विद्वानो ने इस बात पर जोर दिया कि भाषा की समानता से जाति की समानता सिद्ध नही होती, पुरानी हड्डियो और खोपडियो की नपत से प्रकट होती है कि उपरोक्त सब भाषाओं के बोलने वाले पूर्वज एक जाति के नही हो सकते, वे विभिन्न जाति के रहे होंगे। धर्म, भाषा एव सभ्यता की समानताओं से केवल इतना ही सिद्ध हो सकता है कि उनके प्रयोग करने वाली जातियाँ किसी समय एक ही समुदाय के प्रभुत्व के नीचे आये थे, जो कि आर्य हो सकता है। अत अब पुरानी धारणा जिसे मैक्समूलर आदि विद्वानो ने प्रमाणित किया था इस परिवर्तित रूप में मानी जाने लगी। परन्तु आर्यों का आदिस्थान अब भी अधिकतर मध्य एशिया ही समझा जाता रहा।

**मध्य एशिया से आर्यों का उद्गम**—इस प्रकार हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि भारत में आने वाला आर्य समुदाय किन्ही कारणो से मध्य एशिया छोड

कर यहाँ आया और सर्व प्रथम उत्तरी भारत में बसा। परन्तु यह अभिप्राय इसका कदापि नहीं कि आधुनिक काल में उत्तरी भारत में बसने वाला प्रत्येक जन बाहर से आये हुए आर्य की सन्तान है। आर्य स्वयं संख्या में इतने न थे कि पुराने निवासियों का सर्वनाश कर सम्पूर्ण देश में बस जाते। उन्होंने भारत के मूल निवासियों को हरा कर देश पर आधिपत्य जमा लिया तथा कुछ शताब्दियों के पश्चात् उन पर अपनी उच्च सभ्यता की प्रबल छाप लगा दी। उनको अपने धर्म में मिला लिया, तथा उनसे विवाह सम्बन्ध इत्यादि स्थापित कर उन्हें अपनी ही जाति का अंग बना लिया।

**मार्ग तथा प्रसार**—विद्वानों का विश्वास है कि आर्य लोग उत्तर पश्चिम के दर्रों से भारत आये और सर्व प्रथम पंजाब में आकर बसे। किन्तु हुर्नल इत्यादि विद्वानों ने यह भी सिद्ध करने की चेष्टा की है कि आर्य भारत में काश्मीर के मार्ग से आये और हिमालय की तलहटी में चलते हुए गंगा-यमुना के मैदानों में आ बसे। इस विचार का अनुमोदन प्रसिद्ध भाषा-शास्त्रवेत्ता ग्रियर्सन ने भिन्न २ प्रदेशों की प्रचलित भाषाओं की तुलना के आधार पर किया है। किन्तु इस मत को पुष्ट करने के लिये अकाट्य प्रमाण नहीं मिला है। अतः यही मानना उचित है कि आर्य लोग उत्तर-पश्चिम से आये। सम्भव है कि वे सब एक साथ न आये हों, वरन् छोटे-छोटे समूहों में कई बार आये हो, ऐसा जन-समूहो की गतियों में साधारणतः होता भी है। ऋग्वेद के समय तक वे सारे पंजाब में फैल गये तथा गंगा-यमुना के किनारों तक भी पहुँच गये क्योंकि ऋग्वेद में जहाँ पंजाब की नदियों का बार २ उल्लेख मिलता है वहाँ गंगा तथा जमुना का भी जहाँ-तहाँ उल्लेख आता है। परन्तु गंगा से पूर्व की किसी भी नदी अथवा पूर्वी देश की उपज चावल का कोई वर्णन न होने के कारण यह स्पष्ट है कि ये लोग बिहार प्रदेश तक उस समय नहीं पहुँचे थे।

## वैदिक काल

**३००० वर्ष ई० पू० से १००० वर्ष ई० पू०**—वैदिक काल उस काल का नाम है जिसमें वेदों की रचना हुई। यह काल एक विवादग्रस्त विषय है। जर्मन विद्वान् मैक्समूलर का मत है कि वेदों की रचना १२०० वर्ष ई० पूर्व से १००० वर्ष ई० पूर्व के मध्य में हुई। भारतीय विद्वान् डाक्टर भाण्डारकर इत्यादि कहते हैं कि यह काल ४००० वर्ष ई० पू० से ३००० वर्ष ई० पू० तक था। इस बात से सब सहमत हैं कि वैदिक साहित्य मिश्र, बैबीलोनिया व जैन्दावस्ता के साहित्य से कहीं अधिक पुराना है। जहाँ तक वैदिक काल के आरम्भ का प्रश्न है इसके विषय में यह कहा जा सकता है कि यह आर्यों के आगमन से अवश्य सम्बन्धित है। पुरातत्व-विभाग व अन्य

ऐतिहासिक खोजो से अब विद्वान् इस मत पर पहुँचे हैं कि यह आगमन २००० वर्ष ई० पू० हुआ। चूंकि ऋग्वेद उनके आगमन से पूर्व आरम्भ हुआ, अत वैदिक काल की आदि सीमा ३००० वर्ष ई० पू० से २००० वर्ष ई० पू० प्रतीत होती है। जहाँ तक इस काल की अन्तिम सीमा का सम्बन्ध है इसके विषय में इतना स्पष्टतया कहा जा सकता है कि बौद्ध व जैन चारो वेदों से पूर्णतया परिचित थे। अत अन्तिम वेद की रचना इन धर्मों के अभ्युदय से पूर्व हो चुकी थी अर्थात् ६०० वर्ष ई० पू० से भी पहिले वैदिक साहित्य पूर्ण हो चुका था अत महाकाव्यो के रचना काल को उचित समय देते हुए हम इस अनुमान पर पहुँचते हैं कि वेदो की रचना १००० ईसा वर्ष पूर्व तक हो चुकी थी। इस तरह वैदिक काल ३००० ई० पू० से १००० ईसापूर्व तक ठहरता है।

**वैदिक काल का विभाजन**—इतने लम्बे समय में राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक दशा एकसी नही रह सकती। अत वैदिक काल का सभ्यता का अध्ययन करने के लिये हम इसे दो भागो में विभाजित करते हैं,—एक 'पूर्व वैदिक काल' जिस में ऋग्वेद सहिता की रचना हुई और जो २००० वर्ष ई० पू० से भी पहिले है। दूसरा 'उत्तर वैदिककाल' जिसमें अन्य तीन वेदो की रचना हुई और जो २००० वर्ष ई० पू० से १००० ईसा पूर्व तक है।

**पूर्व वैदिक काल**—( २००० वर्ष ई० पू० से प्रथम ) इस काल मे आर्य लोग उत्तरी पश्चिमी दर्रों से आकर पजाब में बसे। ऋग्वेद में इसका सप्त सिंधव प्रदेश के नाम से उल्लेख है। इनमें पाँच पजाब की ( सतलज, रावी, व्यास, चनाब, झेलम) तथा दो स्वात व गोमता अफगानिस्तान की नदियाँ सम्मिलित हैं। गगा तथा यमुना का इसमें कम वर्णन है। सरस्वती नामक एक और नदी का उल्लेख भी ऋग्वेद मे आता है, यह सिन्धु नदी की एक सहायक नदी थी जो अब समाप्त हो चुकी है। इस नदी के प्रति आर्यो की बडी श्रद्धा थी। ऋग्वेद की अधिकतर ऋचाओ की रचना इसी के तट पर हुई। इससे सिद्ध होता है कि इस काल में आर्य लोग सिंधु व पजाब प्रदेश तक ही सीमित रहे।

**वैदिक परिवार**—पूर्व वैदिक काल मे आर्य लोग परिवार के रूप में गाओ मे रहते थे। उनके घर तथा निवासस्थान प्राय अर्वाचीन ग्रामीणो के से ही थे। परिवार गाँव की इकाई थी। पिता या कुटुम्ब का सर्ववयोवृद्ध परिवार का प्रधान होता था। प्रधान को कुटुम्ब के अन्य सदस्यो पर बहुत अधिकार होता था। स्त्री यद्यपि पति के आधीन थी तथापि बहुत सम्मान की दृष्टि से देखी जाती थी। उन्हे

गृह सम्बन्धी समस्त कार्यों पर पूर्ण अधिकार होता था। वे प्रात.काल उठती और समस्त परिवार तथा सेवको को कार्य में संलग्न करती थी। यह सब कार्य वे गाती हुई दशा में करती थी। उन्हें बहुत उदार शिक्षा दी जाती थी। विदुषी स्त्रियों ने कतिपय श्लोको की रचना भी की है। पर्दे की प्रथा न थी। स्त्रियाँ नि.सकोच यज्ञ, हवन, तथा उत्सवों का भार धारण करती थीं तथा उनमें स्वतन्त्रता पूर्वक भाग लेती थी। वे आभूषण पहनती थीं। 'बहु विवाह' व 'बाल विवाह' बिल्कुल वर्जित थे। विधवा विवाह की पद्धति थी परन्तु बहुत कम होता था। सती की प्रथा थी परन्तु अनिवार्य रूप से नहीं, सती होना स्त्री की इच्छा पर निर्भर था।

वर्ग तथा जनः—बहुत से परिवार मिलकर एक वर्ग बनता था। प्रत्येक वर्ग दूसरे वर्ग से भिन्नता सूचक चिन्ह रखता था। यह चिन्ह बहुत पवित्र समझा जाता था। उदाहरण-स्वरूप यदि किसी वर्ग का चिन्ह चावल होता तो समस्त वर्ग चावल खाने से परहेज करता था। बहुत से वर्ग मिलकर एक 'जन' होता था। 'जन' का एक राजा होता था।

राजनैतिक व्यवस्था—इस प्रकार हम देखते हैं कि पूर्व वैदिक काल में समस्त आर्य जाति भिन्न २ जन (समूहों) में विभक्त थी। हर एक जन का राजा होता था। राजाओं में 'पाँच' या पंचजन प्रसिद्ध हैं। 'पुरु' 'तुरुव' 'यदु' 'अनु' व द्रुह्यु। यह ठीक नहीं कहा जा सकता है कि इनके अधिकृत प्रदेश कौन कौन थे। एक और प्रसिद्ध 'जन' भरत नामक था जिसके नाम पर हमारा देश भारत पड़ा। ये 'जन' आपस मे युद्ध करते रहते थे। ऐसे ही दस जनों के युद्ध का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है, किन्तु भारत के आदि निवासियों से युद्ध करने के लिए सब जन एक हो जाते थे। शासनसत्ता वंशपरम्परागत चलती रहती थी। राजा बडी शान के साथ रहता था। उसका वैभव नेत्रों को चकाचौंधियाने वाला होता था। उसकी आज्ञा अटल तथा शिरोधार्य होती थी। वह वेद नियमो के अनुकूल आचरण करता था। उसकी सहायता के लिये एक पुरोहित होता था। राजा का मुख्य कार्य युद्ध के समय सैन्य-संचालन करना था। उसकी सहायता के लिये सेनानी नामक पदाधिकारी होता था। शान्तिकाल मे राजा-न्यायाधीश का कार्य करता था। राजा का भूमि पर कोई अधिकार नही था, वह प्रजा के व्यक्तिगत अधिकार में थी। कोई नियमित सेना नही रक्खी जाती थी—सेना प्रायः ग्रामीणों का समूह होती थी। पराजित राजाओं से कर लिया जाता था।

जन सभा—जन के प्रबन्ध के लिए दो सभायें होती थी। एक का नाम सभा तथा दूसरी का नाम 'समिति' था। यह ज्ञात नही कि इनका निर्वाचन किस
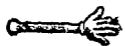
Vedic Utensils

वेदकाल के बर्तन
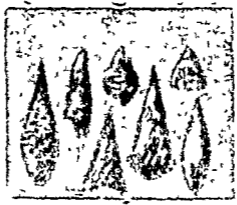
प्राचीन पाषाण युग के पत्थर के औजार

प्रकार होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि सभा गाँव का प्रबन्ध करती थी। और समिति जन का। कुछ लोगों का मत है कि यह राजा का निर्वाचन करती थी। परन्तु इसका कोई प्रमाण नही मिलता। किन्तु यह अवश्य है कि इसके द्वारा गाँव व जन पर नियन्त्रण रक्खा जाता था।

**उद्यम**—आर्य लोगो का मुख्य व्यवसाय कृषि या पशु पालन था। पशुओ में विशेषतया गाय पाली जाती थी। एक परिवार का धन गायो की सख्या पर निर्भर था। आर्य लोग बुनाई व चमड़े के काम से भी परिचित थे। वे सोने के आभूषण बनाते थे। वे ताँबा व पीतल के अस्त्र-शस्त्र बनाते थे।

**आहार**—आर्य गेहूँ व जौ की रोटियाँ बना कर खाते थे। ऋग्वेद मे चावलो का कोई वर्णन नही। परन्तु अगले वेदो मे चावल का उल्लेख है। दूध आहार का विशेष अग होता था। दूध से बहुत सी खाद्य सामग्री तैयार की जाती थी। विवाह इत्यादि के अवसर पर मास का भी प्रयोग किया जाता था परन्तु साधारणतया आर्य लोग शाकहारी थे। वे मदिरा पान भी करते थे। उनमें सोम, व सुरा मुख्य हैं। वे सोम को विशेष महत्व देते थे। सोम एक बेल विशेष का रस होता था तथा सुरा अन्न मे खीची जाती थी। उच्च वर्ण मे सोमरस का तथा निम्न वर्ण में सुरा का प्रयोग होता था।

**देवता**:—आर्य लोग प्रकृति की भिन्न २ दशाओ जैसे उषा, सन्ध्या, वरुण इत्यादि को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे और प्रत्येक को एक देवता मानते थे। इन प्राकृतिक शक्तियो से ऊपर ईश्वर का विचार अभी कम व्याप्त हुआ था। प्रार्थना के अतिरिक्त देवताओं को प्रसन्न करने के लिये आर्य लोग यज्ञ व हवन इत्यादि करते थे और मन्त्रो के साथ घी, दूध व सोम की आहुति देते थे।

**वर्ण व्यवस्था**:—आदि निवासियों से युद्ध इत्यादि मे व्यस्त रहने के कारण सब आर्यो के लिए दैनिक सन्ध्या व हवन करना असम्भव हो गया था। अतः आर्य लोग तीन वर्गों में विभक्त हो गये थे—ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य जिनका क्षेत्र धार्मिक, सैनिक तथा व्यवसायिक था। परन्तु अभी यह विभाजन सर्वथा व्यवहारिक था। जन्म का इस पर कोई प्रभाव न था। समस्त जाति एक थी।

**उत्तर वैदिक काल**:—( २००० ई० पू० से १००० ई० पू० तक )।

**वैदिक सभ्यता का प्रसार**:—इस युग में वैदिक सभ्यता बहुत उन्नत हो चुकी थी। आर्य लोग भारतवर्ष में अधिक दूर तक प्रविष्ट हो चुके थे। इस समय के

पूर्व वैदिक काल में भारतवर्ष
गुजरात
अ र ब
सा ग र
बं गा ल
की
खा ड़ी

साहित्य में पाचाल ( उत्तरी दोग्राब ) कौशल (अवध) विदेह (उत्तरी विहार) विदर्भ (बरार) का पूर्ण उल्लेख है। विन्ध्याचल के उस पार आर्य लोग अब तक न पहुँचे थे। अब पश्चिमी पंजाब के बदले दोआब स्थित कुरु व पांचाल राज्य आर्य सभ्यता के केन्द्र हो गये थे।

**नगर निर्माण** :—इस काल में हमें नगरों के नाम भी मिलते हैं जैसे कि कुरु राज्य की राजधानी असान द्वीप थी जिसकी अब तक खोज नही हो सकी। पांचाल देश की राजधानी वर्तमान फर्रुखाबाद जिले में स्थित काम्पिल व काशी ( बनारस ) इत्यादि। इसका यह अर्थ हुआ कि इस काल में आर्य लोग गाँव तक ही सीमित नही रह गये वरन् उन्होने नगरों का निर्माण भी आरम्भ कर दिया था। नये अधिकृत प्रदेश का विस्तार होने के कारण राज्य भी सुविस्तरित हो गये थे। इस प्रकार राज्य की प्रतिष्ठा में भी अन्तर आ चुका था। इस काल में हम प्रथम सम्राट् व अधिराज आदि शब्दों का प्रयोग देखते हैं। इसका अर्थ यह है कि साम्राज्य-वाद का अभ्युदय हो चुका था। सभा व 'समिति' अभी तक होती थी। उनका राजा व राजकीय कार्यों तथा युद्ध व सन्धि इत्यादि पर प्रभाव था। प्रजा अस्वस्थ, रोगी एवं अंगहीन राजा को पद-च्युत कर सकती थी। राजा की सहायता के लिए कुछ पदाधिकारी होते थे जो 'वीर' या 'रत्न' कहलाते थे। उनमें महिषी (रानी), पुरोहित, सेनानी एवं समग्रह मुख्य थे।

**मूल निवासियों से वैवाहिक सम्बन्ध** :—ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में भारतवर्ष के आदि निवासियों तथा आर्य लोगों में परस्पर विवाह इत्यादि आरम्भ हो गये थे। एक ऐसे सस्कार का भी उल्लेख प्राप्त होता है जिसके द्वारा अनार्यों को आर्य धर्म में बदला जा सकता था। इस प्रकार आर्य लोगों का मूल से मिश्रण होना आरम्भ हो गया था।

**वर्ण व्यवस्था** :—इस युग में वर्ण व्यवस्था अधिक प्रवल हो चली थी। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तथा शूद्र एक दूसरे से बिल्कुल पृथक हो गये थे। शूद्र अधिकतर मूलनिवासी थे। इनका काम सेवा करना तथा कृषि इत्यादि में सहयोग देना था। अब जन्म से ही वर्ण निश्चित होने लगा था।

**कृषि व उद्योग** :—गंगा व यमुना के मैदान पर अधिकार हो जाने के कारण इस काल में कृषि की विशेष उन्नति हो गई थी। लोग एक वर्ष में दो दो फसलें उत्पन्न करने लगे थे। नये २ उद्यम जैसे रस्सी बनाना, रंगना, कुम्भकारी, स्वर्णकारी, इत्यादि

प्रचलित हो गये थे। धोबी, जुलाहे, नाई, अहेरिया, शिकारी, मछेरे इत्यादि के अनेक कार्य सम्पन्न होने लगे थे।

भाषा :—इस युग मे सस्कृत राज भाषा एव राष्ट्र भाषा हो गई थी। पाणिनि जैसे विद्वानो ने व्याकरण शास्त्र द्वारा इसको बिल्कुल शुद्ध कर दिया था। दैनिक व्यवहार के लिए सस्कृत व आदि निवासियो की भाषा के सम्पर्क से नवीन प्राकृत भाषा उत्पन्न हो गई थी। समय व स्थान के अनुसार इसके सौर सैनी प्रदेश में सौर सैनी, मगध में मागधी, महाराष्ट्र मे मराठी इत्यादि नाम पड गये थे। लेखन कार्य सम्पन्न करने के लिए लिपि का इस काल में सर्व प्रथम प्रयोग हुआ।

अन्य शास्त्र :—वैदिक साहित्य का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि इस समय आर्य लोगो मे भूमिति, औषधि, विज्ञान, व ज्योतिष शास्त्र आ चुके थे। हवन की वेदी का निर्माण प्रमाणित करता है कि उस समय के आर्य भूमिति ज्ञान अवश्य रखते थे। तिथियाँ, नक्षत्रो का ज्ञान उनकी ज्योतिष विद्या में निपुणता का प्रतीक है। औषधि क्षेत्र अधिक उन्नत नही था। बीमारियो (सर्प दश, बिच्छु दश इत्यादि) के विरुद्ध मन्त्रो का प्रयोग होने लगा था।

धर्म :—धार्मिक विचार धारा मे इस समय बहुत अन्तर हो गया था। बलि उपासना का एक विशेष अग बन गई थी। लोगो का विश्वास हो गया था कि बलि द्वारा देवताओ को प्रसन्न कर वश में किया जा सकता है। बलि देने के लिए बडे २ उत्सव किये जाते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि आदि वेदकाल से अन्तिम वेदकाल में बहुत अन्तर हो गया था।

## प्रश्न

१—आर्यों के आदि स्थान के विषय में क्या भिन्न २ मत हैं ? तुम इनमें से किस मत से सहमत हो और क्यो ?

२—वैदिक काल का विभाजन किस प्रकार किया जाता है ?

३—पूर्व वैदिक काल की सभ्यता का वर्णन दो ?

४—उत्तर वैदिक काल की सभ्यता के विषय में तुम क्या जानते हो ?

## अध्याय ४

# महाकाव्य काल

महाकाव्य से तात्पर्य रामायण तथा महाभारत से है। ये काव्य क्षत्रिय प्रतिष्ठा के द्योतक हैं। इन्हें एक प्रकार की वीर गाथायें कहा जावे तो अनुचित न होगा। महाकाव्य काल से उस काल का बोध होता है जिस समय इस काल के नायक भारत में राज्य करते थे। इस काल की निश्चित तिथि तो अब तक विदित नही हो सकी परन्तु इतिहासकारो का मत है कि इनका रचनाकाल बौद्ध काल से पूर्व १००० ई० पू० के लगभग है। मूल कथा उस काल से पूर्व की हो सकती है।

राजनैतिक दशा :—महाकाव्यो से हमें विदित होता है कि इस समय कई बड़े २ राज्य थे। गंगा तथा यमुना के दोग्राब के ऊपरी भाग में कुरुवंश का राज्य था। उसकी राजधानी हस्तिनापुर थी। इससे आगे चलकर गंगा तथा यमुना के संगम के निकट पांचाल राज्य था। इसकी राजधानी कम्पिल थी जो वर्तमान फर्रुखाबाद जिले में है। सरयू नदी के निकटवर्ती प्रदेश में कौशलवंश का राज्य था। इसकी राजधानी अयोध्या थी। इनसे पूर्व की ओर अर्थात् बिहार के उत्तरी भाग में विदेह राज्य था। इसका प्रमुख नगर तिरहुत था। यमुना के पश्चिम में अर्थात् वर्तमान झांसी की ओर मत्स्य राज्य था। काशी से दक्षिण-पूर्व की ओर मगध की रियासत थी। महाभारत से पता चलता है कि वर्तमान बिहार के पूर्वी भाग व बंगाल प्रदेश में अंग, बंग, पाण्ड्र व क्रीत राज्य थे जब कि पश्चिम की ओर चेदी राज्य था। काश्मीर में गंगा के उत्तर पश्चिम का समस्त पहाड़ी प्रदेश सम्मिलित था। उड़ीसा अर्थात् कलिंग देश पर ओडर वंश राज्य करता था। सिंध प्रदेश सिंधुराज के अधिकार में था। और यदुवंश जिसमें भगवान कृष्ण का जन्म हुआ सौराष्ट्र पर राज्य करता था। उसकी राजधानी द्वारिका-पुरी थी। इन राज्यों में अधिकतर राज्य स्वतन्त्र थे। किन्तु कुछ राज्य प्रजातन्त्र भी थे। राजा लोकमत का आदर करता था। सिंहासनारूढ होने के समय उसे शपथ लेनी पडती थी कि उसे प्रजा की रक्षा करनी पड़ेगी और वह धर्मानुसार राज्य कार्य करेगा। दुराचारी एव अन्यायी राजा मार भी डाले जाते थे। ऐसे राजा भी थे जो निरंकुशता से काम लेते थे और लोकमत की अवहेलना करते थे। समस्त देश का एकीकरण करने के लिए कोई भी केन्द्रीय शक्ति नही थी, यद्यपि कुरुवंशी युधिष्ठिर समस्त भारत के विजेता हुए। इन्होने किसी देश को अपने राज्य मे नही मिलाया। अप श्र

को महाराजा घोषित करने के लिए अश्वमेध व राजसूय यज्ञ ही एकमात्र साधन थे। पराजित राजा यज्ञ करने वाले राजा के आधीन एव सहायक हो जाते थे।

**राजतन्त्र :**—राजा की शक्ति इस समय अधिक बढ गई थी। वे स्वेच्छाचारी हो गये थे। राजा की सहायता के लिए कई पदाधिकारी होते थे जिनमें (१) सेनानी (सेनाध्यक्ष), (२) ग्रामीण, (ग्राम का मुखिया), (३) क्षत्रिय, (४) कोषाध्यक्ष, (५) सग्रहिता (कर सग्रह करने वाला) प्रमुख थे।

**रामायण काल की सामाजिक व्यवस्था :**—रामायण प्रगट करती है कि उस समय समस्त दक्षिणी भारत मे आर्य सभ्यता फैल चुकी थी। उस समय का बडे से बडा महापुरुष युद्धस्थल में अवसर पडने पर आत्मीयता को एक ओर रख सकता था। बालि का वध इसका स्पष्ट उदाहरण है। अनार्यों के साथ बर्ताव अच्छा न था। रावण की भगिनी शूर्पणखा के साथ लक्ष्मण का बर्ताव असह्य तथा कुत्सित है। यह प्रकट करता है कि उस समय के आर्य अनार्यों के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार करते थे।

दूसरी ओर दृष्टिपात करने पर विदित होता है कि आर्य जाति अपने घर तथा अपने राज्य में कितना अच्छा बर्ताव करती थी। रामचन्द्र तथा उनके भाइयो का सद्-व्यवहार, सीता का पतिव्रत धर्म, दशरथ का धर्म-पालन, प्रजा की समालोचना का आदर इत्यादि आर्य सभ्यता के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। किन्तु आर्य सभ्यता की दुर्बलता भी रामायण से स्पष्टतया प्रकट होती है। बहुविवाह की प्रथा तथा उसकी बुराइयाँ अर्थात गृहकलह आदि इसकी द्योतक हैं। परन्तु राम तथा निषाद का पारस्परिक प्रेम, भीलनी के बेरो की कथा प्रमाणित करती है कि जाति-पाँति के कठोर बन्धन से समाज अब तक मुक्त था।

**महाभारत काल** —महाभारत-काल युद्ध-कला व राजनीति में रामायण से कही अधिक उन्नत प्रतीत होता है। इस ग्रन्थ में भिन्न २ नायक जीवन की भिन्न २ स्थितियों पर प्रकाश डालते हैं। ये प्रगट करते हैं कि समाज कितना जटिल हो चुका था तथा उसमें सर्वप्रकार के मनुष्यो का सम्मिश्रण था। एक ओर भीष्म समाज के दृढप्रतिज्ञ एव सत्यनिष्ठ मनुष्य हैं, पाँडवो का परस्पर पवित्र प्रेम श्रद्धा व बलिदान का ज्वलन्त उदाहरण है। दुर्योधन और दुःशासन प्रगट करते हैं कि एक वर्ग ऐसे मनुष्यो का भी था जो छल-कपट, मानहरण, अन्याय, सब कुछ शासनसत्ता प्राप्त करने के लिए प्रयोग कर सकता था। कृष्ण की विद्वत्ता व राजनीतिपटुता, अर्जुन की

# उत्तरी भारत

## महाकाव्य काल

कुरु
पांचाल
सूरसेन
मत्स्य
यादव
अवन्ति
भोज
कोशल
विदेह
अंग
मगध
चेदी
वंग
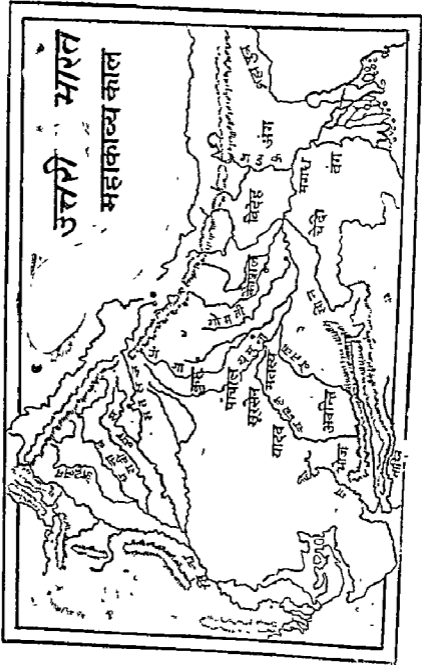
वीरता, कर्ण की दानशीलता, द्रौपदी का पतिव्रत धर्म, आर्य-सभ्यता की श्रेष्ठता का परिचय देते हैं। इन्द्रप्रस्थ के भव्य-भवन, दुर्योधन जैसे राजकुमार को छलने वाली निर्माण कला का स्पष्ट प्रमाण हैं—

तत्कालीन आर्यों के दोष :—परन्तु महाभारत ऐसे उदाहरण मे भी परिपूर्ण है जो प्रकट करते हैं कि समाज मे बहुत से दोष भी आ गये थे और समाज पतनोन्मुख हो रहा था। दुर्योधन का दुराग्रह, बहुपति-विवाह; द्रौपदी का मानहरण, जुआ खेलने का व्यसन, नर्तिकाएँ इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

धर्म :—प्राकृतिक शक्तियो के बदले ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश की उपासना आरम्भ हो चुकी थी। नये देवी देवता ( पार्वती गणेश ) का प्रादुर्भाव हो चुका था। जातीय वीर अवतार की दृष्टि मे देखे जाते थे। इनकी उपासना सर्वोपरि समझी जाती थी। शेषनाग इत्यादि की पूजा प्रचलित थी। सम्भव है कि वह अनार्य लोगो को सन्तुष्ट करने को हो। जन्म-जन्मान्तर का सिद्धान्त सब को मान्य हो चुका था।

समाज :—वर्ण-व्यवस्था कठोर हो चुकी थी। शूद्रों के साथ अत्याचार किया जाता था। स्वयंवर की पद्धति प्रचलित थी। बाल-विवाह नही होता था। परन्तु राजवंश में बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। कृष्ण तथा अर्जुन की बहुत-सी रानियाँ थीं। भिन्न २ वर्णों में कही २ पर पारस्परिक विवाह के उदाहरण मिलते हैं। सती की प्रथा का भी उल्लेख है। परन्तु यह प्रथा ऐच्छिक थी। पाण्डु की एक स्त्री उसके साथ सती हो गई थी किन्तु दूसरी जीवित रही थी। स्त्रियो को शिक्षा दी जाती थी। वे पुरुषो की तरह शास्त्राध्ययन करती थी। गार्गी तथा मैत्रेयी उन शिक्षिताओं में से थी जो कि उपनिषद् जैसे गहन दर्शन पर पुरुषों से शास्त्रार्थ करने में सफल सिद्ध हो चुकी थी।

## प्रश्न

१—महाकाव्य काल से किस समय का बोध होता है ?

२—महाकाव्य काल की राजनैतिक दशा का वर्णन करो तथा वैदिक काल की राजनीति दशा से उसकी तुलना करो।

३—रामायण और महाभारत काल की सामाजिक दशा की तुलना करो।

## अध्याय ५

# भारतीय दर्शन

**भारत की देन** :—संसार का इतिहास अनेक जातियों के उत्थान पतन की अमर कहानी है जिसका सकलन विद्वत-समाज ने अलिफ लैला के किस्सों की भांति मनोविनोद के लिए नहीं वरन् सभ्यता तथा मनुष्य के विकास के विश्लेषण के लिए किया है। किस प्रकार एक जाति जीवन के कुछ विशेष तत्वो को ले अपनी समकालीन जातियों से आगे बढ़ी और संसार की सभ्यता पर इन तत्वो की गहरी छाप लगा विस्मृति में विलीन हो गई इसकी व्याख्या इतिहास का मुख्य कार्य है सभ्यता के इस एक न एक अंग की पूर्ति उस जाति विशेष की अमर देन है जिसके लिये मनुष्य समाज उसका सदा आभारी रहेगा, उदाहरणार्थ प्राचीन ग्रीस ने ससार को सौन्दर्य का भाव प्रदान किया, उसने अपनी सभ्यता में कला, साहित्य और जीवन के सौन्दर्य का ऐसा चमत्कार दिखाया कि संसार मंत्र मुग्ध हो गया। प्राचीन रोम ने इसी प्रकार व्यवस्था और कानून के·········भाव उत्पन्न कर संसार को प्रगति की ओर बढ़ाया। प्राचीन भारत ने इसी प्रकार सभ्यता की सबसे बड़ी सेवा तत्वज्ञान अर्थात् दर्शनशास्त्र द्वारा की। यों तो भारत में सभ्यता के और भी बहुत से अंगों का विकास हुआ। साहित्य, व्याकरण, कला, गणित, ज्योतिष, वैद्यक में इतनी उन्नति हुई कि उसे देख हम आश्चर्य चकित हो उठते हैं पर वह क्षेत्र जिसमें भारतीय बुद्धि ने अद्भुत चमत्कार दिखाये— जिसमें आज तक उसकी कोई बराबरी नहीं कर सका, जिसमे उसने संसार के विद्वत समाज को हिला डाला—वह क्षेत्र तत्वज्ञान का है जिसमें हिन्दुओं की विलक्षण बुद्धि ने जड़ और चेतन, आत्मा और परमात्मा, मन और बुद्धि इत्यादि के स्वभाव को जानने का प्रयत्न किया है। इस गम्भीर विषय में उन्होंने अनुपम स्वतन्त्रता और निर्भयता दिखाई है। जिधर को तर्क ले जाये उधर जाने को वे तैयार रहे। न किसी प्रचलित धार्मिक सिद्धान्त की पर्वाह की, न लोक मत का डर, सत्य का पता लगाना ही उनका एक मात्र उद्देश्य था। दर्शन मे जिन विषयों की चर्चा है, उनके प्रत्यक्ष न होने के कारण मतभेद अवश्यम्भावी था। उनके विषय में तर्क करते २ भिन्न २ पुरुष भिन्न २ परिणामों पर स्वभावतः पहुँचते। इस तरह अनेक विचारधारायें व अनेक दर्शन उत्पन्न हुए परन्तु भारत की उदार सभ्यता मतभेद के होते हुए भी सब दर्शनों के प्रयत्न तथा खोज का पूरा

आदर करती रही और उन सबको उच्च स्थान देती रही। यह दार्शनिक प्रगति उत्तर वैदिक काल से बौद्ध धर्म के समय तक चलती रही।

तत्त्वज्ञान की जो धाराएँ इस प्रकार देश में रही थी, वह चार्वाक, जैन, बौद्ध और भक्ति सिद्धान्तो के अलावा ६ दर्शनो में प्रकट हुई, जिनके नाम पूर्व मीमासा, या वेदान्त, योग, न्याय, वैशेपिक और साख्य हैं।

इनके सिद्धान्तो की उत्पत्ति और उत्तरोत्तर विकास का समय ठीक २ निश्चित नही पर मौर्य्य साम्राज्य के पहिले इनकी मुख्य २ बातें निश्चित हो चुकी थी। आगे चलकर स्वामी शकराचार्य और स्वामी रामानुज द्वारा इनका विकास हुआ। छहो दर्शन वेद को प्रमाण मानते हैं पर वेद के वाक्यो के अर्थ अपने २ ढग पर लगाते हैं।

**पूर्व मीमांसा** :—वेद के दो भाग हैं पूर्व भाग अर्थात कर्मकाड और उत्तर भाग अर्थात् ज्ञान काड। दूसरे भाग की मीमासा उत्तर मीमासा या वेदान्त है जिस का हम आगे उल्लेख करेगे पहले भाग की मीमासा पूर्व मीमासा कहलाती है, इसमें धर्म, आचार, यज्ञ इत्यादि के नियम स्थिर किये गये हैं और बताया गया है कि इनका विधि पूर्वक कर्मकाड ही मोक्षदाता है।

**उत्तर मीमांसा या वेदांत** :—वेदात के सिद्धात उपनिषदो में हैं। ई० पू० चौथी शताब्दी में सबसे पहिले बादरायण ने इन सिद्धान्तो का वर्णन वेदात सूत्र में किया। नवी शताब्दी में स्वामी शकराचार्य ने वेदान्त शास्त्र का सर्वमान्य शकर भाष्य लिख ससार को चकित कर दिया। वेदान्त का प्रधान सिद्धान्त है कि वस्तुत जगत में केवल एक चीज है और वह है ब्रह्म जो अद्वितीय है। उसके सिवाय और कुछ नही है। अविद्या के कारण हमें ससार की चीजें अलग २ दिखाई पडती हैं। ज्योही ज्ञानार्जन कर हम इस अविद्या का नाश कर देंगे त्योही ससार की सब वस्तुएँ एक ही शुद्ध ब्रह्मरूप प्रतीत होंगी।

**योग** :—योग का प्रथम रूप वेदो में मिलता है। उपनिषदो में बार २ इसका जिक्र आया है। गीता में कृष्ण ने योग की पूरी २ व्यवस्था की है। भगवद्-गीता में योग की परिभाषा समत्व शब्द से की है। योग का वास्तविक अर्थ यही है कि आत्मा को समत्व प्राप्त हो। यदि मन को एकाग्र करके आत्मा या परमात्मा के ध्यान में लगा दिया जाय, इन्द्रियों की चचलता रोकदी जाय और सब व्यापार बन्द करके एक मात्र ध्यान क्रिया जाये तो आत्मा को समत्व और शान्ति मिलती है। आध्यात्मिक आह्लाद प्रकट होता है और आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाती है। इस अवस्था की प्राप्ति ही मोक्ष प्राप्ति है।

**न्याय :**—न्याय का प्रादुर्भाव जिसे तर्कविद्या या वादविद्या भी कहते हैं ई० पूर्व तीसरी शताब्दी के लगभग गौतम या अक्षपाद के न्याय सूत्रों में हुआ। इसमें तर्क वितर्क द्वारा सब वस्तुओं का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करना मुक्ति का मार्ग बताया गया है।

**वैशेषिक :**—वैशेषिक सिद्धान्त के चिन्ह बुद्ध और महावीर के समय अर्थात् ई० पू० छठी व पांचवीं शताब्दी में मिलते हैं। इनके अनुसार पदार्थों का तत्वज्ञान होने पर मोक्ष हो जाता है।

**सांख्य:**—सांख्य दर्शन के बहुत से सिद्धान्त उपनिषदों में मिलते हैं। इसके प्रवर्त्तक कपिल मुनि थे। यह दर्शन अनीश्वरवादी है अर्थात संसार का कर्त्ता हर्त्ता किसी को नहीं मानता। सारा जगत और जगत की सारी वस्तुएँ प्रकृति और पुरुष अर्थात् आत्मा और उनके संयोग प्रति संयोग से उत्पन्न हुई है।

जिन दर्शनों के मूल सिद्धांतो का थोड़ा सा जिक्र यहाँ किया गया है वह सब मिलाकर षट्दर्शन कहलाते हैं। इनके अलावा कुछ और दर्शन भी बने जिनमें से कुछ लोप हो गये और कुछ साहित्य में पाये जाते हैं।

**प्रभाव :**—भारतवर्ष में दर्शन की इतनी चर्चा रही कि दर्शन धर्म का भाग होकर सारी जनता के मानसिक और आध्यात्मिक जीवन का अङ्ग हो गया। दर्शनों के कुछ मोटे २ सिद्धांत विद्वानों की कुटियों से निकलकर जनता के प्रत्येक वर्ग में फैल गये। बौद्ध धर्म के साथ वह लंका, बर्मा, चीन, जापान, तिब्बत और मंगोलिया तक पहुँचे। मध्य काल में उसने इस्लाम पर प्रभाव डाला और सूफी धर्म की उत्पत्ति में सहायता की। १८ वीं शताब्दी में भारतीय दर्शन का अध्ययन योरुप में प्रारम्भ हुआ और शोपन-हार और डौयसन आदि अनेक दार्शनिकों पर इसका प्रभाव दृष्टि-गोचर हुआ। अभी इसका इतिहास समाप्त नहीं हुआ है—सम्भव है कि भविष्य में भी वह नई दार्शनिक हलचलों का कारण हो।

**जड़वाद:**—उपनिषदों के बाद आत्मा, पुनर्जन्म, संसार और कर्म के सिद्धांत हिन्दुस्तान में लगभग सबने मान लिए पर दो चार ऐसे पन्थ रह गये जिन्होंने आत्मा और पुनर्जन्म का निराकरण किया और जड़वाद की घोषणा की। यह कहते थे कि मनुष्य चार तत्वों से मिलकर बना है। मरने पर पृथ्वी तत्व पृथ्वी में, जल तत्व जल में, अग्नि तत्व अग्नि में और वायु तत्व वायु में मिल जाता है। शरीर का अन्त होते ही मनुष्य का सब कुछ समाप्त हो जाता है। शरीर से भिन्न कोई आत्मा नहीं है। पुनः जन्म का प्रश्न ही पैदा होता। जैसे कुछ पदार्थों के मिलने से नशा हो

जाता हैं, वैसे ही चार तत्त्वो के मिलने से जीवन-चेतन हो जाता है। यह ससार ही सब कुछ है, स्वर्ग नरक या मोक्ष इत्यादि निर्मूल कल्पना हैं। इसलिए सुख से जीओ ऋण लेकर भी घी खाओ, परलोक की आशा मे इस लोक का सुख छोड़ना मूर्खता है।

### प्रश्न

१—विश्व इतिहास को भारत की सबसे महान् देन क्या है ?

२—दर्शन कितने हैं उनके मुख्य सिद्धान्त क्या हैं ?

३—दर्शन साहित्य का उदय कब हुआ ?

---

## अध्याय ६

# धार्मिक-जाग्रति का युग

**सामयिक परिछाया** :—ईसा से छटी शताब्दी पूर्व भारत के प्रमुख भूभागों में आध्यात्मिक एव धार्मिक प्रवृत्तियां सजग हो उठी थी। जनता कर्मकाण्ड तथा बलिदानों में अविश्वास करने लगी थी। कुछ उपनिषद् भी कर्मकाण्ड तथा बलियो को उन्नति का साधन न मान कर ज्ञान को ही मोक्ष का सर्वश्रेष्ट साधन मानते थे। अत. अनेक ऐसे सम्प्रदाय उत्पन्न हो गये थे जिनका विश्वास था कि मोक्षप्राप्त यज्ञ तथा कर्मकाण्डो द्वारा नही वरन् आचरण और विचार की पवित्रता से ही हो सक्ती है। इस जागरण के फलस्वरूप जनसमुदाय ब्राह्मणों की सर्वोत्कृष्टता तथा आध्यात्मिक-उच्चता को मानना स्वीकार नहीं कर रहा था। वह बलि तथा विचित्र सस्कारो से क्षुब्ध सा हो उठा था। यह भी सम्भव है कि मगध तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश के शासक शिशुनाग, लिच्छिवी इत्यादि क्षत्रिय, आर्य न हो, बल्कि वर्तमान तिब्बती या गोरखे या भूटिया जाति के हो और उनका आत्म-सम्मान प्रतिक्रियास्वरूप सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण जाति से प्रतिद्वन्दिता करने को प्रेरित हो उठा हो। हो सकता है, अस्वाभाविक असमानता जो कि ब्राह्मणो ने पैदा करदी थी उन्हे असह्य हो उठी हो।

**धार्मिक जागरण का परिणाम** :—कुछ भी हो, इस जागरण के कारण नवीन धर्मो का प्रादुर्भाव तथा उनका सफल होना इस बात का द्योतक है कि साधारण जनता में धार्मिक आदोलन के अणु विद्यमान थे, और आर्य धर्म अपने उपनिषदो तथा अन्य धर्म ग्रन्थों द्वारा उन्हें किसी भी प्रकार सान्त्वना न दे सकता था। फलस्वरूप आजीविक, जैन तथा बौद्ध इत्यादि धर्म पनपने लगे।

**आजीवक धर्म** :—गोसाल मस्करी पुत्र ने इस धर्म की नीव डाली। ये जैन-धर्म के संचालक श्री महावीर स्वामी के समकालीन थे तथा बौद्ध धर्म के प्रवर्तक श्री गौतम बुद्ध भी इसके पास कुछ समय तक रहे थे। श्री महावीर स्वामी ने भी अपने नवीन जीवन के कुछ वर्ष इनके पास व्यतीत किये थे। इतना होने पर भी जैन तथा बौद्ध दोनों ही धर्म ग्रन्थों ने आजीवक धर्म को हृदय खोलकर बदनाम किया है। सम्भव है गोसाल के पास रहकर उन्होंने इस धर्म का विशेष अध्ययन कर उसे निस्सार पाया हो, और उसे मानव-समाज का शत्रु ठहराया हो। ऐसा प्रतीत होता है कि गोसाल ने वृक्ष तथा पौधो को देखकर यह परिणाम निकाला हो कि मनुष्य भी इन्ही की भाँति प्राकृतिक नियमो से अनुशासित होता है; कर्म मनुष्य को अवश्यम्भावी (होनहार) से नही बच सकता है; अत शान्त जीवन ही सबसे ठीक है। इनके अनुयायी कौशल की राजधानी श्रवस्ती में केन्द्रीभूत थे। यह धर्म १४ वी शताब्दी में ही भारत से विलीन हो गया।

**जैन धर्म** :—जैनियों की धारणा है कि उनका धर्म अनादि काल से चला आता है। उनके २४ तीर्थकर हुए हैं जिन्होंने अपने सतत् प्रयत्नों तथा उज्ज्वल-जीवन से जैन धर्म को आलोकित किया है। उनमें से २३ वें तीर्थङ्कर पार्श्व-नाथ जी ही प्रथम ऐतिहासिक व्यक्ति प्रतीत होते हैं। वे बनारस के राजकुमार कहे जाते हैं। उन्होंने ईसा के पूर्व अठारहवी शताब्दी में जैन धर्म का प्रचार किया। परन्तु जैन धर्म के वर्तमान प्रवर्त्तक वैशाली के राजकुमार वर्द्धमान थे। ये २४ वें तीर्थङ्कर हैं। यह वैशाली के धनिक सिद्धार्थ के पुत्र थे। उनका जन्म ५४० ई० पू० के लगभग हुआ था। इनकी धर्म पत्नी का नाम यशोदा था। वर्द्धमान के एक लड़की थी। किन्तु ३० वर्ष की आयु मे गृहस्थ से विमुख होकर वे १२ वर्ष लगातार घोर तपस्या करते रहे। तेरहवें वर्ष में उन्हें परमज्ञान की प्राप्ति हुई और वे महावीर तथा 'जिन' (विजयी) कहलाने लगे। ३० वर्ष तक कोशल, मगध तथा सुदूरपूर्व में जैन धर्म का उपदेश करके ७२ वर्ष की अवस्था मे राजगृह के निकट (पटना जिले मे) पावा नामक स्थान पर ४६८ ई० पू० श्री महावीर जी ने शरीर त्याग दिया।

**जैन धर्म की शिक्षायें** :—श्री पार्श्वनाथ जी के चार सिद्धान्त प्रमुख थे जिनका कि उन्होंने जैन धर्म में प्रचार किया। वे हैं सच बोलना, अहिंसा, चोरी न करना, और सम्पत्ति को त्याग देना। इन चार सिद्धान्तो मे एक सिद्धान्त श्री महावीर जी ने और जोड़ा वह था पवित्रता से जीवन व्यतीत करना। इस भाँति जैन धर्म के पाँच मुख्य सिद्धान्त हो गए। श्री महावीर स्वामी ने मन की पवित्रता और अहिंसा पर अधिक जोर दिया। उन्होंने स्पष्ट शब्दो में बतलाया कि जिसका आचरण, ज्ञान

और विश्वास ठीक होगा तथा उपर्युक्त पांचों सिद्धान्तो को मानेगा वह अवश्य मोक्ष प्राप्त करेगा।

**जैन धर्म के अनुयायी :—**आरम्भ से ही महावीर स्वामी के अनुयायी दो भागो में विभक्त थे। एक साधु तथा दूसरे ग्रहस्थी। एक भीख देने वाले दूसरे भीख मागने वाले। श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायो के विषय में एक किंवदन्ती है।

महावीर स्वामी के अनुयायी निर्ग्रन्थ ( मुक्त ) कहलाते थे। ये ही आगे चलकर महावीर 'जिन' के नाम पर जैन कहलाने लगे। महावीर ने अपना उत्तराधिकारी इन्द्रभूति को चुना। इसी प्रकार एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा चलते २ चौथी शताब्दी B. C के मध्य में भद्रबाहु जैनियों का नेता हुआ। दुर्भाग्यवश इस काल में ऐसा भयानक दुर्भिक्ष पडा कि भद्रबाहु को मैसूर में जाके शरण लेनी पड़ी। कुछ कालोपरान्त वे पुन मगध लौटे। उन्होने देखा कि वहाँ कुछ मनुष्य अब भी जीवित हैं किन्तु उन्होने कपडे धारण कर रक्खे हैं और महावीर के उपदेशों को भूल से गए हैं। भद्रबाहु ने उन्हें उसी अवस्था में अपना लिया। अत जैनी दो भागो में विभक्त हो गए, एक दिगम्बर ( नगे ) तथा दूसरे श्वेताम्बर ( श्वेतवस्त्रधारी ) कुछ महानुभावो का यह भी कहना हैं कि जो नग्न मूर्तियों की पूजा करते थे वे दिगम्बर तथा जो श्वेत वस्त्रधारी मूर्तियो की पूजा करते थे वे श्वेताम्बर नाम से प्रसिद्ध हुए। कुछ भी हो यह दोनो सम्प्रदाय अब तक जैन धर्म में विद्यमान हैं।

**बौद्ध धर्म :—**बौद्ध धर्म के अध्ययन से पूर्व बुद्ध जी के जीवन की झाँकी कर लेना उपयुक्त होगा। नैपाल की तराई में शाक्य वश के क्षत्रिय राजा शुद्धोदन राज्य करते थे। कपिलवस्तु उनकी राजधानी थी। वैसे यह राज्य कौशल के सम्राट के आधीन था। ५६३ ई० पू० के लगभग लुम्बिनी नामक ग्राम में सिद्धार्थ का जन्म हुआ। ये बाल्यावस्था से ही विचारशील तथा ससार से विमुख थे। पिता ने इनकी उदासीनता देखकर १६ वर्ष की आयु मे यशोधरा नामक सुशील, तथा सुन्दर, कन्या से इनकी शादी करदी। इससे एक पुत्र रत्न भी प्राप्त हुआ। किन्तु ससार के सारे वैभव सिद्धार्थ को अपनी ओर आकृष्ट न कर सके और ये २० वर्ष की आयु में नवजात शिशु तथा भार्या को छोडकर निर्वाण की खोज मे निकल पडे। ६ वर्ष तक उन्होंने घोरतम तप किये, शरीर को सुखाकर काँटा बना लिया किन्तु आत्मा मे प्रकाश न हुआ। फिर उन्होने इन सब क्रियाओं को छोड दिया और अनशन व्रत तोड दिया। इनके पाँचों शिष्य उन्हें पथ-भ्रष्ट समझकर छोड गए। अन्त में बोधगया में नैरजना नदी के तट पर एक पीपल के वृक्ष के नीचे वे समाधि लगाकर बैठ गये। वहाँ उन्हे

हृदय में एक प्रकाश सा जान पड़ा। तभी ये बुद्ध अथवा ज्ञानी हो गये। कौशल तथा मगध देश में भ्रमण करके उपदेश देते हुए ४८३ ई० पू० के लगभग कुशीनगर में उन्होंने ८० वर्ष की आयु में शरीर त्याग दिया।

**बौद्ध धर्म की शिक्षा** :—महात्मा बुद्ध ने अनुभव किया था कि संसार दु.ख से परिपूर्ण है। उन्होंने इसके कारणों पर विचार किया तो वे इस परिणाम पर पहुँचे कि सांसारिक सुख व शक्ति की तृष्णा ही दु.खो का मूल कारण है इसी तृष्णा का शिकार होकर मनुष्य जन्म व कर्म के चक्कर मे फँसा हुआ सहस्रो योनियो में भ्रमण करता रहता है। इस तृष्णा को समाप्त करने और परिणाम स्वरूप मनुष्य को जन्म-मरण एवं सांसारिक दु.खों के बन्धन से मुक्त करने के लिए उन्होने अष्टाङ्गिक मार्ग की योजना बनाई। ये आठ गुण निम्नलिखित हैं:—

१ सम्यक् दृष्टि, २ सम्यक् संकल्प, ३ सम्यक् वाक्य, ४ सम्यक् कर्मान्त ५ सम्यक् आजीवका, ६ सम्यक् व्यायाम, ७ सम्यक् स्मृति, ८ सम्यक् समाधि। ज्ञान कर्त्तव्य, मन, वचन, कर्म की शुद्धि सतोष, दान तथा अहिंसा के वे पुजारी थे। तथ अपने प्रचार में वे इन बातो पर अधिक जोर देते थे। महावीर जी की भाँति बुद्ध जी ने भी जन्म व कर्म का सिद्धांत बिना किसी आलोचना के ग्रहण कर लिया। उनक विचार था कि मनुष्य अपना स्वय निर्माता है। सत्य अथवा धर्म मनुष्य के दीपक हैं प्राणी को अपने सिवा और किसी के आश्रय की इच्छा नही करनी चाहिए। यदि वह शुभ कर्म करेगा तो वह श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर योनि मे जन्म लेता चला जावेगा और अन्त में निर्वाण प्राप्त करेगा। इसके विपरीत दुष्ट कर्म मोक्ष को अधिकाधिक दूर बनाते जाते हैं। यह मोक्ष या निर्वाण जीवन का अंतिम लक्ष्य है तथा शुद्ध कर्म, शुद्ध जीवन एवं अहिंसा इसकी कुंजियाँ हैं।

रूढिवादी ब्राह्मणो की भाँति वे बलि तथा अनुष्ठान में विश्वास नही रखते थे। जैनियों की भाँति वे तपस्या द्वारा ज्ञानोपार्जन के अनुयायी भी न थे। उनक स्वयं का अनुभव था कि यातना व तपस्या कष्ट देने के अतिरिक्त मनुष्य को किसी प्रकार उपयोगी नहीं। इस प्रकार उन्होने वैदिक संस्कार व बलिदानो का सर्वत्र खडन किया। उनके मतानुसार प्रत्येक मनुष्य चाहे किसी जाति या किसी वर्ग का क्यों न हो ज्ञान व मोक्ष प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार सब वर्णों को ज्ञान व मोक्ष का समान अधिकार प्रदान कर उन्होंने ब्राह्मणों की उत्कृष्टता पर वज्राघात किया। यह सिद्धांत बुद्ध धर्म में समाजवाद या मनुष्यवाद का सूचक है।

**बौद्धभिक्षु** :—जैनियों की भाँति बौद्ध भी दो भागों में विभक्त थे। प्रथम भिक्षुक द्वितीय उपासक। भिक्षुक वह लोग थे जो गृहस्थ आश्रम को त्याग कर अपना

समस्त जीवन व सम्पत्ति धर्म को अर्पित कर देते थे, वह बौद्ध सघ के सदस्य हो जाते थे और धर्म-प्रसार ही अपना ध्येय बना लेते थे। सदस्य १५ वर्ष की आयु से ऊपर वाले स्वस्थ मनुष्य हो सकते थे। यह सदस्य अपने प्रारम्भिक काल मे कुछ वर्ष एक भिक्षुक गुरु या पथप्रदर्शक की अध्यक्षता मे व्यतीत करता था। तदुपरान्त उसे अपनी श्रेणी के और सदस्यो के साथ भिक्षुक घोषित करने की दीक्षा दी जाती थी।

संघ :—सघ का जीवन बहुत सयमी था। इसका कोई सदस्य अपनी व्यक्तिगत इच्छायें और अनिच्छायें न रख सकता था बल्कि उसे सघ के निर्धारित कार्य-क्रम में बिना किसी आपत्ति के भाग लेना अनिवार्य था। सब-कोष व पूजी सबकी सम्मिलित होती थी। किसी को व्यक्तिगत कोष रखने का अधिकार न था।

सघ में स्त्रियों का स्थान :—बुद्ध जी ने आरम्भ मे स्त्रियों का सघ की सदस्यता का अधिकार नही दिया परन्तु बाद मे अपनी सौतेली माता के आग्रह पर उसे भी सघ के भिक्षुओ मे स्थान मिल गया। परन्तु स्पष्ट तया घोषित कर दिया गया कि उन्हें अविवाहित ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करना होगा।

संघ की कार्यवाही :—सघ की साधारण सभा व उसका कार्यक्रम विशेष रुचिकर हैं। सघ सम्बन्धी प्रस्ताव तीन बार साधारण सभा में रक्खे जाते थे। प्रत्येक बार उन पर वाद विवाद किया जाता था और अन्तिम निर्णय बहुमत से किया जाता था। एक माह मे चार बार प्रतिमोक्षिण संस्कार होता था, जिसमें प्रत्येक भिक्षुक जीवन नियन्त्रणो का अध्ययन करता था। इस अवसर पर प्रत्येक भिक्षुक स्वत ही अपने पापो को स्वीकार करता तथा प्रायश्चित-स्वरूप उचित दण्ड प्राप्त करता था। वर्षाकाल मे भिक्षुक तथा भिक्षुकाएँ विहार या मठ में स्थिर-जीवन व्यतीत करते थे। इस काल का अधिक भाग पठन पाठन, साहित्यकला, अध्ययन व ज्ञानोपार्जन में व्यतीत होता था। वर्ष के शेष आठ मास सब सदस्य आस पास के प्रान्तो मे प्रचार करते थे। बौद्ध सघ की सम्मिलित पूजी उसकी साधारण सभा एव उसका कार्य-क्रम अब से २५०० वर्ष पूर्व ससार को प्रजातन्त्र का सन्देश द चुकी थी। भारतवर्ष ही इस शासन प्रणाली का जन्मदाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्ध धर्म की व्यवस्था कितनी वैज्ञानिक तथा हृदयग्राही थी।

बौद्ध भिक्षुओं में विभाजन :—ज्यो ज्यो समय व्यतीत होता गया और बौद्ध धर्म देशी तथा विदेशी अनेको धर्मों के सम्पर्क मे आता गया इसमे संशोधन

होते गये, यहाँ तक कि कनिष्क के समय में इसके आदि सिद्धान्तों, सामयिक तथा स्थानीय संशोधनों पर विचार विनिमय करने के लिये तक्षशिला मे एक विरा सम्मेलन हुआ। और इसको सर्वप्रिय व सर्वग्राही बनाने के लिये इसमे अनेक प्रचलित रीति रिवाज व विश्वास सम्मिलित करने का प्रस्ताव रक्खा गया। प्रसिद्ध बौ विद्वान् नागार्जुन तथा कनिष्क प्रस्ताव के पक्ष मे थे। परन्तु प्रस्ताव सर्व सम्म से पास न हो सका। फलस्वरूप बौद्ध धर्म दो भागों मे विभक्त हो गया। ए महायान दूसरा हीनयान।

**महायान शाखा :—**जिन्होने कुछ रीतिरिवाज समयानुकूल उचित संशो और विश्वासों को सम्मिलित करके बौद्ध धर्म को सर्वप्रिय व सर्वग्राही बना स्वीकार किया वे महायान कहलाये। इन्होंने बुद्ध को देवता या अवतार म कर उनकी मूर्ति की उपासना करनी आरम्भ कर दी। इन्होंने यह भी निर्णय कि कि बुद्ध जी बौद्ध धर्म के आदि प्रवर्तक नही बल्कि उनसे पहिले भी बहुत बौद्धिसत्व हो चुके हैं जो आदि काल से चले आते हैं। आगे चलकर देश त काल के अनुसार इन्होने इन्द्र, वरुण कुबेर तथा अनेकानेक देवताओं को भी मान स्वीकार कर लिया।

**हीनयान :—**हीनयान शाखा मूल धर्म की अनुयायी रही। शुद्धि इ नियन्त्रण के अतिरिक्त बुद्ध में विश्वास तथा श्रद्धा उनके निर्माण का मार्ग रहा। पर वे भी आगे चलकर बुद्ध के भक्त हो गये और उसे देवता समझकर पूजने लगे।

इस प्रकार पवित्रता, शुद्धि और अहिंसा के सिद्धान्त पर निर्धारित यह पतनोन्मुख हो गया। विहार क्रीड़ा स्थल में परिणित हो गये। यह अनाचार त व्यभिचार के अड्डे बन गये। परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मण धर्म फिर से स हो उठा।

**बौद्ध व जैन धर्म की तुलना :—**बौद्ध व जैन धर्म के प्रवर्तक गौतम तथा महावीर स्वामी समकालीन थे और दोनों धर्मों का अभ्युदय भी एक ही प्र में हुआ। अतः दोनो में बहुत समानता है जैसे कि :—

(१) दोनों मत वेदों को अपनी धार्मिक पुस्तक नही मानते। परन्तु दोनों मूल आधार वेदान्तिक साहित्य प्रतीत होता है, यद्यपि दोनों प्रवर्तक इसको स्वीक नहीं करते।

(२) दोनो कर्मकाण्ड, अनुष्ठान, तथा बलि से घृणा करते हैं और इसलि उनका सर्वथा खंडन करते हैं और उन्हें किसी प्रकार मोक्ष प्राप्ति या पापों के होने का साधन स्वीकार करने को उद्यत नहीं।

(३) दोनो वर्ण व्यवस्था व ब्राह्मणो की उत्कृष्टता के घोर विरोधी हैं।

(४) दोनो धर्मों ने जनसाधारण की भाषा को अपने प्रचार का माध्यम ाया और कहा कि सस्कृत ही को धार्मिक या वेद भाषा का पद प्रदान कर धर्म को ं साधारण की पहुँच मे दूर करना सर्वथा मिथ्या तथा भ्रमात्मक है।

(५) दोनो जीवन की पवित्रता पर ज़ोर देते हैं और मानते हैं कि मनुष्य के ाशुभ कर्म का प्रभाव उस के वर्तमान तथा भविष्य जीवन पर पडता है। अत त्म-शुद्धि को दोनो ने निर्वाण का एक मात्र साधन बताया।

(६) दोनो धमो ने परमेश्वर की सत्ता की अवहेलना की।

(७) दोनो ने सघ व्यवस्था स्थापित करने पर जोर दिया। दोनो ने अपने ार्मिक अनुयाइयो को दो भागो में विभक्त किया—एक साधु साध्वी तथा दूसरे पासक।

(८) दोनो ने मोक्ष जीवन का अन्तिम लक्ष्य ठहराया।

(९) दोनो ने अहिंसा पर बहुत जोर दिया।

(१०) दोनो धर्म के अनुयायी हिन्दू देवी देवताओ पर विश्वास व श्रद्धा खते रहे।

उपर्युक्त समानता को देखकर कुछ विद्वानो का मत यह हो गया था कि जैन र्म बौद्ध धर्म ही की एक शाखा है। परन्तु यह बात सर्वथा असत्य सिद्ध हो चुकी है। तना सादृश्य होते हुए भी दोनो धर्म अनेक विषयो में एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। सा कि निम्नलिखित बातो से प्रगट होता है।

(१) जैन धर्म की मोक्ष बौद्ध धर्म के निर्वाण से बिल्कुल भिन्न है। जैन र्म में मोक्ष का अर्थ आत्मा का सदानन्द में विलीन हो जाना है जबकि बौद्ध धर्म ं मोक्ष का अर्थ व्यक्तित्व का सर्वथा विनाश है तथा आत्मा का आकाश में विलीन ो जाना है।

(२) निर्वाण प्राप्ति के साधनो में भी दोनो धर्म एक दूसरे से भिन्न हैं। द्यपि दोनों इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अहिंसा पर जोर देते हैं तो भी बौद्ध धर्म पस्या इत्यादि कष्ट साधना का सर्वथा खण्डन करता है जबकि जन धर्म में तपस्या, ाधना और क्षुधा पीडा द्वारा मृत्यु प्राप्ति को बहुत ऊँची दृष्टि से देखा जाता है तथा ोक्ष प्राप्ति का विशेष साधन ठहराया गया हैं।

(३) जैन धर्म में अहिंसा असीमता को प्राप्त कर गयी है। यह धर्म पत्थर, ृक्ष, व जड पदार्थों के प्रति भी अहिंसा की दीक्षा देता है। जब कि बौद्ध धर्म की अहिंसा जीव सम्प्रदाय तक ही सीमित है।

(३) उसने भारतवर्ष के प्रत्येक भाग लका, चीन, पश्चिमी एशिया, मिश्र और पूर्वी योरुप मे अनेकानेक धर्म प्रचारक भेजे। यही कारण है कि बौद्ध धर्म भारतवर्ष तक ही सीमित न रहकर दूसरे देशो में भी फैल गया।

(४) उसने चट्टानो, शिलाओ, लाटा और गुफाओ मे बौद्ध धर्म के नियम खुदवाये जिससे जनता उन्हें पढे, उनका मनन करे, तथा अपने जीवन मे उनका अनुसरण करे।

कनिष्क—कनिष्क दूसरा सम्राट था जिसने बौद्ध धर्म के प्रसार में बहुत सहायता की। कनिष्क विदेशी सम्राट था अत निकटवर्ती देशो पर उसका बहुत प्रभाव पडा। उसने बौद्ध धर्म के नियमो का विश्लेषण तथा उनमें देश और परिस्थिति के अनुकूल उचित सशोधन करने के लिए एक विराट् सम्मेलन का आयोजन किया जिस में दूर दूर से बौद्ध विद्वानो को आमन्त्रित किया गया। इस कार्य से धर्म की ख्याति मे विशेष वृद्धि हुई। यद्यपि इस सम्मेलन में कुछ निर्णय न हो सका और धर्म भी दो भागो में विभक्त हो गया तथापि यह सभा मध्य एशिया के देशो में इस धर्म का

(४) बौद्ध धर्म संघ व्यवस्था पर अधिक जोर देता है और लोगों को अधिकाधिक संघ के सदस्य बनने का आदेश देता है, जबकि जैन धर्म उपासकों की संख्या वृद्धि पर अधिक जोर देता है।

(५) दोनों धर्म प्रारम्भ में भारतवर्ष तक ही सीमित थे परन्तु ज्यों २ समय बीतता गया बौद्ध धर्म के अनुयायियों की संख्या में वृद्धि होती गई और वह विश्व धर्म हो गया जबकि जैन धर्म भारतवर्ष की सीमा को पार कर विदेशों में स्थान न पा सका।

(३) उसने भारतवर्ष के प्रत्येक भाग तथा, चीन, पश्चिमी एशिया, मिश्र और पूर्वी योरुप में अनेकानेक धर्म प्रचारक भेजे। यही कारण है कि बौद्ध धर्म भारतवर्ष तक ही सीमित न रहकर दूसरे देशों में भी फैल गया।

(४) उसने चट्टानों, शिलाओं, लाटों और गुफाओं में बौद्ध धर्म के नियम खुदवाये जिससे जनता उन्हें पढ़े, उनका मनन करे, तथा अपने जीवन में उनका अनुसरण करे।

कनिष्क:—कनिष्क दूसरा सम्राट था जिसने बौद्ध धर्म के प्रसार में बहुत सहायता की। कनिष्क विदेशी सम्राट था अतः निकटवर्ती देशों पर उसका बहुत प्रभाव पड़ा। उसने बौद्ध धर्म के नियमों का विश्लेषण तथा उनमें देश और परिस्थिति के अनुकूल उचित संशोधन करने के लिए एक विराट् सम्मेलन का आयोजन किया जिसमें दूर दूर से बौद्ध विद्वानों को आमन्त्रित किया गया। इस कार्य से धर्म की ख्याति में विशेष वृद्धि हुई। यद्यपि इस सम्मेलन में कुछ निर्णय न हो सका और धर्म भी दो भागों में विभक्त हो गया तथापि यह सभा मध्य एशिया के देशों में इस धर्म का प्रसार करने में सहायक हुई।

हर्ष :—हर्षवर्धन की संरक्षकता में बौद्ध धर्म का पुनरुत्थान हुआ। कन्नौज बौद्धधर्म का केन्द्र बन गया। उसने बौद्ध धर्म के साधुओं की एक विशाल सभा की। बौद्ध विहारों को आर्थिक सहायता देकर उसने इस धर्म की ओर प्रजा को पुनः आकर्षित कर लिया।

**(ब) संघ व्यवस्था** :—संघ व्यवस्था बौद्ध धर्म के प्रसार में बहुत सहायक हुई। इसके अन्तर्गत एक समुदाय विशेष अपना समस्त जीवन धर्म प्रचारार्थ अर्पित कर देता था। यह समुदाय केवल वर्षा ऋतु के चार मास के अतिरिक्त आठ मास जनता में धर्म प्रचार करता था।

**(स) अहिंसा की सामाजिक अनुकूलता** :—पशुबलि आदि हिंसात्मक क्रियाओं से जनता में इतना क्षोभ उत्पन्न हो गया था कि वह किसी अहिंसा के देवता की प्रतीक्षा कर रही थी। गौतम ने अहिंसा का तुमुल नाद उनके हृदयों तक पहुँचाया। जिससे जनता बौद्ध धर्म की अनुयायी होती चली गई।

**(द) कर्म काण्ड की अवहेलना** :—वैदिक कर्म काण्ड की क्रियायें जनता को रहस्यमयी एवं जटिल प्रतीत होती थीं। वे उन्हें समझ नहीं पाते थे। अतः जब बुद्ध ने सरलता पूर्वक सीधे सच्चे सिद्धान्त उन्हें बताये तो वे उन्हें हृदयंगम हो गये। यह सरलता एवं स्पष्टता बौद्ध धर्म प्रसार में बहुत सहायक सिद्ध हुई।

(४) बौद्ध धर्म संघ व्यवस्था पर अधिक जोर देता है और लोगों को अधिकाधिक संघ के सदस्य बनने का आदेश देता है, जबकि जैन धर्म उपासकों की संख्या वृद्धि पर अधिक जोर देता है।

(५) दोनों धर्म प्रारम्भ मे भारतवर्ष तक ही सीमित थे परन्तु ज्यों २ समय बीतता गया बौद्ध धर्म के अनुयायिओं की संख्या में वृद्धि होती गई और वह विश्व धर्म हो गया जबकि जैन धर्म भारतवर्ष की सीमा को पार कर विदेशों में स्थान न पा सका।

(६) बौद्ध धर्म भारतवर्ष से सर्वथा जाता रहा है जबकि जैन धर्म के लाखों अनुयायी इस देश मे अब भी विद्यमान हैं।

इससे विदित होता है कि दोनों में कुछ न कुछ मौलिक भेद अवश्य हैं। अत. इतिहास का विद्यार्थी भली भांति यह परिणाम निकाल सकता है कि अत्यन्त समता रखते हुए तथा समकालीन होते हुए भी दोनों धर्मों में पर्याप्त रूप से विभिन्नता है। यह विभिन्नता बाह्य नहीं प्रत्युत आत्मिक है।

दोनों धर्मों की तुलना करने के बाद यह प्रश्न उठता है कि कौन-कौन से ऐसे विशेष कारण हैं जिन्होंने बौद्ध धर्म को उन्नति के शिखिर पर आरूढ कर दिया तथा कौन से ऐसे आकर्षण विशेष हुए जिनके द्वारा यह सर्वग्राह्य हुआ और देश विदेश सब में इसका बोलबाला हुआ।

**बौद्ध धर्म की उन्नति के कारण (अ) सम्राटों का संरक्षण:**—बौद्ध धर्म की उन्नति का सर्वोपरि कारण यह है कि इस धर्म को सम्राटों का संरक्षण मिलता रहा। उनकी छत्रछाया में यह धर्म खूब फलता फूलता रहा। सम्भव है 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार जनता ने इसे अन्धे होकर ही मान लिया हो। बौद्ध धर्म प्रारंभ काल में शीघ्रता से न विकसित हो सका परन्तु अशोक, कनिष्क तथा हर्षवर्धन जैसे उदार सम्राटों की संरक्षकता में यह धर्म विशेष रूप से फैला।

**अशोक:**—सम्राट अशोक ने इस धर्म को स्वयं स्वीकार किया तथा इसे विश्वधर्म में परिणत करने के लिए स्वयं भिक्षु होकर इसके प्रसार का व्रत लिया। इस प्रसार के लिए वह निम्नलिखित साधन प्रयोग में लाया।

(१) अनेक तीर्थ स्थानों पर धार्मिक वाद विवाद तथा शास्त्रार्थ का आयोजन कर उसने जनता में धर्म की भावनायें जाग्रत कर दी।

(२) उसने हर एक प्रान्त में महामात्य नामक एक पदाधिकारी की नियुक्त की जिसका कार्य जनता में धर्म प्रसार व सदाचार की शिक्षा देना था।

(३) उसने भारतवर्ष के प्रत्येक भाग लका, चीन, पश्चिमी एशिया, मिश्र और पूर्वी योरप में अनेकानेक धर्म प्रचारक भेजे। यही कारण है कि बौद्ध धर्म भारतवर्ष तक ही सीमित न रहकर दूसरे देशो मे भी फैल गया।

(४) उसने चट्टानो, शिलाओ, लाटो और गुफाओ में बौद्ध धर्म के नियम खुदवाये जिससे जनता उन्हें पढ़े, उनका मनन करे, तथा अपने जीवन में उनका अनुसरण करे।

कनिष्क'—कनिष्क दूसरा सम्राट था जिसने बौद्ध धर्म के प्रसार में बहुत सहायता की। कनिष्क विदेशी सम्राट था अत निकटवर्ती देशो पर उसका बहुत प्रभाव पडा। उसने बौद्ध धर्म के नियमो का विश्लेपण तथा उनमें देश और परिस्थिति के अनुकूल उचित सशोधन करने के लिए एक विराट् सम्मेलन का आयोजन किया जिस में दूर दूर से बौद्ध विद्वानो को आमन्त्रित किया गया। इस कार्य से धर्म की ख्याति में विशेष वृद्धि हुई। यद्यपि इस सम्मेलन में कुछ निर्णय न हो सका और धर्म भी दो भागो में विभक्त हो गया तथापि यह सभा मध्य एशिया के देशो में इस धर्म का प्रसार करने में सहायक हुई।

हर्ष :—हर्षवर्धन की सरक्षकता में बौद्ध धर्म का पुनरुत्थान हुआ। कन्नौज बौद्धधर्म का केन्द्र बन गया। उसने बौद्ध धर्म के साधुओं की एक विशाल सभा की। बौद्ध विहारो को आर्थिक सहायता देकर उसने इस धर्म की ओर प्रजा को पुन आकर्पित कर लिया।

**(ब) सघ व्यवस्था :**—संघ व्यवस्था बौद्ध धर्म के प्रसार में बहुत सहायक हुई। इसके अन्तर्गत एक समुदाय विशेप अपना समस्त जीवन धर्म प्रचारार्थ अर्पित कर देता था। यह समुदाय केवल वर्षा ऋतु के चार मास के अतिरिक्त आठ मास जनता में धर्म प्रचार करता था।

**(स) अहिंसा की सामाजिक अनुकूलता :**—पशुवलि आदि हिंसात्मक क्रियाओ से जनता में इतना क्षोभ उत्पन्न हो गया था कि वह किसी अहिंसा के देवता की प्रतीक्षा कर रही थी। गौतम ने अहिंसा का तुमुल नाद उनके हृदयो तक पहुँचाया। जिससे जनता बौद्ध धर्म की अनुयायी होती चली गई।

**(द) कर्म काण्ड की अवहेलना '**—वैदिक कर्म काण्ड की क्रियाये जनता को रहस्यमयी एव जटिल प्रतीत होती थी। वे उन्हें समझ नही पाते थे। अत जब बुद्ध ने सरलता पूर्वक सीधे सच्चे सिद्धान्त उन्हें बताये तो वे उन्हें हृदयगम हो गये। यह सरलता एव स्पष्टता बौद्ध धर्म प्रसार में बहुत सहायक सिद्ध हुई।

(ह) धर्म ग्रन्थ तथा उपदेशों की सरल भाषा :—एक महत्वपूर्ण बात जो वौ धर्म के प्रसार मे सहायक हुई वह यह थी कि अब तक जितने भी धर्म थे सबके ग्रन्थ संस्कृत भाषा में थे अतः जनता उन्हें सफलता से पढ नही सकती थी—समझ नही सकती थी। किन्तु वौद्ध धर्म का प्रचार जनता की भाषा में किया गया। इसके धर्मग्रन्थ भी जनता की ही भाषा में लिखे गये। अतः इस धर्म के सिद्धान्त साधारण जनता के लिए बुद्धि-गम्य रहे।

(झ) बौद्ध धर्म की उदारता :—बौद्ध धर्म के प्रसार का मुख्य कारण यह भी था कि यह धर्म बहुत उदार था। इसके अन्तर्गत सब मनुष्य समान रूप मे मोक्ष के अधिकारी थे। वर्ण व्यवस्था तथा जाति पांति व्यर्थ के बखेड़े न थे। इस सिद्धान्त ने उन हृदयों को अमृतदान दिया जो ब्राह्मणों की सामाजिक ऊँच नीच मे संतप्त थे।

इन समस्त सुविधाओं के होते हुए भी यह धर्म भारत प्रदेश से सर्वथा विलीन हो गया इसके कुछ कारण थे। वे निम्नांकित हैं :—

(१) संरक्षकता का निधन :—बौद्ध धर्म की अवनति का प्रथम कारण संरक्षकता का निधन था। जिस प्रकार अशोक जैसे सम्राटों की संरक्षकता इसके प्रचार में सहायक हुई उसी प्रकार गुप्तवंशीय सम्राटों की इसके प्रति उदासीनता व हिन्दूधर्म के प्रति प्रवृत्ति इसके लिये घातक सिद्ध हुईं। यद्यपि उन्होने बौद्ध धर्म का विरोध नही किया, ब्राह्मण धर्म की ओर उनकी विशेष रुचि रही। अतः प्रजा भी बौद्ध धर्म की ओर उदासीन रहने लगी।

(२) हूणों के आक्रमण :—हूण जाति के आक्रमण बौद्ध धर्म के लिए विनाश-कारी सिद्ध हुये। उन्होंने उत्तर स्थित बौद्ध विहारों तथा उनमें रहने वाले भिक्षुको का सर्वथा ध्वंस कर बौद्ध धर्म को बहुत क्षति पहुँचाई। यह मठ कुशन वंशीय सम्राटों की छत्रछाया में बौद्ध धर्म के केन्द्र बन चुके थे अतः इनका विनाश बौद्ध धर्म के लिए बहुत घातक सिद्ध हुआ।

(३) मुसलमानों के आक्रमण :—हूण जाति के पश्चात् मुसलमानो के आक्रमण प्रारम्भ हुये। इन आक्रमणकारियों की पाशविक वृत्तियों के सामने अहिंसा का सिद्धान्त न ठहर सका।

(४) अन्य धर्मों का प्रसार :—जैन धर्म के प्रवर्तक बौद्ध धर्म का सदैव खण्डन करते रहे। ब्राह्मणों ने भी अपने मूल धर्म में सामयिक संशोधन कर डाले तथा उसे लोकप्रिय बना दिया। ब्राह्मणों ने भी बौद्ध धर्म का विरोध करना प्रारम्भ

कर दिया। अतः बौद्ध धर्म का प्रभाव जनता पर से दिन प्रति दिन कम होता चला गया तथा वह भारत से सर्वथा विलीन हो गया।

(५) विहारों में व्यभिचार :—बौद्धधर्म के धन-धान्य पूर्ण विहार (मठ) अपनी उच्च पवित्रता से गिर गये। उनमें व्यभिचार फैल गया। विहार अपने आदर्श से गिरकर व्यभिचार के क्रीडास्थल बन गये। अतः जनता की दृष्टि में गिर गये।

(६) संघ के प्रति उदासीनता :—बौद्ध सघ व्यवस्था बडी कठोर थी। मनुष्य सासारिक वैभवो को तिलाञ्जलि देकर सघ मे सम्मिलित होता था। बात ऊँची थी किन्तु आगे चलकर जनता को यह अप्रिय लगने लगी। यह स्वाभाविक भी था। प्रत्येक मनुष्य ऐसा नही कर सकता। अन्त में क्रियाशील प्राणी ही समाज प्रिय होता है।

(७) बौद्ध धर्म का विभाजन :—बौद्ध धर्मावलम्बियो का आन्तरिक मतभेद जिसने उनके दो भाग कर दिये थे इसको पतन के गर्त में ले गया। उनमें से एक शाखा ने बौद्ध धर्म की मूल सरलता को छोडकर बुद्ध जी के जीवन में बहुत सी विलक्षण घटनायें जोड कर उसमें अपवाद का समावेश कर दिया। अतः यह धर्म लोगो की दृष्टि से गिर गया।

बौद्ध धर्म ने विश्व को समाजवाद एवं मनुष्यवाद की सूचना दी। यदि उसे अच्छा सरक्षण मिलता रहता तो सम्भव है आधुनिक विश्व महान् युद्धो का विचार भी न कर सकता।

## प्रश्न

१—छठी शताब्दी ईसा पूर्व धार्मिक जागरण के क्या कारण थे ?

२—इस जागरण के परिणाम स्वरूप कौन २ धर्म प्रगट हुए ?

३—महावीर स्वामी के प्रारम्भिक जीवन का परिचय दो। वे जैन धर्म के कौन से तीर्थङ्कर थे ? उन्होने जैन धर्म के क्या सिद्धान्त निश्चित किए ?

४—जैन धर्म के कौन २ दो भाग हैं ? वे दो भाग कैसे हुए ?

५—जैन धर्म के अनुयायी किन दो प्रकार के होते हैं ?

६—बौद्ध धर्म की शिक्षायें क्या हैं ?

७—जैन व बौद्ध धर्म की तुलना करो।

८—बौद्ध धर्म की सफलता के क्या कारण थे ?

९—बौद्ध धर्म भारत मे क्यो नष्ट हुआ ?

## अध्याय ७

# पूर्व मौर्य कालीन भारत

**राजनैतिक व्यवस्था :**—सातवी शताब्दी ईसा पूर्व मे पहिले का राजनैतिक इतिहास लगभग अन्धकार में है, परन्तु सातवी शताब्दी ई० पू० के पश्चात् का भारतीय इतिहास कुछ निश्चित सी रूप रेखा रखता है। अनेकों बौद्ध तथा जैन धर्म ग्रन्थों में इस समय के सोलह राज्यों का उल्लेख है। ये १६ राज्य गौतम बुद्ध के प्रादुर्भाव से पूर्व अपना अस्तित्व रखते थे। इनके अङ्ग, मगध, काशी, कौसल, वृजि, मल्ल, चेदी, वत्स, कुरु, पांचाल, मतस्य, सूरसेन, अपूमक, अवन्ती, गंधार और कम्बोज नाम थे। इन सोलह महाजन पदों में गोदावरी से दक्षिण के किसी राज्य या बंगाल का कोई उल्लेख नहीं मिलता अतः ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय तक पूर्व व दक्षिण आर्य वर्ग में सम्मिलित नहीं हो पाये थे। उपरोक्त १६ रियासतें पारस्परिक युद्ध में तल्लीन रहती थी। फलस्वरूप छोटी रियासत बड़ी रियासतों से पराजित होकर उनके साम्राज्य में प्रविष्ट हो गईं। इनके अतिरिक्त वर्तमान उत्तर प्रदेश तथा बिहार के उत्तर में कम से कम दस प्रजातंत्रगण भी थे जिनमें वैशाली विशेष प्रसिद्ध था।

किसी २ गण में दो राज्य थे और किसी २ में एक भी नहीं। गण-राज्यों में संथागार होते थे जहाँ जनता एकत्रित होकर शासन प्रणाली पर विचार विनिमय करती थी। यह ठीक विदित नहीं कि चुनने की रीति क्या थी, पर वे अपना एक राजा चुनते थे। उसकी सहायतार्थ उपराज तथा सेनाध्यक्ष रहते थे। कुलों को भी कुछ राजनैतिक अधिकार थे। कभी २ अपनी रक्षा के लिए दो या अधिक गण संघ बनाकर संयुक्त शासन स्थापित करते थे।

**चार प्रमुखगण:**—उपरोक्त वर्णन से विदित होता है कि ईसा से ७०० वर्ष पूर्व देश छोटी २ रियासतों में विभक्त था। किन्तु जब भगवान् बुद्ध ने अपना प्रचार आरम्भ किया उस समय ये चार मुख्य गण राज्यों में बदल गई थी—वे कौशल, अवन्ती, वत्स और मगध थे।

(i) कौशल:—इस गण में इक्ष्वाकु वंश का राज्य था। आरम्भ में यह एक छोटी सी रियासत थी परन्तु छठी शताब्दी ई० पू० मे काशी व कपिलवस्तु भी इसमें सम्मिलित हो गये। फलस्वरूप इसकी प्रसिद्धि एव विस्तार अधिक बढ़ गया तथा इसकी सीमा मगध से मिल गई। मगध देश के राजा बिम्बसार से अपनी पुत्री का विवाह सम्बन्ध स्थापित कर महाकौशल नामक कौशल राजा ने उससे मैत्री भी कर

ली। परन्तु दोनों राजाओं के उत्तराधिकारी प्रसेनजित ( कौशल ) तथा अजात शत्रु ( मगध ) काशी तथा उसके समीपस्थ क्षेत्र पर झगडा करने लगे और अन्त में काशी पर मगध राज्य का आधिपत्य स्थापित हो गया। इसके पश्चात् कौशल कुछ ही पीढियों तक अपनी स्वतन्त्रता स्थापित रख सका तथा अन्त मे मगध राज्य मे ही मिला लिया गया।

(ii) अवन्ति:—यह मालवा प्रदेश का सामयिक नाम था। इसमें प्रद्योतः वंश राज्य करता था। बुद्ध जी के समय महासैन वहाँ का अधिपति था। उज्जैन उसकी राजधानी थी। दन्त कथायें सिद्ध करती हैं कि वह एक शक्तिशाली राजा था। आस-पास की रियासतो पर उसका बडा आतंक था। उसने अपनी समीपवर्तिनी वत्स रियासत मे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपनी स्थिति को सुदृढ बनाया। उसका वंश ४०० वर्ष ई० पू० तक चलता रहा जबकि मगध ने इसकी स्वतन्त्रता का अपहरण कर इसे अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया।

(iii) वत्स:—यह वर्तमान इलाहाबाद के समीपवर्ती प्रदेश का नाम था। यहाँ पाडवो के वंशज राज्य करते थे। इलाहाबाद के निकट कौशाम्बी इनकी राजधानी थी। बुद्ध जी के समय 'उदयन' नामक राजा वहाँ राज्य करता था। वह भारतीय साहित्य में बहुत सी कहानियों का नायक है। इससे सिद्ध होता है कि वह अपने समय में बहुत प्रसिद्ध एव लोक प्रिय राजाओं में था। आखेट करते समय अवन्ति के राजा महासैन ने उसको बन्दी बना लिया और अपनी पुत्री से उसका विवाह कर दिया। यह राजा बुद्ध धर्म को आदर की दृष्टि से देखता था। बुद्ध जी ने स्वय प्रचारार्थ इस राज्य में भ्रमण किया। कुछ पीढियो के पश्चात् वत्स मगध द्वारा पराजित हुआ और उसका ही एक भाग बन गया।

मगध :—ई० पू० छठी शताब्दी में राजनैतिक अवस्था कुछ अंशो तक वैसी ही थी जैसी कि गौतम बुद्ध के समय में थी। अवन्ति, वत्स एवं कौशल राज्यों का इतिहास हम पढ चुके हैं। जिससे परिणाम यह निकलता है कि सब राज्यो में मगध प्रबल हो चला था और अपने राज्य की सीमायें चारो दिशाओं में बढा रहा था।

बिम्बसार ५४३ ई० पू० से ४६१ ई० पू० तक :—५४३ ई० पू० के लगभग बिम्बसार नामक राजा यहाँ राज्य करता था। उसने अङ्ग देश पर अपना आधिपत्य स्थापित कर अपने साम्राज्य को समृद्धिशाली बनाया। कौशल के राजा महाकौशल की पुत्री से विवाह होने के फलस्वरूप उसे काशी तथा उसके समीपस्थ

बौद्धकालीन भारत
६०० ई० पू०
अवन्ती
मगध
कलिंग
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
१६ महाजनपद
अंग, मगध, काशी,
कोशल, वृज्जि, मल्ल, चेदि, वत्स,
कुरु, पञ्चाल, मत्स्य, सूरसेन,
अश्मक, अवन्ति, गान्धार, कम्बोज

प्रदेश दहेज में मिल गये। यह बौद्ध तथा जैन धर्म को आदर की दृष्टि से देखता था दोनों ही धर्म उसे अपना अपना मतानुयायी मानने में गर्व करते हैं।

**अजातशत्रु ४६१ ई० पू० से ४५६ ई० पू० तक :**—कुछ इतिहासकारो के मतानुसार ४६१ ई० पू० में बिम्बसार का वध करके उसका पुत्र अजातशत्रु स्वयं सिंहासनारूढ हुआ। सने अपने सम्बन्धी कौशल राज्य से युद्ध कर काशी को स्थायी रूप से अपने राज्य में सम्मिलत कर लिया। अपने शासन के आरम्भ काल में वह बुद्ध धर्म का विरोधी रहा। परन्तु अपने पिता के प्रति दुर्व्यवहार का प्रायश्चित करने के हेतु वह बौद्ध धर्मावलम्वी हो गया। उसने वर्तमान पटना के स्थान पर स्थित पाटिल नामक ग्राम को एक दुर्ग का रूप दिया जो समृद्धिशाली होकर पाटिलीपुत्र बन गया और अन्त में कई शताब्दियों तक मगध की राजधानी बना रहा—

**उदयन ४५६ ई० पू० से ४१३ ई० पू० तक :**—अजातशत्रु का पुत्र तथा उत्तराधिकारी उदयन ४५६ ई० पू० सिंहासनारूढ़ हुआ। इसने पाटिलीपुत्र में अपनी राजधानी स्थापित की और ४१३ ई० पू० तक राज्य किया।

**शिशुनाग :**—४११ ई० पू० के लगभग काशी के गवर्नर शिशुनाग ने मगध पर अपना आधिपत्य स्थापित कर शिशुनाघ वंश की स्थापना की, तथा गया के पास राजगृह में अपनी राजधानी बनाई। वह एक शक्तिशाली राजा था। उसने अपने बाहुबल तथा पराक्रम से मगध साम्राज्य को अधिक वैभव-सम्पन्न तथा समृद्धशाली बनाया तथा अवन्ति को पराजित कर अपने साम्राज्य का और भी वभव वढाया। उसके वंशज ३४३ ई० पू० तक राज्य करते रहे। ३४३ ई० पू० के लगभग नन्द वंश ने इस वंश के साथ विश्वासघात कर मगध पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

**नन्दवंश:**—३४३ ई० पू० के लगभग शिशुनाग वंश के स्थान पर नन्दवंश शासक हुआ। इस वंश तथा उसके शासन परिवर्तन का कारण इतिहासवद्ध नही है, किन्तु इतना अवश्य विदित होता है कि दरबारियों का षड्यन्त्र ही इस परिवर्तन का मूल कारण था। इस तरह एक निम्न श्रेणी ( सम्भवतः नाई ) का वंशज उग्रसेन महापद्म मगध के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। वह तथा उसके आठ पुत्र, नवनन्द के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्होंने २२ वर्ष तक राज्य किया। ये बड़े शक्तिशाली एवं क्रूर शासक थे। उनके शासन काल में पंजाब को छोड़कर समस्त उत्तरी भारत मगध के आधीन हो गया। चन्द्रगुप्त मौर्य्य अपने सुप्रसिद्ध मन्त्री चाणक्य की सहायता से इस वंश का विनाश कर मौर्य्य राज्य स्थापित करने मे सफल हुआ।

प्रदेश दहेज में मिल गये। यह बौद्ध तथा जैन धर्म को आदर की दृष्टि से देखता था दोनों ही धर्म उसे अपना अपना मतानुयायी मानने में गर्व करते हैं।

**अजातशत्रु ४६१ ई० पू० से ४५६ ई० पू० तक :**—कुछ इतिहासकारों के मतानुसार ४६१ ई० पू० में विम्बसार का बध करके उसका पुत्र अजातशत्रु स्वयं सिंहासनारूढ हुआ। सने अपने सम्बन्धी कौशल राज्य से युद्ध कर काशी को स्थायी रूप से अपने राज्य में सम्मिलत कर लिया। अपने शासन के आरम्भ काल मे वह बुद्ध धर्म का विरोधी रहा। परन्तु अपने पिता के प्रति दुर्व्यवहार का प्रायश्चित करने के हेतु वह बौद्ध धर्मावलम्बी हो गया। उसने वर्तमान पटना के स्थान पर स्थित पाटिल नामक ग्राम को एक दुर्ग का रूप दिया जो समृद्धिशाली होकर पाटिलीपुत्र बन गया और अन्त में कई शताब्दियों तक मगध की राजधानी बना रहा—

**उदयन ४५६ ई० पू० से ४१३ ई० पू० तक :**—अजातशत्रु का पुत्र तथा उत्तराधिकारी उदयन ४५६ ई० पू० सिंहासनारूढ़ हुआ। इसने पाटिलीपुत्र में अपनी राजधानी स्थापित की और ४१३ ई० पू० तक राज्य किया।

**शिशुनाग :**—४११ ई० पू० के लगभग काशी के गवर्नर शिशुनाग ने मगध पर अपना आधिपत्य स्थापित कर शिशुनाघ वंश की स्थापना की, तथा गया के पास राजगृह में अपनी राजधानी बनाई। वह एक शक्तिशाली राजा था। उसने अपने बाहुबल तथा पराक्रम से मगध साम्राज्य को अधिक वैभव-सम्पन्न तथा समृद्धशाली बनाया तथा अवन्ति को पराजित कर अपने साम्राज्य का और भी वभव बढाया। उसके वंशज ३४३ ई० पू० तक राज्य करते रहे। ३४३ ई० पू० के लगभग नन्द वंश ने इस वंश के साथ विश्वासघात कर मगध पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

**नन्दवंशः**—३४३ ई० पू० के लगभग शिशुनाग वंश के स्थान पर नन्दवंश शासक हुआ। इस वंश तथा उसके शासन परिवर्तन का कारण इतिहासबद्ध नही है, किन्तु इतना अवश्य विदित होता है कि दरबारियों का षडयन्त्र ही इस परिवर्तन का मूल कारण था। इस तरह एक निम्न श्रेणी ( सम्भवतः नाई ) का वंशज उग्रसेन महापद्म मगध के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। वह तथा उसके आठ पुत्र, नवनन्द के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्होंने २२ वर्ष तक राज्य किया। ये बड़े शक्तिशाली एवं क्रूर शासक थे। उनके शासन काल मे पंजाब को छोडकर समस्त उत्तरी भारत मगध के आधीन हो गया। चन्द्रगुप्त मौर्य्य अपने सुप्रसिद्ध मन्त्री चाणक्य की सहायता से इस वंश का विनाश कर मौर्य्य राज्य स्थापित करने मे सफल हुआ।

इस प्रकार हम देखते है कि पंजाब को छोड़ कर उत्तरी भारत की समस्त रियासत एक एक करके मगध द्वारा परास्त हुई। फलस्वरूप यह इतना शक्तिशाली राज्य हुआ कि इसकी शक्ति के सामने सिकन्दर महान् के विश्व-विजेता होने के सब स्वप्न भंग हो गये और वह इसकी ओर बढने का साहस भी न कर सका।

**मगध के इतिहास पर अन्य इतिहासिककारों के मत:—**मगध के इतिहास के उपरोक्त वंश, शासक एवं तिथियो के क्रम से कतिपय अन्य इतिहासकार सहमत नही हैं। जहाँ तक चन्द्रगुप्त मौर्य्य के शासन भार संभालने की तिथि है उसे सब ३२१ ई० पू० मानते हैं किन्तु ७वी शताब्दी ई० से ३२१ ई० पू० तक मगध का इतिहास विवादग्रस्त है। अधिकतर इतिहासकार, जिनमें डा० ईश्वरीप्रसाद इत्यादि सम्मिलित हैं, ऊपर लिखे हुए मगध के इतिहास को ही अधिक न्याय संगत मानते हैं। किन्तु डा० बेनीप्रसाद जी के मतानुसार ६४२ ई० पू० के लगभग राजा शिशुनाग ने शिशुनाग राजवंश की स्थापना की। उनका मत है कि शिशुनाग वंश के दूसरे, तीसरे और चौथे राजा नाम मात्र के थे। पाँचवाँ राजा बिम्बसार ५८२ ई० पू० के लगभग सिंहासनारूढ हुआ उसने लगभग २८ वर्ष राज्य किया। वृद्धावस्था में अपने उतावले पुत्र अजातशत्रु द्वारा कारागार में बन्द करके भूखा मार डाला गया। ५५४ ई० पू० के लगभग अजातशत्रु गद्दी पर बैठा। ५२७ ई० पू० के लगभग अजातशत्रु का निधन हुआ। उसके उत्तराधिकारियों के विषय में बहुत कम बातें विदित हैं। अन्त में ई० पू० ४१३ के लगभग शिशुनाग वंशज को गद्दी से उतार कर महापद्म नन्द ने एक नये राजवंश नंद वंश की स्थापना की। डा० बेनीप्रसाद जी नन्दवंश में नौ राजाओं का होना मानते हैं और अन्तिम नन्द राजा के समय में ई० पू० ३२५ में सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया। इसी अन्तिम नंद राजा का सर्वनाश करके गुरु चाणक्य के पथ प्रदर्शन में चन्द्रगुप्त ने मौर्य्य साम्राज्य ई० पू० ३२१ में स्थापित किया।

**समालोचना:—**पौराणिक आधारों के झंझट में न पड कर हमको उपरोक्त दोनों मतों का निष्पक्ष अध्ययन करना चाहिए। डा० ईश्वरीप्रसाद के मतानुसार बिम्बसार तथा शिशुनाग दोनो की विभिन्न वंशावलियाँ हैं। और वे मानते हैं कि बिम्बसार के वंश ने पहिले राज्य किया तथा शिशुनाग के वंश ने बाद मे शासन किया। किन्तु डा० बेनीप्रसाद के मतानुसार बिम्बसार भी शिशुनाग वंशज ही है। यदि यह मत लिया जावे तो निश्चय ही शिशुनाग बिम्बसार से प्रथम हुआ है। अब दोनों मे से कौन सा मत ग्राह्य है इस पर पूर्ण निश्चय नही हो पाया है। डा० ईश्वरीप्रसाद जी ने सिंहलद्वीपस्थ पौराणिक साहित्य को सच्चा आधार मानकर उपरोक्त मत स्थापित किया है। पुराण स्वयं एक दूसरे से भिन्न हैं और कभी २ तो एक ही पुराण

में से कई बातें एक दूसरे से एक साथ ही भिन्न हैं। ऐसी अवस्था में डा० ईश्वरीप्रसाद का मत ही मान्य है क्योंकि उन्होंने सिंहलद्वीपस्थ पुराणों को आधार माना है। सम्भव है यहाँ के पुराणों में कुछ गड़बड़ हो गई हो और वे सिंहलद्वीप में सुरक्षित रूप से निहित हो। किन्तु एक बात में उनका मत हृदयग्राह्य नही वह यह कि उनके कथनानुसार नन्द वंश के नौ राजाओं ने २२ साल ही राज्य किया। उन्होंने उग्रसेन महानन्द के आठ पुत्र मानकर २२ वर्ष में ही नन्द वंश की इति श्री कर दिखाई है। किन्तु डा० बेनीप्रसाद जी ४१३ ई० पू० से लेकर ३२१ ई० पू० तक नन्द वंश का शासन काल मानते हैं। इस प्रकार यह वंश लगभग ९२ वर्ष शासन करता है जो अधिक हृदय ग्राह्य है। किन्तु इतिहास में हृदय ग्राहिता को कुछ विशेष स्थान नहीं। अतः जब तक निश्चय मत निर्धारित न हो तब तक डा० ईश्वरीप्रसाद का मत ही मान्य रहेगा।

सामाजिक दशा—वर्ण व्यवस्था इस समय कुछ ढीली हो चली थी। ब्राह्मण धर्म का ह्रास हो गया था। जन्म की अपेक्षा कर्म प्रधान थे। क्षत्रियों की प्रधानता हो चली थी। वर्ण व्यवस्था में क्षत्रिय प्रथम ब्राह्मण दूसरे स्थान पर गिने जाते थे। खान पान बिना किसी वर्ग भेद के प्रचलित था। ब्याह भी अन्तर जातीय हो जाते थे। अनुलोम नियम के प्रतिकूल क्षत्रिय ब्राह्मण कन्या से भी ब्याह कर लेते थे। आश्रम पूर्णतया नहीं माने जाते थे। चाहे जब कोई किसी भी आश्रम में प्रविष्ट हो जाता था। बहु विवाह की प्रथा थी अतः स्त्रियों का पद गिर चुका था। बौद्ध तथा जैन साहित्य में स्त्रियों का अपमान-जनक शब्दों में वर्णन मिलता है। पर्दे का सर्वथा अभाव था। स्त्रियाँ बाहर निकलती थी। यज्ञ इत्यादि में खुले आम भाग लेती थी। वे शास्त्रार्थ के लिए भी मनुष्यों की सभा में बे रोक टोक आती जाती थी। बाल विवाह का अभाव था। शिक्षा साधन बहुत सुलभ थे। प्रायः निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। कला, विज्ञान, गणित, ज्योतिष, मीमांसा, औषधि इत्यादि सब शास्त्रों की उच्च शिक्षा की व्यवस्था थी। स्त्रियाँ भी पढ़ती थी। संस्कृत के साथ २ बौद्ध धर्म के उत्थान के कारण पाली तथा प्राकृत भाषा का अधिक प्रचार हो चला था। जैन तथा बौद्ध धर्म तो अधिकतर जोर पकड़ ही चुके थे परन्तु शैव तथा विष्णु की पूजा भी जारी थी। वैदिक देवताओं की पूजा प्रायः समाप्त हो चुकी थी। बहुत से राजा बड़े दानी होते थे। सदाव्रत बैठाकर यशोपार्जन करते थे। राज, लुहार, बढ़ई, चित्रकार, सौदागर, माली, सिपाही आदि सब लोग अपनी २ श्रेणियाँ बनाकर अपना प्रबन्ध आप ही आप करते थे। श्रेणी का मुखिया सेठी कहलाता था।

ललित कला:—नगर के चारों ओर चार दीवारें होती थी। घर प्रायः लड़की के बने होते थे। नगरों में कई २ मंजिलों के भव्यभवन निर्मित किये जाते

थे। लकड़ी में सुन्दर बेल बूटे खोदकर उन्हें अधिक सुन्दर बनाते थे। महापुरु स्मृतियाँ ईंट तथा पत्थर के स्मारकों में रक्खी जाती थी। देश में यत्र तत्र बौद्ध विहार तथा लाट भी दिखाई देती थी जिन पर बौद्ध तथा जैन धर्म के अङ्कित थे। मकानों में भोजन बनाने, बैठने, सोने, चीजें रखने, काम करने और करने के अलग २ कमरे होते थे।

कर :—भूमि कर वसूल करने में कभी २ अत्याचार भी किया जाता राज कर्मचारी भूमि नापते थे और लगान तै करते थे। बिना वारिस की सम्प राजकोष में जाती थी।

न्याय :—राजा न्याय का काम करता था। राजा के अतिरिक्त पुरो सेनापति और पंच भी यह काम करते थे। राजद्रोह या डाके के लिए प्राणद या अङ्ग भङ्ग का दण्ड दिया जाता था। कुछ अपराधों के लिए कारावास होता था, जिसमें बड़ा कष्ट मिलता था। घृणित अपराधी के लिए अपराधी काँटे के बेंत मारे जाते थे या हाथियों से उनकी हड्डी तुड़वा दी जाती थी।

उद्योग तथा व्यापार :—इस काल में उद्योग और व्यापार की उन्नति बहुत हो गई थी। भाँति २ के सूती, रेशमी, ऊनी कपड़े बनते थे। जूते, छाते इत्या भी खूब बनाये जाते थे। नगरों में सुगन्धों का बाजार गर्म था। सोना, चाँदी और मणियों के आभूषण बनाये जाते थे। भाँति २ के तेल बनाये जाते थे। गाड़ी और रथ भाँति २ के तैयार किये जाते थे। तीर, कमान, तलवार इत्यादि का उद्योग भी जोर पर था। अन्न, बनस्पति, फल, फूलों और भंग व मदिरा का व्यापार बहुत जोरों पर था। नदियों और सड़कों के द्वारा सारा देश एक व्यापार क्षेत्र बनता जा रहा था। विदेश से भी व्यापार होता था। तक्षशिला होकर एक व्यापार मार्ग था जो मध्य एशिया तथा पश्चिमी एशिया को जाता था। दक्षिण के बन्दरगाह, पूरब में बर्मा, स्याम और चीन से, और पश्चिम में मिश्र तथा पश्चिमी एशिया से व्यापार करते थे। हिन्दू लोग बहुत से जलयान भी चलाते थे तथा जान की बाजी लगाकर भयंकर समुद्रों के पार जाते थे।

नगर :—उद्योग, व्यापार तथा राजधानियों के कारण अनेक बड़े २ नगर बन गये थे उत्तरी भारत में लगभग २० बड़े नगर थे। थेरे आनन्द के निर्माण के समय छः महानगरों का उल्लेख है। ये श्रावस्ती, चम्पा, राजगृह, साकेत (अयोध्या) कौशाम्बी और बनारस थे। इनके अतिरिक्त बहुत से छोटे २ "निगम" (शहर) थे। शहरों और गांवों के जीवन में सदैव की भाँति बहुत अन्तर था। देहातियों का जीवन बिल्कुल सादा था। मोटा खाना तथा मोटा पहिनना उनका धर्म हो चला था।

शहरों में आमोद प्रमोद भी बहुत होता था। मुख्यतया धनिकों के यहाँ नाच रंग तथा गाने का जमाव रहता था। वेश्याओं का नाच भी होता था। शहरों में इमारतें भी बहुत सुन्दर और मोहक होती थीं। गया, राजगृह, काशी, उज्जैन, तक्षशिला, मालय और ताम्रलिपि विशेष रूप में प्रख्यात नगर थे।

ग्राम्य जीवन :—भारत की अधिकतर जनता ग्रामवासी थी। एक गाँव दूसरे गाँव से पर्याप्त दूरी पर स्थित होते थे। उनके बीच में विस्तृत क्षेत्र खाली पड़े रहते थे। कृषि ग्रामवासियों का मुख्य उद्यम था। पशु पालना भी जीविकोपार्जन का प्रमुख साधन था। दास प्रथा भी प्रचलित थी। दासों से अधिकतर कृषि-कार्य लिया जाता था। परन्तु दासों के साथ व्यवहार अच्छा किया जाता था। वे गृहस्थ रख सकते थे। वे परिवार के सदस्य समझे जाते थे। कई गाँव मिलकर बड़े २ जलाशय बनाते थे सिचाई की संयुक्त योजना बनाकर कई गाँव मिलकर नहर इत्यादि की व्यवस्था करते थे। इसी प्रकार सार्वजनिक गृहों तथा राज मार्गों का निर्माण भी किया जाता था। कृषक वर्ग अपनी उपज का $\frac{1}{6}$ से $\frac{1}{12}$ भाग तक अपने मुखिया द्वारा राजा को भेजते थे।

### प्रश्न

१—पूर्व मौर्य कालीन भारत में कौन २ मुख्य राज्य थे?
२—बुद्धजी के समय तक भारत में कौन से चार-गण राज्य बन गये?
३—मौर्य काल से पहिले मगध के इतिहास पर संक्षिप्त नोट लिखो?
४—पूर्व मौर्य कालीन भारत की सामाजिक दशा और उद्योग व व्यापार के विषय में तुम क्या जानते हो?

---

अध्याय ८

# सिकन्दर का आक्रमण

सिकन्दर का बाल्यकाल :—सिकन्दर महान् मकदूनिया (यूनान) के राजा फिलिप का एक मात्र पुत्र था। उसका जन्म ईसा से ३५६ वर्ष पूर्व हुआ था। बाल्यकाल से ही उसमें महानता के चिन्ह दिखाई देते थे। उसके असामान्य गुणों से प्रभावित होकर उसके पिता ने उसे उत्तम शिक्षा देने का भरसक प्रयत्न किया। तत्कालीन अद्वितीय विद्वान अरस्तू पर उसका शिक्षण भार डाला गया। फिलिप की

मृत्यु के पश्चात २० वर्ष की आयु में सिकन्दर सिंहासनारूढ़ हुआ। युद्ध कला में प्रवीणता तथा अरस्तू द्वारा प्राप्त की हुई उच्च शिक्षा ने उसे महत्वाकांक्षी बना दिया। अतः गद्दी पर बैठते ही उसने विश्व विजयी होने का दृढ़ संकल्प किया

**सिकन्दर की विश्व विजय यात्रा :**—३३४ ई० पू० सिकन्दर एशिया-माइनर की ओर अग्रसर हुआ। उसने ईरान के युद्ध में ईरानियों को परास्त किया। तत्पश्चात वह सीरिया पहुँचा और 'टायर' पर अधिकार कर लिया। यह समस्त प्रदेश उस समय ईरान के आधीन था। अतः इस पर आधिपत्य स्थापित करने के लिये उसे ईरानियों से घोर युद्ध करना पड़ा। ईरान उस समय सभ्यता के उच्च शिखर पर था अतः उसे जीतना कोई साधारण बात न थी। किन्तु वीर सिकन्दर के अदम्य साहस तथा युद्ध लाघवता ने उसे विजयी बनाया इसके पश्चात् उसने फारिस-अधिकृत मिश्र पर आक्रमण किया तथा उसे भी जीत लिया। उसने वर्तमान सिकंदरिया नामक नगर की नींव डाली। यहाँ उसने एक यूनानी सेना मिश्र की रक्षा के लिए छोड़ दी।

तत्पश्चात सिकन्दर फारिस की ओर बढ़ा। ३३० ई० पू० में फारिस के बादशाह दारा तृतीय से घोर युद्ध हुआ। दारा युद्धस्थल छोड़ कर भाग गया और मैदान सिकन्दर के हाथ रहा। फारिस की प्रसिद्ध राजधानी परसीपोलिस को नष्ट भ्रष्ट कर वह उत्तर की ओर बढ़ा। उस प्रदेश के बैक्ट्रिया, काबुल तथा अन्य छोटे २ राज्यों को परास्त कर उसने उन पर अधिकार जमा लिया। इन युद्धों में सिकन्दर ने पूर्ण वीरता एवं अध्यवसाय का परिचय दिया। इसके बाद वीर सिकन्दर ३२७ ई० पू० में हिन्दुकुश पार आ पहुँचा। काबुल में एक सुदृढ दुर्ग बनाकर उसने यह समस्त वर्ष पहाड़ी प्रान्त के परास्त करने में लगाया। इस प्रदेश की वीर जातियों को उस महत्वाकांक्षी ने इतनी कठोरता से दबाया कि वे उसकी यातायात के साधनों अथवा सेना के मार्ग में बाधा डालने का साहस भी न कर सके।

**भारतीय सीमा पर सिकन्दर का दुःखद अनुभव :**—इस पहाड़ी प्रदेश पर विजय प्राप्त करने के पश्चात उसने भारतवर्ष पर आक्रमण करने की तैयारी की। भारत की भव्य भूमि एवं समृद्धि सिकन्दर की लोभी आँखों को निरन्तर आकर्षित

उनकी पुनीत आत्मा ने ऐसा घृणित कार्य करने की आज्ञा नहीं दी। उन्होंने एक रात्रि में सिकन्दर का पक्ष छोड़कर भागने का प्रयत्न भी किया किन्तु गुप्तचरों द्वारा सिकन्दर को उनकी इस धारणा का पता चल गया। फलस्वरूप सिकन्दर ने उन पर आक्रमण कर दिया। 'आश्यक' प्रदेश के समस्त नर नारियों ने इन सैनिकों के प्रति सहानुभूति प्रकट की। सबने सिकन्दर का विरोध किया। राजधानी के समस्त स्त्री व पुरुष युद्ध करते हुए वीर गति को प्राप्त हुये। सिकन्दर जीत तो गया किन्तु इस घटना से वह बहुत प्रभावित हुआ। भारतवासियों के देश तथा स्वातन्त्र्य प्रेम ने महान् सिकन्दर को रोमांचित कर दिया। स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर सहस्रों स्त्री व पुरुषों के प्राणों की यह आहुति सदैव भारतवर्ष का मुख उज्ज्वल तथा मस्तक ऊँचा रक्खेगी।

सिकन्दर को यह बड़ा तीखा अनुभव प्राप्त हुआ। अन्य देशों पर विजय प्राप्त करने में उसके गुप्तचर विभाग ने उसे विशेष सहायता प्रदान की थी। किन्तु उपरोक्त घटना ने सिकन्दर के सब हौसले पस्त कर दिए। अब सिकन्दर को अचानक भारत पर आक्रमण करने का साहस न था।

**सिकन्दर की दूसरी चाल** :—अब भी भारतवर्ष में सिकन्दर का गुप्तचर विभाग अपना कार्य सम्पन्न कर रहा था। उनके द्वारा वह देश की दुर्बलता, पारस्परिक विरोध एवं क्षुब्ध वर्ग से परिचित हो गया। वह उनसे लाभ उठा सकता था। किन्तु उसका साहस उसके हृदय से कूच कर रहा था क्योंकि भारतवर्ष में उसकी कूटनीति का प्रथम-पग ही असफलता के दलदल में फँस गया। अब उसने एक दूसरी चाल चली। उसने सीमास्थित छोटी २ अनेक रियासतों के शासकों को भेंट करने के लिये आमन्त्रित किया। उसने सोच रक्खा था कि यदि इस कूटनीति के जाल में दो चार भी मित्ररूप में फँस गये तो वे भारतवर्ष की विजय प्राप्ति में विशेष सहायक होंगे। शासकों की पारस्परिक कलह एवं स्वाभाविक ईर्ष्या के कारण यह सम्भव भी था। सिकन्दर का यह अस्त्र सफल रहा।

**सिकन्दर की इस कूट नीति के शिकार** :—सिकन्दर के निमन्त्रण स्वीकार किये जाने लगे। सर्व प्रथम तक्षशिला के राजा 'आम्भि' ने उसकी आधीनता स्वीकार करली और उसे आर्थिक सहायता देने का वचन दे दिया। सिकन्दर का उत्साह बढ़ने लगा। आम्भि के वचनों से प्रोत्साहित होकर सिकन्दर ने पोरस (पुरु) के पास सूचना भेजी कि वह उसकी आधीनता स्वीकार करले। पोरस झेलम व चुनाव

के मध्यप्रान्त का शासक था। वह एक स्वाभिमानी वीर था। स्वतन्त्रता का उष्ण रक्त उसकी धमनियों में प्रवाहित हो रहा था। उसने स्वतन्त्रता के भीषण रण में जीवन की आहुति देना स्वीकार कर लिया तथा सिकन्दर के पास कहला भेजा कि पोरस और सिकन्दर रण-भेरी के तुमुलनाद में युद्धस्थल में मिलेंगे।

**सिकन्दर तथा पोरस**—युद्ध की तय्यारियाँ होने लगी। मातृभूमि पर वलि चढाने के लिए दूर-दूर से वीर आकर पोरस की सेना में भर्ती हुए। सिकन्दर तथा पोरस की सेनायें एक दूसरे के आमने-सामने झेलम के किनारे पर डेरे डाले पड़ी थी। एक रात्रि में सिकन्दर की सेना ने १६ मील की दूरी पर नदी पार कर युद्ध प्रारम्भ कर दिया। पुरु एव उसकी सेना की अद्वितीय वीरता पर रणकुशल सिकन्दर को अत्यन्त विस्मय हुआ। यूनानी भारतवासियों से युद्ध क्षेत्र मे प्राणों की बाजी लगाना सीख रहे थे किन्तु विजय पताका सिकन्दर के ही हाथ रही। पुरु घायल हुआ और सिकंदर के सम्मुख लाया गया। उसकी वीरता, आत्माभिमान तथा निर्भीकता से प्रसन्न होकर सिकन्दर ने स्वयं उसके कथनानुसार उसके साथ वैसा ही बर्ताव किया जैसा कि एक राजा दूसरे राजा के साथ करता है। उसका देश और भी अधिक प्रदेश के साथ उसको वापिस कर दिया गया।

**पंजाब की अन्य छोटी २ रियासतें**—पुरु की पराजय के कारण पंजाब की अन्य छोटी २ रियासतो ने भी सिकन्दर की आधीनता स्वीकार कर ली। वे लगभग निष्प्राण सी थी। उनकी शक्ति का ह्रास पारस्परिक संघर्षों में होता रहता था अतः ऐसा सम्भव ही था।

**सिकन्दर तथा मगध**—सितम्बर ३२६ ई० पू० में सिकन्दर व्यास नदी के तट पर आ पहुँचा। यह वह स्थान था जहा पर उसके साथियों का अदम्य धैर्य तथा सराहनीय साहस नौ दो ग्यारह हो गया। उन्हें मगध की विशाल सेना एवं उसके शौर्य की सूचना इसी स्थान पर प्राप्त हुई। उसको सुनकर सिपाहियों का धैर्य जाता रहा। सिकन्दर का ओजस्वी भाषण भी उनमें साहस संचार न कर सका। उनकी धमनियों का रक्त ठण्डा पड़ गया।

**सिकन्दर का यूनान लौटना**—अन्तिम स्थान पर बारह वेदियों का विशाल स्मारक बनवाकर वह वहा से सिन्धु की सहायक नदियों से होता हुआ मार्ग के एक दो छोटे २ राज्यों को परास्त करता हुआ जल मार्ग से वापिस लौट गया। जाने से पूर्व उसने अपने विजित प्रदेश की समुचित व्यवस्था करनी चाही। उसने पंजाब का अधिकतर भाग पुरु को और शेष तक्षशिला के राजा आम्भि को दे दिया। एक यूनानी सेनापति को सिन्ध तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश का समस्त भूभाग दे दिया। इसी

प्रकार समस्त साम्राज्य का बटवारा कर वह वापिस लौटा परन्तु मार्ग में वह बीमार पडा और ३२ वर्ष की आयु में बेबीलोन में उसका देहान्त हो गया।

**सिकन्दर का चरित्र तथा स्थान.**—सिकन्दर एक महान् विजेता, एव पराक्रमी वीर, युद्ध विद्या में प्रवीण, तथा एक कुशल सेनाध्यक्ष था। एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ की भाँति वह कभी भी उचित व्यवस्था किये बिना आगे बढना नही चाहता था। उसने केन्द्रिय स्थानो पर दुर्ग बनाकर उनसे व मक्दूनिया में यातायात तथा सूचना सम्बन्ध स्थापित कर समस्त राज्य में सुप्रबन्ध स्थापित किया। उसका गुप्तचर विभाग बडा दक्ष था। वह सदैव सेना से आगे चला करता तथा एक देश की परिस्थिति का ठीक २ ब्यौरा देता था। अत हम सिकन्दर को केवल एक साहसी सिपाही कहकर उसके साथ अन्याय करते है। वह राजनीति में भी दक्ष था।

**भारत तथा यूनान**—भारत तथा यूनान में कौनसा देश अधिक शक्तिशाली था, यह एक अद्भुत प्रश्न है। सिकन्दर यूनान से चलकर मिश्र, सीरिया, एशिया माइनर, फारिस, अफगानिस्तान इत्यादि देशो को जीतता हुआ पजाब तक आ पहुँचा। परन्तु वह भारत की वास्तविक शक्ति मगध के सम्पर्क में नही आया। पुरु के युद्ध को देखकर यह निश्चय पूर्वक कहना कठिन है कि यदि दोनो शक्तियो में सघर्ष होता तो कौन विजयी होता। सिकन्दर की सेना का साहस खो बैठना, देश को जीवित जाने की इच्छा इस बात के प्रतीक हैं कि यूनानियो को अपनी बाहुशक्ति युद्ध कम जची और उन्हें विजय की बिल्कुल आशा न थी।

**आक्रमण का प्रभाव**—(I) आक्रमण से भारतीय राजाओ की प्राकृतिक दुर्बलता एव ईर्षा सर्व विदित हो गई और पता लगा कि पारस्परिक द्वेष के कारण इनका इतना नैतिक पतन हो चुका था कि समस्त देश की स्वतन्त्रता अपहरण के अवसर पर भी वे सगठित नही हो सकते थे।

(II) सिकन्दर और पुरु के युद्ध ने पूर्णतया सिद्ध कर दिया कि हाथी एव शक्तिशाली एव सुसगठित अश्व सेना के समक्ष नही ठहर सकते। अत युद्धस्थल में इन पर विश्वास करना एक बडी भूल है।

(III) सिकन्दर यूनान से भारतवर्ष तक स्थल मार्ग से आया। इस प्रकार व्यापारियो को भारतवर्ष से व्यापार करने के लिए एक स्थल मार्ग का पता लग गया। इस दृष्टि से सिकन्दर के आक्रमण ने एक महत्वपूर्ण भूगोलिक अन्वेषण का स्थान प्राप्त किया जिससे यौरुप व भारतवर्ष के बीच व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित होने में बहुत सहायता मिली।

(iv) सिकन्दर के जल मार्ग मे जाने पर भारत तथा यूनान के बीच में जल मा का अन्वेषण हुआ।

(v) पंजाब की रियासतो का एकीकरण हो गया।

(vi) इस अल्पकालीन सम्पर्क का भी एक महत्वपूर्ण लाभ अवश्य हुआ। भारतवर्ष तथा यूनान दोनों ही उन्नति के शिखर पर थे। दोनों की सभ्यतायें परस्पर मिलीं। आदान प्रदान हुआ। भारतीय सभ्यता, ललितकला, एवं निर्माणकला पर यूनानी कला की गहरी छाप लगी। यूनानी ज्योतिष से भारतवर्ष की ज्योतिष में बहुत संशोधन हुए। यूनानियों ने भारतीय वेदान्त शास्त्र में बहुत कुछ ग्रहण किया।

(vii) आक्रमण यद्यपि विचार पूर्वक संचालित किया गया और जहाँ २ यह महान् विजेता गया वहाँ २ सफलता ने इसके चरण चूमे। किन्तु भारत पर इस आक्रमण का कोई चिरस्थायी प्रभाव न पड़ा। युद्ध की यातनाओं को जनता इतनी शीघ्र भूल गई कि अल्पकाल के पश्चात् ही वह पूर्ववत फिर कार्य क्रम में तल्लीन हो गई। बौद्ध जैन या हिन्दू किसी भी लेखक ने इसका कोई उल्लेख नहीं किया। इस तरह सिकन्दर का आक्रमण एक आँधी के झोंके के सदृश आया और आकर चला गया।

### प्रश्न

१—सिकन्दर के बाल्यकाल के विषय में तुम क्या जानते हो ?

२—भारतवर्ष की सीमा पर सिकन्दर ने क्या दुखद अनुभव किया ?

३—सिकन्दर ने किस प्रकार पुरु को पराजित किया ?

४—सिकन्दर के आक्रमण का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा ?

---

## अध्याय ६

# मौर्य्य काल

(a) मौर्यकालीन इतिहास की जानकारी के साधनः—मौर्य वंश से भारतवर्ष का इतिहास सुचारु रूप से प्रवाहित होता है। इससे पूर्व का इतिहास अभी विशृंखल है। किन्तु मौर्यकाल एवं उसके पश्चात् का भारतीय इतिहास अधिकृत

रूप में सकलित किया जा सका है। इस सकलन में निम्नलिखित साधन विशेष सहायक हुये हैं—

(i) मेगस्थनीज का विवरण:—सिकन्दर के सेनापति सेल्यूकस ने अपनी सुपुत्री हेलन का विवाह चन्द्रगुप्त मौर्य से कर दिया था। मैत्री सम्बन्ध को अधिक दृढ बनाने के विचार से उसने मेगस्थनीज नामक एक यूनानी युवक को चन्द्रगुप्त के दरबार मे अपना एलची बनाकर भेजा। उसने भारतवर्ष का सुन्दर विवरण दिया है। मेगस्थनीज की पुस्तक पूर्ण अ श में प्राप्त नही है किन्तु जो कुछ भी अ श प्राप्त है वह तथा अन्य यात्रियो द्वारा लिखित सामग्री तत्कालीन भारतीय शासनपद्धति, आर्थिक एव सामाजिक व्यवस्था पर यथेष्ट प्रकाश डालती है।

(ii) कौटिल्य का अर्थ शास्त्र—दूसरा प्रमुख साधन कौटिल्य का अर्थ शास्त्र है। यद्यपि यह कोई ऐतिहासिक पुस्तक नही प्रत्युत एक नीतिशास्त्र का ग्रन्थ है तथापि शासन प्रवन्ध, पुलिस विभाग व अन्य बातो में वह मेगस्थनीज द्वारा लिखित वृतान्त की पूरक है।

(iii) शिलालेख इत्यादि:—अशोक की लाटें, शिलालेख, तथा स्तूप इत्यादि से तत्कालीन शासन पद्धति, रहन सहन एव धार्मिक व्यवस्था का अभीष्ट वर्णन प्राप्त होता है। अशोक के राजकीय एव धार्मिक नियम तथा तत्कालीन प्रमुख घटनायें उनपर अ कित हैं। उनकी भाषा तथा उनका विस्तृत क्षेत्र मौर्य साम्राज्य के विस्तार का सूचक है।

(iv) महावश तथा द्वीपवंश नामक पुस्तकें:—चौथा मुख्य साधन लका द्वीप में प्राप्त होता है। यह हैं महावश तथा द्वीपवश नामक दो पुस्तकें। इनमें बौद्ध धर्म के प्रचार का अशोक के शिला लेखो से भी अधिक विस्तृत वर्णन मिलता है।

(v) नैपाली तथा तिब्वती ग्रन्थ:—उपरोक्त लका के ग्रन्थो से भी अधिक महत्वपूर्ण एव अधिकार पूर्ण ग्रन्थ हैं नैपाली तथा तिब्वती ग्रन्थ। ये बौद्ध धर्म के प्रसार एव प्रचार का पूर्ण विवरण देते हैं।

(vi) मुद्राराक्षस:—मुद्राराक्षस नामक राजनैतिक नाटक मौर्य राजवश की स्थापना का विवरण प्राप्त करने में विशेष सहायक है। चन्द्रगुप्त द्वारा की हुई क्रांति का जिसने नन्दवश का सर्वनाश किया, इस नाटक मे विशेष उल्लेख है।

उपरोक्त साधनो द्वारा एक सुयोग्य इतिहासकार मौर्यवश के इतिहास के लिए पर्याप्त सामग्री जुटा सकता है।

**चंद्रगुप्त मौर्य** :—चन्द्रगुप्त मौर्य के विषय में इतिहासकारों के भिन्न भिन्न मत हैं। कुछ लोग कहते हैं कि वह हिमालयस्थित मोर राज्य का राजकुमार था। कुछ कहते हैं कि वह अपने समकालीन नन्दवंशीय मगध सम्राट महापद्मनन्द का वर्णसंकर पुत्र था जो कि मुरा नामक दासी से उत्पन्न हुआ। वर्तमान खोज से विद्वन्मण्डली इस तथ्य पर पहुँची है कि वह आदि नन्दाओं के प्रतिष्ठित कुल में से था। अपने समकालीन नन्द सम्राट महापद्मनन्द से उसका किसी कारणवश झगड़ा हो गया, फलस्वरूप उसको अपनी जन्मभूमि (मगध) त्यागनी पड़ी। इसी दशा में

साँची स्तूप का द्वार

उसने सिकन्दर महान् से भेंट की और उसे महापद्मनन्द के विरुद्ध मगध पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दिया। परन्तु नन्दवंश की अपार शक्ति के कारण उसने चन्द्रगुप्त के निमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया। अब चन्द्रगुप्त मौर्य ने तत्कालीन प्रकाण्ड पण्डित तथा महाक्रोधी ब्राह्मण विष्णुगुप्त चाणक्य की शरण ली। चाणक्य उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ था। उसकी सहायता से चन्द्रगुप्त एक विशाल सेना एकत्रित

करने में सफल हुआ। इस सेना की सहायता से चन्द्रगुप्त ने सर्व प्रथम उत्तरी पश्चिमी देश पर जो उस समय यूनानियों के आधीन था आक्रमण किया और उन्हें पूर्णतया परास्त किया। इस प्रकार पंजाब पर अपना आधिपत्य स्थापित करने के पश्चात् ३२२ ई० पू० में उसने मगधाधिपति घनानन्द को परास्त कर मगध पर अधिकार कर लिया और एक विशाल साम्राज्य का स्वामी बन बैठा।

चंद्रगुप्त और सेल्यूकस :—३०४ ई० पू० सेल्यूकस नामक सिकन्दर के एक सेनापति ने, जोकि भारत के समीपवर्ती उत्तरी पश्चिमी प्रदेश का शासक था, भारत वर्ष पर आक्रमण किया। उसका उद्देश्य उन विजित देशों को पुनः लौटाने का था जिनको चन्द्रगुप्त ने यूनानियों से छीन लिया था। परन्तु वह अपने उद्देश्य में असफल रहा। वह हार गया और उसे ३०३ ई० पू० में चन्द्रगुप्त से सन्धि करने को बाध्य होना पड़ा। तदनुसार उसे काबुल, कन्धार, हिरात और बिलोचिस्तान आदि प्रदेश चन्द्रगुप्त को भेंट स्वरूप देने पड़े। भारतीय सभ्यता से चिर सम्बन्ध रखने की लालसा से उसने अपनी प्रिय पुत्री हैलन का विवाह चन्द्रगुप्त से कर दिया। अपने सम्बन्ध को सुदृढ बनाने के हेतु उसने मेगस्थनीज नामक राजदूत को चन्द्रगुप्त के दरबार में भेज दिया।

चन्द्रगुप्त की विजय का प्रभाव:—यह विजय, सन्धि तथा सम्बन्ध संसार के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। इसने मौर्य साम्राज्य को उत्तर पश्चिम की ओर प्राकृतिक सीमायें प्रदान कर उसकी सीमायें सुदृढ बना दीं। इस ओर से किसी भी आक्रमण की आशंका न रही। भारतीय सीमा का यह प्रदेश, उसका अधिकार अथवा उसके शासकों से मैत्री सम्बन्ध, इत्यादि अंग्रेज राजनीतिज्ञों के सामने भी सदैव समस्या स्वरूप ही रहा है। भारतवर्ष की सुरक्षा के लिए वे इस सीमा प्रश्न की ओर सदैव सजग रहे। चन्द्रगुप्त के सम्मुख भी इसी प्रकार का प्रश्न रहा होगा। किन्तु उस वीर ने इस प्रश्न को तलवार के बल से हल किया। उसने इन प्रदेशों पर अधिकार किया एवं उनको संधि करने के लिए बाध्य किया। अतः यह कार्य चन्द्रगुप्त मौर्य तथा उसके महामन्त्री चाणक्य की नीति-कुशलता का परिचायक है।

दूसरे इस विजय की सूचना जब सीरिया, मिश्र आदि प्रदेशों में पहुँची तो वे मौर्य शक्ति से इतने प्रभावित हुए कि चन्द्रगुप्त से राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित करने को तत्पर हो गए और अपने राजदूत उसके दरबार में भेजे।

तीसरे इस विभाजन ने चन्द्रगुप्त की ख्याति समस्त पाश्चात्य देशों में फैला दी। चन्द्रगुप्त का विदेशी जाति में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना प्रदर्शित करता

है कि हिन्दू जाति में अभी वह जातीय संकीर्णता नही आई थी जो उसके अवनति काल में आई थी।

**साम्राज्य विस्तार:**—सेल्यूकस पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् चन्द्रगुप्त ने दक्षिण पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार २९७ ई० पू० जब उसका देहान्त हुआ मौर्य साम्राज्य मे अफगानिस्तान, पजाब, संयुक्तप्रांत, मगध, बगाल, कलिंग के साथ २ समस्त दक्षिण और काठियावाड भी सम्मिलित थे। उसकी विशाल सेना जिसमें ६०००० पैदल, ३०००० घोडे, ९००० हाथी थे, सदैव इसकी रक्षा के लिए उद्यत रहती थी। इतने बड़े साम्राज्य की स्थापना, और अपने जीवन पर्यन्त उसकी सुरक्षा, चन्द्रगुप्त मौर्य के सुयोग्य शासक होने के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

**चन्द्रगुप्त का व्यक्तित्व :**—चन्द्रगुप्त ने नन्दवंश को समाप्त कर अपना राज्य स्थापित किया था अत. वह षडयन्त्र मे सदैव सतर्क रहता था। उसका गुप्तचर विभाग उसके साम्राज्य की रक्षा का निरन्तर प्रयत्न करता रहता था। षडयन्त्र इत्यादि रोकने के लिये उसने प्रजा की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर अनेक प्रतिबन्ध लगा रक्खे थे। प्रजा को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिये आज्ञा पत्र लेने पड़ते थे। वे प्रीतिभोज आदि की व्यवस्था करके पारस्परिक घनिष्ठता स्थापित नहीं कर सकते थे। चन्द्रगुप्त के यह प्रतिबन्ध जनता की राजनैतिक जाग्रति के सूचक हैं। अपनी रक्षा के लिए वह सदैव बहुत से अंगरक्षक रखता था। प्राय. राजप्रासाद मे ही रहता था; केवल अभियोग सुनने, आखेट खेलने या सैनिक संघर्ष में भाग लेने को ही बाहर आता था। वह दिन में एक बार प्रजा को दर्शन देकर उनके प्रार्थना पत्र ले लेता था और उनपर स्वय निर्णय देता था। चन्द्रगुप्त को शरीर की मालिश कराने का बड़ा शौक था। वह अपने जन्म दिवस को बड़ी धूम-धाम से मनाता था। आखेट में उसकी विशेष रुचि थी। वह जनता में बड़े ठाट बाट के साथ निकलता था। उसे पशु युद्ध, दंगल, घुड़ दौड़, बैलों की दौड़ आदि बहुत प्रिय थे। और बहुधा हाथी व सांडों के युद्ध कराता था। जैनियों के अनुसार जब २९८ ई० पू० में द्वादश वर्षीय अकाल पड़ा उसने राजगद्दी का परित्याग कर दिया तथा मैसूर में साधु बनकर रहने लगा। वहां व्रत द्वारा उसने अपना जीवन समाप्त किया। चन्द्रगुप्त का नाम मैसूर राज्य में अब भी कहानियों के नायक के रूप में विद्यमान है।

**बिन्दुसार २९६ ई० पू० से २७१ ई० पू० तक :**—चन्द्रगुप्त मौर्य के उपरान्त उसका पुत्र बिन्दुसार गद्दी पर बैठा। यूनानी इसको अमित्रघात या अमित्रघाट कहते थे। बिन्दुसार ने अपने पिता के राज्य का भार युवराज रूप से सभाला। उसके राज्य
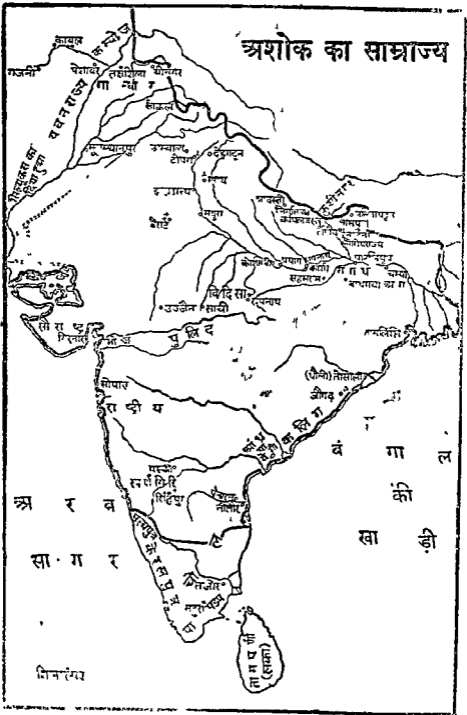
में शान्ति रही किन्तु शासन काल के अन्तिम दिनों में समस्त राज्य में अराजकता फैल गई। पश्चिमी एशिया तथा मिश्र के यूनानी राजाओं से उसके सम्बन्ध अच्छे रहे। पच्चीस वर्ष तक राज्य करने के उपरान्त बिन्दुसार २७१ ई० पू० स्वर्ग सिधार गया।

**अशोक :**—२७१ ई० पू० में बिन्दुसार के पश्चात् उसका छोटा पुत्र अशोक गद्दी पर बैठा, परन्तु २६९ ई० पू० तक उसका राज्याभिषेक न किया जा सका, क्योंकि गद्दी पर बैठने के थोड़े दिन उपरान्त ही उसे अपने बड़े भाई सुषुम से युद्ध करना पड़ा। सुषुम बड़ा होने के कारण अपने आपको गद्दी का अधिकारी समझता था, परन्तु बिन्दुसार का मन्त्रि-मण्डल उसकी अयोग्यता के कारण अशोक को सिंहासनारूढ करना चाहता था। युद्ध में सुषुम की पराजय हुई और युद्धस्थल में ही वह वीर गति को प्राप्त हुआ। विजय ने अशोक के अधिकार को सुरक्षित कर दिया। इस घटना से यह भी सिद्ध हुआ कि इस समय तक प्रजा अयोग्य शासक को गद्दी से वंचित रखने का अधिकार रखती थी।

**कलिंग विजय :**—सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् २६१ ई० पू० में अशोक ने कलिंग पर आक्रमण किया। कलिंग प्रदेश महानदी व कृष्णा के मध्यस्थ तटवर्ती प्रदेश का नाम था। अर्वाचीन काल में इसे उड़ीसा तथा मद्रास प्रान्त का उत्तरी भाग कहते हैं। घोर युद्ध के पश्चात् कलिंग पर विजय प्राप्त हुई। परन्तु इस युद्ध में अशोक के लाखों आदमी काम आये। इस अपार जन-क्षति, उनकी हृदय-विदारक चीत्कार एवं हाहाकार तथा उनके कौटुम्बिक सुख शान्ति के सर्वनाश से अशोक का हृदय बहुत प्रभावित हुआ और उसने आजीवन युद्ध न करने की शपथ ले ली। इस युद्ध ने उसके दृष्टिकोण को सर्वथा बदल दिया। अब अशोक साम्राज्य-लिप्सा का शिकार न रहा। उसके रक्त मास के हृदय में प्रजा के लिये वात्सल्य प्रेम जागृत हो गया और लोक शान्ति स्थापित करना वह अपना मुख्य कर्त्तव्य समझने लगा।

**धर्म परिवर्तन:**—कलिंग विजय के पश्चात् अशोक ने बुद्ध धर्म स्वीकार कर लिया और उसके प्रसार का भरसक प्रयत्न करने लगा। शान्ति लाभ करने के लिए वह धार्मिक भ्रमण करने लगा। प्रथम पर्यटन गया का था। तत्पश्चात् वह कपिल-वस्तु, सारनाथ, सरस्वती तथा कुशी नगर गया। ये सब स्थान बुद्ध भगवान के धार्मिक जीवन से सम्बद्ध थे। कपिलवस्तु इस धर्म के प्रवर्तक का बाल्यकाल में क्रीड़ास्थल रहा था। सारनाथ में उसने प्रथम प्रवचन दिया था। सरस्वती पर उसे ज्ञान प्राप्त हुआ तथा कुशीनगर में उसे निर्वाण प्राप्त हुआ था। अशोक ने इन स्थानों पर अतुल धनराशि दान की, और अनेकों स्मारक बनवाये। उसने शिकार खेलना तथा मांस

खाना बन्द कर दिया । राज रसोई के लिए पशु वध निषेध कर दिया गया । वह साधु-वस्त्रधारण करने लगा ।

शिलालेख:—२५७ ई० पू० तक अशोक ने १४ शिलालेख खुदवाये । उन पर उसने अपने शासन प्रबन्ध तथा जीवन सम्बन्धी विचार अङ्कित कराये जिससे सर्व साधारण उन्हें पढ़कर प्रभावित हो सकें तथा उनसे लाभ उठा सकें । इस प्रकार उसने शासन तथा जीवन दोनो की ही व्यवस्था ठीक की ।

*शासन सम्बन्धी नियम*—दो वर्ष पश्चात् उसने कलिंग तथा अन्य समीपवर्ती प्रान्तो के शासन प्रबन्ध के विषय में दो आज्ञापत्रो की घोषणा की जिससे कि जनता को विदित हो जाये कि उनके तथा उनके शासकों के क्या २ अधिकार थे और अपने अधिकारो की रक्षा कर सकें । २४२ ई० पू० से २४० ई० पू० तक उसने अनेक घोषणा-पत्र प्रकाशित किये जिनमें उसने अपने धार्मिक विचार एव उनके प्रसार के साधनो की घोषणा की । इस प्रकार उसने शासन सम्बन्धी नियमो तथा धार्मिक विचारो को अधिक प्रचलित तथा प्रसारित करने के सुलभ उपाय निकाले । प्रजा को यह मौका न था कि वे अमुक नियम या उपनियम को नही जानते अत क्षम्य थे ।

पाटलीपुत्र का सम्मेलन:—अपने शासन के अन्त काल में उसने पाटिलीपुत्र में एक धार्मिक सम्मेलन किया । सम्मेलन का उद्देश्य बौद्ध धर्म की बुराइयो का सुधार तथा विवादग्रस्त प्रश्नो का निरूपण था । तिसा नामक विद्वान इस सम्मेलन का अध्यक्ष था । सम्मेलन सफल रहा । इससे बौद्ध धर्म को बहुत प्रोत्साहन मिला ।

अशोक का साम्राज्य —अशोक का साम्राज्य उत्तर में हिन्दूकुश तक विस्तृत था । मकरान, बिलोचिस्तान, व अफगानिस्तान इसके साम्राज्य के अङ्ग थे । काश्मीर तथा नेपाल उसके साम्राज्य के भाग थे । पूर्व में आसाम के अतिरिक्त दक्षिण में मैसूर तक समस्त भारतवर्ष उसके साम्राज्य के अन्तर्गत था । यह विशाल साम्राज्य पाँच प्रान्तो में विभक्त था जिसकी राजधानियाँ तक्षशिला, उज्जैन, स्वर्णगढ़ी, तौसकी तथा पाटिलीपुत्र थे ।

अशोक का शासन.—कहने को तो अशोक एक स्वेच्छाचारी शासक था परन्तु वास्तव में अशोक स्वेच्छाचारी सम्राटों से सर्वथा भिन्न था । उसका उद्देश्य अपनी शक्ति का उपभोग, अथवा अपनी व्यक्तिगत आकांक्षाओ की तृप्ति नही था वरन् अन्याय, दुराचार व व्यभिचार को रोकना था । वह अपनी प्रजा को पुत्रवत् समझता था और एक सच्चे पिता की भाँति प्रत्येक क्षण उनके शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास तथा उन्नति के विषय मे सोचने और उन्हें कार्यान्वित करने

में व्यतीत करना चाहता था। उसका शासन पैतृक था। वह कहा करता था कि जनता सम्राट की सन्तान के समान है। जिस प्रकार उसकी इच्छा है कि उसके पुत्र
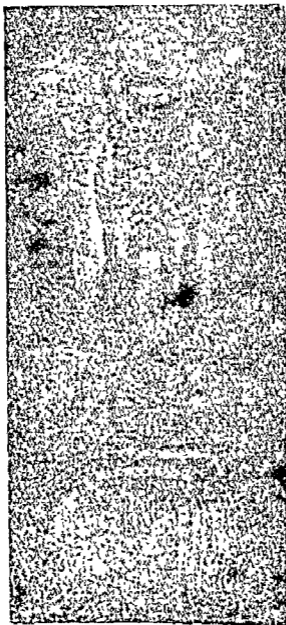
एवं पुत्रियाँ इहलौकिक तथा पारलौकिक सुख-समृद्धि तथा आनन्द प्राप्त करें उसी प्रकार उसकी इच्छा होनी चाहिए कि उसकी समस्त प्रजा इहलोक तथा परलोक में

सुख व शान्ति प्राप्त करे। अशोक का यह पतृक सम्बन्ध उस तक ही सीमित नही था वरन् उसका विचार था कि उसके राजकर्मचारियों के लिए भी यही आवश्यक है कि वह इस धारणा से अपना कर्त्तव्य पूर्ण करें। प्रान्तीय गवर्नरों तथा अन्य उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति वह इसी विचार से करता था। उसका विचार था कि वात्सल्य भावना पदाधिकारियों की अधिकाधिक योग्यता है। यही नही बल्कि वह स्वयं भी अपना कर्तव्य समझता था कि अपने ऊपर नियन्त्रण रखे और कोई भी ऐसा कार्य न करे जिससे उसकी स्वेच्छाचारिता तथा अनधिकार चेष्टा प्रदर्शित हो। वह अपने ऊपर कड़ा नियन्त्रण रख स्वयं को आदर्श, व संयमशील, व्यक्ति बनाने का प्रयत्न करता था जिससे कि 'यथा राजा तथा प्रजा', कहावत के अनुसार अपनी प्रजा को अधिकाधिक गुण सम्पन्न बना सके। अशोक की इस प्रकार की भावनायें तथा उनको क्रियात्मक रूप में परिणत करने का प्रयत्न, उसे 'अशोक महान्' की उपाधि देने व उसे संसार का सर्वश्रेष्ठ सम्राट तथा उसके शासन को सर्वोत्तम कहलाने का अधिकारी बनाते हैं। इस प्रकार का सम्राट आधुनिक व्यवस्थापिक सभाओं की अपेक्षा कही अधिक दूर तक जनता का प्रतिनिधित्व करता है क्योंकि उनमें 'उदारचरितानामतु वसुधैवकुटुम्बकम्' की भावना सर्वथा चरितार्थ होती है।

**अशोक और बौद्ध धर्मः**—जैसा कि प्रारम्भ में वर्णन किया जा चुका है सिंहासनारूढ होने के पश्चात् अशोक ने कलिंग अर्थात वर्तमान मद्रास तथा उड़ीसा प्रान्त पर आक्रमण किया और लाखों प्राणियों की आहुति देकर विजय प्राप्त की। परन्तु घायलो की हृदय विदारक चीत्कार तथा युद्धस्थल के वीभत्स दृश्य देख कर उसका हृदय द्रवित हो उठा। उसने सोचा कि क्या इस प्रकार मनुष्यो की बलि देकर अपनी साम्राज्य लिप्सा की तृप्ति ही सम्राट् का अन्तिम लक्ष्य है? क्या उसका कर्त्तव्य अनेक अबलाओं के सौभाग्य तथा माताओं के आधार छीनने से सम्बन्धित है। उसने मनन किया और इस परिणाम पर पहुँचा कि इस प्रकार की भावना सर्वथा मिथ्या है। इसके विरुद्ध संसार में सुख-शान्ति का साम्राज्य स्थापित कर इहलौकिक तथा पारलौकिक सुख शान्ति की स्थापना उसका मुख्य कर्त्तव्य है। इस प्रकार के विचारों से प्रभावित होकर अशोक ने आजीवन युद्ध न करने की शपथ ले ली। उसने बुद्ध धर्म ग्रहण कर लिया और अपना समस्त जीवन प्रजा का सुख शान्ति एवं समृद्धि में व्यतीत करने का प्रण ले लिया। इस प्रकार का परिवर्तन और उसको कार्यान्वित करने का जीवन पर्यन्त प्रयत्न अशोक की महानता व उच्चता के सूचक हैं।

**धार्मिक घोषणायें:**—कलिंग युद्ध के पश्चात् जैसा कि पहिले कहा गया है अशोक ने युद्ध न करने की शपथ लेली। युद्धस्थल के मारू बाजे का स्थान धार्मिक-

घोषणाओं की डौंडी ने ग्रहण कर लिया। अपने धार्मिक विचार प्रकाशित करना ही अब उसने अपना ध्येय बना लिया जिससे जनता अपने पुराने विचारों को त्याग कर नये धर्म को ग्रहण करले। इस प्रकाशनार्थ उसने बौद्ध धर्म के नियमों को देश के प्रमुख स्थानों की शिलाओं, चट्टानों और लाटों पर अंकित करवा दिया जिससे जन साधारण उन्हे पढ़ें और मनन करें। यही कारण था कि चोल, आन्ध्र इत्यादि राज्य स्वतन्त्र रह गये। इस प्रकार वह अपनी मृत्यु के पश्चात् भी कई शताब्दियों तक इन शिला लेखों द्वारा समस्त भारतवासियों को धर्मोपदेश करता रहा। यह सब उसने प्रजा के हितार्थ और उनके जीवन को पवित्र बनाने के हेतु किया। उसने स्वयं अपने जीवन में विशेष परिवर्तन किया। आखेट, नृत्य आदि मनोविनोद का स्थान तीर्थाटन ने ग्रहण कर लिया। उसने बौद्ध तीर्थ स्थानों जैसे कपिलवस्तु, सारनाथ, सरस्वती, गया, कुशीनगर की यात्रा की और वहां धार्मिक वादविवाद, दान पुण्य, प्रीति भोज, धार्मिक क्रियायें उसके आनन्द व मनोविनोद का साधन हो गईं। राजमहल के लिए पशु वध निषेद कर दिया गया। अशोक का यह महान् त्याग तथा धार्मिक एवं मानसिक कायाकल्प हमारे हृदय में उसके प्रति अपार श्रद्धा उत्पन्न करता है।

जन कल्याण के कार्य:—अशोक ने जन साधारण के लाभार्थ अनेक कार्य किये उसने अनेक प्रकार की औषधियां तथा जड़ी बूटियां प्राप्त करने के हेतु बहुत से औषधियों के पौधे राजकीय उद्यानों में लगवाये। उसने बहुत से औषधालयों की स्थापना की, उनमें योग्य चिकित्सक, दाइयां तथा कम्पाउण्डर नियुक्त कर सर्व प्रकार के उपचार की समुचित व्यवस्था की। पशु पालन तथा पशुचिकित्सा विभाग की स्थापना कर उसने औषधि तथा उपचार मूक जीवों तक पहुँचाया। यात्रियों तथा पशुओं के विश्राम के लिये उसने सड़कों पर छायादार वृक्ष लगवाये और जल इत्यादि की सुविधा के लिये प्रत्येक आध कोस पर कुएँ खुदवाये। संक्षेप में यह है कि अपने साम्राज्य के प्रत्येक प्राणी—मनुष्य, जीवजन्तु को अपनी सन्तान के समान समझ कर यह महान् सम्राट सदैव उनके कष्ट निवारण का प्रयत्न करता रहा।

जनता का धार्मिक तथा आध्यात्मिक विकास—प्रजा के आध्यात्मिक विकास की ओर अशोक ने विशेष ध्यान दिया। इसके लिए उसने एक पृथक् विभाग बनाया जिसके अन्तर्गत विशेष पदाधिकारियों की, जिन्हें धर्म महामात्य कहते थे, नियुक्ति की गई। धर्म प्रचार इनका मुख्य उद्देश्य था। प्रजा को बुराइयों से बचाकर सन्मार्ग की ओर अग्रसर करना इनका कर्त्तव्य था यह उच्च पदाधिकारियों के चरित्र तथा शासक वर्ग की कार्यवाही पर दृष्टि रखते थे जिससे प्रजा की अन्याय से रक्षा की जा सके। उसने अपने उच्च पदाधिकारियों को आज्ञा दी कि वे प्रत्येक पांचवें वर्ष अपने

अपने प्रान्त में भ्रमण कर जनता में धार्मिक जाग्रति उत्पन्न करें—जनता को एकत्रित कर धर्म प्रसार को और भी सुलभ बनाने के विचार से उसने पाटलिपुत्र में एक विशाल सम्मेलन का आयोजन किया जिसमें सब प्रसिद्ध बौद्ध पंडित सम्मिलित हुए जिन्होंने
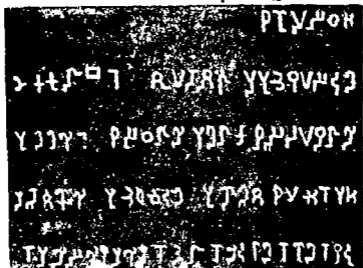
अशोक का लेख
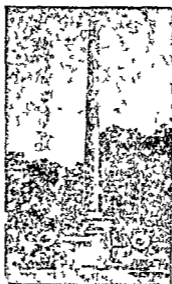
अशोक स्तम्भ ( इलाहाबाद )

अपने वाद-विवाद तथा व्याख्यानो द्वारा बौद्ध धर्म की व्याख्या कर उसे हृदयग्राही बनाया—अशोक का यह प्रयत्न भारतवर्ष तक ही सीमित नही रहा वरन् उसका क्षे विदेशों तक फैल गया। अशोक ने विदेशो में भी बौद्ध धर्म प्रसार करने और संसार के सन्मार्ग पर लाने के हेतु अनेक धर्मदूत विदेशों में भेजे। यहाँ तक कि अपने पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संघमित्रा को भी लंका भेजा। धर्माधिकारी बौद्ध धर्म की शिक्षा के अतिरिक्त जन साधारण तथा पशुओं और जीवजन्तुओं के लिए औषधि इत्यादि का वितरण करते और इसी प्रकार की अन्य सेवायें भी करते थे। ये सब अशोक की महानता प्रगट करते है।

**भवन निर्माण :**—महान् सम्राट् होने के अतिरिक्त अशोक एक महान् निर्माता भी था। उसने बहुत से नगर, स्तूप, विहार तथा लाटें बनवाईं जो धार्मिक शिक्षाओं के साथ २ उस समय के कलाकौशल के सर्वोत्कृष्ट नमूने हैं। काश्मीर में श्रीनगर और नेपाल में देवपाटन अशोक ने ही बसाए। कला विशेषज्ञों ने अशोक के शिला लेखों के भग्नावशेषों को देखकर बताया है कि उन जैसी कला प्राचीन संसार में कम देखने को मिलती है। कला की इस उच्चकोटि का प्रोत्साहन अशोक की महानता का एक और प्रमाण है।

**अशोक के शिला लेख**—अशोककालीन इतिहास का परिचय हमें अधिकतर उसके शिला-लेखो से प्राप्त होता है। ये शिलालेख ६ भागो मे विभक्त किए जा सकते हैं।

(i) **चौदह शिला लेख**—ये सात स्थानो पर पाए जाते हैं।

(a) शहबाजगढ़ी (जिला पेशावर); (b) मसहरा (हजारा जिला); (c) कालसी (जिला देहरादून); (d) गिरिनार (काठियावाड़); (e) सोपरा (बम्बई के उत्तर में); (f) धौली (उड़ीसा जिला पुरी); (g) जौगड़ (जिला गंजम मद्रास)

(ii) **कलिंग सम्बन्धी शिला लेख**—जो उड़ीसा स्थित धौली व मद्रास स्थित जौगड़ में पाए जाते हैं, और जिनमें कलिंगविजय का वर्णन है।

(iii) **दो छोटे शिला लेख**—जो सहसराम (बिहार), रूपनाथ (जबलपुर), बैराट (जयपुर) व मस्की (हैदराबाद दक्षिण), पालकी गुण्ड तथा गविनाथ (हैदराबाद दक्षिण), यर्रागुड्डी (कर्नूल जिला मद्रास), जूटिंग रामेश्वर, सिद्धपुर तथा ब्रह्मगिरि (जिला चितल दुर्ग मैसूर) में पाये गए हैं।

(iv) **सात लाटों पर राजाज्ञा**—यह लाटे सात स्थानों पर थी। (a) शिवालिक पहाड़िया (b) मेरठ, (यह दोनों लाटें फीरोजशाह दिल्ली लिवा लाया) (c)

इलाहाबाद (d) लौरिया अरराज (e) लौरिया नन्दनगढ (f) आरा (g) रामपुरवा (सभी बिहार का चम्पारन जिला)।

(v) छोटी लाटों पर राजाज्ञा—जो पाँच लाटों पर पाई जाती हैं। इनमें साँची, सारनाथ, इलाहाबाद इन तीन पर अशोक के धार्मिक विचार और चौथा रुमइँदेई (जिला बस्ती) पर अशोक की कपिलवस्तु यात्रा तथा पाँचवी नीगलीवा (जिला बस्ती) पर अशोक के स्तूप निर्माण का वर्णन अङ्कित है।

(vi) गुफाओं के शिलालेख—यह बिहार की बराबारा पहाड़ियों में तीन गुफाओं में पाए जाते हैं। इससे पता चलता है कि ये गुफायें अशोक ने आजीवक वर्ग के साधुओं को दे दी थी।

उपरोक्त शिलालेख अशोक की शासन व्यवस्था, उसके धार्मिक विचार, उसकी कलिंग विजय तथा अन्य अन्यें बातो के विषय में पर्याप्त सामग्री प्रदान करते हैं और इन्हीं के कारण अशोक को स्वयं का इतिहासकार भी कहा जाता है।

मौर्य शासन प्रबंध—मेगस्थनीज का वर्णन, कौटिल्य का अर्थ शास्त्र तथा अशोक के शिलालेख प्रमाणित करते हैं कि चन्द्रगुप्त एक उच्च कोटि का प्रबन्धक था। चाणक्य जैसे योग्य प्रधान मन्त्री उसकी शासन व्यवस्था के कर्णधार थे। चन्द्रगुप्त की सरकार अधिक अंशो में केन्द्रीय सरकार थी। अधिकतर शासन व्यवस्था स्वयं राजा के ही हाथों में थी। शासक नहीं था। वह पूर्णतया स्वेच्छाचारी था। इतना होने पर भी वह निरंकुश शासक नहीं था। उसने स्वेच्छा से ही अपने अधिकार सीमाबद्ध रखे। वह जनता के मत का विशेष सम्मान करता था। उसकी सहायता के लिए एक समिति थी जिसके सदस्य 'अमात्य' कहलाते थे। यह समिति राजा को प्रत्येक प्रमुख कार्य में परामर्श देती थी। परन्तु राजा का निर्णय सर्वमान्य होता था। यही समिति राजा की कार्य कारिणी भी थी। प्रत्येक 'अमात्य' एक विभाग का अध्यक्ष होता था जैसा कि आधुनिक युग में भी होता है। मन्त्रियों की नियुक्ति बहुत विचार पूर्वक की जाती थी। नियुक्ति से पूर्व गुप्तरूप से उनके चरित्र आदि का पूर्ण परिचय प्राप्त कर लिया जाता था। वही मनुष्य 'अमात्य' बनाये जाते थे जो वासना के वशीभूत नहीं होते थे तथा कर्त्तव्य परायण होते थे। मन्त्री अपने विभाग की नीति निर्धारित करता था। तत्पश्चात् अपने विभाग के उच्च पदाधिकारियों तथा कर्मचारियों को उसे रचनात्मक रूप देने के लिए छोड देता था। इस व्यवस्था को देखकर आधुनिक विद्यार्थी को अपार विस्मय होता है और वह अनुभव करता है कि वर्तमान काल की शासन प्रणाली सैद्धान्तिक रूप में चन्द्रगुप्त की शासन प्रणाली का ही अनुसरण मात्र है। चन्द्रगुप्त

मौर्य का शासन प्रबन्ध उसके उत्तराधिकारियों को पथ प्रदर्शक का कार्य करता रहा अतः उनके राज्यकाल में भी शासन प्रबन्ध इसी प्रकार चलता रहा।

**मौर्य साम्राज्य के प्रान्त :—** समस्त राज्य प्रान्तों में विभक्त था। प्रान्त का शासक एक वायसराय होता था जो बहुधा राजा का ही वंशज होता था और मंत्रप कहलाता था। यह वायसराय भी केन्द्र की भाँति मन्त्रियों की नियुक्ति करके भिन्न २ विभाग उन्हें सौंप देते थे। शासन की सुगमता के हेतु केन्द्र की भांति प्रान्तीय वायसरायों के आधीन छोटे २ सूबे भी होते थे। इन सूबों के शासक 'राष्ट्रीय' कहलाते थे। वे भी अपने प्रान्त का प्रबन्ध इसी प्रकार सहायक समिति एवं मन्त्रि-मण्डल द्वारा करते थे। न्याय तथा विधान में 'राष्ट्रीय' और मंत्रप' स्वतन्त्र थे। केन्द्रीय शासन गुप्तचरों द्वारा उनके कार्य तथा व्यवहार पर नियन्त्रण रखता था। सूबे बहुत से 'जनपदों' ( जिलों ) में विभक्त थे। उनका शासक 'स्थानीक' कहलाता था। एक जनपद में बहुत से ग्राम होते थे। उस काल में ग्राम ही शासन की एक इकाई थी। ग्राम का प्रबन्ध एक अधिकारी द्वारा होता था जो 'गोप' कहलाता था। उसकी सहायता के लिए ग्राम पंचायत व मुखिया होते थे। ग्राम पचायत के सदस्य प्रायः जनता द्वारा निर्वाचित किये जाते थे। मुखिया या तो राजा द्वारा नियुक्त किया जाता था या ग्राम पंचायत उसे चुनने की अधिकारिणी थी। ग्राम पंचायत क्षेत्र बहुत विस्तृत था। ग्राम सम्बन्धी मामलों का न्याय, सफाई, शिक्षा इत्यादि उनके अधिकार में थे। 'गोप' वर्तमान पटवारी की भाँति भूमि एवं कृषि का लेखा जोखा रखता था। वह राजकर भी एकत्र करता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऊपर से नीचे तक एक समुचित शासन-प्रणाली समस्त साम्राज्य को शासनबद्ध रखती थी।

**मौर्य्य राजा :—** राजा अपने मन्त्रियों द्वारा विभाग से सम्पर्क रखता था। अपने गुप्तचर विभाग द्वारा वह प्रान्तीय शासन एवं जिले के प्रबन्ध का पूर्व परिचय प्राप्त करता था। इस प्रकार वह शासन का सर्वोच्च पदाधिकारी था। उसका दूसरा महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य सैन्य संचालन था। उसकी सहायतार्थ प्रधान सेनापति तथा सेना के प्रत्येक विभाग के अध्यक्ष होते थे। इसके अतिरिक्त राजा का तीसरा कर्त्तव्य 'न्याय' करना था। प्रान्तीय अपीलों का वह स्वयं निर्णय करके प्रान्त को 'मंत्रप' तथा 'राष्ट्रीय' की निरंकुशता से बचाता था। अतः मौर्य राजा सब कुछ प्रजा को सौंप कर भी अपने हाथों से पूर्ण शक्ति रखता था।

**म्यूनिसिपल विभाग :—** मेगस्थनीज द्वारा लिखित पुस्तकों के आधार पर हमें पाटलिपुत्र तथा उसके प्रबन्ध के विषय में सुविस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

यह वर्णन नगरो की म्यूनिसिपल शासन व्यवस्था से परिचय कराता है। मेगस्थनीज लिखता है कि पाटिलीपुत्र राज्य का सबसे समृद्धिशाली नगर था। उसका प्रबन्ध तीस सदस्यो की समिति द्वारा होता था। ये तीस सदस्य ६ कमेटियो में विभक्त थे। प्रत्येक कमेटी के पांच सदस्य थे। प्रत्येक कमेटी अपना पृथक विभाग रखती थी। प्रथम कमेटी कला कौशल एव व्यवसाय की देख रेख करती थी, द्वितीय कमेटी विदेशी लोगो के मामलो की देख रेख करती थी। वह विदेशियो के आमोद प्रमोद, रहन सहन, तथा विश्राम की समुचित व्यवस्था करती थी और यदि कोई विदेशी मर जाता था तो वह कमेटी उसकी अन्त्येष्टि का प्रबन्ध करती तथा उसकी सम्पत्ति उसके सम्बन्धियो तक पहुँचाने की व्यवस्था करती थी। तीसरी कमेटी जन्म मरण का विवरण रखती थी। यह जन्म मरण का विवरण 'कर' लगाने में सुविधा प्रदान करता था। चौथी समिति व्यक्तिगत व्यापार का निरीक्षण करती थी। उपज के विक्रय की व्यवस्था करती थी। वह शिल्प सामग्री पर कर लगाती तथा तोलने के बाट व नापने के साधनो की देख भाल करती थी। पाँचवी कमेटी शिल्प सामग्री तथा अन्य व्यवसायिक वस्तुओ पर दृष्टि रखती थी। उन्हें धोखेबाजी और दूषण से सुरक्षित रखने का प्रयत्न करती थी। छटी समिति प्रत्येक सामान पर जो नगरो में बेचा जाता था, कर लेती थी। मुख्य समस्यायें हल करने के लिए इन सब की सम्मिलित बैठक होती थी जिसमें सडकें, इमारतें, बाजार, बन्दरगाह तथा मन्दिरो इत्यादि की स्वच्छता पर विचार विनिमय किया जाता था।

**पाटिलीपुत्र का प्रबन्धः**—प्रबन्ध की सुविधा के लिए पाटिलीपुत्र चार भागो में विभक्त था। प्रत्येक भाग या वार्ड एक 'स्थानीक' के आधीन था। उसकी सहायता के लिए 'गोप' होते थे। प्रत्येक गोप को १० से लेकर ४० तक परिवार सौंपे जाते थे। गोप का उनसे वही सम्बन्ध था जो अन्य गोप का एक ग्राम से। समस्त नगर एक पदाधिकारी के सुपुर्द था जिसको नगर का सत्रप कहते थे।

**सिंचाई तथा कृषि विभागः**—मौर्य सम्राट सिंचाई तथा कृषि दोनो ही विभागो पर विशेष ध्यान देते थे। यह विभाग नहर, कुएँ तथा तालाब इत्यादि बनाकर सिंचाई की समुचित व्यवस्था करता था, भूमि की नाप तोल एव सिंचाई का कर लगाना भी इसी विभाग के अन्तर्गत था। भूमिकर लगाना तथा उसको वसूल करना भी इसी विभाग का कार्य था। यह कर साधारण पैदावार का चतुर्थ अंश होता था।

**राजकीय आय के साधनः**—राज कोष का विशेष अंग भूमि कर था जो पैदावार का चौथाई होता था। परन्तु सरकार इसके अतिरिक्त और भी बहुत से

कर लेती थी; व्यापारिक सामान, मादक द्रव्य और द्यूतगृह से भी राज कर इकट्ठा किया जाता था। खानों के लाभ का विशिष्ट अंग राजकोष में पहुँचता था। इनके अतिरिक्त और भी कई साधारण कर थे।

गुप्तचर विभाग:—चन्द्रगुप्त एक उत्कृष्ट गुप्तचर विभाग रखता था जिसके द्वारा वह राज्य के समस्त कार्यों की पूरी २ सूचना प्राप्त करता रहता था। सेना विभाग के बाद सबसे मुख्य विभाग यही समझा जाता था। एक स्थान से दूसरे स्थान तक संवाद पहुँचाने के लिए कबूतर पाले जाते थे। इसी विभाग की सहायता से वह प्रान्तीय शासकों के कार्यों की सूचना प्राप्त करता तथा उन्हें स्वेच्छाचारी बनने से रोकता था।

न्याय तथा कानून:—न्याय की समुचित व्यवस्था करने के लिए राज्य में न्यायालयों की स्थापना की गई थी। न्यायालय तीन प्रकार के थे। (i) स्थानीय न्यायालय (ii) नगर न्यायालय (iii) केन्द्रीय न्यायालय (i) स्थानीय न्यायालय ग्राम या कस्बों में होते थे। ये अभियुक्तों के सम्बन्धियों के न्यायालय थे। इनमें अभियुक्त से सम्बन्ध रखने वाले लोग अभियोग की जाँच करते थे। इनमें गृह सम्बन्धी अभियोगों का निपटारा होता था। दूसरा न्यायालय, व्यवसाय सम्बन्धी अभियोगों की सुनाई करता था। तीसरा न्यायालय समस्त ग्राम से सम्बन्ध रखने वाले अभियोगों की जाँच के लिए था।

(ii) नगर न्यायालय:—ये बड़े २ नगरों में स्थित थे। इनमें राजकीय पदाधिकारी उपयुक्त न्यायाधीशों द्वारा मामलों की जाँच करते थे। ये न्यायालय माल एवं फौजदारी दोनों प्रकार के अभियोग सुनते थे।

(iii) केन्द्रीय न्यायालय:—यह राजधानी में स्थित न्यायालय था इसमें राजा, या प्रमुख न्यायाधीश बैठता था। उसकी सहायता के लिए चार या पाँच अन्य न्यायाधीश होते थे। सब प्रकार के अभियोगों का यह अन्तिम न्यायालय था।

फौजदारी कानून बहुत कठोर था। चोरी इत्यादि साधारण अभियोगों पर भी कड़ा दण्ड दिया जाता था। दण्ड देते समय अभियुक्त के पद तथा जाति का भी ध्यान रक्खा जाता था। इस कठोरता का परिणाम यह निकला कि प्रजा में आतंक छा गया और लोग बहुत ईमानदार हो गये। यातायात के मार्ग बिल्कुल सुरक्षित हो गये।

सेना:—अच्छा सैनिक प्रबन्ध एक राज्य का जीवन है। मौर्यवंशीय राजा इस बात से परिचित थे, अतः वे सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित एक विशाल

स्थायी सेना रखते थे। सेना के चार भाग थे। घुड़सवार, पैदल, रथ और हाथी। सेना का प्रबन्ध युद्ध विभाग द्वारा होता था। यह विभाग छ समितियों में विभक्त था। प्रत्येक समिति में पाँच सदस्य थे। प्रथम समिति जल तथा स्थल सेना में सम्पर्क स्थापित रखती थी। द्वितीय यातायात का प्रबन्ध करती थी। तीसरी पैदल सेना तथा अस्त्र शस्त्र का प्रबन्ध करती थी। तीर कमान का प्रयोग था। कमान ५ या ६ फीट लम्बी होती थी, नोंक पर तीर लगे हुये होते थे। इनके अतिरिक्त अन्य शस्त्र तलवार तथा ढाल भी थे। चौथी कमेटी अश्व सेना और उसके शस्त्रों का प्रबन्ध करती थी। पाँचवी समिति रथो तथा छठी हाथियो का प्रबन्ध करती थी। घोड़े तथा हाथियों के लिए अस्तवल तथा अस्त्र शस्त्र के लिए शस्त्रागार होते थे। सैनिक अपने घोड़े तथा हाथी अस्तवला में छोड देते थे, जहाँ उनकी उचित देख-रेख होती थी। शस्त्र शस्त्रागार में एकत्रित रहते थे।

**औषधियाँ तथा उपचार**—चन्द्रगुप्त की सेना की एक विशेषता उसकी औषधि तथा उपचार विभाग था। इसमें प्रसिद्ध वैद्य, कम्पाउन्डर तथा नर्स होती थी। यह विभाग युद्ध स्थल में भी सना के साथ २ रहा करता था। चन्द्रगुप्त की सैनिक सफलता उसके सैनिक प्रबन्ध का उत्कृष्ट प्रमाण है।

चन्द्रगुप्त के नागरिक एव सैनिक प्रबध का अध्ययन करने से हमे पता चलता है कि उसका प्रबध कितना अच्छा था। प्रत्येक विभाग अपना कर्त्तव्य पालन करता था। प्रत्येक विभाग के क्षेत्र पृथक् २ थे। केन्द्रीय प्रान्तीय और स्थानीय शासन बहुत सगठित था। उसका गुप्तचर विभाग तथा सैनिक प्रबन्ध उच्चकोटि का था। उसकी शासन व्यवस्था का अध्ययन करने पर हमे बडा आश्चर्य होता है। कि इतने प्राचीन काल मे भी इस प्रकार की शासन व्यवस्था विद्यमान थी। 'स्मिथ' के कथनानुसार मौर्य शासन प्रबन्ध अकबर महान के शासन प्रबन्ध से कही श्रेष्ठतर था।

**मौर्य कला**—मौर्यकाल का जो महत्व धर्म और शासन के क्षेत्र में हैं वह ही कला के क्षेत्र मे भी है—ब्राह्मणो और वीर काव्यो से पता चलता है कि ईसवी सन् के कई शताब्दी पहिले देश में कलाओ की बडी उन्नति हो गई थी—गौतम बुद्ध के समय के सारनाथ अवशेष जो बनारस के पास निकले हैं सूचित करते हैं कि उस समय स्तम्भ धर्म-भवन, रहने के मकान, साधारण प्रयोग के वर्तन इत्यादि बहुत अच्छे बनाये जाते थे—मौर्य सम्राट अशोक के समय के, बहुत से चिन्ह जो इस समय प्राप्त होते हैं उस समय की कला का अच्छा परिचय देत हैं बुद्ध के असली या नकली अवशेष रखकर बुद्ध के जीवन की या इतिहास की घटनाओ का स्मरण कराने के लिए बहुत तरह के स्तूप बनाये

जाते थे—कोई २ एक हाथ से कम ऊँचे थे—कोई २ तीस चालीस गज ऊँचे थे—मौर्य्य काल के स्तूपों में सब जगह मूर्तियाँ ही मूर्तियाँ दृष्टिगत होने लगी—वर्तमान भूपाल राज्य में साँची का स्तूप अशोक ने बनवाया था पर अशोक के बाद भी उस पर बहुत काम किया गया है—इस समय साँची के स्तूपों की ज़मीन चारों ओर पत्थर की रेलो से घिरी हुई है जिनके चारों ओर परिक्रमा की जाती थी—आने जाने के लिए चार दिशाओं में चार रास्ते हैं जिनके दरवाजों पर भीतर और बाहर बुद्ध के जीवन और बौद्ध साहित्य के दृश्य पत्थर की नक्काशी में ऐसे बनाये हैं कि मानो पत्थर ही साहित्य का सर्वोत्तम साधन है—

अशोक के स्तम्भ:—अशोक के स्तम्भ जिन पर शिलालेख खुदे हुए हैं भारतीय कला के सर्वोत्तम दृष्टान्त हैं—इनके बनाने, उठाने और खड़ा करने वाले पत्थर के काम में या इंजिनियरी में किसी समय या किसी देश के लोगो से कम न थे—चिकने रेतीले पत्थर का लौरियानन्दन गढ स्तम्भ ३२ फीट ६ इंच ऊँचा है—गोलाई में नीचे ३५ फुट ६ इं० और ऊपर २२ फुट ६ इं० है जिससे दृश्य बहुत सुन्दर हो गया है—स्तम्भों की चोटी पर हाथी-शेर इत्यादि की मूर्तियाँ हैं जिनका जीवन सादृश्य उतना ही आश्चर्य जनक है जितना कि निर्माण का आदर्श और चातुर्य्य।

सारनाथ का स्तम्भ जिसका पता १६०५ ई० में लगा था उस स्थान का स्मारक है जहाँ बुद्ध ने पहिला उपदेश देकर धर्म चक्र चलाया था सारनाथ स्तम्भ की चोटी का दृश्य जो अब डाक के टिकटों पर देखने को मिलता है कितना आकर्षक है—चारों ओर, हाथी, बैल, घोड़े ऐसी कुशलता से बने हैं कि संसार में कहीं नहीं मिलते—

गुफा:—पुराने समय में यहाँ भिक्षुओं और सन्यासियों एवं मन्दिरों के लिए पहाड़ियों की बड़ी चट्टानें खोखली करके भवन बनाने की, दीवारों और छत पर मूर्तियाँ छाँट देने की चाल बहुत थी। इस कला में हिन्दुओं के बराबर निपुणता किसी ने नहीं दिखाई—गया से १६ मील उत्तर बाराबरा नामक पहाड़ियों में अशोक ने एक गुफा जिसका पहिले उल्लेख किया गया है आजीवक साधुओं के लिए बनवाई। यद्यपि उसमे चित्र इत्यादि नहीं हैं तब: भी उसके विशाल कमरे विस्मय उत्पन्न करते हैं।

अशोक के पोते दशरथ ने इसी तरह कई गुफायें बनवाई—मौर्य्य सम्राटों के बाद इस कला में यह विकास हुआ कि गुफाओं के अन्दर मूर्तियाँ और चित्र बहुत बनने लगे और मूर्ति तथा चित्रकला पराकाष्ठा को पहुँच गई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कला की ओर मौर्य्य काल में महत्वपूर्ण प्रगति हुई।

## मौर्य्य साम्राज्य के पतन के कारण

मौर्य्य साम्राज्य का विस्तार कलिंग विजय के पश्चात हिन्दुकुश पर्वत से सुदूर दक्षिण में तामिल देश तक पहुँच गया था। इतना बडा साम्राज्य ऐसे समय में जब यातायात के साधन इतने सुलभ नहीं थे एक सूत्र में अधिक समय तक सकलित नही रह सकता था। इस प्रकार यह युग एक विशाल साम्राज्य की आज्ञा न देता था। अशोक समय के इस वास्तविक स्वरूप को न देख सका इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसमें अपनी प्रजा के लिए वात्सल्य प्रेम कूट २ कर भरा था और वह उसके कष्ट निवारण के लिए प्रत्येक क्षण तैयार रहता था, परन्तु समय को देखते हुए उसका निरीक्षण प्रेम प्रदर्शन व वात्सल्य भावना एव सीमित

...र्ती भागो में सम्राट के कार्य और ... जाती थी। वहाँ की प्रजा सम्राट का ...रियो की निरकुशता का ही शिकार हो ...क्ति और प्रेम थोडे बहुत समय के ...दूरी का अनुचित लाभ उठा कर ...मिलता अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित ...ने कारण भारतवर्ष पर विजय प्राप्त ...को अपने साम्राज्य में सम्मिलित न ...के सीमावर्ती भागो में अधिक छिन्नता ...धन हुआ साम्राज्य में छिन्न भिन्न होन ...मय की प्रतिकूलता मौर्य साम्राज्य के

... का अनुयायी हो गया था। धर्म ...रूर साम्राज्य विस्तार और ...गाम यह हुआ कि मौर्य सेना ... अपना उच्चता ... साहस न रहा जिससे विश्व विजयी सिकन्दर तथा उसका महान् सेनापति ... थर्रा उठे थे क्योंकि इतना बडा साम्राज्य सैन्य बल से सुरक्षित रह सकता था। इसलिए सेना की क्षीणता उसके पतन का दूसरा कारण हुई।

अशोक ने स्थानीय वाइसरायों और राजाओं को स्वतंत्र अधिकार दे दिये थे। अब उन पर चन्द्रगुप्त मौर्य की भाँति गुप्तचर विभाग का नियन्त्रण न रहा था जिसका परिणाम यह हुआ कि वह अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने के लिए लालायित हो उठे और उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। अशोक की यह नीति मौर्य साम्राज्य के पतन का तीसरा कारण हुई।

मौर्य साम्राज्य के पतन का चौथा कारण यह था कि साम्राज्य के कुछ भाग पूर्णतया पराजित न किये जा सके। इसलिए उन पर नाम मात्र का ही आधिपत्य था। कलिंग और आंध्र जैसे विशाल साम्राज्य इसी प्रकार के भागों में से थे। अशोक की मृत्यु के पश्चात् ज्योंही उन्हें अवसर मिला त्योंही उन्होंने अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर साम्राज्य के दूसरे भागो को अपना अनुकरण करने के लिए प्रोत्साहित किया। इन भागो का पूर्णतया पराजित न करना मौर्य साम्राज्य के पतन का चौथा कारण हुआ।

अशोक की धार्मिक नीति मौर्य साम्राज्य के पतन का कारण हुई। यद्यपि इस नीति के अनुसार अशोक प्रजा में सुख शान्ति स्थापित करना चाहता था, परन्तु ब्राह्मण जाति ने इसमें अपनी प्रभुता और ऐश्वर्य का विनाश अनुभव किया इसलिए उन्होंने साम्राज्य की समालोचना प्रारम्भ कर प्रजा को इसके विरुद्ध भड़काया।

अशोक के पश्चात उसके उत्तराधिकारियों में कोई प्रभावशाली सम्राट न हुआ जो स्थिति को समझ साम्राज्य के विनाश को रोक सकता। उसकी शक्ति क्षीण होती गई और यूची तथा कुशान जातियों के आक्रमण ने उसे सर्वथा नष्ट भ्रष्ट कर दिया।

## प्रश्न

१—मौर्य वंश के विषय में जानकारी प्राप्त करने के क्या साधन है ?

२—चन्द्रगुप्त मौर्य कौन था उसने किस प्रकार राज्य प्राप्त किया ?

३—चन्द्रगुप्त मौर्य और सिल्युकस में क्यो युद्ध हुआ ? इस युद्ध का क्या परिणाम हुआ ?

४—चन्द्रगुप्त मौर्य के व्यक्तित्व पर एक टिप्पणी लिखो ?

५—मैगस्थनीज और कौटिल्य कौन थे वे किस प्रकार मौर्य वंश से सबंधित हैं ?

६—अशोक ने बौद्ध धर्म किस प्रकार ग्रहण किया और उसने इस धर्म को भारत तथा विदेश में फैलाने का क्या प्रयत्न किया ?

७—सिद्ध करो कि अशोक भारत का ही नहीं वरन् विश्व का सम्राट था ?

— [illegible] घ के विषय में तुम क्या जानते हो ?

९—अशोक के शिलालेखों, स्तम्भों आदि का विवरण देते हुये समझाओ कि अशोक स्वय अपना इतिहासकार था ?

१०—मौर्य काल में कला की क्या प्रगति हुई ?

११—मौय साम्राज्य के पतन के क्या कारण थे ?

---

## अध्याय १० ( अ )

# शुङ्ग तथा कण्व

स्थापना . —मौर्य वश का अतिम सम्राट राजा व्रहद्रथ था। वह अत्यन्त निर्बल, एव निस्साहसी था। पुष्यमित्र उसका सेनाध्यक्ष था। यह सेनापति बडा वीर साहसी एव कार्य कुशल था। उसने उस परिस्थिति तथा राजा की अयोग्यता से लाभ उठाकर एक षडयन्त्र रच दिया, और १८५ ई० पू० में ब्रहद्रथ का वध कराकर स्वय मौय साम्राज्य का स्वामी हो गया। मौर्य साम्राज्य की सीमायें उस समय इतनी विस्तृत न थी जितनी कि सम्राट अशोक के शासन काल में थी। किन्तु फिर भी बिहार, तिरहुत, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रात उसमें सम्मिलित थे। इन सब प्रदेशों पर अपना अधिकार कर पुष्यमित्र ने शुङ्ग वश की स्थापना की।

शुङ्ग वश की विवेचना —कुछ विद्वानो का मत है कि इस वश के संस्थापक एव उत्तराधिकारियो के नामो से विदित होता है कि शुङ्ग वशीय नृप पारसी थे। क्योकि उनके नामो के अन्त में मित्र शब्द आता है। मित्र शब्द का अर्थ सूर्योपासक से है। किन्तु सूर्योपासना हिन्दु धर्म विरोधी नही, अतः ये पुष्यमित्र आदि सूर्योपासक मान भी लिए जावें तो उनके हिन्दुत्व पर कोई लाञ्छन नही। सूर्योपासक हिन्दू अब भी भारतवर्ष में विद्यमान हैं। प्राचीन काल में राजपूताना तथा सौराष्ट्र में जैसा कि अन्तिम नाम (सौराष्ट्र) प्रकट करता है सूर्योपासना का अधिक जोर था।

पुष्यमित्र का शासन काल —पुष्यमित्र के शासन काल में दो प्रमुख घटनायें घटित हुई। एक तो मिनेन्डर ( मिलिन्द ) का आक्रमण तथा दूसरा कलिग देश के राजा 'खारवेल' का मगध पर आक्रमण।

मिनेन्डर का आक्रमण —जैसा कि पहिले उल्लेख किया जा चुका है पजाब अन्तिम मौय सम्राटो के शक्तिहीन हाथों से निकल चुका था। उस पर यूनानी लोगो का पुनः अधिकार हो गया था। पुष्यमित्र ने जब शुङ्ग साम्राज्य की स्थापना

की तब पंजाब तथा काबुल पर मिनेन्डर नामक एक यूनानी राज्य करता था। उसने अपनी शक्ति बढाली थी। पुष्यमित्र के शासन काल के अन्तिम भाग में एक विशाल सेना लेकर वह मगध की ओर बढा। कुछ ऐतिहासकारों का मत है कि वह मिनेन्डर न था बल्कि बैक्ट्रिया का राजा डैमिट्रियस था। किन्तु पर्याप्त पुष्टि के अभाव में उसे किम्यन्नी के अनुसार मिनेन्डर मानना ही न्यायसंगत है। सिन्धु प्रदेश, सौराष्ट्र तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश पर उसने अधिकार कर लिया, मथुरा भी उसके हाथ में आ गया। तत्पश्चात् 'मध्यामका' नामक नगर पर जो कि वर्तमान चित्तौड़ के समीप था उसने आधिपत्य स्थापित कर लिया। इसके अनन्तर वह अवध के 'साकेत' नगर पर विजय प्राप्त कर पाटिलीपुत्र की ओर अग्रसर हुआ। यहाँ उसे पुष्यमित्र से टक्कर लेनी पड़ी। पुष्यमित्र से टक्कर लेना लोहे के चने चबाना था। युद्ध में विजय श्री पुष्यमित्र की ओर रही मिनेन्डर परास्त हुआ और अपने राज्य की ओर जान बचा कर भागा। इस प्रकार सिकन्दर के पश्चात् भारत भूमि पर यूनानी राज्य स्थापना का एक सबल प्रयत्न सर्वथा निष्फल एवं निर्मूल सिद्ध हुआ। वृद्ध पुष्य मित्र ने सिद्ध कर दिया कि भारत तब सैन्य सबलता से विदेशी शक्तियों के दाँत खट्टे कर सकता था।

खारवेल का आक्रमण :—इसी समय कलिंग देश के राजा खारवेल ने मगध पर आक्रमण किया। खारवेल जैन धर्म का अनुयायी था। उसने यह समझकर कि पुष्यमित्र यूनानियों से युद्ध करके निर्बल एवं क्षीण हैं आक्रमण किया। किन्तु उसकी आशायें निराशाओं में परिणित हुई। उसको भी अपने मुंह की खानी पड़ी। वह परास्त हुआ, तथा युद्ध से पराङमुख हो कर भाग गया।

पुष्यमित्र का अश्वमेध आयोजन :—जब पुष्यमित्र यूनानियों से युद्ध करने में व्यस्त था, तब उसका उत्तराधिकारी अग्निमित्र जो 'विदिशा' ( वर्तमान भिलसा ) का वाइसराय था, दक्षिणी राजाओं से युद्ध करने में संलग्न था। इधर पुष्यमित्र ने यूनानियों को परास्त कर विजय भेरी निनादित की उधर अग्निमित्र ने विदर्भ के राजा को परास्त कर शुङ्ग वंश की ख्याति एव साम्राज्य को दिशाओं में गुजांयमान किया। इसी समय सिन्धु नदी के किनारे भी यवनों को परास्त किया गया। इस प्रकार समस्त उत्तरी भारत पर शुङ्ग का अधिकार हो गया। फल स्वरूप पुष्यमित्र ने अश्वमेध यज्ञ कर अपने आपको उत्तरी भारत का एकमात्र सम्राट घोषित कर दिया।

पुष्यमित्र का धर्म :—बौद्ध धर्म ग्रन्थों से विदित होता है कि पुष्यमित्र बौद्ध धर्म का कट्टर विरोधी था। जालन्धर से लेकर बिहार तक बहुत से मठों को उसने नष्टभ्रष्ट कर दिया। अनेकों भिक्षु-भिक्षुकाओं को उसने तलवार के घाट उतारा।

उसकी क्रूरता से त्राहि २ कर बहुत से बौद्धो ने अन्य राज्यो में शरण ली। वह जैन धर्म से भी उतनी ही घृणा करता था जितनी कि बौद्ध धर्म से। वह कट्टर हिन्दू था और वेद-निर्मित मार्ग का अनुयायी था।

पुष्यमित्र के उत्तराधिकारी :—पुष्यमित्र की मृत्यु १४६ ई० पू० में हुई। उसके बाद उसका पुत्र अग्निमित्र सिंहासनारूढ़ हुआ। वह भी अपने पिता की भाँति एक साहसी योद्धा था। किन्तु उसके पीछे वाले आठ उत्तराधिकारी अयोग्य सिद्ध हुये। वे अपने ब्राह्मण मन्त्रियो के हाथो की कठपुतली बन रहे। फल यह हुआ कि ७२ ई० पू० में शुङ्ग के अन्तिम राजा देवभूति का उसके ब्राह्मण मन्त्री ने वध कर दिया और स्वयं राजा बन बैठा। देवभूति निकम्मा एव दुश्चरित्र व्यक्ति था।

कण्व वंश :—उक्त ब्राह्मण मन्त्री ने देवभूति का वध कर कण्व वश की स्थापना की। यह वश २६ ई० पू० तक चलता रहा परन्तु इसका राज्य न अधिक समय तक ही रहा और न इसमें कोई विशेष उल्लेखनीय घटना घटित हुई।

शुङ्ग साम्राज्य :—शुङ्ग साम्राज्य अपने उत्कर्ष काल में समस्त उत्तरी-भारत में विस्तृत था—उत्तर पश्चिम में सिन्धु नदी इसकी प्राकृतिक सीमा थी। दक्षिण में नर्वदा नदी अपनी लहरो से इस राज्य की कीर्ति कलाप रही थी, और पूर्व में बग देश उसकी सीमा में सम्मिलित था। इस प्रकार हम देखते हैं कि शुङ्ग साम्राज्य एक बलिष्ठ साम्राज्य था।

---

## अध्याय १० ( आ )

# शातवाहन वंश

परिचय :—भारतीय ग्रन्थो से पता चलता है कि आंध्र वश बहुत प्राचीन था। इस वश के वशज ईसा से ८०० वर्ष पूर्व भी कृष्णा नदी के डेल्टे में आबाद थे। ऐसा प्रतीत होता है यह वश आर्य तथा द्राविड रक्त का सम्मिश्रण था। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में आंध्रवश बहुत शक्तिशाली था। उसकी राजधानी कृष्णा नदी के तट पर स्थित श्री काकुलम थी। ये पहिले स्वतन्त्र थे परन्तु चन्द्रगुप्त मौर्य एवं बिन्दुसार ने इन्हें मौर्य आधिपत्य स्वीकार करने को बाध्य कर दिया। मौर्य साम्राज्य की बलवती सेनायें उन्हें केवल नाम मात्र को ही आधिपत्य में ला सकीं, अपने

आन्तरिक मामलों में वह सदैव स्वतन्त्र ही रहे। अशोक की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने अपनें आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया, और अपनी शातवाहन नामक शाखा के योग्य नेता सिमुक के नेतृत्व में अपना राज्य बढाना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार शातवाहन वंश का अभ्युदय हुआ।

शातवाहन वंश के उत्तराधिकारी :—इसके उत्तराधिकारी कृष्ण ने आगे साम्राज्य को बड़ी शीघ्रता से बढ़ाना आरम्भ किया और पश्चिमी घाट में नासिक नगर तक उसका साम्राज्य विस्तरित कर दिया।

श्री सतकरणी इस वंश का तृतीय राजा था। उसने शातवाहन साम्राज्य में और भी अधिक वृद्धि की। उसने समस्त बरार, मध्य, प्रान्त तथा वर्तमान हैदराबाद रियासत अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिये। उसने कई अश्वमेध यज्ञ भी किये। तत्कालीन शुङ्ग वंशीय राजाओं से उसने अधिकृत विदर्भ राज्य में कई घोर संग्राम किये। उनके सिक्के तथा शिला लेख प्रकट करते हैं कि ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के मध्य विदिशा (वर्तमान भिलसा) तथा उज्जैन उनके अधिकार में आ चुके थे पुराणों से विदित होता है कि ईसा से पूर्व प्रथम शताब्दी के अन्त काल में शातवाहन वंशीय राजा ने मगध के कण्व वंशीय राजा को परास्त किया और मगध पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया तत्पश्चात उसने सम्राट की उपाधि ग्रहण की।

शातवाहन साम्राज्यः—इस प्रकार एक विशाल साम्राज्य, जिसमें समस्त दक्षिणी भारत, मध्यभारत, मालवा और मगध सम्मिलित थे, स्थापित हुआ। प्रात स्थान (पायन) उनकी पश्चिमी राजधानी तथा बैजवाड़ा के निकट धानग कटक उनकी पूर्वी राजधानी थी।

राजा हाल :—शातवाहन वंश में उपर्युक्त राजाओं के अतिरिक्त और भी कई राजा प्रसिद्ध प्राप्त हुए हैं। इनमें सतरहवा राजा हाल बहुत प्रसिद्ध है। वह प्राकृत-साहित्य का विशेष प्रेमी था। वह स्वय भी एक अच्छा कवि था। वह 'सप्तशतक' नामक प्रसिद्ध पुस्तक का रचयिता भी है। इसके पश्चात् कई पीढ़ियो तक कोई कुशल एवं योग्य राजा गद्दी पर नही बठा।

शातकर्णि १०६ ई० से १३५ ई० तकः—शातवाहन वंश का तेइसवाँ राजा गौतमी पुत्र शतकर्णि विशेष प्रसिद्ध है। यह १०६ ई० में सिंहासनारूढ हुआ। गद्दी पर बैठते ही इसने अनुभव किया कि राज्य पुष्पशय्या नही है। उससे पहिले राजाओं के समय शक दक्षिण में प्रवेश कर चुके थे। उन्होंने उसके पूर्वजो से प्रथम शताब्दी के अन्त काल तक मालवा तथा काठियावाड़ पर अधिकार कर लिया था।

दक्षिण के उत्तरी पश्चिमी भाग पर अधिकार कर नासिक नगर पर भी उन्होंने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। सम्भव था कि कुछ कालोपरान्त वे शातवाहन
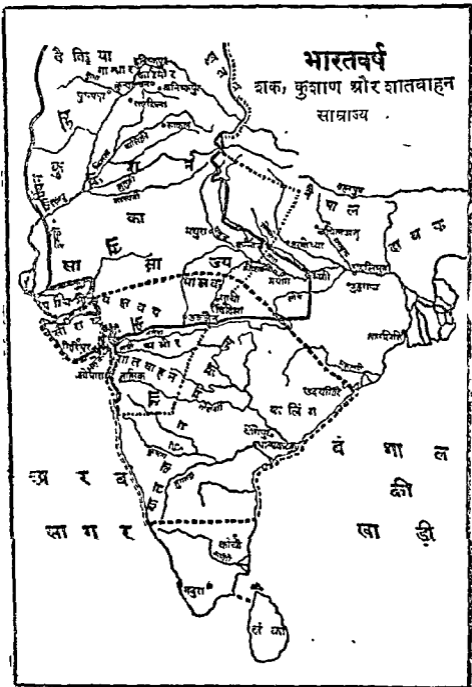
साम्राज्य को समूल नष्ट कर देते और उसके उन्मूलन में सफल हो जाते। परन्तु गौतमी पुत्र शातकर्णि ने सिंहासनारूढ़ होकर शातवाहन साम्राज्य की रक्षा की। उसने केवल उन्हें परास्त ही नहीं किया वरन् उसने समस्त गुजरात, और राजपूताने का अधिकांश भाग उसने छीन लिया। इस प्रकार डूबते हुए शातवाहन साम्राज्य को शातकर्णि ने बचा लिया था, शातवाहन वंश के मान मर्य्यादा की रक्षा की। उसने ब्राह्मण और बौद्धों के प्रति उदारता का बर्ताव किया और उन्हें अपार आर्थिक सहायता प्रदान कर अपनी दान शीलता का परिचय दिया। पच्चीस वर्ष राज्य करने के पश्चात् सन् १३५ ई० में उसका देहान्त हुआ। उसके बाद उसका पुत्र पुलुमावी गद्दी पर बैठा।

पुलुमावी :—पुलुमावी का समस्त जीवन मालवा तथा काठियावाड़ के शक सरदार रुद्रदामन प्रथम से युद्ध करने में व्यस्त रहा। आन्ध्र राज्य पुनः दक्षिण तक ही सीमित कर दिया गया। समस्त मालवा, गुजरात, और राजपूताना फिर शकों के आधीन हो गया। कुछ कालोपरान्त दोनों वंशों के सम्बन्ध अच्छे हो गये। रुद्रदामन ने अपनी लड़की का विवाह पुलुमावी के साथ कर दिया। परन्तु वैवाहिक सम्बन्ध के कुछ कालान्तर ही पुनः संघर्ष जाग्रत हो उठा। परन्तु इस सम्बन्ध का प्रभाव अवश्य पड़ा इसके कारण रुद्रदामन साम्राज्य को पूर्णतया समाप्त करने की इच्छा न की।

शातवाहन शासन काल पर दृष्टिपात:—पुलुमावी शातवाहन वंश का अन्तिम प्रमुख राजा था। राजा तो इसके बाद भी कई हुए किन्तु इसकी मृत्यु के पश्चात यह वंश निरंतर कमजोर होता चला गया और २२५ ई० में सर्वथा नष्ट हो गया। इस वंश में तीस राजा हुये और ४५० वर्ष तक इसका राज्य रहा। इसकी समाप्ति पर अन्य राजाओं ने शातवाहन साम्राज्य को भिन्न २ भागो में विभक्त कर लिया। इसका उत्तरी पश्चिमी भाग मालवा तथा काठियावाड़ में सम्मिलित हो कर शक जाति के अधिकार में चला गया। पूर्वी भाग मे इक्ष्वाकु वंश ने अपना राज्य स्थापित कर लिया। पश्चिमी व दक्षिणी भाग पर कदम्ब और आभीर आधिपत्य स्थापित हो गया। सुदूर दक्षिण में चोल, चेर, व पाँड्या राज्य जो पहिले आंध्र वंश के आधीन थे स्वतन्त्र हो गये

शातवाहन काल भारत का समृद्धि काल था। उनके समय में भारतवर्ष जल एवं स्थल से पश्चिमी एशिया, यूनान, रोम व मिश्र, चीन तथा अन्य पूर्वी देशों से व्यापारिक सम्बन्ध रखता था। शातवाहन साम्राज्य के राजदूत रोम आदि देशों में रहते थे। अतः हम देखते हैं कि शातवाहन वंश संसार के सभी देशों में अपना उच्च स्थान रखता था। शातवाहन हिन्दू धर्म के अनुयायी थे। अत : उत्तरी भारत तथा

मध्य भारत से उनका सम्पर्क हिन्दू धर्म की स्थापना में विशेष सहायक हुआ। अशोक के परिपुष्ट किये हुए बौद्ध धर्म पर शुङ्ग तथा कण्डव वंश ने वज्र प्रहार किया था। शातवहन वंश ने इसे और भी आघात पहुँचाया इस तरह वैदिक धर्म फिर पनपना शुरू हो गया।

शातवाहन वंश के पतन के कारण का ठीक २ ज्ञान नहीं। परन्तु ऐसा प्रकट होता है कि उसमें वाइसरायों का विश्वासघात और उनकी स्वतन्त्र राज्य स्थापना इस वंश के पतन का मूल कारण हुए। शकों के आक्रमण से भी इस वंश को बड़ी क्षति पहुँची।

---

## अध्याय १० (इ)

# भारत के यूनानी राज्य

**उत्तरापथ के यूनानी राज्य :**—मौर्य्य साम्राज्य के छिन्न भिन्न होने पर मगध में शुङ्ग वंश ने, दक्षिण में शातवाहन वंश ने अपने राज्य स्थापित कर लिये और उत्तरापथ में यूनानियों ने अपने राज्य कायम कर लिये। ईसा पूर्व २५० के लगभग सेल्यूकस द्वारा स्थापित यूनानी साम्राज्य के दो प्रमुख भाग वैक्ट्रिया तथा पार्थिया स्वतन्त्र हो गये। पार्थिया में वहीं का निवासी एरेक्स अपना साम्राज्य स्थापित करने में समर्थ हुआ। वैक्ट्रिया में यूथीडैमस नामक एक राजद्रोही ने वहाँ के राजा को वधकर अपने को राजा घोषित कर दिया। इसका पुत्र डैमिट्रियस था। इसी ने कुछ ऐतिहासिकारों के मतानुसार पुष्यमित्र शुंग के समय में भारत पर आक्रमण किया था। परन्तु परास्त हुआ। पंजाब पर फिर भी उसका आधिपत्य बना रहा। इसी बीच में एक और यूनानी नेता जिसका नाम यूकेडिट्स था भारत पर चढ आया और पंजाब के पश्चिमी भाग पर अपना अधिकार कर बैठा। इस प्रकार पंजाब दो यूनानी वंशों के आधीन हो गया। पूर्वी पंजाब डैमेट्रियस के आधीन तथा पश्चिमी पंजाब यूकेडिट्स के आधीन।

पंजाब प्रान्त के अधिकतर यूनानी राजा इन्हीं में से किसी न किसी वंश के वंशज चलते रहे। डैमेट्रियस वंश में मिनिन्डर नामक राजा अधिक प्रभावशाली तथा प्रसिद्ध हुआ है। बौद्ध साहित्य में उसका नाम मिलिन्द लिखा है। उसने भारत के आन्तरिक भाग पर आक्रमण किया परन्तु परास्त हुआ। प्रसिद्ध विद्वान् नागसेन के सम्पर्क में आने से उसने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। वह बड़ा न्यायी, विद्वान्,

दार्शनिक एवं विजयी योद्धा था। उसकी मृत्यु के पश्चात् पंजाब में छोटी २ यूनानी रियासतें प्रथम शताब्दी तक चलती रहीं तत्पश्चात् कुषाण सम्राटों द्वारा परास्त होकर वे उनके साम्राज्य में विलीन हो गईं।

यूनानी सभ्यता का भारत पर प्रभाव :—यूनानियों का भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति पर भी प्रभाव पड़ा। उत्तर पश्चिम में पाई जाने वाली बुद्ध की मूर्तियों की बनावट में यूनानी शैली दिखाई देती है। सिक्कों की बनावट पर भी यूनानियों का प्रभाव पर्याप्त रूप से पड़ा। ज्योतिष विद्या की बहुत सी बातें भारतवासियों ने यूनानियों से सीखीं। भारतीय पचांग का संशोधन यूनानियों की अनुमति से हुआ। अनेक यूनानी भारतीय सभ्यता से सन्तुष्ट होकर हिन्दू हो गये और ब्राह्मण अथवा बौद्ध धर्म को मानने लगे।

## प्रश्न

१—मौर्य वंश के पतन के बाद भारत में किन २ मुख्य वंश ने अपने साम्राज्य स्थापित किये। इनके साम्राज्य किस २ भाग में थे ?

२—पुष्यमित्र शुङ्ग के राज्यकाल का वर्णन दो ?

३—कण्व कौन थे ?

४—शातवाहन वंश का परिचय दो ?

५—गौतमीपुत्र शात कर्णि के विषय में तुम क्या जानते हो ?

६—शातवाहन राजाओं के समय दक्षिण में किस विदेशी जाति ने प्रवेश किया वे कहाँ तक दक्षिण पर अपना अधिकार जमाने में सफल हुये ?

७—शुङ्ग तथा शातवाहन वंश से वैदिक संस्कृति को क्या प्रोत्साहन मिला।

८—मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद उत्तरापथ पर किन लोगों ने अपना अधिकार जमा लिया।

९—मिनेन्डर पर एक टिप्पणी लिखो।

अध्याय ११

# शक

परिचय :—शक अथवा सिथियन मध्य एशिया की एक घूमने फिरने वाली जाति के लोग थे। वे ग्रामू नदी के उस पार रहते थे। १६५ ई० पू० जब यूची लोगो ने हूणो से परास्त होकर उनके देश पर आधिपत्य कर लिया तो ये लोग (शक) पहिले फारिस की ओर तत्पश्चात दर्रे बोलान के मार्ग से सिन्धु प्रदेश की ओर अग्रसर हुए और सिन्धु नदी की तराई में बस गये। इसी कारण यह स्थान शक द्वीप भी कहलाने लगा। यहाँ से इन्होने भारत के बहुत से भागो में अपनी बस्तियाँ बसाई।

दो वंश :—शक जाति के दो वशो ने शासन किया। पहिले वश के शासक मवेज ने यूनानियों से गाधार और तक्षशिला छीन लिया। उसका समय ७५ ई० पू० निर्धारित किया जाता है। दूसरा वश पूर्वी ईरान पर शासन करता रहा। कुछ दिन बाद इसके वायसराय ने यूनानियो के अन्तिम अड्डे काबुल को भी जीत लिया।

शक सवत् .—मवेज के उपरान्त एजेज प्रथम गद्दी पर बैठा जिसने ५८ ई० पू० में 'शक सवत' चलाया। उसके समय शको ने अपना राज्य पूर्वी पजाब तक बढा लिया। लगभग ४० वर्ष तक उसने शक शासन की बागडोर सभाली।

दो वंशों का एकीकरण :—एजेज प्रथम के बाद गौन्डोफरीज प्रसिद्ध राजा हुआ जिसने सन् १६ से ४५ तक राज्य किया। इसके शासन काल में शको के दोनो वश एक हो गये और दोनो वशो ने उसको ही अपना शासक मान लिया।

ईसाई मिशन :—ऐसा कहा जाता है कि गोन्डोफरीज के शासन काल में सेन्ट टामस की अध्यक्षता में एक ईसाई मिशन यहाँ आया। उस मिशन को कितनी सफलता मिली यह निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता।

गोन्डोफरीज शको में सबसे योग्य शासक था। इसके शासन काल के पश्चात ही शको का पतन आरम्भ हो गया था और कुशाणो ने इनसे पजाब तथा सिंध छीन लिए। इसके बाद शक मालवा सौराष्ट्र और दक्षिण मे सघर्ष करते रहे वहाँ शातवाहनो ने इनके साथ युद्ध जारी रक्खे परन्तु इस क्षेत्र में शक राज्य काफी समय तक चलते रहे।

शासन पद्धति तथा पतन —शक लोगो की एक शाखा से ईरान भारतवर्ष में आई। इसीलिए भारत के इतिहास में ये इन्डोपार्थियन लोगो के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। शको का राज्य कई प्रान्तो में विभक्त था। प्रत्येक प्रान्त पर एक 'क्षत्रप' राज्य करता था। क्षत्रप एक प्रातीय गवर्नर को कहते थे। क्षत्रप तथा उसके वशजो को एक प्रान्त

सदैव के लिए दे दिया जाता था। कुशानों से परास्त होने के पश्चात् इनमें से कई क्षत्रपों ने अपने स्वाधीन राज्य स्थापित कर लिए और राज पदवी धारण करली इनमें मुख्य क्षत्रप तक्षशिला, मथुरा, उज्जैन, और महाराष्ट्र के थे। महाराष्ट्र के क्षत्रपों में भूमक और नहपान तथा उज्जैन के क्षत्रपों में चस्टन तथा रुद्र दामन मुख्य थे।

**राजा नहपन** :—सौराष्ट्र क्षत्रपों मे सर्व प्रथम 'भूमक' था। उसके उत्तराधिकारी नहपन ने शक साम्राज्य की स्थापना की। उसका विस्तार मालवा से लेकर गोदावरी के तट पर नासिक तक फैला हुआ था उसने सन् ७८ ई० से १२० ई० तक राज्य किया। ये लोग शातवाहन वंश से संघर्ष करते रहे।

**रुद्रदामन** :—उज्जैन के क्षत्रप की स्थापना करने वाला चस्टन था। उसका वंश बहुत समय तक राज्य करता रहा। उसका पौत्र रुद्रदामन बहुत शक्तिशाली हुआ और उसने स्वयं को महाक्षत्रप घोषित किया। उसका राज्य मालवा, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्ध आदि प्रदेशों तक फैला हुआ था। उसके पराक्रम तथा शौर्य्य का परिचय उसके गिरनार के लेख से चलता है। जिसका समय प्रायः १५० ई० है। इस शिलालेख में उसकी शातवाहन वंशीय शासक तथा अन्य राजाओं पर प्राप्त विजय का वर्णन है। उसने प्रसिद्ध सुदर्शन झील की जिसे मौर्य सम्राटों ने निर्माण करवाया था, मरम्मत कराई। वह एक विद्वान् पुरुष था। उसके वंशजों ने बहुत काल तक राज्य किया। अन्त में गुप्त राजाओं ने इनके साम्राज्य को नष्ट कर दिया।

### प्रश्न

१—शक कौन थे वे कब भारत आये ?
२—शकों की शासन पद्धति कैसी थी ?
३—उज्जैन के क्षत्रप रुद्रदामन के विषय में तुम क्या जानते हो ?
४—किस जाति के शकों को उत्तरी भारत से निकाल दिया ?

---

## अध्याय १२

# कुशाण वंश

**कुशाण** :—कुशाण यूची जाति की एक शाखा का नाम है। यह यूची जाति पश्चिमी चीन की मूल निवासी थी। परन्तु १७४ ई० पू० से १६० ई० तक हुए

जाति ने इन्हें इनके देश से निकाल दिया। फलत यह मध्य एशिया की ओर बढ़े और वहाँ की शक जाति को परास्त कर आमू नदी के किनारे बस गये। यह शक जाति, जैसा कि पहिले उल्लेख किया जा चुका है पार्थिया (फारिस) होती हुई भारत आई और यहाँ क्षत्रपों के रूप में राज्य करने लगी। समय के साथ २ इस जाति का साम्राज्य बढ़ता गया और यूची लोगों ने वैक्ट्रिया पर भी अपना आधिपत्य कर लिया। इस यूची जाति की एक शाखा का नाम कुशाण था। लगभग एक शताब्दी के पश्चात यह कुशाण शाखा शक्तिशाली हो गई और इसका नेता कैडफिसस प्रथम के नाम से ४० ई० में समस्त यूची साम्राज्य का स्वामी हो गया।

कैडफिसस प्रथम तथा द्वितीय :—कैडफिसस प्रथम ने अपने जीवन काल में काबुल, तक्षशिला तथा अन्य इन्डोपार्थियन रियासतों को जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया। ७७ ई० के लगभग इसका देहान्त हो गया। तत्पश्चात् उसका पुत्र कैडफिसस द्वितीय के नाम से ७८ ई० में गद्दी पर बैठा। कुछ विद्वानों का मत है कि 'शक संवत्' का, जिसका उल्लेख पहिले हो चुका है, आरम्भ इसके गद्दी पर बैठने से हुआ क्योंकि कुशाण इतिहास में इन्डोसिथियन या इन्डोशक के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। कैडफिसस द्वितीय चीन के सम्राट के साथ युद्ध में व्यस्त रहा और अन्त में चीन सम्राट् को कर देना स्वीकार कर लिया। उसकी मृत्यु के पश्चात् कुशाण वंश में सबसे अधिक प्रभाव शाली सम्राट कनिष्क गद्दी पर बैठा।

कनिष्क :—ठीक २ नहीं कहा जा सकता कि कनिष्क कैडफिसस द्वितीय का उत्तराधिकारी था या इन दोनों राजाओं के बीच में कोई और राजा हुआ। सम्भव है कि कोई और राजा इन दोनों राजाओं के बीच में हुआ हो क्योंकि कैडफिसस द्वितीय की मृत्यु ११० ई० के लगभग और कनिष्क का राज्यारोहण १२० ई० के लगभग हुआ। दूसरे कनिष्क के पिता का नाम 'विजिष्क' था। अत वह कैडफिसस द्वितीय का पुत्र भी नहीं था।

कनिष्क का शासन काल :—कनिष्क ने गद्दी पर बैठते ही अपने साम्राज्य को विस्तृत करना चाहा। उसने काशीपार को जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया और कनिष्कपुर नामक प्रसिद्ध शहर बसाया। उसने भारतवर्ष पर भी आक्रमण किया और विजय दुन्दुभी बजाता हुआ मगध तक आ पहुँचा। मगध से बौद्ध विद्वान अश्वघोष को वह अपने साथ ले गया। कनिष्क की राजधानी पुरुषपुर अर्थात पेशावर थी। यहाँ उसने एक विहार की स्थापना की जो बहुत काल तक शिक्षा का केन्द्र बना रहा। उसने पामीर प्रदेश के खुटान, यारकन्द तथा काशगर प्रान्त को जो चीन का अधिकृत देश था अपने साम्राज्य में मिला लिया। इस प्रकार कनिष्क ने अपने पूर्वज कैडफिसस की पराजय का बदला ब्याज समेत चुका लिया कनिष्क

आजीवन चीन अधिकृत पामीर के दुर्गम प्रदेश व तुर्किस्तान की विजय में लगा रहा। युद्ध काल में भारतीय साम्राज्य की बागडोर उसके ज्येष्ठ पुत्र विशिष्क के और उसकी मृत्यु के पश्चात् अपने छोटे पुत्र हुविष्क के हाथों रही।

कनिष्क का धर्म :—वर्तमान ऐतिहासिक अन्वेषण से विदित होता है कि कनिष्क ने बहुत से शिला लेख खुदवाये। इनसे कनिष्क के साम्राज्य व उसके राज्य काल की बहुत सी घटनाओं का पता चलता है। ये सब उसके महान् सम्राट होने के परिचायक हैं। परन्तु उसकी ख्याति का विशेष कारण उसकी बौद्ध धर्म की संरक्षकता है। कनिष्क जैसा कि उसके सिक्के प्रकट करते हैं पारसी, यूनानी, तथा हिन्दुस्तानी देवी देवताओं का आदर करता था। सूर्य, चन्द्रमा, शिव, अग्नि आदि की मूर्तियाँ जो उसके सिक्कों पर पाई जाती हैं इसको सिद्ध करती हैं कि वह हिन्दू धर्म का प्रेमी था परन्तु ज्यों २ समय बीतता गया उसकी प्रवृत्ति बौद्ध धर्म की ओर होने लगी। ठीक पता नहीं कि उसके बौद्ध धर्म ग्रहण करने का क्या प्रमुख कारण था। विद्वानों का मत है कि सम्भवतः आजीवन-युद्ध में संलग्न रहने के कारण प्रायश्चित्त स्वरूप वह भी अशोक की भाँति इस धर्म का अनुयायी हो गया हो। कारण कुछ भी हो किन्तु संदेह नहीं कि बौद्ध धर्म का अनुयायी होने के पश्चात् वह धर्म प्रसार में अशोक महान् की भाँति प्रवृत्त हो गया।

धर्म सम्मेलन :—कनिष्क ने देखा कि बौद्ध धर्म के अनुयायियों में विभिन्न मत फैले हुये हैं जिनके कारण उसके पतन की सम्भावना है। इस मतभेद को दूर करने के लिए उसने बौद्ध पंडितों का विराट सम्मेलन काश्मीर में किया। प्रसिद्ध विद्वान वसुमित्र और अश्वघोष उसके सभापति हुये। सम्मेलन में ५०० पंडितों ने भाग लिया। उन्होंने समस्त बौद्ध साहित्य पर विचार विनिमय किया और जिस निर्णय पर पहुँचे उसे ताम्र पत्रों पर लिखा कर एक बौद्ध स्तूप में, जो इसी आशय से बनाया गया था। एक पत्थर के सन्दूक में बन्द कराके रखवा दिया। सम्भव है वर्तमान खोज के पश्चात् उस स्तूप का भी पता लग जावे। सम्मेलन एकीकरण की दृष्टि से असफल रहा। बौद्ध धर्म दो शाखाओं में विभक्त हो गया।। एक हीनयान जो मूल बौद्ध धर्म को मानते थे उसमें मूर्ति पूजा को कोई स्थान न था। दूसरी महायान, जो मूर्तिपूजा तथा इसके अतिरिक्त बहुत सी धार्मिक रूढ़ियाँ अपने धर्म में सम्मिलित कर इसे समयानुकूल बनाने के पक्ष में थी। कनिष्क ने इसी शाखा को स्वीकार किया और अशोक की भाँति इसके प्रचार में व्यस्त हो गया।

साहित्य व कला:—साहित्य की प्रगति के लिये कनिष्क का नाम नागार्जुन अश्वघोष, व वसुमित्र आदि विद्वानों से सम्बन्धित है। अश्वघोष उच्चकोटि का कवि,

गायनाचार्य, विद्वान, एव धर्म प्रचारक था। आयुर्वेद का महारथी 'चरक' इसके रत्नों में से एक था। भवन निर्माणकला को भी कनिष्क द्वारा बहुत प्रोत्साहन मिला। अशोक की भाँति कनिष्क ने भी बहुत से शिलालेख खुदवाये। उसने पेशावर में चार सौ फीट ऊँची एक लाट बनवाई। इसी प्रकार तक्षशिला में उसने बहुत सी इमारतें बनवाई। इन इमारतो में गाधार तथा भारतीय कला का समिश्रण स्पष्ट प्रतीत होता है पता नही कि कनिष्क कब तक राज्य करता रहा। किंदन्ती के अनुसार कनिष्क का रुग्णावस्था में वध कर दिया गया। उसके पश्चात उसका पुत्र हुविष्क गद्दी पर बैठा।

हुविष्क —हुविष्क कनिष्क का छोटा पुत्र था, क्योंकि ज्येष्ठ पुत्र कनिष्क के जीवनकाल में ही परलोक गामी हो गया था अत गद्दी का अधिकार छोटे ही पुत्र को मिला। वह अपने पिता के समय में भारत का वाइसराय रह चुका था। उसने ५० वर्ष तक राज्य किया। उसने काश्मीर में हुविष्कपुर नामक नगर बसाया। अपने पिता की भाँति वह भी बौद्ध धम का अनुयायी था। उसके पश्चात् वासुदेव गद्दी पर बैठा। तत्पश्चात कुशाण राज्य छोटे २ राज्यो में विभक्त हो समाप्त हो गया।

कनिष्क के समय का हिन्दू समाज —मौर्य युग और गुप्त युग के बीच में सामाजिक आदर्श और आचार पर भी बहुत विचार हुआ और बहुत से ग्रन्थ लिखे गये—ब्राह्मण धम फिर प्रबल हो रहा था और समाज के लिये फिर से कानून बना रहा था—मनु ने हिन्दू सामाजिक सिद्धान्त को जो रूप दिया वह आज तक नही मिटा है व्यक्तिगत चरित्र का, वर्णाश्रम धर्म का, कौटुम्बिक जीवन का और कानून का विस्तृत वर्णन सक्षेप मे पर ओजस्वी पद्य में मनु ने बहुत सदियो तक के लिये कर दिया है। इसी आधार पर समाज की व्यवस्था हो रही थी।

इस युग की सामाजिक अवस्था के सम्बन्ध में सबसे अधिक महत्व पूर्ण बात थी नई नई उपजातियो की उत्पत्ति—उपजातियाँ वैदिक काल में ही बनने लगी थी—पहले आर्यों में पेशे से ही ये जातियाँ थी—मिश्रण से कुछ और उपजातियाँ बनी होगी—प्राचीन हिन्दु सभ्यता मे दूसरो पर प्रभाव डालने की अनुपम शक्ति थी। जो इसके सम्पर्क में आये वह अपना। बहुत से विदेशी में हिन्दु हो गये— इस तरह एक एक करके बहुत से अनार्य समुदाय ब्राह्मण धर्म के नीचे आये—पर वर्ण व्यवस्था के कारण वह हिन्दु समाज में सबसे हिल मिल न सके— धम के कारण वह पुराने अनार्यों से अलग हो गये—वर्ण के कारण वह हिन्दुसमाज में खप न सके इस परिस्थिति में एक ही बात सम्भव थी—रह यह कि नया समुदाय अपनी अलग

एक जाति बना ले। इस तरह बहुत सी नई उपजातियां बनी—कुछ दिन में लोग उनकी वास्तविक उत्पत्ति भूल गये होंगे और नये वर्ग अपने व्यवसाय के वर्ण की एक उपजाति समझा जाने लगा होगा।

अनार्य समुदायों की भांति विदेशी समुदाय भी हिन्दु हो रहे थे उत्तर पश्चिम से बहुत से लोग जैसे आर्य, ग्रीक, शक इत्यादि हिन्दुस्तान में आये और बस गये। अब उनके वंश कहां हैं—अब वह हिन्दु समाज के अंग हैं—भारत में प्रवेश करने पर शीघ्र ही उन्होंने हिन्दु धर्म अंगीकार कर लिया था—वह कोई भारतीय भाषा बोलने लगे थे और यहां के रीति रिवाज मानने लगे थे पर वर्ण व्यवस्था के कारण पुराने हिन्दु उनसे वैवाहिक सम्बन्ध न करते थे—इसलिए उन्होंने अपनी अपनी नई जातियां बनाई—सम्भवतः उनके वर्गों की अलग २ उपजातियां बनी हों—उनके पुरोहित वर्ग ने हिन्दु होने पर एक ब्राह्मण उपजाति बनाई हो—उनका शासक वर्ग क्षत्रिय हो—साधारण जन वैश्य या शूद्र हो गये हों—इस तरह एक साथ ही बहुत सी उपजातियां बन गई होंगी।

जिन कारणो से पहिले जातियो के भेद हुए थे उन्ही से अब उपजातियों के भेद होते रहे—एक उपजाति के जो लोग व्यापार के लिए या और किसी कारण से दूर जा बसे उन्होंने अपनी छोटी सी उपजाति अलग बनाली—उदाहरणार्थ आज बंगाल में ब्राह्मण उपजातियां अपने आप को मध्य देश से आने वाले भिन्न भिन्न ब्राह्मण समुदायो की सन्तति बताती हैं—यह क्रम बहुत प्राचीन काल से १६ वीं सदी तक रहा। रेल चलने के बाद ही वह बन्द हुआ—धार्मिक भेद के कारण भी शायद कुछ छोटी छोटी उपजातियां बनी होगी—एक ही उपजाति के लोग जो जैन या बौद्ध हो गये उनसे ब्राह्मण धर्म वालों ने वैवाहिक सम्बन्ध छोड़ दिया होगा। इस तरह एक उपजाति के धर्मानुसार दो या अधिक विभाग हो गए होंगे। सामाजिक आचार की विभिन्नता का भी ऐसा ही परिणाम हुआ। उदाहरणार्थ जब विधवा विवाह की रोक टोक प्रारम्भ हुई तब एक ही उपजाति के विधवा विवाह समर्थकों और विरोधियों में भेद हो जाने के कारण वह उपजाति दो विभागो में विभक्त हो गई होगी—कभी कभी एक व्यवस्था को भिन्न २ रीतियो से करने वाले एक दूसरे से जुदा हो गये जैसे उडीसा में कुम्हारो की एक उपजाति बैठकर छोटे बर्तन बनाती है और दूसरी खड़ी होकर बड़े बर्तन बनाती है। इन दोनो उपजातियो में विवाह नही होते—आर्थिक दशा भी एक दो उपजाति में विभक्त का कारण हो सकती है—एक दो उपजाति के कुछ लोग किसी तरह धन या विद्या या अधिकार प्राप्त कर अपनी जाति के निर्धन लोगो से अलग हो जाते थे इस तरह एक नई उपजाति खड़ी हो जाती थी

प्रारम्भ में चाहे उनकी हसी हुई हो पर वह ऊँचे वर्ण के कहलाने लगने थे—उदाहरणाथ किसी समय लिच्छवी पतित गिने जाते थे—पर अधिकार के कारण वह पूरे क्षत्रिय होने का दावा करने लगे—और बड़े २ राजकुलो को अपनी बेटी देने में सकोच करने लगे। इस प्रकार चार वर्ण पद्धति नाम मात्र की ही वस्तु रह गई। सारा समाज सैकडो तथा हजारो उपजातियो में विभक्त हो गया—ज्यो ज्यो समय बीतता गया इन उपजातियो ने अवसरानुसार अपनी स्थिति दृढ बनाली। उदाहरणार्थ विदेशी आक्रमणकारियो के शासक वर्ग ने जब हिन्दु धर्म स्वीकार कर भारतीय समाज में स्थान प्राप्त कर लिया और राजसत्ता उनके हाथ में आई तब उन्होने ब्राह्मणो से अनेक कल्पित वशावलियाँ तैयार करा अपने आपको क्षत्रियो में सम्मिलित कर लिया—ब्राह्मणो का यह एकीकरण सराहनीय है—सराहना की मात्रा और भी अधिक होती यदि धार्मिक एकीकरण के साथ समाज का जातीय एकीकरण भी हो जाता और हम ब्राह्मण, जाट, गूजर, नाई, कुम्हार तथा ब्राह्मणो में भी सारस्वत गौड इत्यादि के बदले सीधे सादे भारतीय होते—

कला.—मौर्य काल के बाद हिन्दुस्तानी कला में चारों ओर बहुत उन्नति हुई—मन्दिर और मूर्ति बनाने की प्रथा बौद्धो और जैनियो से ब्राह्मणो ने भी सीखी और वह भी मन्दिर बनवाकर मूर्ति स्थापित करने लगे। बरेली जिले में रामनगर अर्थात प्राचीन अहिक्षेत्र का शैव मन्दिर तथा उसकी मूर्तियाँ जो ईसवी सन् से कुछ पहिले की हैं इसकी प्रतीक हैं।

अपने प्रदेशो के अनुसार उस समय कला की चार शैलिया थीं—गांधार—मथुरा, सारनाथ और अमरावती। गाधार शली उत्तरी पश्चिमी प्रान्तो में बहुत प्रचलित थी उस पर ग्रीक शैली का बहुत प्रभाव पडा। इस मिश्रित हिन्दु-ग्रीक शैली ने मगोलिया, चीन, कोरिया और जापान की कला पर अपना प्रभाव डाला—जब तक बौद्ध धर्म की प्रधानता रही तब तक कला का प्रयोग प्राय बौद्ध स्तूप और मूर्तियाँ बनाने में होता था। जहाँ जैन धर्म प्रचलित था वहाँ जैन मन्दिरों तथा जैन मूर्तियो में कला की छटा प्रकट हुई—बौद्ध धर्म के पतन के बाद ब्राह्मण धर्म ने अपनी मूर्तिया बनाने में उसी शैली का अनुसरण किया—मूर्तियो के अतिरिक्त बडे पौधे, नदी, तालाब, जानवर और साधारण मनुष्यो की मूर्तियाँ भी बनाई जाती थी—बौद्ध काल की मूर्तियो में बडी स्वाभाविकता थी—प्राकृतिक वस्तुओ का, जानवरो का, स्त्री पुरुषो का चित्रण जैसे का तैसा है पर ब्राह्मण धर्म के जोर पकडने पर स्वाभाविकता कम हो गई प्रकृति का अनुसरण घट गया—भावप्रदर्शन करने का ही उत्साह रह गया।

१९. गांधार मूर्ति कला के हजारों नमूने उत्तर पश्चिम प्रान्त और वर्तमान अफगानिस्तान से जमा हो चुके हैं—सबसे अच्छे नमूने राजा कनिष्क के युग के हैं—सब नमूने बौद्ध रचना के हैं और अधिकतर नीली चिकनी स्लेट के बने हैं जिस पर अधिकतर अजन्ता इत्यादि की तरह महीन पलास्टर कर दिया है—गांधार कला में बुद्ध सर्वव्यापी है इस कला की सब मूर्तियों में बुद्ध या बौद्धिसत्व की परिछाया है—उस समय की इमारतों के जो अंश मिले हैं उन पर तरह तरह की मूर्तियां हैं। यहाँ पत्थर में हिन्दू जनता का सारा जीवन अङ्कित है औजार, हथियार, बर्तन, जानवर, मकान, बाग, तालाब सब कुछ बनाया गया है परन्तु सब जगह स्वाभाविकता है।

१७. साहित्यः—काव्य में हिन्दुस्तान की कोई भाषा संस्कृत की बराबरी नहीं कर सकी है—संस्कृत कवियो ने बालमीकि को आर्य कवि और रामायण को आदि काव्य माना है—दूसरा वृद्ध काव्य व्यास रचित महाभारत है—इन दोनों महाकाव्यों, बौद्ध तथा जैन साहित्य से वीरता, प्रेम, भक्ति, वैराग्य आदि भावों तथा अनेकानेक कथाओं की सामग्री ले ग्रन्थकारों की प्रतिभा ने ऐसी ऐसी रचनायें पैदा की कि संसार चकित रह गया—कालिदास भवभूति तथा अनेक छोटे बड़े कवि इनके ऋणी हैं। पंतजलि और पिंगल के उल्लेखो से सिद्ध होता है कि ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के पहिले भी लौकिक संस्कृत काव्य मौजूद था पर अभी तक कोई ग्रन्थ नहीं मिले हैं—

लौकिक संस्कृत काव्य में पहला स्पष्ट नाम अश्वघोष है जो बौद्ध राजा कनिष्क के दर्बार का रत्न था—पर अश्वघोष इस साहित्य का प्रथम कवि नहीं है उसकी शैली यह बताती है कि इससे पहिले भी बहुत से कवि हुए—अश्वघोष ने प्रशंसनीय सौन्दर नन्द काव्य में बुद्ध से वैराग्य और निर्वाण का उपदेश दिलवाया है—उसके सूत्रालंकार में उपदेश देने वाली बहुत सी कथायें हैं—लौकिक काव्य की भांति संस्कृत नाटक के इतिहास में भी पहला स्पष्ट नाम अश्वघोष का है—सम्भव है नाट्य कला में हिन्दुस्तानियों ने ग्रीक लोगों से बहुत कुछ लिया हो क्योंकि ग्रीक नाटक पहिले ही पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था—अश्वघोष के नौ अङ्क के शारद्वती पुत्र प्रकरण नाटक का एक अंश मध्य एशिया में भी मिला है जिससे प्रतीत होता है कि अश्वघोष की ख्याति वहाँ तक पहुँच चुकी थी और सम्भव है कि उसने जीवन का एक अङ्ग वहीं किसी मठ में बिताया हो उसके दो और नाटकों के अंश भी वहां मिले हैं।

१८. लौकिक संस्कृत साहित्य तथा नाटकों के अतिरिक्त आयुर्वेद जैसे जीवनोपयोगी शास्त्र पर की कई रचनायें इस काल को विभूषित करती हैं। चरक ने अपनी संहिता जिसमें सारे वैद्यक शास्त्र का समावेश है इसी काल में लिखी। चरक का नाम मध्य

एशिया और पूर्वी एशिया में भी फैला—चरक के कुछ दिन बाद सुश्रुत ने दूसरी बड़ी संहिता लिखी—

इस तरह हम देखते हैं कि कनिष्क का राज्य-काल एक महत्वपूर्ण साहित्यिक प्रगति काल युग था।

### प्रश्न

१—कुषाण कौन थे—वे भारत की ओर क्यों आये ?

२—कनिष्क की विजययात्रा के विषय में तुम क्या जानते हो ?

३—कनिष्क ने बौद्ध धर्म क्यों ग्रहण किया—उसने इस धर्म को एक करने तथा फैलाने का क्या प्रयत्न किया ?

४—कनिष्क के समय साहित्य व कला में क्या उन्नति हुई ?

५—हिन्दु समाज में अनेकों जातियाँ व उपजातियाँ कैसे बनी ?

---

## अध्याय १३

# गुप्तवंश

गुप्तकालीन ऐतिहासिक सामग्री के साधन—गुप्त वंश के शासन काल में जो प्रमुख घटनायें हुई हैं उनके जानने के विभिन्न साधन हैं। सर्व प्रथम तत्कालीन शिलालेख तथा सिक्के वंश की ऐतिहासिक सामग्री पर्याप्त मात्रा में प्रदान करते हैं। इलाहाबाद में स्थित अशोक की लाट पर हरिषेण द्वारा लिखित संस्कृत पद्य से हमें समुद्रगुप्त के साम्राज्य का पता चलता है। अश्वमेध यज्ञ की पुण्य स्मृति में बनवाई गई सोने की मुहरों से उसके अश्वमेध यज्ञ करने की पुष्टि होती है। उसके सिक्कों पर बने हुए चित्र तथा आकृतियों से उसकी गान प्रियता का आभास मिलता है क्योंकि इसमें वह वीणा बजाता हुआ चित्रित किया गया है। दूसरा महत्वपूर्ण साधन वसुबन्धु हरिषेण, और फाह्यान के लेख इत्यादि हैं। वसुबन्धु गुप्त काल का प्रसिद्ध बौद्ध-विद्वान था उसने समुद्रगुप्त की उदार सरकार का वर्णन किया है। महाकवि हरिषेण ने अपने स्वामी का बड़ा रोचक चरित्र चित्रण किया है। एक चीनी इतिहासकार ने समुद्रगुप्त एवं लंका के शासक मेघवर्मन के मैत्रि सम्बन्ध का उल्लेख कर उसकी वैदेशिक नीति पर प्रकाश डाला है। प्रसिद्ध चीनी यात्री फाह्यान ने जो विक्रमादित्य के समय में भारत आया, गुप्त काल की सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था का अधिकार पूर्ण

वर्णन किया है। गुप्त काल के इतिहास जानने का तृतीय साधन साहित्यिक पुस्तक और प्राचीन स्मारक हैं। उदाहरणस्वरूप पुराणों में गुप्त वंश का उल्लेख है यद्यपि

ता की कला

ये हुए हैं, फिर भी उनके साम्राज्य का वर्णन गध, और वर्तमान उत्तरप्रदेश में प्रयाग तक है

गुप्त वंश का साम्राज्य फैला हुआ था। परन्तु यह वर्णन गुप्त काल के आरम्भ का है। महाकवि कालिदास के ग्रन्थ प्रगट करते हैं कि गुप्त सम्राट कला तथा साहित्य के बहुत प्रेमी थे। कौशाम्बी (इलाहाबाद) की शिव पार्वती की मूर्तियाँ, अजन्ता की चित्रकारी, रोहोल का दुर्गामठ गुप्त काल की ललित कला के सर्वोत्कृष्ट नमूने हैं। इन सब साधनों में से हमें गुप्त काल का ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त होता है।

**गुप्त वंश का अभ्युदयः**—आन्ध्र वंश के पतन के पश्चात् चौथी शताब्दी में मगध प्रदेश की छोटी सी रियासत पर श्री गुप्त राज्य करता था। उसके बाद उसका उत्तराधिकारी घटोत्कच्छ गद्दी पर बैठा। इन राजाओं ने कोई विशेष कार्य नहीं किया अतः ये अधिक प्रसिद्ध भी नहीं हैं। परन्तु घटोत्कच्छ का पुत्र एवं गुप्त वंश का जन्मदाता चन्द्रगुप्त प्रथम जो ३२० ई० में गद्दी पर बैठा, भारतीय इतिहास में एक नवीन युग का निर्माता हुआ है।

**चन्द्रगुप्त प्रथमः**—उसने अपने छोटे से राज्य का विस्तार गङ्गा तथा यमुना के सगम प्रयाग राज तक फैलाया। तिरहुत, दक्षिणी विहार, अवध तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश उसके साम्राज्य के अंग हो गये थे। उसने लिच्छवी वंश की राजकुमारी कुमारदेवी के साथ विवाह कर अपने वंश को सम्मानित किया। अपने राज्य की सीमा बढ़ा कर उसने सम्राट की उपाधि ली। उसने गुप्त संवत् भी चलाया जो उसके राज्यारोहण (३२० ई०) से प्रारम्भ होता है। उसके निधन के बाद उसका पुत्र समुद्रगुप्त गद्दी पर बैठा।

**समुद्रगुप्त तथा उसकी उत्तरी भारत पर विजयः**—समुद्रगुप्त संसार के महान् विजेताओं में से है। वास्तव में उसका समस्त राज्य काल संग्राम तथा संघर्ष में ही व्यतीत हुआ, उसने पहिले उत्तरी भारत पर अपना सिक्का जमाया। उस समय गङ्गा के दोआब में नौ राज्य थे। उनमें नरवर का गणपति नाग अधिक प्रसिद्ध था। नरवर अब भी ग्वालियर राज्य में एक छोटा सा नगर है। समुद्रगुप्त ने इन सब छोटे २ राज्यों को अपने साम्राज्य में विलीन कर लिया। तत्पश्चात् वह बगाल, आसाम और उसी प्रदेश की पहाड़ी रियासतों की ओर बढ़ा। परन्तु बगाल, आसाम, पल्लव, अर्जुनी, व आभीर सब लोगों ने बिना युद्ध किये हुए ही उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया। और ये सब रियासतें समुद्रगुप्त को कर देने लगीं।

**दक्षिणी भारत पर विजयः**—उत्तरी भारत पर विजयपताका फहराता हुआ यह भारतीय नैपोलियन दक्षिण की ओर बढ़ा। मध्य भारत के जगली प्रदेशों को जीतता हुआ वह महानदी के किनारे २ उड़ीसा तट पर जा निकला, और वहाँ से गजम, विजिगापट्टम, गोदावरी, कृष्णा नीलोर प्रान्त को जीतता हुआ सुदूर दक्षिण

'पल्हव' रियासत की राजधानी कांची तक जा पहुँचा। समुद्र तट के समीप का मार्ग ग्रहण करना प्रकट करता है कि थल सेना के साथ २ उसकी जल सेना भी प्रयाण करती थी। हिन्द महासागर के बहुत से द्वीपों पर उसका अधिकार भी इस बात की पुष्टि करता है कि उस पर जल सेना पर्याप्त मात्रा में थी और वह जहाजी बेड़ा रखता था। उन्होने अगर केवल भयभीत होकर उसका अधिपत्य स्वीकार कर लिया हो तो दूसरी बात है, अन्यथा उन पर विजय प्राप्त कर अधिकार स्थापित करना गुप्तो के जल विभाग की दक्षता का अकाट्य प्रमाण है।

**विजय का प्रभाव:**—समुद्रगुप्त की दक्षिण विजय सैनिक दृष्टि से सर्वथा सफल रही। उसने बारह राजाओ से संग्राम किया और सबमें विजयी हुआ। परन्तु जब उन्होंने उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया और कर देने को तत्पर हो गये तो उसने उनका राज्य उन्हें लौटा दिया और उन सबको मुक्त कर दिया। यह समुद्रगुप्त की दूरदर्शिता का परिचायक है। वर्तमान यातायात के साधनों के अभाव में इतने विशाल साम्राज्य का प्रबन्ध असम्भव ही था। अतः कुप्रबन्ध और दैनिक षडयन्त्रो से देश को बचाने का यह सर्वोत्तम साधन था। अशोक, अलाउद्दीन खिलजी, तथा औरगजेब ने इस नीति के विरुद्ध आचरण कर अपने साम्राज्य को पतनोन्मुख बना लिया। इस प्रकार समस्त दक्षिणी भारत पर विजय प्राप्त कर यह महान् सैनिक एवं दूरदर्शी राजनीतिज्ञ अपार धनराशि सहित स्वदेश को लौटा।

**साम्राज्य विस्तार:**—समुद्रगुप्त का साम्राज्य पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी, दक्षिण में गोदावरी, उत्तर पश्चिम मे यमुना तथा चम्बल नदी तक फैला हुआ था। इसके अतिरिक्त पंजाब व मालवा की अनेक रियासतें, ब्रह्मपुत्र डेल्टे के पाच राज्य जिनमे गढ़वाल, नैपाल इत्यादि सम्मिलित थे उसे कर देते थे और उसे अपना स्वामी मानते थे। समस्त दक्षिणी भारत के राज्य उसे महाराजाधिराज स्वीकार करते थे।

**अश्वमेध यज्ञ:**—अपनी महान् विजय से सम्पन्न होकर उसने अपने आपको भारतवर्ष का एक छत्र सम्राट घोषित किया। और यह सिद्ध करने के लिए कि समस्त भारत उसकी इस घोषणा को स्वीकार करता है उसने ब्राह्मण धर्म के अनुसार जिसका कि वह अनुयायी था अश्वमेध यज्ञ किया। यह यज्ञ पूर्णतया सफल हुआ। इस प्रकार समस्त भारत ने उसे अपना महाराजाधिराज स्वीकार किया।

**वैदेशिक सम्बन्ध:**—समुद्रगुप्त की महान् विजय तथा उसकी ख्याति केवल भारत ही तक सीमित नही रही वरन् उसके समीपवर्ती प्रदेश उससे अधिक प्रभावित हुए। उत्तर में कुशाण जो गांधार और पंजाब पर शासन सम्पन्न थे उसकी मैत्री के लए लालायित हो रहे थे। परिणामस्वरूप दोनों वंश मित्रता के पाश में बंध गये। लंका के बौद्ध राजा मेघवर्मन ने भी, जैसा कि एक चीनी यात्री ने भी लिखा है

अपना राजदूत समुद्रगुप्त की सभा में भेजा। उसने बौद्ध गया में एक विहार बनाने की आज्ञा प्राप्त की।

**समुद्रगुप्त का व्यक्तित्वः**—समुद्रगुप्त का व्यक्तित्व बहुत ऊंचा था। वह एक महान सेनानी एवं दक्ष प्रबन्धक था। दक्षिण को जीत कर पुनः उन्हीं राजाओं को उनका राज्य लौटा देना समुद्रगुप्त की राजनीति-पटुता का ज्वलन्त उदाहरण है। सिक्कों पर वीणा बजाते हुये उसका चित्र प्रकट करता है कि वह गान प्रिय तो था ही साथ २ एक कुशल गायक भी था और वीणा बजाने में दक्ष था। वह एक महान् कवि भी था। उसकी कृतियां जो अब तक प्राप्त हुई हैं। उसकी कवित्व शक्ति एवं प्रतिभा का पूर्ण परिचय देती हैं। समुद्रगुप्त विद्वान्-मण्डली से विशेष प्रेम रखता था। वसुबन्धु तथा हरीषेण इत्यादि प्रसिद्ध विद्वान उसकी सभा के रत्न थे। वह ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था। परन्तु अन्य समकालीन धर्मों, जैसे बौद्ध धर्म इत्यादि, को भी बड़े सम्मान की दृष्टि से देखता था। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान बसुवन्धु ने समुद्रगुप्त की उदारता की भूरि भूरि प्रशंसा की है।

**मृत्युः**—समुद्रगुप्त की मृत्यु की निश्चित तिथि प्राप्त नहीं होती। परन्तु उसने लगभग ५० वर्ष तक राज्य किया। और अपनी शासन-साधना में सर्वथा सफल रहा। अपनी मृत्यु से पूर्व उसने अपने पुत्रों में से अपनी प्रियरानी दत्तादेवी के योग्य पुत्रों में से चन्द्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। वह चन्द्रगुप्त द्वितीय के नाम से ३८० ई० के लगभग गद्दी पर बैठा।

**चन्द्रगुप्त द्वितीयः**—जैसा कि समुद्रगुप्त का अनुमान था चन्द्रगुप्त द्वितीय बहुत योग्य शासक सिद्ध हुआ। गद्दी पर बैठने के पश्चात् उसने अपने आपको विक्रमादित्य की उपाधि से विभूषित किया। दन्त कथाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विक्रमादित्य उज्जैन के एक प्रसिद्ध राजा का नाम था। जिसने शक लोगों को परास्त कर ५८ या ५७ ई० पू० के लगभग विक्रम संवत् की स्थापना की। सम्भव है विक्रम नामक ऐसा कोई राजा हुआ हो परन्तु किसी शिलालेख सिक्के, स्मारक, या साहित्यिक पुस्तक से यह खोज नहीं हो सकी कि ऐसा राजा कौन हुआ। किंवदन्तियों से जिनमें उस अज्ञात विक्रमादित्य तथा इस चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) की घटनाओं का कुछ ऐसा सम्मिश्रण है कि प्रतीत होता है कि यह दोनों एक ही पुरुष थे। परन्तु काल का इतना अन्तर और विक्रम संवत् की सत्यता तथा भारत प्रियता सिद्ध करती है कि ये दोनों एक नहीं हो सकते। यह प्रश्न ऐतिहासिक अन्वेषकों के लिए यहीं छोड़कर हम चन्द्रगुप्त द्वितीय के विवरण की ओर अग्रसर होते हैं।

**चन्द्रगुप्त द्वितीय की विजयः**—चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने योग्य पिता के साम्राज्य में मध्य भारत को भी सम्मिलित कर लिया। उसने मालवा तथा गुजरात पर भी विजय प्राप्त कर अपने साम्राज्य का अङ्ग बनाया। उसने सौराष्ट्र के शासक

क्षत्रप को, जो समुद्रगुप्त ने स्वतन्त्र छोड दिया था और जो दक्षिणी भारत का सबसे शक्तिशाली राजा समझा जाता था, परास्त कर सौराष्ट्र को अपने राज्य में मिला लिया यह चन्द्रगुप्त द्वितीय की महान विजय थी।

सौराष्ट्र विजय के लाभ :—अब चन्द्रगुप्त द्वितीय का साम्राज्य अरबसागर तक पहुँच गया और सब बन्दरगाह जिनके द्वारा भारतवर्ष और पश्चिमी देशों म व्यापार होता था उसके आधीन हो गय। यह विजय गुप्त राज्य को आर्थिक दृष्टि से बडी लाभप्रद सिद्ध हुई। क्योकि चुंगी तथा इसी प्रकार के अन्य व्यापारिक करो द्वारा उसे बहुत धन मिलने लगा। तीसरा महत्वपूर्ण लाभ इस विजय से यह हुआ कि गुप्त साम्राज्य पश्चिमी देशो के सम्पर्क में आ गया। अत गुप्त वशीय सम्राटो ने पश्चिमी देशो से कला कौशल में बहुत कुछ सीखा और बहुत कुछ उन्हें सिखाया।

रुद्रसेन से सम्बन्ध :—चन्द्रगुप्त द्वितीय का समकालीन बुन्देल खण्ड तथा उत्तरी पूर्वी कर्नाटक का शासक वक्तक वश था। भौगोलिक दृष्टि से यह राज्य गुप्त साम्राज्य के लिये बहुत महत्वपूर्ण था मालवा व सौराष्ट्र की विजय में भी यह बहुत सरलता से विघ्न बाधायें उपस्थित कर सकता था। अत वक्तक राजा से मैत्रि-सम्बन्ध स्थापित करना परमावश्यक था। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपनी पुत्री प्रभावती का विवाह उस प्रदेश के तत्कालीन स्वामी रुद्रसेन से सम्पन्न कर दिया। इस प्रकार दोनो वशो में प्रगाढ प्रेम फैल गया। इसी प्रकार चन्द्र गुप्त द्वितीय ने मालवा इत्यादि का मार्ग सुगम कर समस्त पश्चिमी प्रदेशो पर विजय प्राप्त की।

विज्ञान साहित्य एवं कलाकौशल :—चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में साहित्य-कला, विज्ञान आदि की विशेष उन्नति हुई। जिसके कारण ससार के विद्वत् समाज ने गुप्त काल को स्वर्ण युग के नाम से विभूषित किया है। ब्राह्मण धर्म की पुनरावृति, सस्कृत साहित्य की उन्नति में सहायक सिद्ध हुई। मनुष्य समुदाय की प्रवृत्ति सस्कृत साहित्य के पठन पाठन तथा उसमें खोजपूर्ण कार्य करने की ओर हुई। फलतः कालिदास जैसे उत्कृष्ट कवि इसी काल में अवतरित हुये। आयुर्वेद शास्त्र का जन्म दाता महारथी धन्वन्तरि इसी युग की देन है। आर्य भट्ट, वराहमिहर और ब्रह्मगुप्त ने सूर्य सिद्धान्त जैसी विश्व विख्यात पुस्तकों की रचना इसी समय की।

इसीकाल में भवन निर्माण कला भी अत्यन्त उन्नत शिखर पर पहुँच गई थी। मध्यभारत, तथा गोरखपुर प्रान्त के शिलालेख उसी के समय में लिखवाये गये। कुतुब-मीनार के समीपस्थ लोहे की लाट विक्रमादित्य के समय की धातु कला का ज्वलन्त

उदाहरण हैं। अजन्ता की गुफाओं की चित्र कला विक्रमादित्य के समय की चित्रकला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है।

गुप्तकाल पर दृष्टिपात :—इतिहासवेत्ता तथा विद्वन्मडली गुप्त काल को स्वर्ण युग पुकारने में पर्याप्त रूप से सहृदयता प्रदर्शित करते हैं। इस युग की उच्च सभ्यता, धन धान्यता एव सर्वतोन्मुखी उन्नति इसके पुष्ट प्रमाण हैं। जिस ओर दृष्टिपात कीजिये गुप्त काल उसी दिशा में अद्वितीय प्रतीत होता है। अतः इस युग को यदि स्वर्ण युग कहा जावे तो इसमें किंचितमात्र भी अत्युक्ति नही है।

शासन प्रबन्ध :—गुप्तवंशीय सम्राट वास्तव में उच्च कोटि के शासक थे उन्होंने भारतवर्ष को अराजकता स मुक्त कर यहाँ एक उत्कृष्ट शासन व्यवस्था का सूत्रपात किया। इतिहास से प्रकट होता है कि आरम्भ से गुप्त वंश का कोई साम्राज्य न था। केवल बीज रूप में मगध प्रदेश की छोटी सी रियासत पर श्री गुप्त राज्य करता था। परन्तु धीरे २ गुप्त वंशीय सम्राटो ने समस्त उत्तरी भारत तथा तदोपरान्त दक्षिणी भारत पर भी अपनी विजय पताका फहराकर एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया। यही नही वरन् जितना भी भाग उन्होने अपने आधिपत्य में रक्खा उसमें वे एक उच्च शासन व्यवस्था रखने में भी सफल हुये। मौर्य साम्राज्य के पतन से उन्होंने अनुभव कर लिया था कि भारत जसे विशाल देश पर साम्राज्य स्थापित करना समय के प्रतिकूल था। वर्तमान यातायात के साधनों के अभाव में इतना विस्तृत साम्राज्य एक सूत्र में संकलित रखना असम्भव सा ही था। अतः उन्होंने सुदूर दक्षिण पर विजय प्राप्त करके भी उससे कर लेकर स्वतन्त्र छोडना ही अधिक उचित समझा और शेष भाग पर समुचित व्यवस्था स्थापित कर भारतवर्ष के इतिहास में अमर हो गये। वे पूर्णतया समझते थे कि साम्राज्य की विशालता का इतना महत्व नही जितना कि विजित देश पर सुप्रबन्ध एवं समुचित व्यवस्था का। इस महान् कार्य में गुप्त राजा सर्वथा सफल सिद्ध हुये। उनकी इस राजनीति पटुता के फलस्वरूप उनके समस्त साम्राज्य में सदैव शान्ति रही और देश समृद्धि-शाली ही होता गया। यह अन्य कारणों में से एक प्रमुख कारण है जो गुप्त काल को स्वर्ण युग कहलाने का अधिकारी बनाता है।

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता :—गुप्तवंशीय सम्राटो ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर अधिक जोर दिया। उन्होंने साम्राज्य की सुदृढ़ता के स्तम्भ गुप्तचर विभाग को भी समाप्त कर दिया। इस प्रकार जनता एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में तथा पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने में पर्याप्त रूप से स्वतन्त्र हो गई। मौर्य कालीन गुप्तचर विभाग को तो उन्होने समाप्त किया ही साथ २ एक स्थान से दूसरे स्थान

तक जाने में जो पासपोर्ट लेने की प्रथा थी उसको भी रद् कर दिया। ल यह हुआ कि साधारण जनता पक्षी की भांति स्वतन्त्र थी। जहां चाहे जा सकती थी जिससे चाहे सम्बन्ध स्थापित कर सकती थी। जनता ने इस प्रकार पारस्परिक घनिष्टता बढने लगी। इससे लोगो में प्रेम, श्रद्धा, सहानुभूति एव सामीप्य अधिकाधिक होते गये और उन्होने वास्तविक स्वतन्त्रता तथा प्रसन्नता का अनुभव किया। हम देखते हैं कि जब कोई भी साम्राज्य गुप्तचर विभाग एव पासपोर्ट प्रथा के बिना नही चल सकता और न चला, और मुख्य रूप से उस अविश्वसनीय काल में तब तो गुप्त-वशीय सम्राटो का इन दोनों साम्राज्य-स्तम्भो का उन्मूलन करना तथा फिर भी शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से सचालित करते रहना उनको शासन प्रबन्धको की प्रथम कोटि में खडा कर देता है।

न्याय :—मौर्य वश के राज्य काल में फौजदारी का नियम बहुत कठोर था। छोटे २ अपराधो पर अ ग भग कर दिये जाते थे। इसमें सन्देह नही कि ये दण्ड अनुकरणीय थे अत जनता के हृदय में भय बैठ जाता था और अपराधो की सख्या कम हो जाती थी। परन्तु भय के बल पर अपराधो का कम करना उचित नही था। गुप्तवशीय सम्राटो ने फौजदारी सम्बन्धी अनुशासनो को कुछ ढीला किया। जनता में जाग्रति पैदा की और दुष्कर्मो से घृणा उत्पन्न करवाई। इस प्रकार जनता का आध्यात्मिक स्तर उच्चतर हो गया और अपराधो में वास्तविक न्यूनता आ गई। अत हम देखते हैं कि यदि मौर्यवश का अनुशासन कठोर नियन्त्रण पर अवलम्बित था तो गुप्तवश का अनुशासन हृदय की प्रेरणा का मूल रूप था। प्राय जुर्माने की सजा दी जाती थी। जो अपराध एव अपराधी की स्थिति के अनुसार होती थी। अ ग भग के दड, जो बहुत बडे राजनैतिक अपराधो के लिए थे, कदाचित ही किसी को मिले हो। गुप्तवशीय सम्राटा न मानव जीवन को सुधार की ओर अग्रसर किया। विश्वास देकर विश्वास पाया और साथ में राज्य के प्रति स्वामिभक्ति भी प्रजा में अधिक बढती गई।

करों की न्यूनता :—गुप्तकाल में कर बहुत साधारण था। फलस्वरूप प्रजा अधिक समृद्धिशाली हो गई। भूमिकर तथा आय कर राजकीय आय का विशेष साधन था। वह भी इतना थोडा था कि जनता को कभी भारस्वरूप प्रतीत न हुआ। राज कर्मचारियों को वेतन दिया जाता था अतः वे जनता का शोषण नही कर सकते थे। जनता का शोषण तो उन्होंने जागीर व प्रान्त पाने की अवस्था में अधिक किया इस जागीर प्रथा को गुप्तवशीय राजाओ ने नष्ट कर दिया।

धार्मिक स्वतन्त्रता :—जहां तक धार्मिक स्वतंत्रता का सम्बन्ध है गुप्तकाल में वह पूर्णतया प्राप्त थी। किसी जाति तथा धर्म विशेष के अनुयायियो को कोई

भी विशेष अधिकार न थे और न किसी भी धर्म पर कोई कर आदि का प्रतिबन्ध था, न किसी धर्म को किसी भी प्रकार की क्षति पहुँचाई जाती थी। राजपद बिना
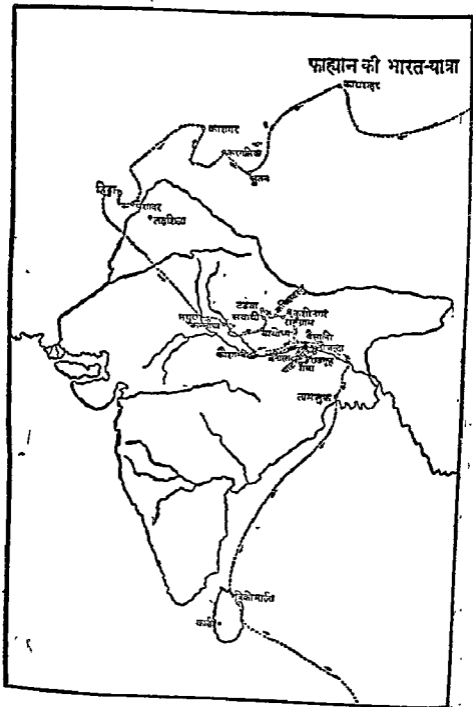
किसी भेदभाव के प्रत्येक धर्मावलम्बी को मिलते थे। योग्यता ही सर्वप्रथम आधार था। इसी पर पद प्राप्ति निर्भर थी। विक्रमादित्य का प्रधान सेनापति 'अमरकर्दन' बौद्ध था। उसके अन्य मंत्री शैव थे जब कि राजा स्वयं वैष्णव धर्म का अनुयायी था। अन्य गुप्तवंशीय सम्राटों के समय में भी यही धार्मिक स्वतन्त्रता रही। धर्म व्यक्तिगत उन्नति में बाधक नही था।

फाह्यान विवरण:—चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय चीनी यात्री फाह्यान भारत आया। वह समस्त भारतवर्ष में घूमा परन्तु उसके साथ अथवा उसके समक्ष कोई भी दुर्घटना घटित न हुई, इससे प्रगट होता है कि मार्ग अत्यन्त सुरक्षित थे—फाह्यान के विवरण से पता चलता है कि शान्त तथा समृद्ध वातावरण में जनता पवित्र जीवन व्यतीत करती थी। झूठ बोलना, पाप करना, चोरी इत्यादि करना बन्द थे। प्रजा मांसाहारी न थी। जीव हत्या नाम मात्र को भी नही थी। जनता शराब, प्याज-लहसुन इत्यादि से परहेज करती थी। मांस की दुकानें तक देखने में नही आती थी। यह सब बातें जीवन की सुख एवं शान्ति की प्रतीक हैं। जनसाधारण अपने कर्मो को पाप भोगने के भय से पाप नही करते थे। अतः हम देखते हैं कि नियम ढीले होने पर भी प्रजा में हार्दिक प्रेरणा सजग हो उठी थी। और पाप समाप्त हो गये थे।

राजाओं की दान शीलता एवं उदारता:—गुप्तवंशीय सम्राट अत्यन्त दान-शील और उदार चरित्र वाले थे। फलस्वरूप देश में सुख शान्ति एवं समृद्धि का प्रसार हुआ। ब्राह्मणों, विद्यार्थियों एवं अन्य प्रत्येक प्रकार की संस्थाओं को उदारतापूर्वक दान एवं सहायता प्रदान की जाती थी। बौद्ध, विहार, तथा भिक्षुक वर्ग दान का विशेष भाग प्राप्त करते थे। उन्हें वस्त्र, भोजन एवं निवासस्थान की कमी कभी अनुभव नही हुई। सुविधा के लिये सड़कों पर विश्रामगृहों का निर्माण कर उन्होंने यात्रियों को विशेष सुविधा प्रदान की। समस्त राज्य में नि.शुल्क शिक्षा का प्रबन्ध था। नागरिकों की ओर से राज्य के प्रमुख नगर में एक उच्च कोटि का औषधालय था जहाँ दीन तथा असहाय मनुष्यों की चिकित्सा बिना पैसे की जाती थी। रोगियों के वस्त्र, भोजन स्वच्छता आदि की व्यवस्था भी औषधालय की ओर से ही होती थी। इस प्रकार प्रतीत होता है कि गुप्त काल अपनी उदारता में आधुनिक युग से भी कहीं अधिक आगे बढ चुका था।

साहित्य, संगीत तथा कला कौशल:—कला, साहित्य, विज्ञान तथा आयुर्वेदशास्त्र इत्यादि की उन्नति गुप्तकाल की सर्वोन्मुखी उन्नति के ज्वलन्त उदाहरण हैं। ब्राह्मण धर्म की उन्नति से जन समुदाय की प्रवृत्ति संस्कृत साहित्य के पठन पाठन तथा उसमें खोजपूर्ण कार्य करने की ओर झुकी। फलस्वरूप कालिदास

जैसे विश्व कवि का प्रादुर्भाव हुआ। संस्कृत साहित्य का सर्व सुन्दर व सर्वोच्च नाटक 'शकुन्तला' तथा विशाख दत्त का मुद्रा राक्षस इसी युग की देन है। वायु पुराण जो पौराणिक साहित्य में सर्व प्रथम स्थान रखता है गुप्तकाल में ही लिखा गया। इस प्रकार कवियों और लेखकों को प्रोत्साहन देकर गुप्त सम्राटों ने अपनी ख्याति में चार चाँद लगाये। ज्योतिष एवं गणित शास्त्र ने इस युग में पर्याप्त उन्नति की। आर्य भट्ट, वराहमिहर और ब्रह्मगुप्त ने इन विषयों पर सूर्य सिद्धान्त, सिद्धान्त शिरोमणि जैसे प्रख्यात ग्रन्थ लिखकर विज्ञान कोष को समृद्धिशाली बना दिया। आयुर्वेदशास्त्र का जन्मदाता महारथी धन्वन्तरि इसी युग में अवतरित हुआ। गुप्तवंशीय सम्राटों का ध्यान साहित्यिक क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं था वरन् कला कौशल एवं संगीत शास्त्र पर भी उनकी प्रतिभा पूर्णरूप से झलक पड़ी थी। सम्राट् समुद्रगुप्त स्वयं उच्चकोटि का कवि तथा संगीत में पारंगत था। उसके सिक्के उसकी वीणा-प्रियता के द्योतक हैं।

**उपसंहार** :—गुप्त सम्राट् एक से एक योग्य राजनीतिज्ञ, सफल योद्धा व उच्च प्रबन्धक थे। वे अपनी धार्मिक सहिष्णुता तथा उदार हृदयता के कारण लोकप्रिय हुए। उनकी नीति जनता को सर्वथा हृदयग्राही हुई और वह अपने सम्राटों में वात्सल्य प्रेम का अनुभव कर अपने आपको अधिक सुखी तथा आनन्दमय अनुभव करती थी। गुप्तकाल वास्तव में भारतवर्ष का स्वर्णयुग था। जीवन के प्रत्येक पहलू का सुविकास इसका देदीप्यमान उदाहरण है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, सुख, शान्ति, समृद्धि, धनप्राचुर्य, धार्मिक एवं सामाजिक समुचित व्यवस्था, साहित्य, संगीत, कला, व्यवसाय इत्यादि सब का सर्वोत्कृष्ट विकास इस युग को स्वर्णयुग कहलवाता है। गुप्तकाल भारतीय इतिहास का सतयुग है। इसमें कोई सन्देह नहीं। हुये। यद्यपि गुप्त सम्राटों ने ऐसे कार्य किये थे जिनसे कोई भी साम्राज्य स्थिर नहीं रह सकता। गुप्तचर विभाग को समाप्त करना, पासपोर्ट प्रथा को बन्द करना, दण्ड अत्यन्त ढीले देना, कर न्यून कर देना गुप्त साम्राज्य को अराजकता की भभकती भट्टी में स्वाहा कर सकते थे। किन्तु गुप्त सम्राटों ने आदर्श स्थापित किया। आने वाले राजाओं का मार्ग प्रदर्शन किया कि मानव में विश्वास रक्खो, विश्वास पाओगे। प्रश्न यह उठता है कि क्या गुप्तकाल में जब ये उपरोक्त बन्धन शृंखलायें तोड दी गई थीं अराजकता नहीं हुई थी। इतिहास साक्षी है कि ऐसा कोई दृष्टान्त नहीं। जनता का जीवन स्तर बढाने में चरित्र उच्चतर करना मुख्य है। गुप्तवंशीय राजाओं ने वैसा ही किया। अतः गुप्त साम्राज्य उत्थान की ओर अग्रसर होता रहा।

वैदिक पुनर्जीवन :—गुप्तकाल वैदिक पुनर्जीवनकाल कहा जा सकता है। गुप्त मे पूर्व जितने भी वंश हुये उनमें या तो विदेशी थे या ऐसे भारतीय वंश थे जो ब्राह्मण धर्मावलम्बी न होकर बौद्ध तथा जैन मतावलम्बी हो गये थे। इस प्रकार गुप्तवंश से पूर्व लगभग २०० वर्ष तक इतिहास में ब्राह्मण धर्म का ह्रास सा प्रतीत होता है गुप्तकाल में इस धर्म की पुनः स्थापना हुई। यही नही वरन् जितने भी कार्य हुये वे सब हिन्दू धर्म द्वारा ही नियन्त्रित किये गये। इस दृष्टि कोण से गुप्त काल भारतीय इतिहास में एक नवीन युग का तो नही वरन् पुराने ही युग का पुनः संस्थापक कहा जा सकता है। प्रायः प्रत्येक वैदिक ग्रंथ में फिर वैदिक संस्कृति का संचार हुआ गुप्तवश से पूर्व वंशजो में से किसी ने यूनानी कला को अपनाया है तो किसी ने गाधार कला को। परन्तु गुप्त सम्राटो ने वेद निहित धर्म एवं साहित्य, संगीत और कला का भारतीयकरण किया। अत. गुप्तवंश पुन स्थापन काल अथवा वैदिक पुनर्जीवन काल कहा जा सकता है।

प्रथाओं का भारतीयकरण :—सर्वप्रथम अश्वमेघ यज्ञ को ही ले लीजिये। गुप्तवंशीय सम्राटो ने इसकी पुनरावृत्ति की। बौद्ध काल से लेकर गुप्तकाल तक अनेक महान सम्राट हुये जिन्होंने समस्त भारतवर्ष पर अपनी विजय पताका फहरा दी परन्तु वैदिक संस्कृति के अनुसार अश्वमेघ यज्ञ कर उन्होंने अपने आपको चक्रवर्ती सम्राट घोषित नही किया। समुद्रगुप्त ने यह प्रथा पुन. बड़े समारोह के साथ सम्पन्न की और वैदिक संस्कृति को पुनर्जन्म दिया।

धार्मिक क्षेत्र :—दूसरा परिवर्तन धर्मक्षेत्र में हुआ। यह परिवर्तन भी कोई नवीन नही था। धार्मिक क्षेत्रो में गुप्तवशीय सम्राटो ने वैष्णव धर्म स्वीकार कर वैदिक धर्म को पुनः राज आश्रय दिया—फलस्वरूप बौद्ध धर्म की महायान शाखा पर जो विदेशी छत्रछाया में फल फूल रही थी, तुषारपात हुआ, और कृष्णोपासना की पुनरावृति की गई। इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में भी वैदिक सस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ। वैदिक संस्कृति को जो बौद्ध काल में मृतप्रायः हो चुकी थी, गुप्तवशीय सम्राटो ने नव जीवन प्रदान किया। अशोक, कनिष्क जैसे महान् सम्राटो ने बौद्ध धर्म को राजधर्म बनाकर तन, मन धन से उसके प्रसार में प्रयत्न किये। अन्य धर्मों का विरोध तो उन्होंने नही किया परन्तु उन्हें क्षति अवश्य पहुँची। गुप्तवशीय सम्राट यद्यपि वैष्णव धर्म के अनुयायी थे, तो भी उन्होंने इस धर्म को राज धर्म नही बनाया। यही नही उन्होंने अन्य धर्मों के प्रति भी उतनी ही उदारता प्रदर्शित की जितनी की वैष्णव धर्म के प्रति थी। राजपद को धार्मिक भेद भाव से मुक्त कर उसे उन्होंने धर्मावलम्बियो के लिए समान रूप से खोल दिया था। विक्रमादित्य का मन्त्री शैव तथा सेनापति बौद्ध धर्म का अनुयायी था जब कि वह स्वय वैष्णव धर्म का अनुयायी

था। इस प्रकार गुप्तवंशीय सम्राटों ने धार्मिक सहिष्णुता की पुनरावृत्ति की और उनकी छत्रछाया में सब धर्म वैष्णव, शैव, शक्ति, बौद्ध, जैन, इत्यादि अपना स्वरूप धारण कर पुनः जीवित हो उठे। उस समय के मन्दिरों में इन्हीं देवताओं की मूर्ति स्थापना इसका प्रतीक है।

कला का पुनः भारतीय करण :—धार्मिक जाग्रति के फलस्वरूप भारतीय कला भी जीवित हो उठी। प्रत्येक धर्म के अनुयायियों ने अपने इष्ट देव के मन्दिर व उनकी मूर्ति स्थापित करने में कला का विशेष प्रदर्शन किया। फल यह हुआ कि विष्णु, शिव काली, बुद्ध इत्यादि की अनेक मूर्तियाँ एवं मन्दिरों का भिन्न २ स्थानों पर निर्माण किया गया। उदाहरणार्थ ग्वालियर के निकट पथारी नामक स्थान पर भगवान कृष्ण का जन्म दृश्य भारतीय कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है। इसमें कृष्ण को अपनी माता के समीप विश्राम करते हुये प्रदर्शित किया गया है और पांच सेविकायें उनकी सेवासुश्रूषा में सादर खडी दिखाई गई हैं। इलाहाबाद जिले के कौशाम्बी नामक स्थान पर शिव तथा पार्वती की पत्थर की मूर्ति आश्चर्य उत्पन्न करती है। रोहिली का दुर्गा मन्दिर जिसमें शिवताडण्व नृत्य करते हुए दिखाये गये हैं हिन्दू काल की श्रेष्ठता के द्योतक हैं। यही नहीं नागौर में भूमेरा तथा झाँसी में देवगढ और भीतर गाँव के शिव मन्दिर अपने उच्च शिखरों सहित देखने योग्य हैं। मन्दिर निर्माण कला गुप्तवंश की अद्भुत देन प्रतीत होती है। क्योंकि समस्त उत्तरी भारत में तब से अब तक मन्दिर निर्माण कला में कोई संशोधन नहीं हुआ। मन्दिर उसी प्रकार ऊँचे शिखरों सहित बनते रहे हैं। तत्कालीन मूर्तियाँ प्रकट करती हैं कि इस काल में भारतीय कला कुशान वंशीय विदेशी प्रभाव से मुक्त हो चुकी थी। सच्चिदानन्द की प्राप्ति भारतीय कला का लक्ष्य रहा है अतः इस काल की सभी मूर्तियाँ प्रसन्न वदना हैं। बुद्ध भगवान् की मूर्ति में शान्ति, आत्मचिन्तन, तथा पवित्र भावनाओं की अभिव्यक्ति विशिष्ट आभा के साथ हुई है। मूर्तियो को देखने मात्र से ही उनमें श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। विशेषज्ञों के अनुसार सार्व-भौम-कला संसार को भारतीय कला की अद्वितीय देन है। अजन्ता की गुफा में गुप्त काल की कला ही सर्व-श्रेष्ठ है। चित्रण से जीवन चमकता है। सौंदर्य वर्णन नहीं किया जा सकता। यही नहीं गुप्त सम्राटों की मुहरें तथा सिक्के अपने उत्कृष्ट चित्र कला द्वारा प्रदर्शित करते हैं कि—किस प्रकार कला ने प्रत्येक क्षेत्र में विकसित होकर सामाजिक जीवन को सौन्दर्य एवं मनोहरता प्रदान की थी।

धातु ज्ञान :—चन्द्रगुप्त की लोहे की लाट भी वर्तमान देहली के समीपस्थ महरोली में स्थित है यह कच्चे लोहे की बनी हुई है। यद्यपि इसे १५०० वर्ष से

अधिक व्यतीत हो गये किन्तु अब तक जग लगने का नाम नही। ह्वानसांग ने बुद्ध भगवान की ताम्र मूर्ति ७० फीट ऊँची देखी। ये सब उदाहरण पुष्ट करते हैं कि गुप्त काल में धातुज्ञान पर्याप्त उत्कर्ष पर पहुँच चुका था।

**साहित्य का पुनर्जन्म** :—ब्राह्मणधर्म की पुनरावृति ने सस्कृत साहित्य को नवजीवन प्रदान किया। अब तक पाली तथा प्राकृत भाषा का बोल बाला था। सस्कृत प्राय मृत अवस्था में थी। किन्तु अब उसका विकास होता गया। जैसा कि पहिले उल्लेख किया गया है अनेको ग्रन्थों की रचनायें हुई। पुराण तथा-स्मृतियाँ निर्मित हुई। विश्व कवि कालिदास की अमरकृति शकुन्तला, मेघदूत, रघुवश कुमार सम्भव आदि इसी युग की महान देन हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुप्तवशीय राजाओ ने पुरान ब्राह्मण धर्म के अनुसार ही धर्म, कला, सगीत इत्यादि को पुनर्जन्म दिया। विदेशीपन भारत सस्कृति से दूर कर अपनी स्वय की सम्पत्ति से उसे समृद्धिशाली बनाया।

**कुमार गुप्त** :—४१३ ई० मे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की मृत्यु होगई। उसके बाद उसका पुत्र कुमारगुप्त गद्दी पर बैठा। उसने गुप्त साम्राज्य को सभाले रखा। परन्तु अपने जीवन के अन्तिम दिनो मे वह हूणों के आक्रमणो से चिंतित रहा।

**स्कन्दगुप्त** :—४५५ ई० में कुमारगुप्त का देहान्त होगया और उसका पुत्र स्कन्दगुप्त गद्दी पर बैठा—उसने हूणो से निरन्तर युद्ध किया परन्तु इन युद्धो मे गुप्त साम्राज्य की आर्थिक दशा खराब हो गई जिससे इस वश का पतन होता दिखाई देने लगा—

**अंतिम गुप्त राजा** :—४६७ ई० में स्कन्दगुप्त मर गया—इसके बाद एक के बाद दूसरा राजा गद्दी पर बैठा—परन्तु वे राज्य को न सभाल सके—

## प्रश्न

१—गुप्त वश का सस्थापक कौन था उसके विषय मे तुम क्या जानते हो ?
२—समुद्रगुप्त का चरित्र चित्रण करो ?
३—चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के विषय में तुम क्या जानते हो ?
४—गुप्त काल में क्या साहित्यिक तथा सास्कृतिक प्रगति हुई ?
५—गुप्तकाल को स्वर्ण युग कहा जाता है। क्यो ?
६—फाह्यान कौन था उसने भारत के सम्बन्ध में क्या लिखा है ?
७—गुप्तकाल पुनर्जीवन काल क्या कहलाता है ?
८—अन्तिम शासको पर एक टिप्पणी लिखो ?

---

## अध्याय १४

# हूण

**संक्षिप्त परिचय** :—मध्य एशिया के 'स्टेप' नामक घास के प्रसिद्ध मैदान में रहने वाली एक हूण जाति थी। जन संख्या में वृद्धि तथा खाद्य पदार्थों में कमी के कारण इन लोगों को नये प्रदेशों की आवश्यकता प्रतीत हुई, और वे वहीं से नये प्रदेशों की प्राप्ति तथा उनमें बसने के उद्देश्य से अपनी जन्मभूमि त्याग कर निकल पड़े। ये लोग दो भागों में विभक्त हो गये। एक भाग तो योरुप की ओर चला गया तथा दूसरा भाग ४३४ ई० में फारिस पर विजय प्राप्त करता हुआ भारत की ओर अग्रसर हुआ। मार्ग में पहिले उन्होंने कुशाण वंशीय गांधार राज्य को समाप्त किया और ४५८ ई० में भारत की ओर बढ़े। परन्तु गुप्त सम्राट स्कन्दगुप्त ने उनको परास्त कर भारतवर्ष से बाहर खदेड़ दिया।

**तूरमाण का आक्रमण** :—दस वर्ष पश्चात ४६८ ई० में हूणों ने पुनः भारत की ओर प्रस्थान किया। तूरमाण के सेनापतित्व में सिंधु नदी पार करके वह गांधार में प्रविष्ट हुए। शीघ्र ही उन्होंने तक्षशिला तथा पुरुषपुर (पेशावर) को जीत लिया। सैंकड़ों बौद्ध विहारों तथा मन्दिरों को नष्ट करती हुई, तथा सैंकड़ों अहिंसा वादी बौद्धों का वध करती हुई हूण जाति मालवा पर आ धमकी। जो उनके सामने आता उनकी बर्बरता का शिकार बनता। नगर के नगर, ग्राम के ग्राम अग्नि में भस्म कर दिये गये। प्रजा प्राण बचाकर पूर्व में मगध की ओर शरण लेने को भाग उठी। इस समय मगध के सिंहासन पर गुप्त वंशीय सम्राट् नरसिंह गुप्त बालादित्य आरूढ़ था। वह अहिंसावादी बौद्ध सिद्धान्तों से दीक्षित होकर बौद्ध कला के विकास में तन्मय था। जनता की रक्षा का जो प्रत्येक सम्राट् एवं सरकार का प्रथम कर्त्तव्य है, उसे तनिक भी ध्यान न था। उसके अतिरिक्त भारत में कोई ऐसा प्रभाव शाली सम्राट् न था जो खण्ड राज्यों को एकत्रित कर इस बर्बर जाति का सामना करता। फल यह हुआ कि हूण एक के बाद दूसरे को हराते हुए उज्जैन तक पहुँच गए। अगणित बाल एवं बालाओं पर अत्याचार ढाये गये। परन्तु अहिंसा के सैद्धान्तिक युद्ध में व्यस्त हिन्दुओं ने इसकी कोई विशेष परवाह न की। परिणाम यह हुआ कि गुप्त साम्राज्य भी अस्तव्यस्त हो गया। तूरमाण ने मालवा प्रदेश तक समस्त उत्तरी भारत पर अधिकार कर लिया, और हिन्दु-पद्धति के अनुसार उसने स्वयं को महाराजाधिराज की पदवी से विभूषित किया। वल्लभी वंशीय भानुगुप्त तथा अन्य निकटवर्ती राजाओं ने उसका आधिपत्य स्वीकार कर उसको कर देना स्वीकार कर लिया।

हिन्दुग्रा के सम्पर्क में आने से तूरमाण की बर्बरता कुछ कम होती गई। परन्तु उसके पुत्र महिर कुल को उसका यह नैतिक पतन प्रतीत हुआ। अत पिता और पुत्र में मतभेद हो गया। महिरकुल परास्त होकर या स्वत उत्तर की ओर चला गया।

**महिर कुल:**—अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त महिरकुल ५१० ई० से ५४० ई० तक शाकल (स्यालकोट) को अपनी राजधानी बनाकर राज्य करने लगा। काश्मीर भी उसके साम्राज्य में सम्मिलित था। कहा जाता है कि उसने लंका पर भी आक्रमण किया था जो सम्भवत जल मार्ग से हुआ होगा। इस समय हूण साम्राज्य बहुत विशाल था और हिरात के निकट बामियान, बलख, व साकल ( स्यालकोट ) उसके मुख्य केन्द्र थे।

**महिर कुल का चरित्र:**—महिरकुल अत्यन्त भ्ठा, असभ्य बर्बर व पाशविक वृत्तियों का दास था। उसके शासन काल में बर्बरता पराकाष्ठा पर पहुँच गई। जिससे हिन्दू हृदय जर्जर हो गया। समस्त हिन्दू जाति को ठेस लगी। मध्य भारत के वीर राजा यशोवर्मन के प्रयत्न स्वरूप हिन्दू जनता नरसिंह गुप्त बालादित्य की अध्यक्षता में हिन्दुत्व की रक्षा के लिए प्राणार्पण करने को उद्यत हुई। शाकल नगरी के समीप घमासान युद्ध हुआ। बर्बरहूण महिर कुल परास्त हुआ। और इस प्रकार देश उसके क्रूर करो से मुक्त हो गया। वह काश्मीर भाग गया जहाँ ५४० ई० में उसका देहान्त हो गया।

**एक लहर.**—हूणो की पाशविक वृत्ति का शिकार समस्त मध्य एशिया हो चुका था। उनकी नृशसता सबको असह्य थी। थोडे ही काल पश्चात् समस्त मध्य एशिया में हूणो के विरुद्ध एक लहर सी फैल गई। ईरानी तथा तुर्क लोगो की सुसगठित एव सम्मिलित सेनाओ ने हूणो को पूर्णतया परास्त कर उनकी शक्ति को सर्वथा छिन्न भिन्न कर दिया। हूणो का पतन हमें बताता है कि प्रत्येक उत्थान का पतन भी अनिवार्य है। अति सर्वत्र ही वर्जित है।

**भारत में स्थित हूण'**—मध्य एशिया मे शक्ति नाश होने के कारण भारत वर्ष में रहने वाले हूणो को अपनी जन्म भूमि से प्राप्त होने वाली सहायता बन्द हो गई। अत भारतीय राजाओ ने जिनमें हर्ष वर्धन का पिता प्रभाकर वर्धन विशेष उल्लेखनीय है, उनके भारतीय साम्राज्य को सर्वथा नष्ट भ्रष्ट कर दिया। उसने पुन हिन्दू साम्राज्य स्थापित कर भारतवर्ष को हूण सकट एव बर्बरता से मुक्त कर दिया।

**हूणों का भारत पर प्रभाव:**—हूण जाति यद्यपि शासक जाति के रूप में सर्वथा लुप्त हो गई तो भी इस अल्प कालीन राज्य में उसने भारतीय ...

पर एक गहरी छाप छोड़ी। एक शताब्दी पर्यन्त उनके निरन्तर आक्रमणों के कारण गुप्त साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया। उसकी पूर्ति करने के लिए कोई केन्द्रीय राज्य स्थापित नहीं हो सका अत: समस्त उत्तरी पश्चिमी भारत छोटी छोटी रियासतों में विभक्त हो गया। इनमें वरुक, मौखरी, तथा मैत्रक प्रमुख थे। छोटे २ राज्यों की स्थापना से ईर्ष्या, वैमनस्य, आदि दोष प्रबल हो गये। फलस्वरूप हिन्दू जाति का नैतिक पतन हो गया और वह अधोगति की ओर अग्रसर हो गई।

इसके अतिरिक्त हूणों के आगमन से और उनके सम्पर्क से आर्य सभ्यता को बड़ी ठेस लगी। आर्य राजनैतिक विचार धारा विशृंखलित हो गई उसका प्रजातन्त्रवादी अङ्ग समाप्त हो गया। जन सभा तथा राज्य समिति की शक्ति दिन प्रति दिन दुर्बल होती गई। हिन्दू राजाओं में स्वेच्छाचार एवं निरंकुशता का प्रादुर्भाव हुआ। यह स्वेच्छाचार, निरंकुशता और जनता की उचित से उचित माँग को भी ठुकराना तथा उसकी अवहेलना करना उसी बर्बर हूण जाति की देन है। अन्यथा आर्य-सत्ता तो उत्तरदायी राजसत्ता थी। स्वेच्छाचार तथा निरंकुशता को तो उसमें कहीं स्थान ही नहीं था। बर्बर के सम्पर्क में आने के कारण आर्य भी अपने पथ से डिग कर स्वेच्छाचार एवं निरंकुशता को अपनाकर पाशविक वृतियों के दास बन गए।

यही नहीं और भी बहुत से प्रभाव हूणों के भारत पर पड़े हैं। साम्राज्य का ह्रास होने के पश्चात् हूण सरदारों ने यत्र तत्र दुर्ग बना लिए और समयानुकूल किसी प्रभावशाली निकटवर्ती राज्य का आधिपत्य स्वीकार कर रहते रहे। अवसर पाकर उन्होंने भारतीय आर्यों से वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित कर लिये। इस प्रकार वे हूण यहाँ के लोगों में मिल जुल गये। इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान भारतीय जातियों में विदेशी रक्त का सम्मिश्रण हो गया। वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा हूण क्षत्रियों से मिल गए। इस प्रकार भारतीय आर्यों का शुद्ध रक्त स्थाई न रह सका। अतः अपने आपको बिल्कुल अछूता समझना और एक दूसरे से ऊँचा मानना केवल एक ढोंग तथा भ्रममात्र है।

इस हूण सम्पर्क का एक और भी बुरा प्रभाव भारतीय जनता पर पड़ा वह यह है कि उच्चकुल के हिन्दुओं ने अपने रक्त की पवित्रता तथा सभ्यता की रक्षा के हेतु अपने आपको इस रक्तमिश्रण से प्रथक रक्खा और वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित न किये। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने अपने वर्ग के विवाह इत्यादि के नियम इतने कठोर कर दिये कि उनके फलस्वरूप यहाँ की जाति व्यवस्था की संकुचितता आगे चलकर हिन्दुओं के पतन का मुख्य कारण बनी।

उपसंहार'—हूण क्रूर जाति थी किन्तु भारत में आकर इन्होंने स्वय को यहीं के वातावरण में मिला लिया। यद्यपि इनके सम्पर्क से भारत को हानियाँ ही अधिक पहुँची जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, किन्तु उनका हिन्दूधर्म में मिल जुल जाना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि हिन्दूधर्म उस समय बडा प्रगतिशील तथा सर्वग्राह्य था। इस गुण के अभाव ने ही आगे चलकर भारत को विषम समस्याओं में जकड दिया। रक्त की शुद्धता का तो कोई क्या प्रमाण दे सकता है किन्तु इतना अवश्य हुआ कि हिन्दुओं को एक अच्छी युद्ध प्रिय जाति मिल गई।

### प्रश्न

१—हूण कौन थे—उनका भारतीय इतिहास से क्या सम्बन्ध है?
२—तूरमाण तथा मिहिर कुल पर एक टिप्पणी लिखो?
३—हूण आक्रमणों का भारत पर क्या प्रभाव पडा?

---

## अध्याय १५

# ६०० ई० का भारत तथा हर्षवर्धन

वकतक वंश—गुप्तवश के समकालीन वशो में एक प्रमुख वश वकतक वश था। इस वश की स्थापना मध्यभारत में २५० ई० के लगभग 'विन्ध्य शक्ति' ने की। इसके पूर्वजो के विषय में कुछ परिचय प्राप्त नही। चौथी शताब्दी से लेकर छटी शताब्दी तक यह वश बहुत समृद्ध रहा, और इस वश के शासको ने अपने देश को सुन्दर २ मन्दिरो, भव्यभवनो, एवं चित्रकला के उत्कृष्ट नमूनों से सुसज्जित किया। अजन्ता की चित्रकारी में कुछ भाग इस वश के राजाओं का भी है। विन्ध्य शक्ति का पौत्र गौतमी पुत्र एक प्रभावशाली राजा हुआ है। इसने अपने समकालीन शक्तिशाली राजाओं से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपने वश को सम्मानित किया।

रुद्रसेन—गौतमी पुत्र के पौत्र रुद्रसेन द्वितीय का विवाह चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्त से सम्पन्न हुआ। गुप्त सम्राट की पुत्री से विवाह करना इस बात का द्योतक है कि वकतक वश में निश्चय ही समृद्धिशाली एव शक्तिशाली राजा हुए हैं। अपने उन्नति काल में वकतक वश एक विस्तृत साम्राज्य रखता था। उसमें उडीसा के कुछ भाग के अतिरिक्त मध्य प्रान्त, हैदराबाद तथा पश्चिमी तटवर्ती प्रदेश सम्मिलित थे। ६०० ई० के लगभग यह वश अपनी स्वतन्त्रता खो बैठा।

**मैत्रक वंश:**—काठियावाड के पूर्वी भाग में इस वंश का राज्य था। इस वश की स्थापना 'मैत्रक' नामक एक हूण सेनापति ने ४७० ई० के लगभग की। इसने 'बल्लभी' को अपनी राजधानी बनाया। जिसके नाम पर यह वंश तथा राज्य 'वल्लभी' राज्य के नाम से भी प्रख्यात हुआ। मैत्रक के पुत्र हिन्दू धर्म स्वीकार कर क्षत्रियों में सम्मिलित हो गये। उन्होंने महाराज एवं महाराजाधिराज की पदवी ग्रहण की। इस वंश के शासकों ने वल्लभी को अत्यन्त सुन्दर एवं रमणीक बनाने का भरसक प्रयत्न किया। यह वंश ७०० ई० तक राज्य करता रहा। इस वंश के राजाओं ने बहुत सी भूमि धर्मार्थ दान की। इस उदारता के कारण वल्लभी राज्य सर्व प्रसिद्ध हो गया।

**गुर्जर वंश:**—यह वंश भी हूण रक्त से सम्बन्धित था। इस वंश ने अपनी सत्ता राजपूताने में 'भीलमल' नामक स्थान पर स्थापित की थी और खम्भात की खाडी के भड़ौच नामक नगर तक अपना साम्राज्य फैलाया।

**मालवा में यशोधर्मन:**—यशोधर्मन की संरक्षता में मालवा प्रभावशाली हो उठा। यशोधर्मन के पूर्वजों और उत्तराधिकारियों का इतिहासकारों को ठीक २ परिचय नहीं मिलता। परन्तु यह स्पष्ट है कि यशोधर्मन स्वयं एक बडा प्रभावशाली सम्राट हुआ है। उल्लेख आ चुका है कि उसने महिरकुल को परास्त कर हूणों की शक्ति को बिल्कुल क्षीण कर दिया था। और इस प्रकार भारतीय इतिहास में अपना नाम अमर कर गया। उसने अपनी विजय की स्मृति में 'मन्द सौर' में तीन शिलालेख खुदवाये। उन शिलालेखों से विदित होता है कि वह एक प्रभावशाली शासक था। उसने समस्त उत्तरी भारत तथा ब्रह्मपुत्र से पश्चिमी घाट तक अपना आधिपत्य स्थापित किया; यशोधर्मन के पूर्वजों तथा उत्तराधिकारियो का कुछ पता नहीं। अगर मन्दसौर के शिलालेख न मिलते तो उसके स्वयं का भी नाम इतिहास में न आता इस प्रकार न मालूम कितने और वीर नायक लुप्त हो गये होंगे और इतिहास उनके विषय में बिल्कुल भी जानकारी नहीं रखता हो।

**बंगाल:**—५४० ई० तक बंगाल में गुप्तवंश का आधिपत्य रहा। इसके पश्चात वहाँ के शासक शशांक ने स्वयं को वहाँ का स्वतंत्र राजा घोषित कर दिया। उत्तर में कन्नौज से दक्षिण में गंगेय तक उसने अपना राज्य बढा लिया'। उसने मालवा के राजा से सन्धि कर ली और हर्षवर्धन के ज्येष्ठ भ्राता राज्यवर्धन का छलपूर्वक वध करा दिया।

**कन्नौज:**—छटी शताब्दी के मध्य में कन्नौज में मौखरी वंश ने अपनी स्वतंत्र-सत्ता स्थापित की। इस वंश के वंशज प्राय. मगध के गुप्त वंशीय राजाओं से युद्ध में

संलग्न रहे इस वंश का चौथा राजा ईशान वर्मन बहुत प्रभावशाली राजा था। उसने महाराजाधिराज की पदवी धारण की। बंगाल और दक्षिण पर उसने सफल आक्रमण किये। उसके पुत्र सर्वमणि के समय में मौखरी वंश की शक्ति और भी अधिक बढ़ गई। आंध्र देश के अतिरिक्त अवध से मगध तक समस्त प्रदेश इसके अधिकार में आ गया। गृह वर्मन इस वंश का अन्तिम राजा था। उसका विवाह थानेश्वर के राजा प्रभाकर वर्धन की पुत्री राजश्री से हुआ था। मालवा के राजा ने युद्ध करते हुए ६०६ ई० में उनकी मृत्यु हो गई। उसके पश्चात उस वंश का अन्त हो गया।

**मगध:**—चन्द्रगुप्त प्रथम से सम्बन्धित गुप्त वंश की एक और शाखा, जिसको इतिहासकार उत्तरकालीन गुप्त वंश के नाम से पुकारते हैं छटी शताब्दी में मगध पर राज्य करती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि वह मालवा के रहने वाले थे और वहाँ से हर्षवर्धन के समय में वे लोग मगध में आ गये। ये लोग अधिकतर अवध तथा गया के मौखरी राजा कुमारगुप्त ईशान वर्मन से सदैव युद्ध करते रहे। उसने बंगाल तथा दक्षिण पर विजय प्राप्त कर अपने साम्राज्य की सीमाओं को और भी विस्तृत किया। उसके पौत्र महासेन गुप्त ने आसाम के राजा को परास्त किया और अपनी बहिन का विवाह थानेश्वर के राजा आदित्यवर्धन के साथ कर दिया। इस वंश के राजा जीवगुप्त के समय में चीन से एक राजदूत आया। उसने महायान धर्म ग्रन्थों के अनुवाद के लिए बौद्ध पंडितों से प्रार्थना की। फलस्वरूप प्रसिद्ध विद्वान 'परमार्थ' की सेवायें उसे अर्पित कर दी गई। परमार्थ चीन गया। वहाँ उसने बहुत से बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद किया उसका देहान्त भी चीन में ही हुआ। हर्षवर्धन के समय में मगध में यही लोग राज्य करते थे। परन्तु उस समय उन्होंने उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया। यह वंश लगभग ७७० ई० तक राज्य करता रहा।

**वर्धनवंश:**—छटी शताब्दी का सर्व विख्यात वंश वर्धन वंश था। इसकी स्थापना आदित्य वर्धन ने की। जब कन्नौज के मौखरी वँश तथा मालवा के गुप्त वंशीय शासक परस्पर युद्ध द्वारा अपनी शक्ति क्षीण कर रहे थे उस समय आदित्य वर्धन ने मालवा के राजा महासेन गुप्त की बहिन से विवाह कर अपनी शक्ति की अत्यन्त वृद्धि की। उसके पुत्र प्रभाकर वर्धन ने हूणों को परास्त कर सिन्ध, गुजरात और अन्य कई राज्यों पर अपना अधिकार स्थापित किया। उसने मालवा के राजा को भी हराया और उसके पुत्र कुमार गुप्त तथा माधव गुप्त को अपने यहाँ ले आया। प्रभाकर वर्धन के दो पुत्र राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन और एक पुत्री राज्य श्री थी। राज्यश्री का विवाह कन्नौज के मौखरी राजा गृह वर्मन से ६०५ ई० में सम्पन्न हुआ। इसी वर्ष प्रभाकरवर्धन का अचानक देहान्त हो गया। उस समय उसका ज्येष्ठ पुत्र

राज्य वर्धन हूणों से युद्ध करने में व्यस्त था। पिता के देहावसान का समाचार पाकर ज्योंही वह राज्याभिषेक के लिए थानेश्वर आया त्योंही उसे विदित हुआ कि मालवा के राजा देवगुप्त ने बंगाल के राजा शशांक की सहायता से ग्रहवर्मन पर आक्रमण कर उसे परास्त कर दिया है तथा उसकी हत्या भी कर दी है और राज्यश्री को वन्दी बना लिया गया है। उसने तुरन्त राज्यश्री को मुक्त कराने के लिए मालवा की ओर प्रस्थान किया परन्तु देवगुप्त को परास्त कर जब वह लौट रहा था तब शशांक ने उस पर आक्रमण कर उसको मार डाला। इस प्रकार वर्धन वंश को मालवा के गुप्त वंश एवम् बंगाल के राजा शशांक की संयुक्त शक्ति का सामना करना पड़ा। ऐसे कठोर काल में हर्षवर्धन केवल १६ वर्ष की अल्पायु में ही गद्दी पर बैठा।

हर्षवर्धन:—वर्धन सत्ता हर्षवर्धन के काल में सर्वोच्चशिखर पर पहुँच गई। प्रारम्भ में तो मालवा तथा बंगाल की संयुक्त शक्ति का सामना और राज्य श्री की पुनः प्राप्ति बहुत कठिन कार्य प्रतीत होते थे। परन्तु हर्षवर्धन के अदम्य साहस ने समस्त कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की। इतना ही नहीं वरन् समस्त उत्तरी भारत पर विजय पताका फहराकर उसने उसे एक सुप्रबन्ध की सबल श्रृंखला में बांध दिया। और एक बार पुनः केन्द्रीय शक्ति को सबल बना भारतवर्ष में सुदृढ शासन व्यवस्था का सूत्रपात किया।

हर्ष के समय की ऐतिहासिक सामग्री:—हर्ष के समय की ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त करने के पर्याप्त साधन उपलब्ध है। महा कवि बाणभट्ट द्वारा रचित 'हर्ष चरित्र' नामक पुस्तक इनमें सबसे मुख्य है। यह पुस्तक संस्कृत भाषा की सर्वश्रेष्ठ कृतियों मे है। संस्कृत साहित्य की जिसमे जीवनियों का अभाव है, यह कृति अमूल्य निधि है। इसमें हमे हर्ष के बाल्य जीवन तथा उसके राज्य की प्रमुख घटनाओं का पता चलता है। यद्यपि अलंकारिक भाषा के साथ २ कही कही कवि भावावेश में वास्तविकता से दूर पहुँच गया है तथापि महा कवि की यह कृति इतिहास साहित्य को अमर देन तथा अन्य विद्वानों के लिए अनुकरणीय प्रयास है। उसमें हमें हर्ष के समय के सामाजिक जीवन, रीति रिवाज, शिक्षा सभ्यता तथा धर्म सम्बन्धी सामग्री पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होती है। क्योंकि 'बाण' हर्ष का समकालीन राज कवि और सभासद था अतः उसका यह वर्णन इतिहास शास्त्र में और भी अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

इसके अतिरिक्त चीनी यात्री ह्वानसांग का वर्णन अत्यन्त उपयोगी सामग्री है। ह्वानसांग हर्ष के समय में भारतवर्ष आया। उसने स्वयं जो कुछ देखा उसे लेखनी बद्ध किया। विदेशी होने के नाते उसकी निष्पक्षता ह्वानसांग के विवरण को और भी

अधिक महत्वपूर्ण बना देती है। ह्वानसाँग के वर्णन के अतिरिक्त चीनी कहानियों से भी हमें हर्ष विषयक ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

शिलालेख भी हर्ष के सम्बन्ध में समुचित प्रकाश डालते हैं। हर्षवर्धन के स्वयं के दो शिलालेख (६२८ ई० तथा ६३१ ई०) बासखेरा और मधुबन प्लेट के नाम से प्रसिद्ध हैं। उसके समकालीन पुलकेशिन द्वितीय का रोहोल शिलालेख (६४८ ई०) और गुप्त तथा अन्य उत्तरी भारत के अनेक राजाओं के बहुत से शिलालेख, जिनमें सोनीपत का ताम्रपत्र इत्यादि प्रमुख हैं, हर्ष और उसके समकालीन भारत पर यथेष्ट प्रकाश डालते हैं। इन सब साधनों से हमें हर्ष के विषय में इतनी सामग्री प्राप्त होती है जितनी चन्द्रगुप्त मौर्य तथा अशोक के विषय में प्राप्त हो सकी है।

कन्नौज एवं थानेश्वर का संयुक्त होना:—राज वर्धन के वध किये जाने पर हर्षवर्धन सिंहासनारूढ़ हुआ था। थानेश्वर उसकी राजधानी थी। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, ग्रहवर्मन के वध के पश्चात् कन्नौज की गद्दी भी रिक्त हो गई थी। वहाँ के मन्त्रियों ने हर्ष को आमन्त्रित किया और गद्दी स्वीकार करने की प्रार्थना की। परन्तु हर्ष ने कन्नौज के प्रबन्ध की समुचित व्यवस्था कर सर्व प्रथम राजश्री का पता लगाना चाहा। अपने पति के वध के पश्चात् वह भारतीय ललना अपने सतीत्व की रक्षा के लिए जंगलों में भटकती फिरी। भील आदि जंगली जातियों की सहायता से हर्ष ठीक उस समय राजश्री के समीप जा पहुँचा जबकि वह विन्ध्याचल के जंगलों में अपने लिए चिता तैयार कर सती होने वाली थी। हर्ष ने वहाँ पहुँच कर उसे बचा लिया। राजश्री के साथ हर्ष कन्नौज वापिस आया। मन्त्रियों तथा राजश्री के सतत् आग्रह से हर्ष ने कन्नौज मे राजश्री के नाम से ही शासन की बागडोर सभाली। इस प्रकार थानेश्वर तथा कन्नौज संयुक्त हो गये। कन्नौज को राजधानी बना हर्ष अपना शासन-प्रबन्ध चलाने लगा। कन्नौज का महत्त्व एवं सौन्दर्य मौखरी वंश के समय में पहिले ही काफी बढ़ गया था हर्ष के समय मे वह उत्तरी भारत का प्रमुख नगर बन गया, और उसकी वही महत्ता हो गई जो पुराने समय में पाटिली पुत्र की थी।

हर्ष की उत्तरी भारत विजय:—सिंहासनारूढ़ होते समय हर्षवर्धन ने शपथ ली थी कि मालवा के गुप्त राजाओं से राजश्री के निरादर तथा बंगाल के शशांक राजा से राजवर्धन के वध का प्रतिशोध अवश्य लूँगा। अब वह अपनी शपथ को पूर्ण करने के लिए कन्नौज एवं थानेश्वर की संयुक्त सेना को लेकर मालवा पर आ चढ़ा और उस पर विजय प्राप्त की। मालवा के गुप्त वंशीय राजा पूर्व में मगध की ओर खदेड़ दिये गये। इतने से संतुष्ट न होकर उसने उनका विहार में भी पीछा किया & उन्हें परास्त कर उन पर आधिपत्य स्थापित

इसके पश्चात् हर्ष बंगाल की ओर अग्रसर हुआ परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि शशांक के विरुद्ध उसे तुरन्त सफलता न मिल सकी। क्योंकि ऐसा प्रमाण मिलता है कि ६१७ ई० में शशांक बंगाल में राज्य करता था परन्तु ६२५ ई० तक बंगाल में हर्ष का आधिपत्य हो चुका था। क्योंकि इस समय बंगाल पर आसाम के राजा भास्कर वर्मन का आधिपत्य था। और भास्कर वर्मन ने हर्ष का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था।

महाकवि बाण के कथनानुसार हर्ष ने सिन्ध पर भी विजय प्राप्त की थी और गुजरात के बल्लभी राजा को भी परास्त किया था। तत्पश्चात् उसने नैपाल को भी कर देने के लिए बाध्य किया। कच्छ और सूरत की छोटी २ रियासतें भी उसके आधीन हो गईं।

**दक्षिणी भारत में युद्धः**—उत्तरी भारत पर अपना सिक्का जमा कर ६२० ई० में हर्ष दक्षिण की ओर अग्रसर हुआ। यहाँ चालुक्य वंशीय 'पुल केशिन द्वितीय' राज्य करता था। हर्ष उससे युद्ध करने को बहुत उत्सुक था। दोनों में युद्ध हुआ और हर्ष स्वयं उसमें परास्त हुआ इस पर दोनों में संधि हो गई और नर्बदा नदी दोनों के राज्यों की सीमा निर्धारित हुई।

अपने राज्य काल का अन्तिम और सफल आक्रमण उसने ६४३ ई० में कांजम के विरुद्ध किया। यह नगर बंगाल की खाड़ी पर स्थित था।

**हर्षवर्धन का साम्राज्यः**—इस प्रकार हम देखते हैं कि अपने समय में हर्ष उत्तरी भारत का सबसे प्रमुख राजा था। समस्त उत्तर प्रदेश, विहार, बंगाल का अधिकतर भाग, पंजाब, राजपूताना, मध्य प्रान्त तथा पश्चिमी भारत उसके अधीन था। उसके राज्य की दक्षिणी सीमा नर्बदा नदी थी।

**चीन से सम्बन्धः**—हर्ष चीन के साथ मैत्री सम्बन्ध रखता था। ६४० ई० में उसने अपना राजदूत चीन में भेजा। वह ६४३ ई० में चीनी राजदूत के साथ भारत वापिस आया। इसके पश्चात् पुनः द्वितीय राजदूत चीन भेजा गया। अतः सिद्ध होता है कि चीन के साथ उसके सम्बन्ध अच्छे थे। चीनी भी उससे मैत्री भाव रखते थे तथा समय २ पर अपने राजदूत भेजकर मित्रता का परिचय देते थे।

**हर्ष का निधनः**—६४७ ई० में हर्षवर्धन इस असार संसार को छोड़ कर स्वर्ग सिधारा। मृत्यु किसी आकस्मिक घटना द्वारा घटित नहीं हुई। इतिहास पढ़ने से विदित होता है कि वास्तव में हर्ष एक प्रभावशाली शासक था।

**हर्ष की विद्वताः**—हर्ष स्वयं उच्च कोटि का कवि तथा विद्वान् था। वह कई पुस्तकों का रचयिता भी है। उन पुस्तकों में से कुछ तो अब भी उपलब्ध हैं। उसके प्रसिद्ध नाटक 'नागानन्द' का अनुवाद अंग्रेजी भाषा में भी किया गया है।

महाकवि बाण उसकी सभा का रत्न था। इससे उसके साहित्य प्रेम का ज्ञान होता है।

हर्ष की धार्मिकता:—हर्ष एक भक्त पुरुष था। वह प्रति दिन कई घण्टे
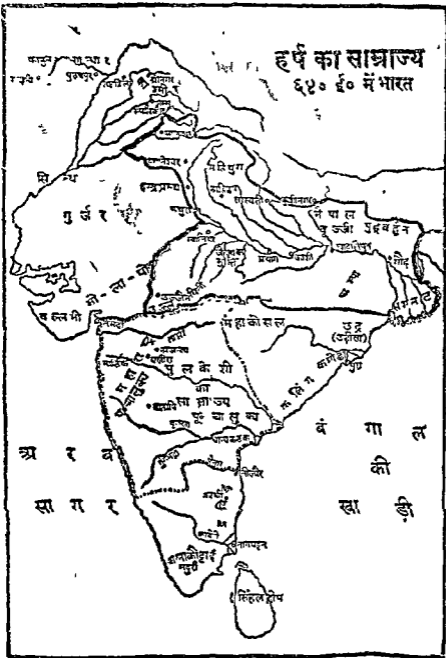
संध्या वन्दन इत्यादि में व्यतीत किया करता था। शिव का उपासक होने के साथ साथ वह सूर्य और बुद्ध की भी पूजा करता था। अपने शासन काल के अन्तिम भाग में वह बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट हो गया था। उसने गोश्त खाना बिल्कुल बन्द कर दिया था और जानवरों का वध सर्वथा निषिद्ध कर दिया था अधेड़ आयु तै करने पर मानव हृदय स्वयं ही शान्ति की ओर आकृष्ट हो जाता है। अतः न होते हुये भी वह बौद्ध धर्मावलम्बी कहा जा सकता है।

हर्ष का यह नियम था कि हर पांच वर्ष पश्चात् वह प्रयाग को जाता था और वहाँ पर अपना तमाम संचित धन प्रजा में बाँट देता था तथा स्वयं भिक्षु बन जाता था।

६४४ ई० में उसने कन्नौज में एक विशाल सम्मेलन का आयोजन किया जिसमें बीस सहायक राजा भी पधारे थे। आसाम तथा गुजरात के राजाओं ने भी उसमें भाग लिया। कन्नौज में राज सम्बन्धी कार्य समाप्त करने के उपरान्त हर्ष इन सब राजाओं सहित प्रयाग गया। वहाँ पर अतुल धनराशि जैन, बौद्ध, ब्राह्मण विद्वानों और साधु सन्तों में विभक्त की गई।

**ह्वानसाँग का परिचयः**—ह्वानसांग एक प्रसिद्ध चीनी यात्री था वह बौद्ध धर्म का अनुयायी था। वह हर्ष के समय में बौद्ध ग्रन्थों की खोज के लिए भारत आया। वह बौद्ध धर्म का जगत् प्रसिद्ध विद्वान था। ६२६ ई० में वह चीन से भारत को रवाना हुआ। और गोबी के मरुस्थल को पार कर ताशकन्द तथा समरकन्द होता हुआ ६३० ई० में अफगानिस्तान पहुँचा। तत्पश्चात् वह भारत आया। वह १५ वर्ष तक भारत में घूमा तथा ६४५ ई० में चीन वापिस गया। इस काल में उसने भारतवर्ष के प्रसिद्ध स्थानों को देखा। फाह्यान की भाँति बौद्ध धर्म तथा उसके ग्रन्थों तक ही उसका क्षेत्र सीमित न था। अन्य विषयों में भी उसकी रुचि थी। वह प्रायः राज दरबार में जाता और स्वयं वहाँ सब चीजें देखा करता। उसने भारतवर्ष का अपना सब अनुभव एक पुस्तक में लेख बद्ध किया। उस पुस्तक का नाम सी० यू० की० अर्थात् 'पाश्चात्य संसार का विवरण' है। इसमें अनेक प्रचलित बौद्ध कथाओं के अतिरिक्त भारतवर्ष के राजनैतिक विभागों, जनता की दशा, रीति रिवाज, तथा उन समस्त स्थानों और विध्वंस नगरों का वर्णन है जो उसने अपने यात्रा काल में देखे। उसकी यह पुस्तक प्राचीन भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों के लिये हर्षवर्धन का ज्ञान, प्राप्त करने का मूल स्रोत है। ६६४ ई० में अपनी जन्मभूमि में उसका देहान्त हुआ। उसके धर्मग्रन्थ और उसकी उपरोक्त सी० यू० की० पुस्तक संसार को अमर देन है जो सदैव उसकी ख्याति को अमर रक्खेगी। प्राचीन भारतीम इतिहास इसका बहुत ऋणी है।

**ह्वानसाँग का पर्यटन विवरणः**—चीनी यात्री ह्वानसांग यत्र तत्र धर्म गुरुओ मे सत्सग करता और ज्ञानोपार्जन करता हुआ भारत के उत्तरी कोने मे बंगाल तक पहुँच गया। काश्मीर में दो वर्ष पर्यन्त उसने शास्त्रो का अनुशीलन किया। नागार्धन, जालन्धर, बिहार में वह चार मास तक चन्द्रवर्मा नामक प्रसिद्ध विद्वान से विद्या प्राप्त करता रहा। वर्तमान सहारनपुर और देहरादून जिले में से होता हुआ वह मूर्तिपुर (मेरठ) पहुँचा। यहाँ उसने प्रसिद्ध विद्वान मित्रसेन की एक रचना का अध्ययन किया। यहाँ से कन्नौज होता हुआ वह नालन्द पहुँचा, वहाँ उसने बौद्ध और ब्राह्मण ग्रन्थो का पाँच वर्ष तक अध्ययन किया।

६४० ई० में हर्षवर्धन ने ह्वानसाँग को मिलने के लिये आमन्त्रित किया। उस समय हर्ष बंगाल में था। ह्वानसांग ने वहाँ पहुँच कर हर्ष को अपने महायान धर्म सम्बन्धी चर्चा से इतना प्रसन्न किया कि उसने कन्नौज में एक विराट सम्मेलन का आयोजन किया। तत्पश्चात वह सम्राट के साथ साथ प्रयाग पहुँचा जहाँ उसको हर्ष की दान शीलता देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस समारोह के पश्चात वह दस दिवस तक सम्राट के साथ ठहरा और फिर अपने देश के लिये उत्तरी मार्ग से रवाना हुआ तथा ६४५ ई० में खुटान होता हुआ चीन पहुँच गया। अन्तिम दिन ह्वानसांग ने अनुवाद कार्य में व्यतीत किये। ६६१ ई० में उसने ७५ पुस्तको का चीनी अनुवाद सम्पन्न किया। ३ वर्ष उपरान्त ६६४ ई० में उसका देहान्त हो गया।

**ह्वानसाँग का वर्णनः**—सम्राटों की शासन व्यवस्था का वर्णन किसी न किसी रूप में थोडा बहुत मिल ही जाता है। किसी में अति-शयोक्ति होती है। तो किसी में वैमनस्यता की झलक परलक्षित होती है। ऐसी अवस्था में यदि सौभाग्यवश किसी विदेशी लेखक का विवरण प्राप्त हो जावे तो अधिक अच्छा होता है क्योंकि वह राग-द्वेष से बहुत दूर तथा निष्पक्ष धारणायें निर्धारित करता है। हर्ष की शासन व्यवस्था का वर्णन धन्य है जिसे सौभाग्य से विदेशी यात्री ह्वानसांग जैसे प्रकाण्ड पण्डित का सहारा मिला। उसका विवरण एक प्रमाणिक वर्णन है।

वह लिखता है कि राजवर्धन की मृत्यु के पश्चात् हर्ष के गद्दी पर बैठते ही उसे कन्नोज की गद्दी भी मिली। कारण यह था कि उसके बहनोई ग्रहवर्मन का वध कर दिया गया था। कन्नौज के मन्त्री मण्डल ने तथा उसकी प्रजा ने हर्ष से काफी प्रार्थना की किन्तु हर्ष ने उसकी टाल मटोल ही की और प्रार्थना अस्वीकार कर दी। छः वर्ष निरन्तर युद्ध करके हर्ष वर्धन ने पंजाब, सिन्ध, बिहार, बंगाल आदि प्रदेशो पर विजय प्राप्त की। उत्तर भारत की विजय प्राप्तिके पश्चात् वह पुलकेशिन से युद्ध करने के लिए दक्षिण की ओर अग्रसर हुआ, परन्तु वह उसे परास्त न कर सका।

लोग होते थे तो भी वे ग्रहस्थ आश्रम को त्याग कर ज्ञानोपार्जन को अपना ध्येय बना भिक्षा पर ही जीवन निर्वाह करते थे और समाज उन्हें अत्यन्त सम्मान सूचक दृष्टि से निहारता था।

दूसरा वर्ग क्षत्रियों का था। युद्ध विद्या में नैपुण्य एवं उदार साहस उपार्जन करना इनका ध्येय होता था। तीसरा वैश्य वर्ग था जो वाणिज्य तथा कृषि द्वारा जीविकोपार्जन करता था। चौथा वर्ग शूद्रों का था ये कृषि तथा सेवा इत्यादि कर अपने दिन काटते थे। इन चारों वर्गों के अतिरिक्त ह्वानसांग अन्य मिश्रित जातियों का भी उल्लेख करता है। जातियों तथा उपजातियों में परस्पर विवाह निषिद्ध था। सगोत्र एवं मातृगोत्र विवाह वर्जित थे। जाति बंधन कठोर होते हुए भी सब जातियाँ एक दूसरे से स्वतन्त्रता पूर्वक मिलती जुलती थीं। पर्दा पद्धति न थी। स्त्रियाँ स्वतन्त्रता पूर्वक अपने गृह तथा वाह्य कार्य में पुरुषों के साथ कार्य करती थीं। महाकवि बाण की मित्र मण्डली में एक नर्तकी तथा गायिका का होना इस बात का प्रमाण है। जातीय व्यवस्था तथा ब्राह्मण धर्म के साथ २ ह्वानसांग ने देख कि देश में अनेकों बौद्ध केन्द्र भी हैं प्रत्येक केन्द्र पर ह्वानसांग ने महायान तथा हीनयान साधुओं तथा ब्राह्मणों को साथ साथ और प्रायः एक ही विहार या मठ में रहते हुए देखा। यह प्रगट करता है कि भारतवर्ष में बौद्ध और ब्राह्मणों का सम्मिश्रण प्रारम्भ हो गया था। सरल और पवित्र जीवन के अतिरिक्त भारत में शारीरक पवित्रता भी उच्च कोटि की थी। भोजन से पूर्व स्नान करना प्रत्येक भारतीय का नियम था। भोजन से पूर्व हाथ, पैर, मुँह इत्यादि धोना नियमित रूप से दृष्टिगोचर होता था। भोजन पात्र भी अत्यन्त शुद्ध और पवित्र रखते जाते थे। लकड़ी तथा मिट्टी से बने हुए पात्रों में केवल एक बार ही भोजन किया जाता था। तदुपरान्त वे फेंक दिये जाते थे दूसरी बार प्रयोग में केवल सोने, चाँदी, या पीतल इत्यादि धातु के बर्तन ही आते थे, जिनमें एक बार भोजन पाने के पश्चात् माँजकर पवित्र किया जाता था। यही नहीं, भोजन भी सात्विक ही होते थे। तामसी या राजसी भोजनों की उपेक्षा की जाती थी। प्याज, लहसुन, गोश्त प्रायः प्रयोग में ही न लाये जाते थे। जनता अधिकतर शाकाहारी थी। बकरे, हिरन, तथा मछली के गोश्त का तो थोड़ा बहुत प्रयोग था भी किन्तु अन्य जानवरों के गोश्त को न खाना ही अच्छा समझा जाता था। भोजन में प्रायः घी, दूध, शक्कर रोटी, चावल तथा तेल और शाक इत्यादि का ही अधिक प्रयोग होता था।

गर्हित जीवन व्यतीत करने वाले प्रायः आबादी से दूर रहते थे। इनमें

कसाई, मछेरे, भंगी, जल्लाद इत्यादि सम्मिलित थे। नगर के अन्दर उनके चलने तथा काम करने के मार्ग भी दूसरों से भिन्न थे। उनके घरों पर उनके व्यवसाय सूचक चिन्ह बने रहते थे।

स्त्रियों का समाज में यथेष्ट सम्मान होता था। उच्चकुल की स्त्रियां बहुत योग्य तथा सुशिक्षिता होती थी। राजश्री स्वयं इतनी शिक्षिता थी कि वह ह्वानसांग के व्याख्यानों को भली भांति समझ सकती थी। एक स्त्री एक विवाह के बाद दूसरा विवाह नहीं कर सकती थी। वेश, भूषा का उल्लेख करते हुए ह्वानसांग ने कई प्रकार के वस्त्रों का वर्णन किया है। जैसे—रेशमी व सूती कपडे, मलमल ऊनी कपडे, इत्यादि। परन्तु प्राय. लोग ऐसे कपडे का प्रयोग करते थे जिनमे सिलाई कम से कम हो। साडी, धोती, और जाकट का उत्तरी भारत मे प्रर्याप्त रूप से प्रयोग था।

जल यात्रा खूब प्रचलित थी। उस समय की भाषा संस्कृत थी। प्रसिद्ध बौद्ध पडित भी अपने विचार इसी भाषा में व्यक्त करते थे। भारतवर्ष मे अनेक शिक्षा केन्द्र थे। नालन्द सर्वप्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र था। यहाँ हजारों विद्यार्थी उच्च कोटि की शिक्षा ग्रहण करते थे और राज्य की ओर से १०० गाँव इसका व्यय पूरा करने के लिए जागीर स्वरूप मिले हुए थे। यह वर्तमान राजगिर के पास स्थित थी।

साहित्य :—साहित्य के क्षेत्र में सातवी ईसवी सदी में पूर्व काल की प्रवृत्तियां जारी हैं। यद्यपि कालिदास की सी प्रतिभा का कोई कवि नहीं हुआ पर बहुत से ग्रन्थ लिखे गये जो संस्कृत साहित्य में बहुत ऊँचा स्थान रखते हैं। माघ ने शिशुपाल वध नामक भारती शैली का प्रसिद्ध ग्रन्थ सातवी शताब्दी के लगभग लिखा—नाटक क्षेत्र में भवभूति ने मालती माधव—महावीर चरित्र, उत्तर राम चरित्र नामक नाटक लिखे। चरित्र चित्रण में ही नही किन्तु प्रकृति के वर्णन में भी भवभूति ने अद्भुत चमत्कार दिखाया है? परन्तु उसके नाटकों में श्लोक बड़े क्लिष्ट हैं। समास बहुत लम्बे हैं इसलिये वह रंगमच की अपेक्षा पाठशाला के अधिक योग्य हैं। स्वय सम्राट हर्ष नागानन्द, रत्नावली और प्रियदर्शिका नामक तीन नाटकों का रचयिता कहा जाता है? अधिकाश हिन्दू साहित्य यहाँ तक कि वैज्ञानिक साहित्य भी पद्य में है। परन्तु कुछ उपन्यास तथा अन्य ग्रन्थ गद्य में भी लिखे गये। हर्ष चरित्र के लेखक बाणभट्ट ने कादम्बरी नामक उपन्यास रचा जिसमें प्रधान चरित्रों के कई जन्म होते हैं। कादम्बरी में बाण ने जीवन के प्रत्येक अंग का चमत्कार पूर्ण वर्णन किया है।

कला :—निर्माण कला में भी यह युग बड़े चमत्कार का है भवन निर्माण, मूर्ति निर्माण, नगर व्यवस्था इत्यादि पर मत्स्य, नारद इत्यादि पुराणों में कई

अध्याय हैं। शुक्र नीति में भी निर्माण की बहुत सी बातें लिखी हैं। संस्कृत में शिल्प शास्त्र और चित्रशास्त्र पर बहुत सी पुस्तकें हैं। इस समस्त साहित्य को छठी शताब्दी के लगभग "मानसार" नामक पुस्तक में संकलित किया गया।

**इलोरा और एलिफेन्टा की गुफाएँ** :—इस समय की मूर्ति कला में ब्राह्मण धर्म की परिछाया प्रत्यक्ष दिखाई देती है। रियासत हैदराबाद में इलोरा की गुफाओं में मूर्तियों की बहुत सी पट्टियाँ हैं। ७०० ई० के लगभग यहाँ दशावतार की और बहुत सी देवी देवताओं की मूर्तियाँ बनाई गईं। कैलाश मंदिर के लंकेश्वर विभाग में शिवताण्डव नृत्य का चित्रण अत्यन्त भावपूर्ण है। नृत्य में शिव अपने को भूल गये प्रतीत होते हैं नृत्य ही नृत्य रह गया है। आठवीं सदी के लगभग बम्बई बन्दरगाह के पास वर्तमान एलिफेन्टा टापू में भी कुछ देवताओं की मूर्तियाँ हैं। उनमें कला चातुर्य कोई विशेष नहीं है परन्तु काठियावाड़ के सूर्य मन्दिर में सातवीं सदी की मूर्तियाँ बहुत अच्छी बनी हुई हैं।

## प्रश्न

१. छठी शताब्दी में भारतवर्ष की राजनैतिक दशा कैसी थी ?
२. हर्षवर्धन के समय की ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त करने के क्या साधन हैं ?
३. हर्षवर्धन ने किस प्रकार एक साम्राज्य का निर्माण किया ?
४. हर्ष के व्यक्तित्व के विषय में तुम क्या जानते हो ?
५. ह्वानसांग कौन था उसके विवरण के आधार पर हर्ष के राज्य प्रबन्ध का वर्णन करो ?
६. ह्वानसांग के वर्णन के आधार पर हर्ष के समय की सामाजिक दशा का वर्णन करो ?
७. हर्ष के समय भारत में साहित्य व कला में क्या प्रगति हुई ?

---

## अध्याय १६

# राजपूत

उत्पत्ति :—राजपूतों की उत्पत्ति एक विवादग्रस्त समस्या है। उसके विषय में भिन्न-भिन्न विद्वानों का भिन्न २ मत है। डाक्टर स्मिथ के कथनानुसार

राजपूत शब्द किसी जाति विशेष का, जो किसी रक्त विशेष से सम्बन्ध रखती हो, सूचक नहीं। यह केवल ऐसे सम्प्रदाय विशेष अथवा जाति विशेष का बोधक है जो युद्ध कला में प्रवीण हों और केवल युद्ध ही जिनका व्यवसाय रहा हो। सम्भव है इस वर्ग ने छोटे छोटे स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये हों और प्राचीन काल से विशिष्ट घरानों से सम्बन्धित होने के कारण जिन्हे ब्राह्मण क्षत्रियों की जगह समझते आये हों। डा० स्मिथ का उपरोक्त कथन इस बात पर निर्धारित है कि राजपूत सम्प्रदाय में भिन्न २ वर्ग एवं जातियाँ सम्मिलित हैं। इनमें बहुधा वे जातियाँ भी मिश्रित हैं जो पाँचवी तथा छटी शताब्दी में आक्रमणकारी बन कर भारत आईं और हिन्दू संस्कृति में मिल जुलकर भारतीय समाज में विलीन होती चली गईं।

प्राचीन संस्कृत साहित्य में 'राजपूत' शब्द का कहीं भी प्रयोग नहीं मिलता। साहित्य में यह शब्द केवल उस काल में प्रयुक्त हुआ पाया जाता है जब भारत में कोई केन्द्रीय राज्य नहीं रह गया था और बहुत से बाह्य आक्रमणकारियों तथा देश की अन्य जातियों ने छोटे २ अनेक स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिए थे। कर्नल टाड इसी बात से अधिक प्रभावित हुए विदित होते हैं। उनका मत है कि 'राजपूत' शब्द विदेशी शब्द है जिसे हर्ष के समकालीन विदेशी आक्रमणकारी अपने साथ लाए। उनमें हूण तथा सिथियन रक्त का बाहुल्य था। वे इस मिश्रित रक्त राजपूतों को उन विदेशी लोगों की संतान मानते हैं जिन्होंने समय-समय पर भारतवर्ष पर आक्रमण किये, और जिन्होंने हिन्दु धर्म स्वीकार करके ब्राह्मणों की सहायता से अन्य हिन्दुओं के साथ भारतीय समाज में स्थान प्राप्त किया। जब उन लोगों के हाथ में राजसत्ता आई तो ब्राह्मणों ने उनकी कल्पित वंशावलियाँ तैयार करके उन्हें क्षत्रियों में सम्मिलित कर लिया। इनमें से इतर श्रेणी के लोगों से हिन्दु समाज की अन्य जातियाँ जैसे जाट, गूजर, इत्यादि बन गईं, राजपूतों के अभ्युदय तथा उनके विकास का अध्ययन प्रकट करता है कि बहुत से राजपूत वंश जिनमें प्रतिहार राजपूत भी सम्मिलित हैं गुर्जर हैं। पंजाबी जाट अपने आपको राजपूतों का वंशज बताते हैं। इन बातों को देखकर बहुत से इतिहासकार टॉड के मत से सहमत हैं। उनका कथन है कि गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात् हूण गुर्जर इत्यादि अनेक जातियाँ उत्तरी पश्चमी भारत में आईं, और वे राजपूताने तथा पंजाब में बस गईं। कर्नल टॉड के इस कथन की आलोचना करते हुए यह कह देना उचित होगा कि उनका यह मत सर्व सत्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यदि राजपूत शब्द उन्हें बाह्य आक्रमणकारियों के लिए प्रयोग किया गया है जिनका उल्लेख अभी किया गया है तो दक्षिण के राष्ट्रकूट, बुन्देलखण्ड के चंदेले, तथा राजपूताने के राठौर किस प्रकार राजपूत वर्ग में सम्मिलित हुए, क्योंकि इनके विषय में स्पष्टतया ज्ञात है कि ये विदेशी

बिल्कुल नहीं थे वरन् उन हिन्दू जातियों में से हैं जिनको क्षत्रिय वर्ण में सम्मिलित कर लिया गया था उदाहरण स्वरूप चन्देल वंशीय राजपूत मध्य भारत की गोण जाति में से है।

भाट इत्यादि राजपूतों की उत्पत्ति के विषय में एक और ही मत प्रगट करते है। वे कहते हैं कि जब भृगु कुल सूर्य परशुराम ने क्षत्रियों का विनाश कर दिया और पृथ्वी पर राज्य करने के लिए कोई शेष नहीं रह गया तो जनता में धर्म का क्षय तथा अधर्म का आधिक्य हो उठा। तब देवता अत्यन्त चिन्तित हुए और परशुराम की प्रक्रिया पर खेद प्रकट करने लगे। उस समय वे सब एक नई क्षत्रिय जाति की उत्पत्ति के लिए आबू पर्वत पर एकत्रित हुए, और वहाँ उन्होंने अग्नि कुण्ड में चार वर्गों की उत्पत्ति की। प्रतिहार, पंवार, चालुक्य और चौहान। जहाँ तक इस मत का ऐतिहासिक पक्ष है यह सर्वथा निर्मूल है। अपने अन्नदाताओं को प्रसन्न करने के लिए इसे भाट लोगों की मत षड्न्त के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। राजपूत स्वयं अपने को प्राचीन वैदिक क्षत्रियों की संतान बतलाते हैं। किन्तु कवि कल्पना को कुछ स्थान देकर उपरोक्त मत पर विचार किया जावे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आक्रमणकारियों को जब हिन्दू धर्म में विलीन किया होगा तो उन्हें इन्हीं चारों क्षत्रिय वर्गों में वैवाहिक सम्बन्ध इत्यादि स्थापित करने का अधिकार दिया होगा।

राजपूतों का कथन है कि उनकी आदि उत्पत्ति सूर्य तथा चन्द्रमा से हुई। भारतीय धार्मिक ग्रन्थों तथा सी० वी० वैद्य द्वारा विरचित मध्य कालीन हिन्दु भारत के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजपूत प्राचीन क्षत्रिय जाति की वास्तविक सन्तान हैं और उनमें आर्यरक्त पूर्णतया विद्यमान है। उनका कथन है कि यदि राजपूतों की कुछ जातियाँ गूर्जर इत्यादि जातियों में से हैं तो भी इन्हें अनार्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यहाँ के लोगों से मिश्रित होकर उनमें आर्य रक्त पर्याप्त मात्रा में सम्मिलित होकर नस नस में प्रवाहित हो रहा है।

**मतों का आलोचनात्मक विवेचन :**—उपरोक्त मतों का आलोचनात्मक विवेचन करते हुए यह उल्लेखनीय है कि 'राजपूत' संस्कृत शब्द 'राजपूत' का अपभ्रंश है। राजकुमार तथा राजवंशीय लोगों के लिए यह शब्द प्रयोग किया जाता था। जब यवन इस देश में आये तब वे राज कुल के क्षत्रियों को 'राजपूत' कहने लगे। यह तो हो सकता है कि विवाह सम्बन्ध या सम्पर्क इत्यादि के द्वारा बाहर से आने वाले आक्रमणकारियों का सम्मिश्रण इनमें हो गया हो, अथवा बाह्य आक्रमणकारी राज्य वर्ग सभी राजपूत कहलाने लगे हों। परन्तु निस्सन्देह इनमें प्राचीन क्षत्रिय वर्ग का समावेश था।

**राजपूत चरित्र :—**राजपूतों की उत्पत्ति के विषय में कोई भी मत सत्य, क्यों न हो परन्तु यह अवश्य है कि समस्त राजपूत वर्ग कुछ रीति रिवाजों और कुछ गुण तथा दोषों में समानता रखता है ऐसा प्रतीत होता है कि यह समानता समस्त भारतवर्ष में पारस्परिक वैवाहिक सम्बन्ध इत्यादि द्वारा आई। राजपूत चरित्र में जातीय सम्मान तथा प्रतिष्ठा की भावना कूट कूट कर भरी थी, प्राचीन संस्कृति तथा जातीय मान-मर्यादा की रक्षा के हेतु हंसते २ प्राण उत्सर्ग कर देना उनका धर्म था। जीवन का मूल्य केवल आत्म सम्मान था। उनकी वीरता संसार के इतिहास में अमर रहेगी। शत्रु को पीठ दिखाना या युद्ध के समय पीछे हटना उनके स्वभाव के सर्वथा विरुद्ध था। युद्ध के समय शत्रु से विश्वासघात करना या अन्य नीचता पूर्ण चालाकी चलना उन्होंने सीखा ही न था। हथेली पर शीश रख कर तलवार से शीशों को काटना हो धर्म में से सीख कर आते थे। शरण में आये हुए शत्रु के साथ दया का बर्ताव कर अभय दान देना अपना कर्त्तव्य समझते थे। युद्ध में स्त्रियों तथा बच्चों पर प्रहार करना वे जानते ही न थे।

राजपूत समाज के आदर्श उच्च कोटि के थे। वे अपनी बात के धनी होते थे। विश्व इतिहास में पुरुष का चरित्र तो कदाचित राजपूत चरित्र से समानता कर जाये किन्तु नारी जीवन राजपूतनियों के पासंग भी नहीं ठहरता। भारतीय क्षत्राणी का चरित्र विश्व रमणी चरित्र का पथ-प्रदर्शक है। हंसते २ पति तथा पुत्र को समर क्षेत्र के लिए अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित करना उनका धर्म था। कठिन समय में या पति के निधन पर या मान-मर्यादा के अवसर पर दहकते हुए अंगारों पर सुकोमल शरीर की आहुति देना कोई अचरज की बात नहीं मानी जाती थी। जौहर की प्रथा इस बात का ज्वलंत उदाहरण है। कुल एवं जाति के गौरव के लिए राजपूत अपने व्यक्तिगत हिताहित की तनिक-सी भी परवाह नहीं करते थे।

राजपूतों के दोष भी उनके गुणों के समान ही प्रसिद्ध हैं। ईर्ष्या, द्वेष, कलह फूट, असहयोग तथा जातीय अभिमान उनकी घुट्टी में पड़े थे। शासन प्रबन्ध या अपनी शक्ति को दृढ़ बनाने की ओर उनकी कोई रुचि न थी। इन्हीं दोषों के कारण उन्होंने अपना गौरव खो दिया। अगर स्पष्ट शब्दों में यह भी कहा जाय तो असंगत न होगा कि राजपूतों में जहां शौर्य का बाहुल्य था वहां शासन पटुता की न्यूनता थी।

**राजपूतों का स्वर्णयुग :—**यवनों के आक्रमण से पूर्व का काल राजपूत इतिहास का स्वर्ण युग कहा जा सकता है। इस काल में राजपूत शक्ति उन्नति के शिखर पर था। समाज के प्रत्येक क्षेत्र में इस काल में उन्नति हुई। राजपूतों के

शौर्य एवं पराक्रम तथा क्षत्राणियों से अदम्य साहस एवं त्याग का दिग्दर्शन डिंगल काव्यों में विशेष रूप से मिलता है।

भुवनेश्वर का मन्दिर
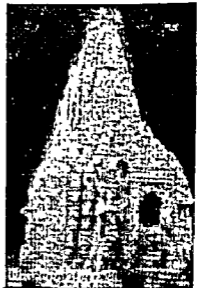
बौद्ध गया

आबू पहाड़ पर जैन मन्दिर का भीतरी भाग

राजपूत युग :—राजपूत युग साहसिक कार्यों का युग था। राजपूत स्वयं अद्वितीय साहसी, स्वदेश प्रेमी, निष्कपट तथा सत्यवादी थे। राजपूत वीराङ्गनायें भी किसी प्रकार साहस, आत्म-शुचिता एवं आत्म-सम्मान में न्यून न थीं। उन्होंने अनेकों अवसरों पर अद्वितीय साहस दिखला कर लोगों को चकित कर दिया।

धर्म :—राजपूतों के समय में ब्राह्मण धर्म का चारों ओर बोल बाला था। तीर्थ स्थानों की यात्रा साधारण सा काम हो गया था। ब्राह्मण उच्च पदों पर विराजमान हो कर प्रजा तथा राजा दोनों के मान्य हो गये थे।

कला :—राजपूतों के इस युग में कला का भी विशेष रूप से विकास हुआ। जनता के हित की सैंकड़ो इमारतें बनवाई गई। यद्यपि उनमें से बहुत सी मुस्लिम विजेताओं द्वारा धराशायी कर दी गई तथापि राजपूताना, मालवा तथा मध्य भारत में इन मन्दिरों तथा दुर्गों के अनेक भग्नावशेष आज भी दृष्टिगोचर होकर राजपूत कला की बांकी झांकी दिखा रहे हैं। इस प्रसंग में आबू पर्वत के जैन मन्दिर, भुवनेश्वर व बौद्ध गया के मन्दिर तथा चन्देल राजाओं के खुजराहो के हिन्दू मन्दिर उल्लेखनीय हैं।

साहित्य :—राजपूत युग में साहित्य की भी विशेष प्रगति हुई। मालती माधव का रचयिता भवभूति, गीत गोविन्द का लेखक जयदेव तथा प्रसिद्ध इतिहासकार कल्हन इत्यादि इसी युग की देन हैं। कल्हन ने काश्मीर का इतिहास अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'राजतरंगिणी' में लेख-बद्ध किया। सुप्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य, पृथ्वीराज रासो का रचयिता आदि हिन्दी कवि चन्द्रबरदाई ने इसी युग में जन्म लेकर साहित्य देव पर श्रद्धा पुष्प चढ़ाये। इनके अतिरिक्त इस युग में धार, नालन्द, नदिया तथा विक्रमशिला के प्रसिद्ध विश्व-विद्यालय अज्ञानता-तिमिर को नष्ट करते रहे।

व्यापार :—यद्यपि राजपूत निरन्तर युद्ध व संघर्ष में संलग्न रहे। राजपूत युग में व्यापार की पर्याप्त वृद्धि हुई इसका कारण यह था कि देश के एक भाग से दूसरे भाग तक यातायात के साधन अच्छे थे।

उपसंहार :—इस प्रकार हम देखते हैं कि इस युग में भारतीय परम्परा निर्विघ्न चलती रही। युद्ध विद्या, साहित्य, कला, धर्म इत्यादि सब विकसित हुए। इन्हीं कारणों से हम १०वीं, ११वीं, तथा १२वीं शताब्दी को राजपूत जाति का स्वर्ण युग कह सकते हैं।

### प्रश्न

१. राजपूतों की उत्पत्ति के विषय में क्या भिन्न २ मत हैं—उनकी विवेचना करो—
२. राजपूतों के गुण व दोषों पर प्रकाश डालो—
३. राजपूत युग में साहित्य व कला की भारतीय परम्परा किस प्रकार जारी रही—

---

## अध्याय १७

# उत्तरी भारत के राजपूत राज्य

### (अ) कन्नौज

हर्ष के बाद कन्नौज :—हर्ष की मृत्यु के पश्चात उत्तरी भारत में अराजकता फैल गई। हर्ष के जीवन-काल में ही दुर्लभ वर्धन ने काश्मीर में कारकोट वंश की स्थापना करदी थी। गुजरात में 'मैत्रिक' राजाओं ने अपनी स्वाधीनता घोषित करदी। मगध पिछले गुप्त राजाओं की शक्ति का केन्द्र बन गया। समस्त देश में छोटी २ रियासतें बन गईं। उनमें कन्नौज पर अधिकार प्राप्त करने के लिए सदैव संघर्ष होता रहा, और कभी कोई तथा कभी कोई उसपर अधिकार प्राप्त करता रहा। यह संघर्ष लगभग दो शताब्दियों तक चलता रहा। अतः यह काल उत्तरी भारत के इतिहास में कन्नौज काल कहा जा सकता है।

अर्जुन तथा श्रांगवस्तम :—हर्षवर्धन के उपरान्त कन्नौज पर उसके मन्त्री अर्जुन ने अधिकार कर लिया और स्वतन्त्रता पूर्वक राज्य करने लगा। अर्जुन ने किसी अज्ञात कारण-वश एक बार चीनी राजदूत पर, जो उसकी सभा में रहता था, आक्रमण कर दिया। जब तिब्बत के राजा श्रांगवस्तम को इसकी सूचना मिली तो वह आग बबूला हो गया। उसके क्रुद्ध होने के दो कारण थे। प्रथम तो अर्जुन का यह कृत्य अत्यन्त ही नीच तथा भ्रष्ट था, दूसरे तिब्बत का राजा चीन के राजा का सहयोगी तथा मित्र था। अतः उसके राजदूत पर आक्रमण उसे असह्य हो उठा और वह प्रतिशोध के लिए भारत पर आ धमका। उसने तिरहुत को जीत लिया और अर्जुन को वन्दी बना लिया। तत्पश्चात आठवी शताब्दी के प्रारम्भिक काल तक कन्नौज तिब्बत का सहायक राष्ट्र बना रहा।

यशोवर्मन :—आठवीं शताब्दी के लगभग यशोवर्मन ने कन्नौज पर अपना अधिकार कर लिया। यशोवर्मन की वंशावली के विषय में कुछ भी नही कहा जा

सकता है। परन्तु वह स्वयं एक वीर तथा प्रतापी युवक था। कन्नौज पर अधिकार करने के पश्चात् उसने बंगाल और बिहार पर भी आक्रमण किया। बिहार में इस समय 'जीवगुप्त' द्वितीय राज्य करता था। वह यशोवर्मन से परास्त हुआ। बंगाल की प्रजा ने यशोवर्मन का सामना बड़ी वीरता पूर्वक किया परन्तु वह भी परास्त हुई। इस प्रकार यशोवर्मन वर्तमान उत्तर प्रदेश बिहार, तथा बंगाल का स्वामी हो गया। अपनी सफलता से प्रोत्साहित होकर यशोवर्मन ने समस्त उत्तरी भारत पर विजय प्राप्त कर ली। कन्नौज एक बार पुनः उत्तरी भारत का सर्वोच्च नगर हो गया।

तिब्बत पर आक्रमण:—यशोवर्मन ने काश्मीर नरेश 'मुक्तापीड़' ललितादित्य' से मैत्री करली और उसकी सहायता से उसने तिब्बत पर आक्रमण किया। इस आक्रमण में उसे सफलता मिली। परन्तु काश्मीर नरेश तथा यशोवर्मन की मित्रता अधिक स्थायी न सिद्ध हुई, और ललितादित्य ने स्वयं यशोवर्मन को परास्त कर दिया वह मारा गया। परन्तु काश्मीर नरेश कन्नौज को अपने राज्य में न मिला सके।

यशोवर्मन का चरित्र.—यशोवर्मन बड़ा साहसी राजा था। वह कवियों को आश्रय देता था। संस्कृत साहित्य का महाकवि और उत्तर रामचरित्र का रचयिता 'भवभूति' उसी के दरबार में रहता था। अपनी योग्यता के बल पर उसने एक विशाल राज्य स्थापित कर लिया। अपने प्रतिद्वन्दी ललितादित्य के साथ संघर्ष होने पर उसकी हार हुई और वह मारा गया। परन्तु उसके पश्चात् उसके वंशज कन्नौज पर राज्य करते रहे।

यशोवर्मन के बाद कन्नौज:—ललितादित्य के पश्चात् उसके पुत्र जयापीड़ ने कन्नौज के दूसरे राजा वज्रायुध को परास्त कर गद्दी से उतारा। उसके पीछे इन्द्रायुद्ध गद्दी पर बैठा। परन्तु ८१० ई० में मगध के राजा धर्मपाल ने उसे परास्त कर अपने आश्रित चक्रायुद्ध को गद्दी पर बैठाया। अब तीसरी ओर से विपत्ति आई। गुर्जर प्रतिहार राजा नागभट्ट ने कन्नौज पर धावा बोला और चक्रायुद्ध को गद्दी से उतार कन्नौज पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। तब से थोड़े काल को छोड़ कर ११ वीं शताब्दी के मध्य तक कन्नौज पर प्रतिहारों का राज्य रहा।

गुर्जर प्रतिहार वंश.—प्रतिहार या गुर्जर प्रतिहार राजपूत अपने आपको सूर्यवंशी कहते हैं। 'स्मिथ' तथा 'टाड' के मतानुसार यह एक सिथियन जाति के लोग थे। जब ब्राह्मणों ने इन्हें हिन्दूवर्ग में सम्मिलित कर लिया तो भारतीय जातियों में इन्हें स्थान प्राप्त हुआ। प्रतिहार शब्द बिगड़ कर 'परिहार' हो गया। और आजकल ये लोग परिहार के नाम से प्रसिद्ध हैं।

सर्व प्रथम इन्होंने सिन्धु प्रदेश के निकट अपना साम्राज्य स्थापित किया और बाद इन्होंने अपने साम्राज्य का विस्तार कर लिया। गयस्त नागभट्ट के अधिकार

में आ गया। जब अरबों ने ७१२ ई० में सिन्ध पर आक्रमण किया तो प्रतिहार वंश ने इसे आगे न बढ़ने दिया।

**वत्सराजः**—प्रतिहार वंश का चतुर्थ राजा वत्सराज था। वह ७५० ई० के लगभग गद्दी पर बैठा। वह बड़ा प्रतापी तथा महात्वाकांक्षी था। उसने कन्नौज और बंगाल सहित समस्त उत्तरी भारत को जीतकर प्रसिद्धि प्राप्त की। परन्तु वह अपनी विजय को दृढ भी न कर पाया था कि दक्षिण के राष्ट्र कूटों ने राजा ध्रुव के नेतृत्व में उत्तरी भारत पर आक्रमण किया और वत्सराज को परास्त कर कन्नौज पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। इस प्रकार प्रतिहार राज्य एक बार फिर राजपूताने तक ही सीमित रह गया।

**नागभट्ट द्वितीय**—वत्सराज के उपरान्त नागभट्ट द्वितीय राजा हुआ। उसने पुनः अपना साम्राज्य बढाना चाहा परन्तु राष्ट्रकूट राजा गोविन्द तृतीय ने जो ध्रुव का उत्तराधिकारी था उसे पूर्णतया परास्त किया। गोविन्द तृतीय के पश्चात् राष्ट्रकूट राज्य उत्तरी भारत में समाप्त हो गया और नागभट्ट द्वितीय ने धर्मपाल को परास्त कर कन्नौज पर अधिकार कर लिया। धर्मपाल के पुत्र देवपाल ने अल्पकाल के लिए प्रतिहारों की शक्ति को पुनःक्षीण कर दिया और फिर कुछ काल के लिए कन्नौज प्रतिहारों के हाथ से जाता रहा। परन्तु शीघ्र ही फिर उनके अधिकार में आ गया।

नागभट्ट द्वितीय के पश्चात् रामभद्र राजा हुआ उसके समय में कोई महत्वपूर्ण घटना घटित नहीं हुई

**राजा भोज तथा महेन्द्रपाल प्रथम**:—रामभद्र के बाद प्रतिहार वंश का सर्व प्रसिद्ध राजा भोज प्रथम तथा उसका पुत्र महेन्द्रपाल प्रथम राजा हुए। उनके समय से फिर प्रतिहार शक्तिशाली हो गये। उन्होंने कन्नौज पर पुनः अधिकार कर लिया। उन्होंने पूर्वी पंजाब से बंगाल तक समस्त उत्तरी भारत पर विजय प्राप्त की। इस समस्त प्रान्त में प्राप्त शिलालेख इस बात को प्रमाणित करते हैं कि इनके समय में साहित्य तथा कला की विशेष उन्नति हुई। और उनकी राजधानी कन्नौज उत्तरी भारत का सर्व श्रेष्ठ तथा महत्वपूर्ण नगर बन गया।

**महिपाल प्रथम**:—महेन्द्रपाल के दूसरे पुत्र महिपाल प्रथम के समय में राष्ट्रकूटों से प्रतिहार वंश का पुनः संघर्ष हुआ। राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीय ने इसे परास्त कर दिया। राष्ट्रकूट फिर उत्तरी भारत की ओर बढ़े और महिपाल को गद्दी से उत्तार कर कन्नौज को अपने अधिकार में कर लिया। इसी बीच में राष्ट्रकूटों में आन्तरिक कलह हुई जिसके कारण राष्ट्रकूट दक्षिण की ओर चले गये और कन्नौज फिर बिना प्रयास के ही महिपाल के हाथ आ गया।

अंतिम प्रतिहार :—महिपाल के पश्चात् और कई प्रतिहार राजा हुए। उनके समय में प्रतिहार सत्ता का पतन होता चला गया। राष्ट्रकूटों से कई बार परास्त होने के कारण उनकी शक्ति का ह्रास पहिले ही हो चुका था। जब महमूद गजनवी ने कन्नौज पर आक्रमण किया तब वहाँ राज्यपाल प्रतिहार राज्य करता था। उससे युद्ध भी करते धरते न बन पड़ा। कन्नौज के सातों दुर्ग एक दिन में ही महमूद के हाथ आ गये। राज्यपाल ने उसकी आधीनता स्वीकार करली। जब महमूद गजनी को गया तो हिन्दू राजाओं ने कायर राज्यपाल पर अपना क्रोध उतारा और उसे भगा कर त्रिलोचनपाल को गद्दी पर बैठाया। महमूद ने तुरन्त इसका बदला लिया। परन्तु त्रिलोचनपाल की मृत्यु के पश्चात् प्रतिहार राज्य सर्वथा समाप्त हो गया। और गहरवारों ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया।

गहरवार वंश :—चन्द्रदेव गहरवार वंश का संस्थापक था। १०८० ई० में चन्द्रदेव ने कन्नौज में एक मजबूत राजपूत राज्य स्थापित कर दिया उसका राज्य वर्तमान उत्तरप्रदेश के अधिकांश भाग पर था। बारहवी शताब्दी के अन्त तक उत्तरी भारत में गहरवार वंश का पद बहुत ऊंचा रहा। १०८० ई० से जयचन्द तक जो इस वंश का अन्तिम राजा था, कन्नौज इन लोगों के आधिपत्य में रहा। परन्तु इसके बाद मुस्लिम राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

कन्नौज :—जैसा कि पहिले उल्लेख किया गया है हर्षवर्धन के समय से लेकर मुस्लिम विजय तक कन्नौज उत्तरी भारत का सब प्रकार केन्द्र रहा। इस प्रकार आठवी शताब्दी से बारहवी शताब्दी तक के भारत का सांस्कृतिक विकास कन्नौज के इतिहास से सम्बन्धित है। पूर्व उल्लेख किया जा चुका है कि उत्तरी भारत के प्रमुख राज्य अर्थात् बंगाल के 'पाल', राजपूताने के 'प्रतिहार' और दक्षिण के 'राष्ट्रकूट' कन्नौज पर अधिकार करने की चेष्टा करते रहे।

---

## (आ) काश्मीर

काश्मीर :—प्राचीन समय के अन्तिम युग में सबसे समुचित वर्णन काश्मीर का मिलता है। यहाँ कल्हण ने बहुत पड़ताल करके १२वी सदी में एक बड़ा इतिहास संस्कृत पद्य में लिखा जो राजतरंगिणी के नाम से प्रसिद्ध है—बहुत प्राचीन काल के विषय में कल्हण ने जो लिखा है, वह तो मुख्यतः किम्वदन्ती है, पर आठवीं ईसवी सदी से यह सुसम्बद्ध इतिहास देता है—इस सदी के राजा चन्द्रपीड और मुक्तापीड़ ललितादित्य चीन सम्राट् को अपना महाराजाधिराज मानते थे पर वास्तव में वे

स्यमस थे—ललितादित्य काश्मीर का सबसे प्रतापी राजा हुआ। उसने साहित्य-कला और शासन विद्या को प्रोत्साहन दिया और मार्तण्ड का अनुपम मंदिर बनवाया जिसका अधिकांश भाग अब तक मौजूद है—उस ने भूटियों को परास्त किया तथा

कन्नौज के राजा यशोवर्मन से मिलकर तिब्बत पर आक्रमण किया और सिन्ध के किनारे तक का पराक्रम किया। कुछ दिन के बाद उसमें और कन्नौज के राजा यशोवर्मन में झगड़ा हो जाने के कारण उसने यशोवर्मन को परास्त कर काश्मीर की ख्याति को चार चाँद लगा दिये। उसके बाद जयापीड ने भी काश्मीर को हिन्दुस्तान की एक बड़ी शक्ति बनाये रक्खा, पर उसका आन्तरिक शासन बड़ी निर्दयता और अत्याचार का था। अवन्तिवर्मन ( ८८५—८६ ई० ) ने सिंचाई का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया। उसके बाद बहुत-से राजा हुए जिनमें से कुछ ने प्रजा का बहुत उपकार किया, परन्तु कुछ बड़े अत्याचारी सिद्ध हुए—१३३९ ई० में मुसलमानों ने काश्मीर पर अपना अधिकार जमा लिया।

## (इ) मगध तथा बंगाल

पाल वंश :—बंगाल का शासक शशांक, जिसका कि उल्लेख पूर्व किया जा चुका है, हर्ष का समकालीन था। उसकी मृत्यु के पश्चात् बंगाल में अराजकता फैल गई। इससे क्षुब्ध होकर आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में प्रजा ने गोपाल नामक व्यक्ति को जो बौद्ध था अपना राजा चुना। इसी राजा ने पालवंश की स्थापना की उसके निधन के पश्चात् उसका पुत्र धर्मपाल गद्दी का अधिकारी हुआ।

धर्मपाल :—यह एक प्रभावशाली शासक था। उसने अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिये मगध को जीता और कन्नौज के राजा इन्द्रायुध को, जो यशोवर्मन का उत्तराधिकारी था, परास्त किया और अपने अधीनस्थ चक्रायुध को गद्दी पर आरूढ किया। इन्द्रायुध ने प्रतिहार राजा नागभट्ट द्वितीय की शरण ली। उसने इन्द्रायुध की सहायता की। धर्मपाल तथा चक्रायुध परास्त हुए।

परन्तु इसी समय दक्षिण के राष्ट्रकूट राजा गोविन्द तृतीय ने प्रतिहार राजा नागभट्ट द्वितीय तथा धर्मपाल को परास्त कर उत्तरी भारत में राष्ट्रकूटों का राज्य स्थापित कर लिया। किन्तु राष्ट्रकूट अधिकार भी शीघ्र ही समाप्त हो गया।

धर्मपाल एक शक्तिशाली राजा था। उसका राज्य कन्नौज से विंध्याचल तक विस्तृत था। वह बौद्ध धर्म का अनुयायी था। उसने विक्रमशिला वा उद्यानपुर के विहारों की स्थापना की जिनमें सहस्रों विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे।

देवपाल :—उसका उत्तराधिकारी देवपाल 'पाल' वंश का सबसे प्रसिद्ध राजा था। उसने कन्नौज पर पुनः आधिपत्य स्थापित कर लिया तथा कलिंग पर विजय प्राप्त की और अपने समकालीन प्रतिहार राजा को परास्त किया।

श्रौर साहित्य का प्रेमी था। उसने नालन्द के मन्दिर का पुनः निर्माण कराया और उसमें सुन्दर प्रतिमायें स्थापित की।

**देवपाल के उत्तराधिकारी** :—देवपाल के उत्तराधिकारी साम्राज्य की रक्षा न कर सके और शनैः शनैः उनका साम्राज्य क्षीण होता चला गया प्रतिहार राजा भोज प्रथम ने (८३५ ई०—८९० ई०) कन्नौ पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। तदुपरान्त पालवंश की शक्ति क्षीण होती चली गई तथा बारहवी शताब्दी के मध्य में विजय सैन ने उनको बंगाल से निकाल कर सैन वंश की स्थापना की। अब इस वंश का राज्य केवल मगध तक ही सीमित रह गया। जब मोहम्मद गौरी के सेनापति बख्त्यार खिलजी ने ११९७ ई० में केवल २०० सिपाही लेकर बिहार तक आक्रमण किया तो पाल सेना से कुछ भी करते धरते न बना। भेड़ बकरी की भांति प्रजा का ध्वंस किया गया। बख्त्यार ने बिहार पर अधिकार कर वहां के मठों को खूब लूटा, तथा तमाम बौद्ध भिक्षुओं की हत्या करदी। सब मठ धराशायी बना दिये, जिससे बौद्ध धर्म अपनी जन्मभूमि से सदैव के लिये नष्ट हो गया।

**पाल राजाओं पर दृष्टिपात** :—पालवंश ने बंगाल पर लगभग चार शताब्दी पर्यन्त राज्य किया। उनकी राजधानी गौड़ थी। जिसके भग्नावशेष आज भी विद्यमान हैं। पाल राजा बड़े शक्तिशाली थे, उन्होंने एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया था। ये लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी थे, उन्होंने अन्य धर्मों के प्रति सदैव सहिष्णुता का बर्ताव किया, और ब्राह्मणों को अपना मन्त्री बनाया। उनके समय में विक्रमशिला और उद्यानपुर के बिहार बने। उन्हें कला तथा साहित्य से विशेष प्रेम था। उनके आश्रय में रह कर अनेकों कवि व लेखकों ने महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की। नालन्दा के मन्दिर का, जिसको पहले जावा और सुमात्रा के राजा ने बनवाया था, पाल राजा देवपाल ने पुनः निर्माण करवाया। पालवंशीय राजा सिंचाई की ओर विशेष ध्यान देते थे। दीनापुर जिले के अनेक तालाब इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। ये लोग जावा तथा सुमात्रा इत्यादि अपने समीपवर्ती राज्यों से मैत्री रखते थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पाल-वंशीय शासकों की छत्रछाया में भारतीय संस्कृत, साहित्य तथा कला इत्यादि प्रगति की ओर अग्रसर हुए।

**सैन वंश** :—सैन-वंशीय लोग दक्षिण के निवासी थे। ये व्यवसाय की खोज में दक्षिण से पश्चिमी बंगाल में आये। ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्भ में ये ब्राह्मण थे। इनके रीति-रिवाज इस कथन की पुष्टि करते है। परन्तु शासन सत्ता उनके हाथ में आने के कारण ये क्षत्रियों में गिने जाने लगे। इस वंश की स्थापना १०२० ई० में सामन्त सैन ने की।

**विजय सैन** :—सामन्त सैन के पौत्र विजयसैन ने पाल वंश को पूर्णतया समाप्त करने के लिए विहार में, जहाँ उनका साम्राज्य अब शेष था, एक सेना भेजी, आक्रमण सफल हुआ, पाल वंश का स्वतन्त्र राज्य समाप्त हुआ तथा सैन राज्य की नींव सुदृढ़ हो गई, परन्तु पाल-वंशज फिर भी उनके सहायक राजाओं के रूप में बिहार में राज्य करते रहे।

**बल्लाल सैन** :—विजयसैन का पुत्र बल्लाल सैन था वह १२ वीं शताब्दी के मध्य में राज्य करता था। बंगाल में 'कुलीन प्रथा' का प्रचार इसी ने किया। कहा जाता है कि वह संस्कृत का अच्छा ज्ञाता एवं लेखक था। उसने कई ग्रन्थों की रचना की। सैन वंश के राजा हिन्दू थे। अतः उनके समय से हिन्दू धर्म का उत्थान और बौद्ध धर्म का पतन बंगाल में प्रारम्भ हो गया। बल्लाल सैन के शासन-काल में इस ओर और भी अधिक प्रगति हुई।

**लक्ष्मण सैन** :—बल्लाल सैन की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र लक्ष्मण सैन सिंहासनारूढ़ हुआ। उत्तर-पूर्व में उसने इलाहबाद तक का प्रदेश अपने अधीन कर लिया था। दक्षिण में भी उसने अपने साम्राज्य को पर्याप्त मात्रा में विस्तृत कर लिया था। 'गीत-गोविन्द' का प्रसिद्ध लेखक जयदेव इसी की सभा का रत्न था।

इसी के शासन-काल में मुसलमान विजेताओं की दृष्टि बंगाल की ओर उठी और सन् १२०० ई० में कुतुबुद्दीन का एक सेनापति मुहम्मद बिन बख्तियार बंगाल की ओर अग्रसर हुआ। नदिया पर आक्रमण कर उसने उस पर अपना अधिकार जमा लिया। लक्ष्मणसैन पूर्व की ओर भाग गया। और सोनार गाँव में अपनी राजधानी स्थापित कर राज्य करने लगा।

## (ई) पंजाब

**'साही वंश** :—कुशान वंश का अन्तिम राजा वसुदेव था। उसके पश्चात् भारत में कुशान राज्य का अन्त हो गया, परन्तु वे अफगानिस्तान में 'साही' नाम से राज्य करते रहे। यद्यपि पाँचवीं तथा छठी शताब्दी में हूणों ने इनकी शक्ति का सर्वथा अपहरण कर लिया तथापि अफगानिस्तान पर उन्होंने अपना आधिपत्य स्थापित रक्खा। नवीं शताब्दी के अन्त में मुसलमानों ने उन्हें वहाँ से निकाल दिया। उन्होंने तत्पश्चात् पंजाब पर अपना अधिकार कर लिया।

**जयपाल** :—साही वंश के राजा जयपाल ( ९८५—१००१ ) के समय में गजनी सुल्तान सुबुक्तगीन ने पंजाब पर कई आक्रमण किये। एक बार जयपाल ने देहली, अजमेर और कन्नौज इत्यादि के शासकों को इसका सामना करने के लिये

आमन्त्रित किया। उन सबने जयपाल को सहायता भेजी, परन्तु वह फिर भी परास्त हुआ, और उसे अपने राज्य का पश्चिमी भाग, जिसमें पेशावर इत्यादि स्थित हैं, सुबुक्तगीन को देना पड़ा।

१००० ई० में महमूद गजनवी ने जयपाल पर आक्रमण किया और उसे परास्त कर बन्दी बना लिया, जिससे उसे इतना दुख हुआ कि उसने आत्म-हत्या करली और उसकी जगह आनन्दपाल राजा हुआ।

आनन्दपाल के समय में महमूद ने कई आक्रमण किये और उसके राज्य को खूब लूटा। उनके पश्चात् ( १०१३—२१ ) त्रिलोचनपाल गद्दी पर बैठा—उसने महमूद से वीरतापूर्वक युद्ध किया, परन्तु परास्त हुआ। इसके पश्चात् शाही वंश समाप्त हो गया।

## उ (सिन्ध)

७०० ई० के लगभग सिन्ध प्रदेश पर ब्राह्मणों का अधिकार था, दाहिर नामक राजा वहाँ राज्य करता था, उसकी प्रभुता सारे सिन्ध पर और वर्तमान दक्षिणी पंजाब पर थी, उसके अधीन कई राजा थे, जो अनेक बातों में स्वतन्त्र थे, एक प्रकार की संघ शासन व्यवस्था साधारणतया देश भर में और विशेषतया पंजाब तथा सिन्ध में वैदिक-काल से ही प्रचलित थी। यह संघ शासन स्थानीय स्वराज्य का एक रूप था, जो स्वतन्त्र विकास के लिए सदा अवसर देता था, साहित्य और कला की वृद्धि के लिए उपयोगी था। सभ्यता की प्रगति में सहायक था, परन्तु इससे राजनैतिक और सामाजिक शक्ति कम हो जाती थी। केन्द्रीय अधिकार की निर्बलता से नेतृत्व में बाधा होती थी। किसी भी असन्तोषी निर्बल राजा को शत्रु से मिल जाने का अवसर रहता था। देश तथा प्रांत की एकता का भाव भी निर्बल हो जाता था। ८ वीं सदी में सिन्ध के आक्रमण के समय और फिर ११ वीं सदी में जब हिन्दुओं को विदेशी आक्रमणों का सामना करना पड़ा तब संघ-शासन विपत्तिजनक सिद्ध हुआ।

७१२ ई० में ईराक के हाकिम हज्जाज ने अपने भतीजे मोहम्मद बिनकासिम की अध्यक्षता में कोई ७ हजार फौज सिन्ध के राजा दाहिर के विरुद्ध कुछ डूबे हुए अरब जहाजों का बदला लेने के लिए भेजी। युद्ध का विस्तृत वर्णन अगले भाग में किया जायेगा, यहाँ केवल इतना कहना कह देना काफी होगा कि दाहिर परास्त हुआ और भाग गया। उसकी मृत्यु के पश्चात उसकी रानी ने सेना का नेतृत्व ग्रहण किया और युद्ध को जारी रक्खा, परन्तु जब उसने देखा कि सफलता की कोई आशा नहीं है, तो अपने वंश की अन्य महिलाओं के साथ जौहर की प्रथा द्वारा प्राणों की आहुति दे दी। कासिम की फौज आगे बढ़ती गई, और ७१४ ई० में सारे सिन्ध और दक्षिणी

पंजाब पर अरबों का शासन स्थापित हो गया। विजय में अरबों ने बड़ी निर्दयता से काम लिया, पर विजय के बाद उन्होंने बड़ी सहनशीलता दिखाई। बहुत से हिन्दुओं से केवल कर लेकर ही वे सन्तुष्ट हो गये। उद्योगियों और व्यापारियों को कोई क्षति नहीं पहुँचाई और न हिंदुओं के धर्म पर बलात्कार किया, परन्तु ८ वीं सदी में ही, आपसी झगड़ों के कारण खलीफाओं की शक्ति कम हो गई, इस लिये अरब-शासन सिंध में भी निर्बल हो गया और हिंदुओं ने आसानी से उन्हें निकाल बाहर किया। ९ वीं सदी से १२ वीं सदी तक फिर उसी तरह का हिन्दू राज्य सिंध में जारी रहा, जैसा कि ७ वीं सदी तक था। १२ वीं सदी में वे फिर हारे और छः सौ वर्ष के लिए सिंध मुसलमानों के अधिकार में चला गया।

## (ऊ) अजमेर

**चौहान वंश** :—चौहान वंश ने साभर के आस-पास अपना राज्य स्थापित किया। बारहवीं शताब्दी के मध्य में विग्रहराज चतुर्थ इस वंश का सबसे प्रतापी राजा हुआ। उसने दिल्ली, गुड़गांवा और हरियाना प्रदेश तोमर राजपूतों से जीत लिए। उसका उत्तराधिकारी पृथ्वीराज था, तराइन के युद्ध में ११९२ ई० में मुहम्मद गौरी द्वारा पृथ्वीराज परास्त हुआ और मारा गया। दिल्ली और अजमेर पर मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित हो गया, परन्तु चौहान राजपूतों ने रणथम्भौर को राजधानी बना लिया। यहां वह बहुत काल तक मुसलमानों से लोहा लेते रहे।

## (ए) जेजक भुक्ति

**चन्देल** :—यह लोग जेजक भुक्ति अर्थात् प्राचीन बुन्देलखण्ड के राजपूत थे। इन्होंने अपने राज्य की स्थापना नवीं शताब्दी में की। आरम्भ में यह प्रतिहारों के अधीन थे। दसवीं शताब्दी आरम्भ में (९२५—९५०) यशोवर्मन की अध्यक्षता में चन्देल वंश ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। उसने कालिंजर को जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। चन्देलवंश का सबसे प्रसिद्ध राजा यशोवर्मन का पुत्र व उत्तराधिकारी धंग था, (९५०—१०००) इसके शासन-काल में चन्देल वंश की कीर्ति और भी अधिक हो गई। उसने यमुना नदी तक अपने राज्य को बढ़ाया। धंग ने पंजाब के राजा जयपाल के साथ गजनी के अमीर सुबुक्तगीन का सामना किया, परन्तु परास्त हुआ। खजुराहो का प्रसिद्ध मन्दिर इसी ने बनवाया। उसके बेटे गंड ने कन्नौज के राजा राजपाल पर आक्रमण किया क्योंकि उसने बिना युद्ध किये ही महमूद गजनवी की अधीनता स्वीकार करली थी। राजपाल मारा गया, जब महमूद को इसका पता लगा तो उसने गंड पर चढ़ाई की, परन्तु वह बिना युद्ध किये ही लड़ाई के मैदान से भाग गया। इस वंश का दूसरा प्रसिद्ध राजा कीर्तिवर्मन

उसने चन्देल वंश की ख्याति को पुन: जीवित किया। इस वंश का अन्तिम राजा परिमर्दन अथवा परमाल था। सन् ११८२ ई० पृथ्वीराज चौहान ने उसे परास्त किया। अन्त में कुतुबुद्दीन ऐबक ने १२०३ ई० में चन्देल राज्य पर अपना अधिकार कर लिया।

चन्देल राजाओं ने महोबा, कालिंजर इत्यादि नगरों में बहुत से मन्दिर बनवाये। एवं अन्य हिन्दू राजवंशों की तरह सिंचाई का यथोचित प्रबन्ध किया। पहाड़ियों को काट कर या घेर कर पत्थर के ऐसे मजबूत बांध बनवाये कि बरसात में बहुत-सा पानी आप-से-आप जमा हो जाता था और बड़ी २ झीलें बन जाती थीं। यह झीलें, सिंचाई के लिये जितनी उपयोगी थीं, उतनी ही देखने में सुन्दर थीं।

## (ऐ) ग्वालियर

कच्छपघट वंश :—ग्वालियर भी पहिले प्रतिहार साम्राज्य का एक अङ्ग था, परन्तु ६६० ई० के लगभग वज्रदमन नामक सरदार ने, जो कच्छपघट वंश से था, उसे जीत कर एक स्वतन्त्र राज्य का निर्माण किया। सन् ११२८ ई० तक ग्वालियर का किला इस वंश के अधिकार में रहा, इसके पश्चात् ग्वालियर ने चंदेलो की आधीनता स्वीकार करली।

## (ओ) बघेलखण्ड

चेदि वंश :—चन्देल राज्य के दक्षिण में जबलपुर के निकटवर्ती प्रदेश अर्थात् बघेलखण्ड में कुलचरि अथवा चेदि वंश का राज्य था। इनकी राजधानी त्रिपुरी थी। गांगेयदेव विक्रमादित्य ने ( १०१५—४० ) तक इस राज्य की शक्ति को बहुत बढ़ाया, १०१६ ई० में उसने तिरहुत पर अपनी प्रभुता जमाई, १०३५ ई० में उसने मगध पर आक्रमण किया और आस-पास के राजाओं पर आधिपत्य जमाया। उसके पुत्र राजा कर्ण ने गुजरात से मिलकर मालवा के राजा भोज को हराया, परन्तु चन्देल राजा कीर्तिवर्मन ने उसे परास्त किया। इससे कुलचरि वंश का प्रभाव बहुत कम हो गया। उसने बनारस में एक शिवजी का मन्दिर बनवाया और त्रिपुरी के पास कर्णावती नामक राजधानी स्थापित की। बारहवीं सदी के अन्त में यह राज्य रीवाँ के बघेलों के हाथ में चला गया।

## (औ) मालवा

परमार वंश :—प्रतिहार साम्राज्य की समाप्ति के बाद मालवा का परमार वंश भी अन्य कई राज्यों की भांति अपने संस्थापक वाक्पति की छत्रछाया में स्वतन्त्र हो गया। उसके बाद भोज प्रथम गद्दी पर बैठा, ( १०१८—६० ई० )

वह इस वंश का सर्वप्रसिद्ध राजा था। उसने धार को अपनी राजधानी बनाया। भारतीय जनश्रुति में उसका नाम अब तक प्रचलित है। उसने ज्योतिष तथा साहित्य को प्रोत्साहन दिया और विद्वानों का सम्मान किया। उसने कला, काव्य तथा नाट्य में एक नई शैली का आविष्कार किया। उसने पत्थर के टुकड़ों पर काव्य, ज्योतिष तथा मन्त्र-यन्त्र खुदवाये और धार के विद्यालय में रक्खे। मुसलमानों ने मालवा पर आधिपत्य प्राप्त करने के बाद इन बहुमूल्य पत्थरों को मसजिद में लगवा दिया। भोज ने बहुत-सी पाठशालायें खुलवाई और हर तरह विद्या का प्रचार किया—उसने २५० वर्गमील से अधिक क्षेत्रफल की भोजपुर नामक एक झील बनवाई जिसका घेरा व बाँध ऐसा था कि पहाड़ियों से आने वाला सारा पानी उसमें जमा हो जाता था। खेतों की सिंचाई में इससे बहुत मदद मिलती थी और वर्षा न होने पर तो मानो वह अमृत की झील थी।

गुजरात के सोलंकी तथा बघेलखंड के चेदि वंशीय राजाओं से भोज को युद्ध करना पड़ा जिसमें पराजित हो वह मारा गया। परमार वंश का अन्तिम राजा भोज द्वितीय था। अलाउद्दीन खिलजी ने उसे पराजित किया और मालवा को दिल्ली साम्राज्य में मिला लिया।

## (अं) गुजरात

**चालुक्य अथवा सोलंकी वंश:**—इस वंश की स्थापना मूलराज प्रथम ने की। यह लोग भी प्रतिहारों के अधीन थे। परन्तु दसवीं शताब्दी के मध्य में वह स्वतंत्र हो गये और अनहिलवाड़ी को अपनी राजधानी बनाया। इस वंश के दूसरे राजा भीम प्रथम के समय में महमूद गजनवी ने गुजरात पर आक्रमण किया।

सोलंकी वंश का सबसे प्रतापी राजा कुमारपाल (११४३—७४ ई०) हुआ। वह विद्वानों का आदर करता था। उसने जैन विद्वान हेमचन्द्र सूरी से प्रभावित हो जैन धर्म की बहुत सी बातों को मानना प्रारम्भ कर दिया। इस वंश का अन्तिम राजा कर्णदेव था। अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति ने उसे पराजित कर गुजरात को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

## (अः) उड़ीसा

प्राचीन काल में उड़ीसा एक सम्पूर्ण राज्य न था। इसके उत्कल कलिंग आदि कई भाग थे। छठी शताब्दी में इन भागों में से कलिंग में गंग वंशीय सम्राटों का राज्य था। इनकी एक शाखा मैसूर में भी राज्य करती थी—चौदहवीं शताब्दी में चोडगंग ने ( १०७६—११४७ ई०) गंग साम्राज्य को गंगा से गोदावरी तक

दिया—इसी ने पुरी में जगन्नाथ जी का प्रसिद्ध मंदिर बनवाना आरम्भ किया, १५६८ ई० में मुसलमानों ने पूर्णतया इस राज्य पर अधिकार कर लिया।

## प्रश्न

१—कन्नौज पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए किन किन वंशों में संघर्ष होता रहा।

२—प्रतिहार कौन थे। उनके विषय में तुम क्या जानते हो?

३—पाल राजाओं पर एक टिप्पणी लिखो।

४—प्रतिहार साम्राज्य के भिन्न-भिन्न होने पर जो राज्य स्थापित हुये उनका संक्षिप्त विवरण दो।

५—साही कौन थे उनके विषय में तुम क्या जानते हो?

६—परमार राजा भोज के विषय में तुम क्या जानते हो?

---

अध्याय १८

# राजपूत काल में दक्षिण

(अ) वातापि के चालुक्य:—२०० ई० के लगभग शातवाहनों की शक्ति नष्ट हो जाने के पश्चात् 'वाकातक' वंश के इस प्रदेश पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। ५५० ई० में इस वंश को परास्त करके पुलकेशिन प्रथम ने चालुक्य वंश की स्थापना की, चालुक्य राजदूत हूण वर्ग में से थे। पुलकेशिन द्वितीय ने 'वातापि' अर्थात् वर्तमान 'वादामि' को जो बीजापुर जिले में स्थित है, अपनी राजधानी बनाया। अतः यह वंश 'वातापि के चालुक्य' नाम से प्रसिद्ध है।

पुलकेशिन:—पुलकेशिन प्रथम ने वातापि में बहुत से मन्दिरों का निर्माण कराया। उसने अश्वमेध यज्ञ किया और पृथ्वी-वल्लभ की उपाधि धारण की। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी कीर्तिवर्मन प्रथम और मंगलेश्वर ने चालुक्य राज्य को समृद्धिशाली एवं विस्तृत बनाया। वर्तमान बम्बई राज्य तथा हैदराबाद उसमें सम्मिलित हो गया।

पुलकेशिन द्वितीय ६०८—६४२:—६०४ ई० में पुलकेशिन द्वितीय मंगलेश्वर को गद्दी से उतार कर स्वयं राजा बन बैठा। यह इस वंश का सबसे प्रसिद्ध तथा प्रभावशाली राजा था। इसने गुजरात, मद्रास के नेलूर जिले तथा मध्य प्रान्त

ने पूर्वी भूभाग को, जो उस समय महाकोसल कहलाता था, जीत लिया। उसने 'कदम्ब वंश' से कर्नाटक जीत कर अपने भाई को वेंगी में राजा बनाया। यह भाई पूर्वी चालुक्यो के नाम से पुलकेशिन की अधीनता मे राज्य करने लगा। कन्नौज के सुप्रसिद्ध राजा हर्षवर्धन को परास्त कर उसने अपनी ख्याति को और आलोकित किया। हर्षवर्धन तथा पुलकेशिन द्वितीय में सन्धि हो गई और जैसा कि उल्लेख किया गया है नर्मदा नदी दोनो राज्यो की सीमा निर्धारित कर दी गई। पुलकेशन द्वितीय तत्पश्चात् अपने निकटवर्ती पल्लव राज्य की ओर अग्रसर हुआ, परन्तु तत्कालीन पल्लव राजा नरसिंह वर्मन द्वारा परास्त हुआ और वीर गति को प्राप्त हुआ।

पुलकेशिन द्वितीय —अपने समय के अत्यन्त विख्यात राजाओ में से था। उसकी ख्याति विदेशो तक फैल चुकी थी। फारिस के राजा खुसरो द्वितीय से उसकी मैत्री थी। अजन्ता का एक चित्र इस मैत्री का पुष्ट प्रमाण है। उसमें खुसरो द्वितीय का राजदूत पुलकेशिन द्वितीय को अपने सम्राट् का पत्र भेंट करता हुआ चित्रित किया गया है।

६४१ ई० में प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वानसांग भी इसके राजदरबार में आया। पुलकेशिन का उल्लेख करते हुए वह लिखता है कि चालुक्य एक वीर जाति थी। अपने शरणागतो पर दया करना अपना धर्म समझती थी, परन्तु अपने शत्रुओ के प्रति उनका स्वभाव क्रूरता से परिपूर्ण रहता था। पुलकेशिन द्वितीय अत्यन्त महत्वाकांक्षी था। अपनी सैन्य-सबलता के कारण अपने समकालीन समीपस्थ राज्यो को तुच्छ समझता था। उसकी वीरता की ख्याति दूर देशो तक फैल चुकी थी।

विक्रमादित्य प्रथम.—पुलकेशिन द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र विक्रमादित्य प्रथम गद्दी पर बैठा उसने अपने पिता का प्रतिशोध लेने के लिए पल्लव राज्य पर धावा बोल दिया और उसे परास्त कर उसकी राजधानी कांची पर अपना झंडा फहराया।

विक्रमादित्य द्वितीय —विक्रमादित्य प्रथम के पश्चात् विक्रमादित्य द्वितीय के समय में चालुक्य पल्लव संघर्ष निरन्तर चलता रहा। कभी एक तो कभी दूसरा विजय प्राप्त करता रहा।

कीर्तिवर्मन.—कीर्तिवर्मन द्वितीय चालुक्य वंश का अन्तिम राजा था। उसे राष्ट्रकूट राजा दन्तिदुर्ग ने, जिसका आगे विवरण दिया जावेगा, परास्त किया। इस प्रकार चालुक्य साम्राज्य समाप्त हो गया, परन्तु कुछ कालोपरान्त इनकी एक शाखा ने, जो इतिहास में कल्याणी के चालुक्य नाम से प्रसिद्ध है, पुन चालुक्य सत्ता की स्थापना की।

गद्दी पर बैठते ही गोविन्द तृतीय से अपने साम्राज्य का विस्तार करना आरम्भ कर दिया। तुंगभद्रा को पार करके उसने पल्लव राजाओं को परास्त किया और अधिक कर देने के लिए बाध्य किया। इस प्रकार अपने समकालीन राजाओं में गोविन्द तृतीय समस्त भारतवर्ष में सबसे प्रभावशाली राजा हो गया।

**अमोघवर्ष प्रथम** :—गोविन्द तृतीय के पश्चात् उसका पुत्र अमोघवर्ष प्रथम सिंहासनारूढ़ हुआ। उसके समय में राष्ट्रकूटों और कल्याणी के चालुक्यों में निरन्तर युद्ध चलता रहा और कभी कोई तो कभी कोई विजयी बनता रहा।

यह जैन धर्म का अनुयायी था। अतः इसके शासन-काल में जैन धर्म को विशेष प्रोत्साहन मिला। वह लेखक भी था। कहा जाता है कि प्रसिद्ध जैन ग्रन्थ 'रत्नमालिका' का लेखक यही राजा था।

**अमोघवर्ष के उत्तराधिकारी** :—अमोघवर्ष के उत्तराधिकारी अत्यन्त निर्बल तथा निस्साहसी थे। अतः उनके शासन-काल में राष्ट्रकूट साम्राज्य पतनोन्मुख हो गया। परन्तु कृष्ण तृतीय ने जो अमोघवर्ष से आठवाँ उत्तराधिकारी था, राष्ट्रकूटों का प्रभुत्व एक बार पुनः बढ़ाया। उसने चोल राजा राजादित्य को परास्त कर दिया, तत्पश्चात् उसने कांची तथा तंजोर पर, जो उस समय चोल वंश के अधिकार में थे, आक्रमण किया और उन्हें जीत लिया।

राष्ट्रकूट वंश का अन्तिम राजा कर्क था। द्वितीय चालुक्य वंश के संस्थापक तैल ने उसे परास्त किया। उसकी मृत्यु के पश्चात् कल्याणी के चालुक्यों ने राष्ट्रकूट साम्राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया।

**राष्ट्रकूटों के शासन-काल पर दृष्टिपात** :—राष्ट्रकूट राजा अरब लोगों के साथ, जिन्होंने सिन्ध पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था, मैत्री रखते थे। अतः सैकड़ों मुसलमान व्यापारी और यात्री राष्ट्रकूट राज्य में आते रहे। उन्होंने अपने यात्रा-वर्णन में राष्ट्रकूटों के राज्य का अत्यन्त रोचक वर्णन किया है। राष्ट्रकूट कला से विशेष प्रेम रखते थे। एलोरा का कैलाश मन्दिर संसार की अत्यन्त अद्भुत चीजों में एक है। इसी प्रकार अनेक अन्य मन्दिर उनके इस विषय का प्रेम प्रदर्शित करते हैं। संस्कृत साहित्य को भी उन्होंने अत्यन्त प्रोत्साहन दिया।

## (इ) कल्याणी के चालुक्य

**परिचय** :—९७३ ई० के लगभग तैल-द्वितीय ने चालुक्य वंश की पुनः स्थापना की। उसने हैदराबाद स्थित 'कल्याणी' को अपनी राजधानी बनाया। उसने सुदूर दक्षिण के चोलवंशी राजाओं तथा गुजरात के चालुक्यों को परास्त किया।

**चालुक्यों की धर्म तथा कला-प्रियता** :—चालुक्य-वंशीय राजा वैदिक धर्म के अनुयायी थे, परन्तु अन्य धर्मों के साथ उदारता का बर्ताव करते थे। वे कला तथा साहित्य के विशेष प्रेमी थे। उनके शासन-काल के अगणित मन्दिर तथा विशाल भवन इसके प्रतीक हैं।

## (आ) राष्ट्रकूट

**मान्य खेत के राष्ट्रकूट** :—राष्ट्रकूट राजपूत क्षत्रिय जाति से थे। इस जाति के राजपूत दक्षिण में बहुत पहिले से आबाद थे। परन्तु दन्तिदुर्ग ने चालुक्य राजा कीर्तिवर्मन को परास्त कर राष्ट्रकूट वंश की उन्नति में विशेष सहयोग दिया। उसने ७५६ ई० से ७६० ई० तक शासन किया और मान्यखेत, जिसका वर्तमान नाम मालादेव (हैदराबाद) है, अपनी राजधानी बनाया। इसी कारण इतिहास में यह वंश मान्यखेत के राष्ट्रकूटों के नाम से प्रसिद्ध है। उसने कांची और कलिंग के राजाओं को परास्त कर अपने राज्य को और भी अधिक विस्तृत किया। अपने दुर्व्यवहार के कारण वह प्रजा में अप्रिय हो गया इसीलिए उसे गद्दी से उतार कर उसके चचा कृष्ण प्रथम को सिंहासनारूढ किया गया।

कृष्ण प्रथम ने ( ७६० ई० ७७५ ई० ) राष्ट्रकूटों की शक्ति और भी अधिक बढ़ाई। एलौरा का प्रसिद्ध कैलाश मन्दिर इसी ने पहाड़ी चट्टान कटवा कर बनवाया।

कृष्ण प्रथम के पश्चात् गोविन्द द्वितीय राजा हुआ। वह विलास-प्रिय था। अतः उसके कनिष्ट भ्राता ध्रुव ने उसे परास्त कर गद्दी पर आधिपत्य स्थापित कर लिया।

**ध्रुव** :—ध्रुव अत्यन्त महत्वाकांक्षी था। वह अपना राज्य दक्षिण तक ही सीमित नहीं रखना चाहता था। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि उत्तर को भी विजय करना चाहिए। इस इच्छा के वशीभूत होकर वह अपनी सेना सहित उत्तर की ओर अग्रसर हुआ। इसने 'पाल' और 'प्रतिहारों' को परास्त किया। कन्नौज पर इसका आधिपत्य स्थापित हो गया। परन्तु जैसा कि उल्लेख आ चुका है कि दक्षिण में राष्ट्रकूटों में झगड़ा होने के कारण उसे वापिस लौट कर दक्षिण आना पड़ा, और यहीं उसका देहावसान हो गया।

**गोविन्द तृतीय** :—ध्रुव के बाद गोविन्द तृतीय गद्दी पर बैठा। दक्षिण के राजाओं ने उसे गद्दी से वंचित रखने के लिए गुर्जर प्रतिहार राजा नागभट्ट के नेतृत्व में एक संघ बनाया परन्तु उसे सफलता प्राप्त न हो सकी और नागभट्ट बिना युद्ध किये ही युद्ध-क्षेत्र से भाग गया।

गद्दी पर बैठते ही गोविन्द तृतीय से अपने साम्राज्य का विस्तार करना आरम्भ कर दिया। तुगभद्रा को पार करके उसने पल्लव राजाओं को परास्त किया और अधिक कर देने के लिए बाध्य किया। इस प्रकार अपने समकालीन राजाओं मे गोविन्द तृतीय समस्त भारतवर्ष में सबसे प्रभावशाली राजा हो गया।

**अमोघवर्ष प्रथम :**—गोविन्द तृतीय के पश्चात् उसका पुन अमोघवर्ष प्रथम सिंहासनारूढ हुआ। उसके समय में राष्ट्रकूटो और कल्याणी के चालुक्यो में निरन्तर युद्ध चलता रहा और कभी कोई तो कभी कोई विजयी बनता रहा।

यह जैन धर्म का अनुयायी था। अत. इसके शासन-काल मे जैन धर्म को विशेष प्रोत्साहन मिला। वह लेखक भी था। कहा जाता है कि प्रसिद्ध जैन ग्रन्थ 'रत्नमालिका' का लेखक यही राजा था।

**अमोघवर्ष के उत्तराधिकारी :**—अमोघवर्ष के उत्तराधिकारी अत्यन्त निर्बल तथा निस्साहसी थे। अत उनके शासन-काल मे राष्ट्रकूट साम्राज्य पतनोन्मुख हो गया। परन्तु कृष्ण तृतीय ने जो अमोघवर्ष से आठवाँ उत्तराधिकारी था, राष्ट्रकूटो का प्रभुत्व एक बार पुन. बढाया। उसने चोल राजा राजादित्य को परास्त कर दिया, तत्पश्चात् उसने काची तथा तजौर पर, जो उस समय चोल वश के अधिकार मे थे, आक्रमण किया और उन्हें जीत लिया।

राष्ट्रकूट वंश का अन्तिम राजा कर्क था। द्वितीय चालुक्य वश के सस्थापक तैल ने उसे परास्त किया। उसकी मृत्यु के पश्चात् कल्याणी के चालुक्यो ने राष्ट्रकूट साम्राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया।

**राष्ट्रकूटों के शासन-काल पर दृष्टिपात :**—राष्ट्रकूट राजा अरब लोगो के साथ, जिन्होंने सिन्ध पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था, मैत्री रखते थे। अत सैकड़ो मुसलमान व्यापारी और यात्री राष्ट्रकूट राज्य में आते रहे। उन्होंने अपने यात्रा-वर्णन मे राष्ट्रकूटो के राज्य का अत्यन्त रोचक वर्णन किया है। राष्ट्रकूट कला मे विशेष प्रेम रखते थे। एलौरा का कैलाश मन्दिर ससार की अत्यन्त अद्भुत चीजो मे एक है। इसी प्रकार अनेक अन्य मन्दिर उनके इस विषय का प्रेम प्रदर्शित करते हैं। सस्कृत साहित्य को भी उन्होंने अत्यन्त प्रोत्साहन दिया।

## (इ) कल्याणी के चालुक्य

**परिचय :**—९७३ ई० के लगभग तैल-द्वितीय ने चालुक्य वश की पुन. स्थापना की। उसने हैदराबाद स्थित 'कल्याणी' को अपनी राजधानी बनाया। उसने सुदूर दक्षिण के चोलवशी राजाओं तथा गुजरात के चालुक्यों को परास्त किया।

चेदि राज्य 'और मालवा के 'परमार' वंश से भी उसने सफल युद्ध किया। उसके पश्चात् उसका उत्तराधिकारी सत्यश्रय गद्दी पर बैठा। चोलवंशीय राजाराज-महान् ने उसे परास्त किया, परन्तु बहुत काल तक चोल-चालुक्य संघर्ष चलता रहा आगे चल कर सोमेश्वर प्रथम ने राजाधिराज चोल को पराजित किया। उसने सुप्रसिद्ध राजा भोज को, जो परमार वंश का था, पूर्णतया परास्त कर दिया। इस प्रकार उसने कल्याणी के चालुक्यों की प्रतिष्ठा एवं ख्याति समस्त भारत में फैला दी।

विक्रमादित्य पष्ठम :—इस वंश का दूसरा प्रभावशाली राजा विक्रमादित्य पष्ठम था। इसने १०७६ ई० से ११२६ ई० तक राज्य किया। इसने बंगाल मालवा और सुदूर दक्षिण की रियासतों से सफलता-पूर्वक युद्ध किया। महाकवि बिल्लन ने, जो उसकी सभा का प्रसिद्ध कवि था, इसके विषय में 'विक्रमादित्य' नामक ऐतिहासिक कविता लिखी है।

चालुक्यों का पतन :—विक्रमादित्य के पश्चात् चालुक्य वंश का पतन आरम्भ हो गया और ११५६ ई० में तैल तृतीय के राज्य-काल में उसके सेनापति 'बिज्जल' ने चालुक्य राज्य के अधिकतर भाग पर अपना आधिपत्य कर लिया। बिज्जल का राज्य-काल एक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। उसके शासनकाल में लिंगायत नामक एक नया सम्प्रदाय उठ खड़ा हुआ। ये लोग शिव की उपासना करते थे। पहले यह वर्ण-व्यवस्था एवं श्राद्ध आदि परम्पराओं को बुरा समझते थे, परन्तु आज-कल का 'लिंगायत' सम्प्रदाय ब्राह्मण धर्म की बहुत-सी बातें मानने लगा है। ११९० ई० में कल्याणी के चालुक्य पूर्णतया समाप्त हो गये और उनके स्थान पर तीन नये वंश स्थापित हो गये। द्वार समुद्र के होयसल, देवगिरि के यादव तथा वारंगल के काकतीय—

## (ई) वेनगी के चालुक्य

पूर्वी चालुक्यों को वेनगी के चालुक्य भी कहते हैं। जैसा कि पूर्व उल्लेख में आ चुका है; पुलकेशिन द्वितीय ने कलिंग और आन्ध्र देश पर विजय प्राप्त करके अपने छोटे भाई को वहाँ का वाइसराय बना दिया था। उसने मद्रास के गोदावरी जिले में वेनगी नामक स्थान को अपनी राजधानी बनाया। उसके पुत्र जयसिंह प्रथम ने प्रथम चालुक्य वंश के पतन के पश्चात् अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया। ये लोग अपने समीपवर्ती राष्ट्रकूट वंश से संघर्ष करते रहे। राजेन्द्रचोल ने ११६४ ई० में उनको अपने अधीन कर लिया।

## (उ) देवगिरि के यादव

परिचय :—यादव-वंशीय राजपूत अपने को कृष्ण भगवान का वंशज बतलाते हैं। ११७८ ई० में इस वंश ने विल्लभ के नेतृत्व में उन्नति करनी प्रारम्भ की। उसने देवगिरि के समीपवर्ती प्रदेश पर अपना आधिपत्य कर लिया और अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया। पहले ये लोग चालुक्यों के अधीन थे।

सिंहन :—१२१० ई० से १२४० ई० तक सिंहन नामक राजा ने देवगिरि पर राज्य किया। यह राजा इस वंश का सब से प्रसिद्ध राजा हुआ। उसने होयसल वंश को परास्त कर उन्हें उत्तर की ओर अग्रसर होने से रोका। उसने गुजरात पर आक्रमण कर उस पर विजय प्राप्त की।

रामचन्द्र :—यादव वंश का दूसरा मुख्य राजा रामचन्द्र था। उसने दक्षिण के बहुत से भाग को जीत लिया। १२९४ ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने उसे परास्त किया।

## (ऊ) द्वार समुद्र का होयसल वंश

इस वंश के राजा, 'समुद्र' को (१११० ई०—११३० ई०) जिसका आधुनिक नाम 'हलेबिद' है, राजधानी बना कर मैसूर और उसके समीपवर्ती प्रदेश पर राज्य करने लगे। विट्टिग और वीर बल्लाल तृतीय इस वंश के प्रभावशाली शासक हुए हैं। वे अपने निकटवर्ती हिन्दू तथा मुसलमान राजाओं से युद्ध करते रहे। १३१० ई० में अलाउद्दीन के सेनापति मलिक काफूर ने बल्लाल तृतीय को परास्त कर उसे अलाउद्दीन की आधीनता स्वीकार करने को बाध्य कर दिया।

## (ए) वारंगल के काकतीय

ये लोग तेलगाना (हैदराबाद) के पूर्वी भाग पर राज्य करते थे। वारगल इनकी राजधानी थी—पहले ये भी चालुक्यों के अधीन थे, परन्तु उनके पतन के पश्चात् इन्होंने अपने आप को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। इस वंश के अन्तिम राजा प्रतापरुद्रदेव को मलिककाफूर ने १३१० ई० में परास्त किया और वारंगल के काकतीय वंश की इतिश्री हो गई।

## (ऐ) कांची का पल्लव वंश

परिचय :—'स्मिथ' के कथनानुसार पल्लव वंश के लोग दक्षिण के आदि निवासी थे। तीसरी और चौथी शताब्दी में आन्ध्र साम्राज्य के दक्षिणी भाग में

मुसलमानों की विजय के पूर्व दक्षिण भारत
नर्मदा नदी
ताप्ति नदी
गोदावरी नदी
वारंगल
काकतीय राज्य
कालीनगरम
राजमहेन्द्री
कृष्णा नदी
नेलौर
कांजीवरम
मामल्लपुरम
मदुरा
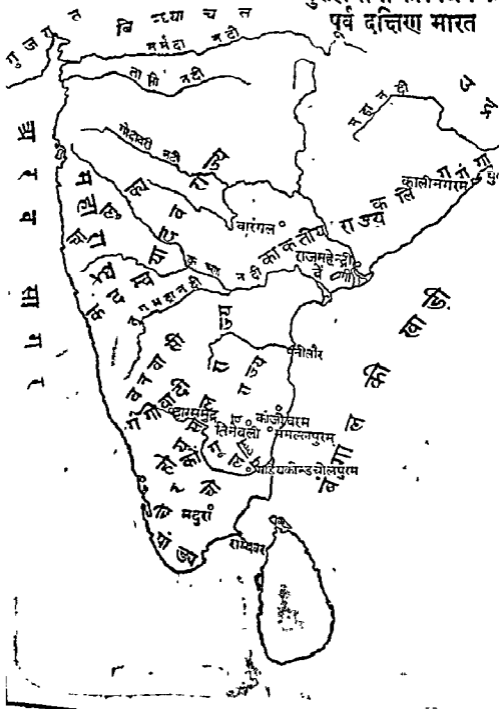
उनका राज्य था। दक्षिण की तामिल रियासतों से प्रायः उनका संघर्ष होता रहता था।

**पल्लव वंश का स्वर्णयुग** :—पल्लव वंश का स्वर्ण युग ५६० ई० से प्रारम्भ होता है जब कि सिंह विष्णु गद्दी पर बैठा उसने कांची को अपनी राजधानी बनाया। वह और उसके उत्तराधिकारी महान् पल्लव कहलाते थे। सिंहविष्णु ने चोल, चेर, पाण्डया और लंका पर विजय प्राप्त की।

**महेन्द्रवर्मन** :—उसके पुत्र और उत्तराधिकारी महेन्द्रवर्मन का नाम इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है। उसकी प्रसिद्धि का कारण उसके अनेक मन्दिरों का निर्माण और उसका साहित्य को प्रोत्साहन देना है। उसने त्रिचनापल्ली, पल्लवारम इत्यादि स्थानों पर सुन्दर मन्दिर बनवाये। जैन धर्मियों को अपने देश से निर्वासित कर उन्होंने शैव धर्म को प्रोत्साहित किया।

**नृसिंहवर्मन** :—उसका उत्तराधिकारी नृसिंहवर्मन महान् प्रसिद्ध राजा हुआ। उसने पुलकेशिन द्वितीय को कई युद्धों में परास्त किया और वातापि पर, जो चालुक्य वंश की राजधानी थी, अधिकार कर लिया। उसने लंका के राजा को शरण दी, और उसको उसका राज्य दिलाने में पूरी सहायता की। इसके समय में ह्वानसांग कांची आया। उसका प्रशंसनीय वर्णन इस बात को सिद्ध करता है कि पल्लवराज उस समय प्रसिद्ध राज्यों में से था।

नृसिंहवर्मन के उत्तराधिकारी बहुत अयोग्य सिद्ध हुए। उनके समय मे पल्लव राज्य अवनति की ओर चल दिया। और अन्त में चालुक्य राजा विक्रमादित्य ने ७४० ई० में और चोल तथा पाण्ड्य वंश की संयुक्त शक्ति ने ९वीं शताब्दी में इसको पूर्णतया समाप्त कर दिया।

**पल्लव राजाओं पर दृष्टिपात** :—पल्लव राजा अत्यन्त साहित्य-प्रेमी थे। आधुनिक खोज और संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थो से, जो इस देश में प्राप्त हुए हैं, प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि पल्लव राजाओं ने संस्कृत साहित्य को पर्याप्त रूप से प्रोत्साहन दिया। उनकी राजधानी संस्कृत शिक्षा का केन्द्र थी। कई पल्लव राजा स्वयं भी अच्छे लेखक थे। अनेक प्रसिद्ध लेखक और कुशल कवि उनके दरबार में रहा करते थे। पल्लव राजाओं ने कला को विशेष प्रोत्साहन दिया। कांची के अनेक मान्य पल्लवरम की गुफायें इस कथन की पुष्टि करते हैं।

**पल्लव-शासन पद्धति** :—पल्लव-शासन प्रबन्ध के विषय में हमें अधिक सामग्री प्राप्त नही होती है। परन्तु शिलालेखों से इतना अवश्य प्रकट होता है कि ग्राम ही शासन की इकाई थी। ग्राम का प्रबन्ध ग्राम-समिति द्वारा होता था। नगर

और करों के प्रबन्ध के लिए सम्पूर्ण-राज्य मण्डलों में विभक्त था। पल्लव राजाओं ने कृषि की ओर भी विशेष ध्यान दिया और सिंचाई की उचित व्यवस्था की।

## (ओ) पाण्ड्य वंश

परिचय :—मेगस्थनीज, महावंश और अशोक के शिलालेखों से विदित होता है कि पाण्ड्य वंश सबसे प्राचीन तामिल राज्यों में एक था। पाश्चात्य विद्वानों ने भी इसका उल्लेख किया है। 'टोलिमी' इत्यादि विद्वान् लिखते हैं कि प्राचीन समय में पाण्ड्य राजधानी मदुरा व्यापार का केन्द्र थी। वह यह भी लिखता है कि पाण्ड्य वंश का राजदूत रोमन राजा आगस्टस के राज-दरबार में भी रहता था।

दूसरी शताब्दी में जब समस्त दक्षिण पर पल्लव वंश छा गया तब पाण्ड्य वंश बड़ी कठिनता से अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित रख सका। कई बार उसका अस्तित्व मिटते २ बचा। सातवीं शताब्दी में जब ह्वानसांग भारत आया, पाण्ड्य वंश कांची के पल्लव वंश का सहायक था और उन्हें कर देता था। आठवीं शताब्दी में पाण्ड्य वंश ने चोलवंश से मैत्री स्थापित कर ली। दोनों ने संयुक्त होकर अविरत रूप से पल्लव-राजाओं से युद्ध करना आरम्भ कर दिया। नवीं शताब्दी में आखिरकार पल्लव परास्त हुए।

पांड्य राजा तथा लंका एवं अन्य राज्य:—पाण्ड्य राजा सदैव लंका से संघर्ष करते रहे। श्रीमरा नामक (८३० ई० ८६२ ई०) पाण्ड्य राजा ने लंका के राजा पर आक्रमण किया। वह उस से पूर्णतया परास्त नहीं हो सका। उसके उत्तराधिकारी वारागुणवर्मन ने पल्लव तथा पश्चिमी गंगवंश के साथ युद्ध किया, परन्तु असफल हुआ। दसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में राजराज चोल ने पाण्ड्य राज्य पर आक्रमण किया और उन्हें चोल वंश की अधीनता स्वीकार करने को बाध्य किया। तेरहवीं शताब्दी में भारवर्मन, सुन्दर पाण्ड्य प्रथम तथा सुन्दर पाण्ड्य द्वितीय और जातवर्मन ने पुन: अपने देश को स्वतन्त्र किया और चोल का बहुत-सा भाग अपने राज्य में मिला लिया। इस प्रकार वह एक बार पुनः सुदूर दक्षिणी भारत का प्रभावशाली राज्य हो गया इनका राज्य नीलोर से कुमारी अन्तरीप तक सम्पूर्ण पूर्वीतट प्रदेश पर फैला हुआ था। इसके कुछ कालानन्तर पाण्ड्य वंश में पारस्परिक ईर्ष्या एवं वैमनस्य का बीज-वपन हो गया। सन् १३१० ई० से १३११ ई० तक मदुरा के सिंहासन के लिए दो उत्तराधिकारियों में युद्ध हुआ। इस पर अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मलिक काफ़ूर ने एक उत्तराधिकारी का पक्ष लेकर पाण्ड्य प्रदेश में प्रवेश

किया और उस पर विजय प्राप्त कर अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। आगे चल कर मुहम्मद तुगलक के पश्चात् जब तुगलक साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया तो पाण्ड्य प्रदेश विजय-नगर में विलीन हो गया और पाण्ड्य लोग इसके स्थानीय सरदार रह गये।

## (औ) चेर वंश

**परिचय तथा संक्षिप्त विवरण:**—चेर वंश की स्थापना बहुत प्राचीनकाल में हुई। अशोक के शिलालेखों में उसका उल्लेख मिलता है। यद्यपि चेर वंश का इतिहास सकलित करने के लिए हमें पर्याप्त सामग्री नही मिलती तथापि इतना कहा जा सकता है कि पाण्ड्य साम्राज्य की भाँति चेर राज्य के बन्दरगाह व्यापार के बड़े केन्द्र थे। ये राजा अपने समीपवर्ती राजाओं से संघर्ष करते रहते थे। १३१० ई० में जब मलिक काफ़ूर ने दक्षिण पर आक्रमण किया तब चेर राजा रविवर्मन भी उसके विरोधी संघ में सम्मिलित हुआ था।

## (अं) चोल वंश

**चोल वंश की प्राचीनता:**—सुदूर दक्षिण की तामिल रियासतों का इतिहास बहुत पुराना है। मैगस्थनीज़ पाण्ड्य रियासत की शक्ति से परिचित था। अशोक ने अपने शिलालेखों में इन रियासतों का उल्लेख किया है। चोल राज्य 'कारो मण्डल' और मद्रास का तटवर्ती था। चोल राज्य का इतिहास आदित्य चोल से प्रारम्भ होता है। जिसने पल्लव राजा अपराजित को पराजित कर पल्लव प्रभुत्व को दक्षिण से सर्वथा नष्ट कर दिया था। इस भाँति आदित्य चोल के पिता विजय माला से लेकर राजराज महान तक के चोल वंशीय सम्राट चोल राज्य के निर्माता हैं।

**आदित्य चोल:**—आदित्य चोल योग्य और अनुभवी शासक था। उस ने पल्लव राजाओं की बहुत-सी मांगो को स्वीकार कर अपनी उदारता का परिचय दिया था।

**पारान्तक प्रथम:**—तदुपरान्त उसका पुत्र पारान्तक प्रथम सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने मदुरा और लंका के राजाओं को जीत कर अपनी रण कुशलता की भेरी बजादी। त्रिचनापल्ली के समीपस्थ उरयूर को उसने अपनी राजधानी बनाया। और पर्याप्त काल तक शासन की बागडोर सभालता रहा। शिव का बड़ा भक्त होने के कारण उसने चिदम्बरम के शिव मन्दिर के स्वर्ण कलश पर पुनः स्वर्ण आभा आलोकित करवाई।

**राष्ट्रकूटों के साथ संघर्ष:**—चोल वंश को इस प्रकार समृद्धि शाली होता देख कर राष्ट्रकूटों के हृदय में द्वेषभाव उत्पन्न हुआ। वे इस वंश की समृद्धि को सहन न कर सके। उन्होंने चोल राज्य पर आक्रमण करके परान्तक के पुत्र राजादित्य को ९४८ ई० में परास्त किया। राजादित्य के पश्चात् पांच राजा इस वंश में और हुए। परन्तु उनका शासनकाल अत्यन्त अल्प रहा और उनके समय में कोई विशेष घटना घटित नहीं हुई।

**राज राजमहान:**—९८५ ई० में राज राज महान् चोल वंश में सर्व प्रसिद्ध शासक हुआ। वह बड़ा वीर योद्धा था। सिंहासनारूढ़ होने के सात वर्ष पश्चात् वह विजय करने के लिए चला। वह अपने प्रयत्न में सफल रहा और ६ वर्ष पश्चात उसने समस्त दक्षिणी भारत पर विजय पताका फहरा दी।

**उसका राज्य विस्तार:**—लंका, पश्चिमी समुद्रतट, पूर्वी चालुक्य राज्य, और कलिंग सब उसके विजय चक्र से पराजित होकर उसका आधिपत्य स्वीकार करने के लिए बाध्य हुए। मालाबार के समुद्र तट का विध्वन्स करके उसने चेर राज्य को विशेष क्षति पहुँचाई। उसने पाण्ड्यों को भी परास्त किया और उनके राजा को बन्दी बना लिया।

**उसकी विवाह सम्बन्धी नीति:**—उसने वेनगी राज्य से सन्धि की और उनसे विवाह सम्बन्ध स्थापित कर अपनी मित्रता को दृढ़ किया। उसने राज्य काल के अठारहवें वर्ष तक उसने युद्ध को जारी रक्खा जब वह समस्त दक्षिणी भारत में विजय दुन्दुभी बजा चुका तब उसे शान्ति प्राप्त हुई, इसके बाद राज्य प्रबन्ध की ओर प्रवृत्त हुआ।

**उसकी इमारतें:**—राजराज महान् ने भव्य भवनों का निर्माण कराया। वह एक महान निर्माता था। उसने अपनी विजय स्मृति में तंजौर के प्रसिद्ध मन्दिर का निर्माण किया। यह मन्दिर द्राविड़ कला का ज्वलन्त उदाहरण है।

**उसकी सामुद्रिक शक्ति:**—उसकी सेना में जहाजी बेड़ा भी था जिसकी सहायता से उसने हिन्द महासागर स्थित लंका और मालद्वीप को जीता। इस प्रकार प्रत्येक दृष्टिकोण से एक समृद्धशाली एवं प्रभावशाली राज्य अपने पुत्र तथा उत्तराधिकारी राजेन्द्र को सौंप कर वह इस संसार से चल बसा।

**राजेन्द्र चोल देव:**—राजेन्द्र चोल देव ने अपने पिता के साम्राज्य को और भी अधिक बढ़ाया। उसने अपने समुद्री बेड़े को बंगाल की खाडी में भेज कर पीगू पर आधिपत्य किया, और अंडमान तथा निकोबार पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। उसने मैसूर के गंग वंशीय राजाओं को जिन्होंने चालुक्य राजाओं से मिल

कर अराजकता प्रारम्भ कर दी थी पराजित किया। चालुक्य वंश से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर उसने मैसूर के गंग वंश और चालुक्यों के संघ को शक्ति हीन कर दिया। १०२३ ई० में उसने बिहार और बंगाल के राजा महीपाल पर सफल आक्रमण किया तथा अपनी विजय स्मृति में स्वयं को "गंग कुन्दन' की उपाधि से विभूषित किया। त्रिचनापली जिले में उसने नई राजधानी बनाई और उसे भव्य भवनों गगन चुम्बी अट्टालिकाओं और रमणीक जलाशयों से सुसज्जित कर चोल कला कौशल का परिचय दिया। परन्तु राजेन्द्र की मृत्यु के पश्चात् चोल राज्य अवनति की ओर जाने लगा। उसके उत्तराधिकारी दुर्बल तथा निस्साहसी हुए जो अपने समकालीन चेर, गंग और पाण्ड्य साम्राज्य को अपने अधिकार में न रख सके।

कुलोचुंग प्रथम (१०७४ ई० से १११२ ई०) तक।—कुलोचुंग प्रथम के समय में एक बार पुनः मृतप्राय चोल राज्य ने करवट बदली। यह राजेन्द्र चोल का पौत्र था। अपने पितामह के सदृश वह एक वीर और साहसी योद्धा तथा सफल शासक था। उसने कलिंग के गंग वंश और पाण्ड्य वंश पर फिर विजय प्राप्त करली और दक्षिण ट्रावनकोर को अपने साम्राज्य में सम्मिलत कर लिया। इस प्रकार उसने चोल राज्य को पुन नवजीवन प्रदान किया और चोल कला कौशल तथा साहित्य में नवीन स्फूर्ति का संचार किया। उसने 'यात्री कर' और 'व्यापारी कर' हटा दिये। १३वीं शताब्दी में चोल राज्य अवनति के गर्त में गिरता ही चला गया और १३१० ई० में मुसलमान आक्रमण और तदोपरान्त विजय नगर राज्य की स्थापना ने चोल राज्य का अन्त कर दिया।

चोल कला :—दक्षिणी भारत की कला में मौलिकता के चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं क्योंकि इस पर विदेशी कला का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा। यह स्वयं विकास द्वारा समुन्नत हुई है। चोल वंशीय सम्राट् कला और विज्ञान के बहुत बड़े पारखी थे। उन्होंने बहुत-सी सुन्दर इमारतों का निर्माण किया। राजराजमहान एवं राजेन्द्र चोल उनमें विशेष उल्लेखनीय हैं। तंजौर और चोलापरम के सुन्दर और विशाल मन्दिर चोल निर्माण कला के प्रतीक हैं। चोल कला के बहुत से उदाहरण हमें लंका और जावा में भी प्राप्त होते हैं, जो इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि चोल एक बहुत बड़े शासक ही नहीं वरन् महान निर्माता भी थे। भव्य भवनों के निर्माण पर हृदय खोल-कर अतुल धन राशि व्यय करना उनके कला प्रेम का परिचय देता है।

चोल शासन प्रबन्ध :—चोल सम्राटों के राज्य प्रबन्ध के विषय में हमें विशेष ज्ञान उनके शिला लेखों में मिलता है। इनसे प्रतीत होता है कि उनका राज्य

प्रबन्ध अत्यन्त नियम बद्ध था। समस्त प्रबन्ध ग्राम पंचायत और ग्राम सभाओं पर अवलम्बित था। बहुत से गाँवों को मिलाकर एक संघ बनाया जाता था जो अपनी स्थानीय समस्याओं को एक धारा सभा द्वारा स्वयं तै करता था। प्रत्येक संघ का स्थानीय कोष होता था, गांव की भूमि पर संघ का पूर्ण अधिकार होता था। जलाशय, उद्यान, न्याय, और दूसरे विभागों का प्रबन्ध करने के लिए कमेटियाँ नियुक्त की जाती थी। सम्पूर्ण राज्य जिलों में विभक्त था। कई जिले मिलकर एक प्रान्त बनाते थे। प्रत्येक प्रान्त पर राजवंश का कोई व्यक्ति शासन करता था। उसकी सहायता के लिए कई अफसर रक्खे जाते थे। भूमि कर ही राज्य की विशेष आय थी यह पैदावार की ⅙ थी। इसके अतिरिक्त दूसरे कर भी थे। जैसे कि व्यवसायिक कर, व्यापारिक कर, नमक कर इत्यादि भूमि कर एकत्रित करने पर विशेष ध्यान दिया जाता था क्योंकि वह राज्य आय का मुख्य भाग होता था। इसी अभिप्राय से सम्पूर्ण देश की माप की गई। सम्पूर्ण ग्राम पर एक निश्चित भूमि कर नियुक्त कर दिया गया था। अकाल या अभाव के अवसर पर जनता को छूट दे दी जाती थी। सड़क तथा सिंचाई के साधनों पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

**सैनिक प्रबन्ध:**—चोल राजाओं का सैनिक प्रबन्ध किस प्रकार होता था, इस विषय का अधिक ज्ञान प्राप्त नहीं होता परन्तु इस प्रकार के प्रमाण अवश्य मिलते हैं कि चोल वंशीय राजा एक स्थायी सेना तथा सामुद्रिक बेड़ा रखते थे।

**वेतन तथा कर व्यवस्था:**—राज कर्मचारियों को वेतन रुपये के रूप में या जागीर के रूप में मिलता था। कर भी रुपये या वस्तु के रूप में लिये जाते थे समस्त देश धन-धान्य से परिपूर्ण था। यह राजराजमहान और कुलोत्तुंग तथा अन्य महान शासकों के सतत् प्रयत्नों का परिणाम था। राजा युद्ध में अपार धन राशि सचित कर लेता था। यही धन राजधानी, निर्माण, कला, साहित्य इत्यादि पर व्यय किया जाता था। इस प्रकार समस्त प्रबन्ध बहुत अच्छा था।

**तत्कालीन समस्त भारत पर विहंगम दृष्टि**—इस प्रकार हम देखते हैं कि समस्त उत्तरी तथा दक्षिणी भारत छोटी २ रियासतों में विभक्त था। कुछ शक्तिशाली थीं तो कुछ नाम-मात्र की। छोटे २ राज्यों में पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष और वैमनस्य नग्न नृत्य करती थी। कभी २ मिथ्या शान के लिए अविरत युद्ध होते रहते थे। यद्यपि कुछ राजा अदम्य साहसी, वीर, अध्यवसायी तथा सर्वगुण सम्पन्न थे तथापि पारस्परिक कलह ने उनको उन्नत नहीं होने दिया। ऐसी दशा में मुसलमानों के आक्रमण अधिक सफल सिद्ध हुए।

**तामिल सभ्यता** :—वह प्रदेश जहाँ द्राविडो के उपरोक्त राज्य थे तामिल प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध था। उसका यह नाम उस प्रदेश की तामिल भाषा के आधार पर रक्खा गया। यह प्रदेश मद्रास से १०० मील उत्तर पश्चिम से कुमारी अन्तरीप तक तथा कारो मण्डल तट से अरब सागर तक फैला हुआ था। यह प्रदेश १३ सूबों या नाड में विभक्त है जो तामिल नाड कहलाते हैं।

**शासन व्यवस्था**:—इन रियासतों की शासन व्यवस्था राज तन्त्रीय थी परन्तु राजा सर्वथा स्वेच्छाचारी तथा निरकुश नही हो सकता था। पाँच समितियों द्वारा उस पर और उसके अधिकारो पर प्रतिवन्ध रक्खा जाता था। यह समितियाँ क्रमशः (१) जनता (२) पडित (३) ज्योतिष (४) वैद्य (५) मन्त्री वर्ग की बनी होती थी।

उत्तराधिकारी चुनने में यद्यपि मन्त्रियो का हाथ होता था। तथापि बहुधा उत्तराधिकार वंश परम्परागत चलता था। मन्त्री प्राय. सत्यवादी व स्पष्ट भाषी होते थे। उनके नैतिक साहस की प्रशंसा करते हुए कई समकालीन विद्वान लिखते हैं कि वह निर्भीकता पूर्वक अपने विचार प्रगट करते थे। समस्त देश में दुर्ग बने थे। ये दुर्ग और उसके समीपवर्ती प्रदेश एक पदाधिकारी को सौंप दिये जाते थे। जो नियमानुकूल उस प्रदेश का प्रबन्ध करता था। उनके नीचे अन्य निम्न श्रेणियों के पदाधिकारी होते थे। ग्राम मुखिया व ग्राम समितियों का यत्र तत्र उल्लेख प्रगट करता है कि नगर व ग्राम का प्रबन्ध इन समितियों द्वारा होता था। चुंगी वसूल करने के लिए बन्दरगाह पर सरकारी अफसर नियुक्त किये जाते थे। इस तरह सिद्ध होता है कि द्राविड राज्य एक अच्छे शासन सूत्र में सकलित थे।

**सामाजिक व्यवस्था** —द्राविड जाति वर्गों में विभक्त थी। यह वर्ग जो व्यवसाय के अनुसार बनाए गए थे निम्नलिखित थे।

प्रथम कृषक वर्ग था। दूसरा ग्वाल वर्ग था जो जानवर पालने का काम करता था। तीसरा वर्ग उन लोगो का था जो समुद्र सम्बन्धी, जैसे मछली पकडना, नाव व जलयान चलाने का व्यवसाय करते थे। चौथा वर्ग शिकार इत्यादि करने वाले लोगो का था। पाँचवा अन्य कार्य करने वालो का। इस प्रकार हम देखते हैं कि जाति प्रथा द्राविड लोगो में न थी। द्राविड वर्ग का आधार व्यवसाय था जन्म नही जैसा कि इस समय में हिन्दुओ में है।

स्त्रियों को काफी स्वतन्त्रता थी पर्दे का रिवाज न था। व स्वतन्त्रतापूर्वक सामाजिक कार्यो मे भाग ले सकती थीं विवाह का आधार बहुधा प्रेम होता था। बहु विवाह की प्रथा प्रचलित थी। स्त्रियाँ शिक्षित व योग्य होती थीं। अपनी सन्तान

में साहस तथा अन्य गुणों का विकास करना वह अपना मुख्य कर्त्तव्य समझती थी।

द्राविड़ लोग पवित्र जीवन व्यतीत करते थे। अतिथि सत्कार उनका सर्वश्रेष्ठ गुण था। चावल और माँस उनके भोजन का मुख्य अंग था, परन्तु जैन और बौद्ध धर्म के प्रभाव से अन्त में अधिकतर लोगों नें माँस खाना बन्द कर दिया था। मद्यपान तामिल जातियों में अत्यधिक प्रचलित था।

धर्मः—प्रारम्भ में द्राविड़ लोग वृक्ष तथा सूर्य इत्यादि की पूजा करते थे, परन्तु धीरे-धीरे जैन, बौद्ध तथा हिन्दू धर्म के प्रभाव से इनमें परिवर्तन हो गया और इन्द्र, विष्णु, वरुण, कृष्ण इत्यादि की उपासना उनके धर्म में सम्मिलित हो गई।

चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में जैनियों ने दक्षिण में बसना प्रारम्भ कर दिया था। उनकी प्रेरणा से शैव्य सम्प्रदाय के लोगों के साथ कठोरता का व्यवहार किया जाने लगा था। इसलिए उन लोगों की संख्या कम होने लगी। जब पाण्ड्य वंशीय राजाओं ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया तो जैन धर्म की अधिक उन्नति हुई परन्तु आगे चलकर ब्राह्मणों के प्रभाव से जैन धर्म दक्षिण ( तामिल प्रदेश ) से सर्वथा लुप्त हो गया। गंगवंश की छत्र छाया में मैसूर तक ही यह धर्म सीमित रह गया।

बौद्ध भिक्षुओं तथा धर्म प्रचारकों के प्रयत्न स्वरूप अशोक के समय में बौद्ध धर्म ने तामिल प्रदेश में प्रवेश किया। पल्लव राजधानी कांचीवरम में बहुत से बौद्ध विहारों की स्थापना के कारण इस धर्म की और अधिक प्रगति हुई। ६४० ई० में जब ह्वानसांग कांचीवरम आया तो वहाँ १०००० भिक्षुक रहते थे। प्रसिद्ध बौद्ध पण्डित धर्मपाल जिसने ह्वानसांग को शिक्षा दी थी यहीं पर पैदा हुआ था। परन्तु जैन धर्मावलम्बियों तथा ब्राह्मणों के विरोध के कारण इस धर्म का पतन हो गया और एक नई विचार धारा ने भक्ति सम्प्रदाय को जन्म दिया। भक्ति सम्प्रदाय दो भागों में विभक्त था।

(१) शैव्य सम्प्रदाय (२) वैष्णव।

शैव्य सम्प्रदाय शिव का उपासक था। और शिव को सर्व शक्तिमान मानता था। इस सम्प्रदाय के कारण दक्षिणी भारत में अनेकानेक अत्यन्त सुन्दर शिवालयों की स्थापना हुई।

**वैष्णव सम्प्रदाय**:—यह सम्प्रदाय विष्णु भगवान का उसके अनेकानेक अवतारों के रूप में उपासक था। इन दोनों सम्प्रदायों के प्रचार से बौद्ध और जैन धर्म का सर्वथा पतन हो गया। शंकराचार्य ! स्वामी रामानुजाचार्य तथा स्वामी माधवाचार्य ने हिन्दु धर्म की पुनः स्थापना की। स्वामी शंकराचार्य का जन्म मालाबार के प्रसिद्ध परिवार में हुआ। उन्होंने वेदान्त सूत्र, उपनिषद तथा भगवत गीता पर शंकर भाष्य लिखे और समस्त भारतवर्ष में भ्रमण कर जैन तथा बौद्ध धर्म का खण्डन

किया। अपनी विद्वत्ता के कारण वह जगत् गुरु कहलाए। फल यह हुआ कि उनके अद्वैतवाद के सामने जैन तथा बौद्ध धर्म न ठहर सके और भारतवर्ष में फिर वैदिक धर्म का प्रसार हुआ।

दूसरे महापुरुष जिन्होने हिन्दु सस्कृति ( या वैदिक सस्कृति ) को भारत मे फिर जाग्रत किया स्वामी रामानुज थे। उनका जन्म ११ वी शताब्दी में हुआ था। वह वशिष्ट अद्वैतवाद के मानने वाले थे। उन्होंने वैष्णव सम्प्रदाय की भिन्न शाखाओ को एक सूत्र में सकलित करने का प्रयत्न किया। उसके द्वारा मैसूर के होयसल वशीय राजाओ ने वैष्णव धर्म स्वीकार किया। इस प्रकार मैसूर राज्य तथा श्री रगम स्थित स्वामी रामानुज का आश्रम वैष्णव सम्प्रदाय का केन्द्र बन गया।

**तीसरे महापुरुष** —माधवाचार्य का जन्म ११९९ में हुआ। वेदान्त शास्त्र में द्वैतवाद इन्ही की देन है। उपरोक्त सिद्ध सन्तो तथा उनके शिष्यो ने दक्षिणी भारत मे जैन तथा बौद्ध धर्म सर्वथा लुप्त कर दिए।

**आर्थिक दशा.**—द्राविड लोग भौतिक सभ्यता मे काफी उन्नत थे। व प्रसिद्ध नाविक तथा व्यापारी थे। ईसा से छ शताब्दी पूर्व ही उन्होंने बेबीलोनिया में व्यापारिक उपनिवेष स्थापित कर लिए थे और वहाँ से भारतीय चावल, गर्म मसाले तथा पीपल यूनान को भेजते थे। प्रथम शताब्दी के प्रारम्भ काल में रोम भारतीय सूती कपडे, व गर्म मसाले, हीरे-जवाहरात का व्यापारिक केन्द्र हो गया। तामिल देश के बन्दरगाह प्रचुर मात्रा मे इन वस्तुओ को रोम तथा अन्य देशो को भेजते थे।

मिश्र के बादशाहो के शवो की मखमली पोशाक जो कि भारतीय है प्रगट करती है कि भारतवर्ष से यह मखमल मिश्र तथा अन्य देशो को जाती थी इसी प्रकार चीन से व्यापारिक सम्बन्ध था। यह व्यापार द्राविड राज्यो के बन्दरगाहो द्वारा होता था जिनमें मुजिरिम अर्थात् वर्तमान क्रगनोर, कावेरी स्थित पुहर और केवल बहुत प्रसिद्ध थे। १३ वी शताब्दी में वेसिन का प्रसिद्ध व्यापारी मारकोपोलो इसी बन्दरगाह पर उतरा था।

इस सब व्यापार ने द्राविड, देश धनधान्य पूर्ण बना दिया। इसके लाभ तथा चु गी ने समस्त देश को मालामाल बना दिया। परन्तु ये सब व्यापार एक अच्छे समुद्री बेडे की सहायता के बिना असम्भव था। इसी जहाजी बेडे के द्वारा चोल लोगों ने मलाया तथा आरचिपोलोजी द्वीप समूह मे उपनिवेष स्थापित किये।

**कला कौशल :**—द्राविड लोग अच्छे कलाकार तथा भवन निर्माता थे। गायन विद्या तथा नृत्य कला में उन्होंने विशेष उन्नति की थी। बुनाई कला में द्राविड़ो ने इतनी उन्नति की थी कि वह ३६ प्रकार का सूती कपडा बुनना जानते थे।

प्रारम्भ काल में द्राविड़ों ने अपनी कला का प्रदर्शन लकड़ी पर किया। परन्तु लकड़ी के भवनों के नष्ट होने के कारण उनकी प्राचीन काष्ट कला हमें अप्राप्य है। आगे चल कर वह पत्थर पर चित्रकारी करने लगे। पल्लव राजाओं द्वारा निर्मित ममल्लपुरम् के सुन्दर मन्दिर दर्शनीय हैं। इसी प्रकार तन्जौर व चौलापुरम के मन्दिर द्राविड़ कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

साहित्य :—द्राविड़ भाषाओं में तामिल साहित्य सर्व प्रथम है। चोल व चेर राजाओं के प्रोत्साहन से जैन बौद्ध तथा शैव्य और वैष्णव विद्वानों ने इस साहित्य की बहुत उन्नति की और अनेकानेक लेखक तथा कवियों ने अपनी २ कृतियों द्वारा इसके भंडार को भर दिया। आगे चल कर अन्य द्राविड़ भाषाओं जैसे तैलगू और कन्नड़ आदि के साहित्य को भी प्रोत्साहन मिला। इस सब का ही यह फल हुआ कि तामिल साहित्य भारतवर्ष के उत्कृष्ट साहित्यों में हो गया।

## प्रश्न

१. वातापि के चालुक्यों में कौन २ प्रसिद्ध शासक हुये—उनके विषय में तुम क्या जानते हो ?
२. राष्ट्रकूट कौन थे—उनका संक्षिप्त वर्णन दो।
३. कल्याणी के चालुक्य राज्य की समाप्ति पर कौन २ राज्य बने ?
४. पल्लव कौन थे—उनका दक्षिण के इतिहास में क्या स्थान है ?
५. राजराज महान तथा राजेन्द्र चोल के विषय में तुम क्या जानते हो ?
६. चोल कला तथा शासन प्रबन्ध का समुचित वर्णन दो।
७. द्राविड़ राज्यों की शासन व्यवस्था, तथा सामाजिक दशा व आर्थिक दशा का वर्णन करो।
८. दक्षिण में हिन्दु धर्म की क्या प्रगति हुई ?

---

## अध्याय १६

# वृहत्तर भारत

राजनीति सम्बन्ध:—प्राचीन भारत के इतिहास पर यदि हम अच्छी तरह विचार करें तो प्रतीत होगा कि इस काल में भारतवर्ष का अन्य देशों से बहुत सम्बन्ध रहा। चन्द्रगुप्त मौर्य से परास्त होने के पश्चात् सैल्यूकस ने उससे मैत्री सम्बन्ध सुदृढ़

करने के लिए अपने राजदूत मेगस्थनीज को चन्द्रगुप्त के दरबार में छोड़ा। यही नहीं वरन् इस विजय की सूचना जब सिरिया, मिश्र आदि प्रदेशों में पहुँची तो वे भी मौर्य सम्राटों से राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित करने के अभिलाषी हुए और उन्होंने अपने २ राजदूत चन्द्रगुप्त के दरबार में भेजे।

बिन्दुसार तथा अशोक ने भी पश्चिमी एशिया से राजनैतिक सम्बन्ध पूर्ववत बनाये रक्खे। बिन्दुसार के शासन काल में मिश्र के ग्रीक राजा ने डायोनीसियस नामक एक राजदूत पाटिली पुत्र भेजा था।

गुप्तकाल में लंका, चीन व पूर्वी द्वीप समूह से राजनैतिक सम्बन्ध रहे। हर्ष-वर्धन ने भी इनसे राजनैतिक सम्पर्क उत्पन्न किया। ६४१ ई० में उसने एक ब्राह्मण दूत को कुछ और आदमियों सहित चीन सम्राट के दरबार में भेजा। ये लोग ६४३ ई० में एक चीनी दूत और कुछ अन्य चीनियों के साथ भारत को लौटे। ये दूत तथा अन्य चीनी दो वर्ष पर्यन्त हर्ष के दरबार में रहे। इसी प्रकार हर्ष के समकालीन चालुक्य-राजा पुलकेशिन द्वितीय ने ईरान से राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित किए।

दक्षिणी रियासतें जो प्राचीन काल से समुद्री यातायात में दक्ष थी अपने समीप-वर्ती देशों से सदैव जलमार्ग द्वारा इस सम्बन्ध सूत्र में बँधी रही। उदाहरण स्वरूप ई० पू० सन् २० में 'पाण्ड्य' राजा ने रोमन सम्राट आगस्टस के पास एक राजदूत भेजा था। इसी प्रकार बंगाल के राजा 'पाल' तथा दक्षिण के 'पल्लव' राजाओं ने भी पूर्वी द्वीप समूह से अपने सम्बन्ध बनाये रक्खे।

व्यापारिक सम्बन्ध—व्यापारिक क्षेत्र में प्राचीन भारत अपने समकालीन जाग्रत विदेशियों में सदैव अग्रिम रहा। जैसा कि पहिले उल्लेख किया जा चुका है मेसोपोटामिया, बैबीलोनिया, तथा मिश्र आदि देशों में मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा जैसी मोहरों का प्राप्त होना सिद्ध करता है कि इन देशों से भारतवर्ष का व्यापारिक सम्बन्ध अवश्य था। आर्यों के समय में इस प्रकार के बहुत से प्रमाण मिलते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि भारतीय लोग एशिया माइनर तथा उसके निकटवर्ती देशों तक अवश्य भ्रमण करते थे। पूर्व मौर्य काल में तक्षशिला होकर एक व्यापारिक मार्ग था, जो मध्य एशिया और पश्चिमी एशिया को जाता था। दक्षिण के बन्दरगाह, पूर्व से बर्मा स्याम पूर्वी द्वीप समूह और चीन से तथा पश्चिम में मिश्र इत्यादि देशों से व्यापार करते थे। यह व्यापार समुद्री मार्ग से होता था। हिन्दू लोग सकुशल पोत संचालक थे, और बहुधा बड़े भयंकर समुद्रों में निकल जाते थे।

पहिली ईस्वी सदी में अफ्रीका के किनारे एक टापू में हिन्दुओं ने अपना एक उपनिवेश स्थापित किया, और पश्चिमी देशों में हिन्दुस्तान से मसाले, गंध, सूती कपडे, रेशम, मलमल, हाथी दाँत, मोती, हीरा जवाहरात, चमड़ा, दवा इत्यादि बाहर जाते

रहे। पहिली ईस्वी सदी का रोम के साथ व्यापार से भारतवर्ष को बड़ा लाभ होता था। और रोमन साम्राज्य का बहुत सा धन भारतवर्ष चला जाता था। तत्कालीन ग्रीक तथा रोमन लेखकों के वर्णन से स्पष्ट होता है कि भारतवर्ष के तटपर बड़े अच्छे बन्दरगाह थे। उनमें बहुत से जहाज आते जाते थे। चोल प्रदेश में कावेरी पट्टम, तोंडी, और पुहार समुद्री व्यापार के केन्द्र थे। बंगाल की खाड़ी के बन्दरगाहों से जहाज निरन्तर पूर्वी द्वीप समूह और चीन आया जाया करते थे। पांचवी शताब्दी में चीनी यात्री फाह्यान भारतीय जहाज में बैठकर चीन से भारत आया। और भारतीय जहाज द्वारा ही चीन को वापिस लौटा।

व्यापार के आधिक्य के कारण इस युग में हिन्दुओं ने अन्य देशों में अपने उपनिवेश भी स्थापित किये। ई० पू० तीसरी शताब्दी के लगभग लंका, बर्मा और स्याम में उन्होंने अपने उपनिवेश बनाये। पहिली दूसरी ईस्वी शताब्दी के लगभग कम्बोडिया, दक्षिणी अनाम, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, तथा मलाया में उपनिवेश बसाए गये।

गुप्त काल में वर्तमान भड़ौच जो उस समय भृगु कच्छ कहलाता था, भारतवर्ष का सर्वश्रेष्ठ व्यापारिक नगर तथा बन्दरगाह था उसकी ख्याति एवं व्यापारिक महत्ता ने भी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को सौराष्ट्र पर विजय प्राप्त करने का प्रोत्साहन दिया था गुप्तकाल में रोम के साथ भारतवर्ष का व्यापार इतना बढ गया था कि अपनी समस्त सम्पत्ति को भारत में जाते देख रोमन सम्राटों को भारतीय व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाना पड़ा। यह व्यापार हर्षवर्धन के समय तथा उसके बाद आठवीं से १२ वी शताब्दी तक चलता रहा। मुसलमान विजय से पूर्व ही अरब व्यापारी भारतीय व्यापार द्वारा मालामाल हो चुके थे।

सांस्कृतिक सम्बन्धः—राजनैतिक तथा व्यापारिक सम्बन्ध से कही अधिक महत्वपूर्ण सम्बन्ध जो भारतवर्ष का अन्य देशों से रहा वह था सांस्कृतिक सम्बन्ध।

बौद्ध धर्म तथा भारतीय सभ्यता को अन्य देशों में फैलाने के लिए अनेक बार भारतीय सम्राटों ने प्रयत्न किये ? अशोक महान्, कनिष्क, तथा अन्य बौद्ध धर्म प्रचारक जिन्होंने सांसारिक वैभवों को तिलांजलि देकर धर्म सेवा का व्रत लेकर संसार-कल्याण को ही अपना जीवन दान दे दिया विश्व इतिहास में सदा अमर रहेंगे। उनके प्रयत्न-स्वरूप बौद्ध धर्म और भारतीय सभ्यता चीन, जापान, लंका, बर्मा, स्याम, कोरिया तथा मध्य एशिया आदि अनेक देशों में पहुँची। यही नही, वर्तमान खोज से यह भी प्रतीत होता है कि अमेरिका तथा मैक्सिकों से भी प्राचीन समय में अवश्य सम्बन्ध रहा होगा। 'हिन्दू अमेरिका' नामक प्रसिद्ध पुस्तक से हमें

इसका आभास मिलता है। ब्राह्मण धर्म ने भी इस दशा में सराहनीय तथा प्रशसनीय कार्य किया। सुदूर पूर्व और पूर्वी आरचीपोलीची द्वीप समूह में ब्राह्मण धर्म के चिन्ह सिद्ध करते हैं कि इस धर्म के प्रचारको ने इन द्वीप समूह में भी प्रकाश फैलाने का पर्याप्त प्रयत्न किया। अब हम इन देशो का जिनसे भारत का सास्कृतिक सम्बन्ध रहा कुछ अनुशीलन करें।

चीन:—चीन में बौद्ध धर्म ६२ ई० पूर्व में पहुँचा और चीनी जनता इससे इतनी प्रभावित हुई कि उन्होंने बौद्ध ग्रन्थो का चीनी भाषा मे तुरन्त अनुवाद प्रारम्भ कर दिया। अनेक चीनी यात्री भारतवर्ष आने लगे। सर्व प्रथम फाह्यान यहा आया दूसरा प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वानसाग था। उसने भारत के प्रति इतनी श्रद्धा तथा प्रेम का प्रचार अपने देश में किया कि उसके वाद कई चीनी यात्री यहाँ आये। इस प्रकार भारतवर्ष व चीन देश में बन्धुत्व उत्पन्न हुआ जो आज तक भी चला आता है। यही कारण है कि चीनी साहित्य भारतीय इतिहास के लिए पर्याप्त सामग्री प्रदान करता है।

कोरिया :—३७२ ई० मे बौद्ध धर्म चीन से कोरिया पहुँचा और वहाँ से चलकर जापान तक फैलता गया।

तिब्बत:—६४० ई० में प्रथम धर्म प्रचारिक सघ तिब्बत पहुँचा। इसके एक शताब्दी पश्चात् पद्म सम्भव नामक भारतीय सन्त वहाँ पहुँचा, और उसने एक नवीन प्रकार का बौद्ध धर्म वहाँ फैलाया, जो आगे चलकर 'लामा' धर्म में परिवर्तित हो गया। उसमें जादू तथा जन्त्र मन्त्र को विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ।

मध्य एशिया :—ईसा से लगभग एक शताब्दी पूर्व इस धर्म का प्रचार मध्य एशिया में हुआ। कनिष्क तथा अन्य कुशाण राजाओ के समय में इन देशो में इस धर्म का विशेष प्रचार हुआ। वर्तमान खोज द्वारा विदित हुआ है कि यह देश बौद्ध स्तूप, गुफाओ चित्रकारियो और हस्त लिखित ग्रन्थो से भरा पडा है। अश्वघोष के कई नाटक इस प्रदेश में मिलते हैं।

अफगानिस्तान :—चीनी यात्रियो के वर्णन से सिद्ध होता है कि इस समय अफगानिस्तान में बौद्ध धर्म का वहुत प्रचार था। परन्तु राजनैतिक एव धार्मिक क्रान्तियो ने इसे लुप्त कर दिया। अफगानिस्तान से भारत का सम्बन्ध और भी गहरा प्रतीत होता है क्योकि यहाँ की भाषा का मूल स्रोत सस्कृत ही है।

लंका :—साहित्य साक्षी है कि लका से भी भारतवर्ष का अधिक सम्पर्क रहा है। रामचन्द्र जी के जीवन स सम्बन्धित अनेको स्थानो के नाम, इस देश में बौद्ध धर्म की प्रगति, तथा द्राविड देशो का लका म सघर्ष, यह सिद्ध करता है।

**ब्रह्मा** :—ब्रह्मा का भारत से गहरा सम्बन्ध रहा है। अशोक ने अपने धर्म प्रचारक ब्रह्मा भेजे थे ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में ब्रह्मा निवासियों ने दक्षिणी भारत की वर्णमाला ग्रहण करली थी। १३ वीं० शताब्दी से पहिले यहाँ ब्राह्मण धर्म का बोल बाला रहा। इसके बाद लंका के प्रचारकों ने उन्हें बौद्ध बना लिया।

**स्याम** :—ब्रह्मा से बौद्ध धर्म स्याम पहुँचा बाद में लंका के प्रभाव से यह धर्म सर्वमान्य हो गया। स्याम की राजनैतिक तथा सामाजिक प्रणाली में भारतीय प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

**हिन्द चीन** :—इस प्रायद्वीप के दक्षिण में कम्बोज तथा दक्षिण पूर्व में चम्पा आदि हिन्दु राज्य थे। यहा भारतीय लिपि प्रयोग होती थी तथा संस्कृत उच्च लोगों की भाषा थी। रामायण और महाभारत का यहाँ बड़ा आदर था। ब्राह्मण धर्म का बोल-बाला था। कम्बोडिया के अंगकुर्वट में विशाल शिव-मन्दिर आज भी भारतीय सम्पर्क का द्योतक है।

**चंपा** :—चंपा वह सुदूरतम देश है जहाँ भारतीय पहुँचे—यहाँ भी अनेक चिन्ह उसमें भारतीय सम्बन्ध की पुष्टि करते हैं।

**पूर्वी द्वीपसमूह** —इन द्वीपों में हम भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण प्रभाव को स्पष्टतया देखते हैं—भारतीय लिपि, भारतीय शिलालेख, देवी देवताओं की मूर्तियाँ इन सब से पता चलता है कि ये द्वीप समूह पूर्णतया भारत के प्रभाव में थे—इन्होंने भारतीय संस्कृति को पूर्णतया अपना लिया था—बाली द्वीप के निवासी अब भी हिन्दू हैं—वे भारतीय देवी देवताओं की पूजा करते हैं और हिन्दू पचांग को मानते हैं—जावा का बोरोबुदुर का स्तूप संसार का आश्चर्य है—इस स्तूप में अनेकों बौद्ध चित्र बने हुए हैं—

इस सम्पूर्ण वृतान्त के पढ़ने के उपरान्त कोई भी पाठक भारतवर्ष को प्राचीन विश्व में एक महत्व पूर्ण स्थान दिये बिना नहीं रह सकता। उपरोक्त वृतांत स्पष्ट कर देता है कि भारतीय जनता अपने अतीत पर दृष्टिपात करके अपने पूर्वजों को कोटिश: धन्यवाद देकर बड़े गर्व के साथ कह सकती है कि हम महान जाति की सन्तान हैं जिसने सहस्रों वर्षों तक अन्धकार में फसे हुए अन्य देशों को सभ्य बनाया। लंका तथा दक्षिणी पूर्वी एशिया तो इससे इतना सम्बन्धित रहा कि उसको तो भारत का ही अंग वह बृहत्तर भारत कहना उचित है।

## प्रश्न

१ प्राचीन काल में भारत का अन्य देशों से क्या राजनैतिक सम्बन्ध रहा ?

२. प्राचीन काल में भारत का अन्य देशो से क्या व्यापारिक सम्पर्क रहा ?
३. भारत ने प्राचीन काल में किस प्रकार विश्व में सभ्यता फैलाई ?
४. वृहत्तर भारत मे तुम क्या समझते हो ?

---

## अध्याय २०

# "हिन्दु सभ्यता पर एक दृष्टि"

**भारत का स्वतन्त्रता प्रेम**—भारत पर सर्व प्रथम विदेशी आक्रमण आर्य जाति का बताया जाता है । परन्तु इतिहासवेत्ता इस तथ्य को भी स्वीकार करते हैं कि इसी आर्य जाति ने मध्य एशिया से चलकर ईरान तथा समस्त योरोप पर विजय पताका फहराई और उसे बसाया भी । ऐसी अवस्था में उस प्राचीन वलिष्ट आर्य जाति का भारत पर आक्रमण तथा विजय भारत अकेले के लिए कोई लज्जासपद घटना नही कही जा सकती, क्योकि ईरान, रूस जर्मनी, फ्रांस, इङ्गलिस्तान तथा रोम पर भी तो इस आर्य जाति ने अपना प्रभुत्व जमाया । इसके विपरीत भारतवर्ष के पक्ष में इतनी बात कही जा सकती है कि यही आर्य जाति योरोप में सहस्रो वर्षो तक अर्द्ध सभ्य अवस्था में पडी रही । जबकि यूरोपियन विद्वान् भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि इसी आर्य जाति ने भारतवर्ष में ईसा से हजारो वर्ष पूर्व एक गौरवमयी तथा विश्वानुकरणीय सभ्यता का निर्माण किया । क्या इससे सिद्ध नही होता है कि आर्यो के आगमन से पूर्व भारत सभ्य तथा बहुत-सी बातो में आर्यो से कही बढ-चढ कर था । जिसके प्रभाव स्वरूप भारतीय आर्य सभ्यता के क्षेत्र में अन्य देश के आर्यों से कही आगे बढ सके जबकि योरोप बिल्कुल असभ्य था । जिसके फलस्वरूप योरोपीय आर्य भारतीय आर्य से सदैव पिछडे रहे ।

इसके अतिरिक्त भारतवर्ष में आर्यों को पजाब प्रान्त पर अपनी सत्ता सुदृढ बनाने में सैकडो वर्ष लग गये जिससे सिद्ध होता है कि भारत के मूल-निवासी अपनी जन्म भूमि की रक्षा के हेतु इंच-इंच भूमि पर वीरता के साथ लडे । वही आर्य जाति उतने ही काल में सहस्रो मील बढकर समस्त योरोप पर छागई, किन्तु भारत में उतने ही काल में केवल पजाब प्रान्त पर ही अधिकार जमा सकी जैसा कि ऋग्वेद से प्रगट है कि उसके रचना काल में वह जाति सयुक्त प्रान्त में ठीक प्रकार से नही पहुँच पाई थी ।

आर्यो की वर्ण व्यवस्था भी इसी निरन्तर सघर्ष की द्योतक है । आदि निवासियो का वह देश प्रेम निश्चय ही सराहनीय है । ऐसा प्रतीत होता है कि उन

के हृदय पर विजय प्राप्त करके तथा उन्हें अपने में मिला कर ही सम्भवतः आर्य आगे बढ़ सके।

आर्यों के पश्चात सिकन्दर के आक्रमण पर्यन्त भारतवर्ष पर दो आक्रमणों का उल्लेख मिलता है। उनमें पहिला आक्रमण ईसा से आठ सौ वर्ष के लगभग असीरिया की सम्राज्ञी मलका से मिरामिस का है, जिसके विषय में यूनानी इतिहासकार नियारकस लिखता है कि इस आक्रमण में असीरियन सेना बुरी तरह परास्त हुई। उसके सब आदमी युद्धस्थल में मारे गये और सम्राज्ञी केवल अपनी सेना के बीस सिपाहियों सहित जान बचा कर युद्ध क्षेत्र से भागने को विवश हुई।

दूसरा आक्रमण, जिसका प्राचीन इतिहास में उल्लेख है, ईरान के प्रसिद्ध विजेता कुरु का था जिसे अंग्रेजी में साइरस कहते हैं। यह प्रसिद्ध ईरान सम्राट् दारा का पितामह था और एक विशाल साम्राज्य का संस्थापक था। काबुल से लेकर ईराक, शाम, टरकी, बेबीलोन, मिश्र तथा यूनान के भी कुछ भाग पर वह विजय प्राप्त करने में सफल सिद्ध हुआ। परन्तु जब उसने भारतवर्ष पर आक्रमण किया तो केवल सात सैनिकों के साथ जान बचाकर सिन्धु नदी से पीछे उसे लौटना पड़ा और अन्त में किसी भारतीय वीर की चोट से घायल होकर वीर गति को प्राप्त हुआ।

तत्पश्चात् ईसा से ३२६ वर्ष पूर्व यूनान के जगत्प्रसिद्ध विश्व विजेता सिकन्दर ने भारत भूमि पर आक्रमण किया। योरोप से लेकर अफगानिस्तान तक कोई देश इस अद्वितीय विजेता के सम्मुख न ठहर सके। सौभाग्य से भारत की तत्कालीन राजनैतिक स्थिति भी अच्छी न थी। पंजाब अनेकों छोटे २ राज्यों में विभक्त था। तक्षशिला का राजा अपने प्रतिद्वन्द्वी राजा पुरु से प्रतिशोध लेने का अवसर ढूंढ़ रहा था। अतः ऐसे सुनहरे अवसर पर पुरु के विरुद्ध सिकन्दर की ओर से उसका युद्ध करना स्वाभाविक ही था। इस प्रकार सिकन्दर की सेना पुरु की सेना से संख्या में कहीं अधिक हो गई। पुरु ने तब भी साहस न छोड़ा और युद्ध क्षेत्र में साहसी वीरों के सङ्ग स्वयं अपनी सेना का सञ्चालन करता हुआ अद्भुत वीरता, अदम्य साहस तथा हस्तलाघवता का परिचय देने लगा। सिकन्दर तथा उसकी सेना भारतीय युद्ध कला पर मुग्ध हो गई। पुरु पर विजय पाने के उपरान्त भारत की वास्तविक शक्ति मगध पर आक्रमण करने का विचार जब सिकन्दर ने किया तो उसकी सेना ने, जो भारतीय युद्ध कला की परिचय प्राप्त कर चुकी थी, आगे बढ़ने से स्पष्ट शब्दों में इनकार कर दिया। विवश होकर सिकन्दर को वापिस लौटना पड़ा।

सिकन्दर के बीस वर्ष पश्चात् उसके सेनापति तथा उत्तराधिकारी सेल्यूकस ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया। उसका सामना करने के लिए चन्द्रगुप्त ने ५ लाख

सेना तथा नौ हजार हाथी स्थल में भेजे। जिसके दर्शन मात्र से ही सैल्यूकस घबडा गया, उसके वीर सिपाही हतोत्साह हो गये और सन्धि की अन्य शर्तों के साथ उसे अपनी दुहिता हेलन का विवाह चन्द्रगुप्त से करना पडा।

इसके पश्चात भारत पर जो आक्रमण हुए वह प्रायः दो प्रकार के थे—प्रथम वख्तियारी यूनानियों के आक्रमण तथा दूसरे शक, सिथियन, हूण इत्यादि मध्य एशिया की अर्ध सभ्य जातियों के आक्रमण।

जहाँ तक यूनानियों के आक्रमणों का सम्बन्ध है, इन्होंने हिरात, अफगानिस्तान और बिलोचिस्तान पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् पजाब, सिन्ध और सौराष्ट्र तक पहुँचकर अपना आधिपत्य स्थापित किया परन्तु ये लोग भारत में ही बस गये। उन्होंने भारत की भाषा, साहित्य, धर्म तथा सभ्यता को पूर्ण रूप से अपना लिया। उदाहरण स्वरूप सियालकोट का राजा मिलिन्द बौद्ध धर्मावलम्बी हो गया। इस भाँति वे अपना विदेशी चोला त्याग भारतीय हो गये और अपनी सेवा तथा सहिष्णुता के कारण भारतीय हृदय पर विजय प्राप्त कर भारतवर्ष में अपनी सत्ता स्थायी बना सके। अन्यथा सम्भव था कि इनकी भी वही दशा होती जो अन्य आक्रमणकारियों की हुई।

यूनानियों के पश्चात् शक या कुशान वश ने उत्तरी भारत पर अधिकार जमाया। परन्तु वे भी विदेशी रहने के स्थान पर प्रत्येक प्रकार से भारतीय सभ्यता में रम गये। उन्होंने भी भारतीय सभ्यता, रहन सहन, धर्म, तथा भाषा को अपना लिया। कुशान वश के प्रसिद्ध सम्राट् कनिष्क का धर्म परिवर्तन उपरोक्त कथन का ज्वलन्त उदाहरण है।

इनके पश्चात् ईसा की पाचवी शताब्दी में हूण जाति के लोगों ने भारत पर आक्रमण किये। हूण सरदार तूरमाण विजय पर विजय प्राप्त करता हुआ मालवा तक पहुँच गया। इनकी बर्बरता तथा असभ्यता से भारत खिन्न हो उठा और उस अधोगति में भी यशोधर्मन के नेतृत्व में भारतीय जनता हूणों को भारत भूमि से निकाल बाहर करने के लिए प्राणों की बलि देने के हेतु सजग हो उठी। तूरमाण के क्रूर पुत्र मिहिरकुल को मुल्तान के समीप परास्त कर हूण साम्राज्य को मिटा दिया। तत्पश्चात् राज्य वर्धन ने शेष उत्तरी भारत से हूणों के रहे सहे प्रभाव को भी समाप्त कर दिया। यहाँ पाठकों को यह स्मरण रहे कि एशिया की इन्हीं जातियों ने ईसा की दूसरी सदी से योरोप पर अनेकों आक्रमण किये और एक हजार वर्ष तक रूस से लेकर, जर्मनी, इटली, इङ्गलैंड और स्पेन तक अपना प्रभुत्व स्थापित रक्खा।

प्राचीन भारत में इन आक्रमणों का अनुसार इतिहास दन के पश्चात्

हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि भारतवर्ष सदैव अपनी सभ्यता तथा स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए प्राणपण से सन्नद्ध रहा। विदेशी आक्रमणकारियों का सामना करने में उसने अपूर्व शौर्य तथा पराक्रम का परिचय दिया। संसार के महान् से महान विजेता, असभ्य से असभ्य बर्बर भी प्राचीन भारत में आंशिक सफलता भी प्राप्त न कर सके। इतिहास साक्षी है कि उन्हीं विजेताओं तथा जातियों ने उस समय अन्य योरोपी तथा एशिया के सभ्य देशों के विरुद्ध कितनी सफलता प्राप्त की थी। भारतीय जनता को विदेशी सत्ता सदैव असह्य ही रही। यदि कोई विदेशी जहाँ प्रभुत्व स्थापित कर सका था तो विदेशी बन कर नहीं वरन् भारतीय होकर। इस प्रकार उसके यहाँ आकर भारतीय बनने में भारत की विजय ही थी पराजय नहीं।

**इस्लाम से सम्पर्क:**-भारतवर्ष के इतिहास का प्राचीन काल ग्यारहवी-बारहवी सदी में अर्थात् मुसलमान् विजय के समय समाप्त होता है—इधर तीन चार हजार वर्ष तक हिन्दु सभ्यता स्वतंत्रतापूर्वक विकसित होती रही थी। और चारों ओर देश देशान्तर में फैलती रहती थी। वह विदेशी आगन्तुकों को हिन्दु बनाती रही थी। इसमें संदेह नहीं कि उसका सम्पर्क दूसरी सभ्यताओं से रहा था और दूसरों का प्रभाव भी उस पर पड़ा था वह मुख्यतः अपने निराले मार्ग पर ही चलती रही थी और अपने ढंग पर विकसित होती रही थी। अपने देश के भीतर उसे अभी तक किसी आपत्ति या कठिनाई का सामना ऐसा न करना पड़ा था जिसे वह जीत न सके। विदेशी आक्रमणकारियों के सामने उसे कभी कभी सिर झुकाना पड़ता था पर थोड़े ही दिन में या तो उसने विदेशियों को उदाहरणार्थ ग्रीक लोगों को अपने देश से निकाल दिया था या उनको जैसे सिथियन यूची, कुशान आदि को बिल्कुल हजम कर लिया था। सच है कि वर्ण व्यवस्था के कारण हिन्दु समाज दूसरे समुदायों का पूरा पूरा हेल मेल न कर सका पर हिन्दु सभ्यता की धर्म, भाषा, साहित्य, रीति रिवाज, कला विज्ञान की अमिट छाप उन पर शीघ्र ही लग गई और वह पुराने समुदायों की भाँति बिल्कुल उसी सभ्यता के भाग हो गये। परन्तु बारहवीं—तेरहवी शताब्दी में हिन्दु सभ्यता का मुकाबला पश्चिमी एशिया की ऐसी प्रबल शक्तियों से हुआ कि सदा के लिए उसकी प्रगति बदल गई ये शक्तियां इस्लाम धर्म में निहित थी जिन्हें फारस, ग्रीस, स्पेन, भारतवर्ष, चीन आदि किसी देश की सभ्यता अपने में न मिला सकी। खुदा की एकता, कुरान की सत्यता, बहिश्त व दोजख के ऐसे कड़े तथा स्पष्ट विचार लेकर इस्लाम ने भारत में प्रवेश किया कि हिन्दु धर्म का कुछ प्रभाव ग्रहण करने पर भी उसने अपने व्यक्तित्व को न छोड़ा। इस प्रकार अपने इतिहास में पहिली बार हिन्दु सभ्यता के सामने यह स्थिति प्रगट हुई कि जब वह देश के कुछ नव-आगन्तुक

निवासियों को हिन्दु बनाने में असमर्थ थी। हिन्दु बनाना तो दूर रहा राजनैतिक प्रभुता खो जाने पर उसे अपनी आत्म-रक्षा के नये-नये उपाय ढूंढने पड़ रहे थे। इसको हल करने के लिए हिन्दू समाज ने अपने पुराने जाति पाँति और छुआछूत के नियम बहुत कड़े कर दिये। डर के मारे अपने पुराने सिद्धान्तों से वह कुछ ऐसा चिपट गया कि मानो वे ही जीवन के एक-मात्र सार हों और इसलिए उनकी पवित्रता की रक्षा उनका एक-मात्र उद्देश्य हो। इसके अलावा विदेश यात्रा आदि का निषेध करके अहिन्दुओं को हिन्दु बनाने की पुरानी परिपाटी का निराकरण कर उसने अपने को अपने में ही समेट लिया। अपने धर्म में परिस्थिति अनुकूल परिवर्तन करने के मूलमन्त्र को त्याग इस नई सभ्यता पर आक्रमण करने तथा इसे हज्म करने का प्रयत्न करने के बदले उसने उसके आक्रमण से रक्षा की नीति को अपनाया। इस नये परिवर्तन में शक्ति अधिक न थी, परन्तु जिद बहुत कड़ी थी जिसके प्रभाव स्वरूप हिन्दु-वर्ग मरने मिटने को तैयार था परन्तु अपनी सभ्यता को खोने के लिए अथवा उसमें संशोधन करने के लिए नही।

इस प्रकार बारहवीं तेरहवीं शताब्दी में हिंदु-सभ्यता की अनुकूलन नीति में परिवर्तन हो गया। अहिंदुओं को हज्म करने की शक्ति क्षीण हो गई। विदेशों से सम्बन्ध प्रायः टूट सा गया। नये उपनिवेश बसाना शक्ति से बाहर तो था ही, अपने बसाये हुये उपनिवेशों से सम्बन्ध रखना असम्भव हो गया। विदेशी राजाओं से चन्द्रगुप्त मौर्य्य, बिंदुसार, अशोक, पुलकेशिन, हर्षवर्धन ने जो मैत्रिक सम्बन्ध स्थापित किए थे उनको स्थापित रखने का प्रश्न ही क्या हो सकता था। इसलिए दूसरे देशों में अपनी सभ्यता का उद्योग बिल्कुल बन्द हो गया। विदेशी व्यापार धीरे २ उनके हाथ से निकल गया। साधारण विदेश यात्रा भी स्वप्न की वस्तु हो गई। जातियों और सभ्यताओं के पारस्परिक सम्पर्क से जो नये-नये विचार और भाव पैदा होते हैं विद्या और जीवन की जो स्वाभाविक समालोचना होती है उससे हिन्दू-समाज बिल्कुल वंचित हो गया। इस परिस्थिति में हिन्दू सभ्यता की कूप मंडूक की गति हो गई उसका स्वतन्त्र विकास रुक गया और उसका बल तथा प्रभाव कम होता गया। परन्तु उसका यह अर्थ नही कि मुसलमान विजय के पश्चात् हिन्दु-सभ्यता मर गई। उसका अन्त तो कभी हुआ ही नहीं, समय के अनेकों उतार-चढाव देखने के पश्चात वह आज भी जीती जागती है। और मुसलिम तथा अंग्रेजी सभ्यता पर अपनी राजनैतिक सामाजिक तथा साहित्यिक छाप लगा वह एक बार फिर सजग हो उठी है।

हिन्दु सभ्यता का महत्व :—जो सभ्यता कम से कम चार हजार वर्ष पुरानी है, जो हिन्दुस्तान जैसे विशाल देश के सब भागों में प्रचलित रही है जिसने

बहुत से सिद्धांत देश देशांतर में फैले हुए हैं और जिसने स्थिरता, अनुकूलन और परिवर्तन का ज्वलंत संयोग दिखाया है वह अवश्य ही संसार की प्रधान सम्यताओं में गिनी जायेगी। मिश्र, बैबीलोन, फारिस, ग्रीस और रोम ये भी बड़ी सम्यतायें प्राचीन काल में उत्पन्न हुई पर वे सब काल के गाल में समा गईं। आज कल जो सम्यतायें योरोप अमेरिका आदि देशों में प्रचलित हैं वे बहुत नई हैं। चीन की सम्यता प्राचीन अवश्य है परन्तु उसका प्रभाव हिन्दु सम्यता की भांति विश्वव्यापी नहीं रहा वरन् उस स्वयं पर 'हिन्दु सम्यता का काफी प्रभाव पड़ा। इस प्रकार हम देखते हैं कि संसार के इतिहास में हिन्दु सम्यता एक विशेष महत्व पूर्ण स्थान रखती है।

परन्तु इसकी वास्तविक समालोचना बहुत कम हो पाई है। बहुत से योरोपियन विद्वान् तो इसके समझने में ही असमर्थ रहे हैं और इधर-उधर की बहुत सी विभिन्न बातें लिख गये हैं। हिन्दुओं को स्वभावत. अपनी सम्यता का इतना गर्व रहा है कि वह उनको सब गुणों से पूर्ण और सब दोषों से रहित प्रतीत होती है। वे इसकी प्रत्येक बात में श्रेष्ठता की कल्पना करते हैं और इस लिए इसकी दुर्बलताओं को पहिचानने से इंकार करते है। जो देश अपनी भूलो की अवहेलना करता है तथा उनमें भी श्रेष्ठता की कल्पना करता है वह अवश्य धोखा खाता है और पतन की ओर चल देता है। प्रत्येक देश को अपना इतिहास ठीक-ठीक जानना चाहिए और उसकी सत्य घटनाओं से ही स्वाभिमान, आत्मविश्वास, शिक्षा और चेतावनी ग्रहण करनी चाहिए। व्यर्थ की खींचा तानी में इतिहास की उपयोगिता जाती रहती है और वह देश मिथ्याभिमान की ओर अग्रसर हो पतनावस्था को प्राप्त होता है. दूसरे पक्षपात पूर्ण इतिहास अधिक समय तक स्थिर नही रह सकता।

इस प्रसंग को संक्षेप में समाप्त कर देने के लिए केवल एक प्रश्न पर्याप्त प्रतीत होता है कि यदि हमारी प्राचीन सम्यता सर्वथा परिपूर्ण थी और उसमें न तो कोई दोष था और न कोई निर्बलता थी तो देश का पतन कैसे हुआ। और यदि परिपूर्ण होते हुए भी ऐसा गहरा पतन हुआ तो पतितावस्था के पश्चात् क्या होगा। सच तो यह है कि ऐतिहासिक सत्य को उलंघन करके अपनी सभ्यता को दोष रहित समझना भीषण पाप है, एक प्रकार की आत्म हत्या है। अस्तु पुरानी सम्यता की समीक्षा बिना किसी पक्षपात के और बिना किसी भय के होनी चाहिए, विशेष कर वर्तमान समय मे जबकि संसार संगठन के मूल आधार तथा सिद्धान्तों पर बहस कर रहा है।

**सभ्यता की कसौटी**:—हिन्दु सम्यता का वास्तविक विश्लेषण करने से पहिले सभ्यता की व्याख्या आवश्यक प्रतीत होती है। सभ्यता क्या है अथवा सम्यता

की प्रगति तथा श्रेष्ठता की क्या कसौटी है पहिले यह जानना आवश्यक है। इस अत्यन्त जटिल प्रश्न की पूरी मीमासा के लिए यहा स्थान नही पर इतना कहा जा सकता है कि सभ्यता की एक कसौटी प्रकृति अर्थात प्राकृतिक शक्तियो की विजय है। पशु पक्षी सदा प्रकृति के आधीन हैं—आंधी पानी, गर्मी, सर्दी, अकाल इत्यादि से वे अपनी रक्षा नही कर सकते। प्रकृति की चोटें उन पर पूरी जोर से पडती हैं। जगली आदमी पशुओ से अच्छे हैं, परन्तु वे भी प्रकृति की विध्वसकारी शक्तियो का यथेष्ठ रूप से सामना नही कर सकते। बाढ आये तो वे पानी में बह जाते हैं, सूखा पडे या शिकार न मिले तो भूखे मर जाते हैं। जानवरों, पहाडो और समुद्रो की शक्ति का इतना गहरा सिक्का उनके हृदय पर बैठ गया है कि वे उन्हें देवता समझ कर पूजते हैं। ज्ञान द्वारा उनको जीतने तथा उन्हें अपना दास बना अपना काम करने की कल्पना नही करते। परन्तु जैसे-जैसे ज्ञान बढता जाता है वैसे २ प्रकृति पर विजय होती जाती है। यह सभ्यता की एक कसौटी है और इसका मूल मन्त्र है ज्ञान, उदाहरण स्वरूप अर्ध सभ्यता की अवस्था में मनुष्य नदी से पानी पी सकता है पर और कुछ भी नही कर सकता। वह नदी से डरेगा और यदि बहुत साहस करेगा तो डूब मरेगा। ज्ञान होने पर आदमी किश्ती बनाकर नदी को सुगमता पूर्वक पार करेगा। स्टीमर बना उसके वक्षस्थल को चीरता निकल जायेगा, बांध बना उसे नहरो में परिणित करेगा। उसकी धारा से पनचक्की चलयेगा, बिजली बना कर रोशनी करेगा और मशीन का प्रबन्ध करेगा। इसे नदी पर विजय कह सकते हैं। सच है कि कभी २ नदी का वेग ऐसा बढ सकता है कि पुल टूट जायें किश्ती बह जायें और चारो ओर हाहाकार मच जाये, पर एक तो प्राय ऐसा न होगा, दूसरे इससे सिद्ध होता है कि अभी नदी पर पूर्ण विजय नही हुई। जैसे जैसे ज्ञान बढता जायेगा—वैसे २ विजय की मात्रा बढती जायेगी। प्रकृति की ये सब विजय ज्ञान के द्वारा होती है इससे कष्ट दूर होता है और सुख ऐश्वर्य के साधन बढते हैं इसलिए प्रकृति पर मानवी विजय को सभ्यता की एक कसौटी मान सकते हैं।

इस ज्ञान के अतिरिक्त जिससे प्रकृति पर विजय प्राप्त होती है एक और तरह का भी ज्ञान है जिसे आध्यात्मिक ज्ञान कहते हैं जिसके द्वारा मनुष्य इस बात की विवेचना करता है कि प्राकृतिक शक्तियो के पीछे कोई चेतन शक्ति है या नही। इस विश्व का रचने वाला और इसका हनन करने वाला कोई है या नही, यदि है तो मनुष्य में उसका कोई अंश है, या नही। प्रकृति का उससे क्या सम्बन्ध है— इसमें संदेह नही कि ये प्रश्न बडे गूढ हैं। कुछ लोगों का विश्वास है कि यह हमारी

बुद्धि के बाहर हैं पर मानवी मस्तिष्क इन अवश्यम्भावी प्रश्नों को भी वहीं छोड़ सकता है। वह विश्व की समस्या की तह पर पहुँचने का प्रयत्न करता है और तरह-तरह के सिद्धान्त निकालता रहता है। इसके सत्यासत्य का निर्णय कोई नहीं कर सकता पर यह परीक्षा अवश्य की जा सकती है कि किस जाति ने इस आध्यात्मिक ज्ञान में कितनी गम्भीरता दिखाई है। तत्व ज्ञान के इस विश्लेषण को कुछ लोगों ने कोरा मिथ्यावाद कह कर टाल दिया है क्योंकि इससे भौतिक सुख की वृद्धि नहीं होती जैसी भौतिक ज्ञान से होती है परन्तु वह किसी प्रकार के लौकिक सुख का दाता हो या न हो इतना अवश्य है कि उससे हमें शान्ति मिलती है और एक विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है जो किसी भौतिक वस्तु से नहीं मिलता या कम से कम इतना संतोष तो होता ही है। कि हमने यथोचित अनुसंधान किया। तत्व-ज्ञान की यह परख सभ्यता की दूसरी कसौटी है।

ज्ञान के आधार पर किसी भी सभ्यता की श्रेष्ठता नहीं आंकी जा सकती यह एक कसौटी है जो निश्चयात्मक निर्णय पर नहीं पहुँचाती, क्योंकि कोरे ज्ञान संचय का अन्तिम परिणाम सभ्यता का नाश भी हो सकता है अर्थात् इतना ज्ञान इकट्ठा हो जाय कि सभ्यता उसे न संभाल सके और उसके भार से चूर २ हो जाये। आज पश्चिमी सभ्यता इसी प्रकार की समस्या के सम्मुख खड़ी है.........वह इस दुविधा में पड़ी है कि उसका विज्ञान उसका विनाश कर उसे सदा के लिए लोप कर देगा। या यह घोर संकट से निकाल उसे एक पग और बढ़ा ले जायेगा, क्योंकि विज्ञान ने उन्हें ऐसे अत्याचारी शस्त्रों से सुसज्जित कर दिया है कि उनका प्रयोग समस्त संसार का विध्वंस कर सकता है, उसका यह ज्ञान-बल असामाजिक तथा पाशविक वृत्तियों के हाथ में पड़ सम्पूर्ण विश्व को नष्ट-भ्रष्ट कर सकता है। इससे प्रकट होता है कि ज्ञान को संभालने के लिए बाहरी प्रकृति का जीतना पर्याप्त नहीं वरन् मनुष्य को अपनी असामाजिक तथा पाशविक प्रकृति को जीतना भी आवश्यक है। यदि ये प्रकृतियां उच्छृङ्खल हो कर जीवन पर अपनी प्रभुता जमालें तो मानवी समाज द्वेष और संग्राम का केन्द्र हो जाय और समाज की उन्नति और सुख में बड़ी बाधा हो। इसके विपरीत यदि अहिंसा, स्नेह और सहानुभूति की प्रधानता हो तो यह लोक स्वर्ग तुल्य हो जाये और उसके हाथ में यह ज्ञानबल सिद्ध हो सकता है। आज तक कोई समाज ऐसा नहीं हुआ जिसमें केवल बुरी प्रवृत्तियां अर्थात् असामाजिक प्रवृत्तियां या केवल अच्छी अर्थात् सामाजिक प्रवृत्तियों का अकटक राज्य रहा हो। इतिहास में सदा दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों का सम्मिश्रण रहा है पर किस प्रकार की प्रवृत्तियो की मात्रा कितनी है यह सभ्यता की तीसरी कसौटी है।

समाज के सुख के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति एक दूसरे को क्षति न पहुँचाये वरन् उसकी सेवा करे, अर्थात् अपने मानसिक, औद्योगिक राजनैतिक या अन्य प्रकार के प्रयत्नों से सामाजिक समृद्धि की चेष्टा करे।

यह सामाजिक सहयोग अत्यन्त आवश्यक और महत्व पूर्ण है क्योंकि समाज के बहुत से काम इतने विशाल और कठिन हैं कि बहुत से आदमियों के सम्मिलित हुए बिना विचार और प्रयत्न से ही हो सकते हैं अन्यथा नहीं। उदाहरणार्थ सामाजिक अवस्था की समीक्षा और उन्नति के उपाय ढूंढना, राजनैतिक जीवन में ऊँचे आदर्श स्थापित करना और सब की सेवा करना, सामाजिक न्याय को सर्व व्यापी बनाना ये काम तभी पूरे हो सकते हैं जब बहुत से स्त्री पुरुष सार्वजनिक जीवन में सम्मिलित हों। और समाज सेवा को अपना आदर्श बना उसमें सदैव पूर्ण सहयोग देने के लिए तत्पर रहते हों।

जो सभ्यता यथेष्ट सख्या में निष्काम समाज सेवक पैदा कर सकती है अर्थात जो अपने आदर्शों और परिस्थितियों के द्वारा जितना समाज-सेवा का भाव जाग्रत कर सकती है और स्थिर रह सकती है वह सभ्यता उतनी ही उन्नत तथा सफल कहलाने की अधिकारी होगी।

संसार में बहुत से व्यक्ति हैं जो धनी और विद्वान्, सच्चरित्र और समाज सेवक होते हुए भी सुखी नहीं हैं बाहर से देखिये तो उनके पास किसी वस्तु की कमी नहीं है पर भीतर ही भीतर वे घुले जाते हैं। इसी प्रकार अनेक समाज हैं, जिनके पास विद्या और वैभव की अधिकता है और समाज सेवकों की भी कमी नहीं हैं।

परन्तु वह असतोष और क्लेश में फँसे हैं। इसका कारण क्या है? यदि मनुष्य अपने जीवन का विश्लेषण करे तो इस परिणाम पर पहुँचेगा कि सुख और शान्ति के लिए आन्तरिक सामजस्य की आवश्यकता है कोई शारीरिक या मानसिक शक्ति अत्याधिक मात्रा में हो जाय और अन्य शक्तियां अविकसित पड़ी रह जायें तो जीवन अधूरा रह जायेगा और पूर्ण सुख और सतोष दूर भाग जायेगा। व्यक्तित्व की पूर्णता इसमें है कि सब शक्तियो और वृत्तियों का यथोचित विकास और प्रसार हो उनमें पारस्परिक विरोध न हो किन्तु वृद्धि के द्वारा उन सबका सामजस्य और सगठन कर दिया जाय।

व्यक्तिगत जीवन के साथ २ सामाजिक सामजस्य भी अत्यन्त आवश्यक है। अपने व्यक्तित्व तथा सामाजिकता की पूर्ति के लिए मनुष्य बहुत से समुदाय और सघ स्थापित करता है। राजनीति, शिक्षा, उद्योग धर्म साहित्य, मनोरजन इत्यादि इत्यादि

आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वह तरह-तरह के संगठन करता है इस प्रकार बहुत से समुदाय बनते हैं—जैसे व्यक्तिगत जीवन में वृत्तियों की साध और सामंजस्य आवश्यक हैं, वैसे ही सामाजिक जीवन में समुदायों के सामंजस्य की आवश्यकता है। स्मरण रखना चाहिये कि सामंजस्य का अर्थ दमन नही है, वरन् समानुपातिक विकास और प्रसार है, व्यक्ति, समुदाय और समाज के वास्तविक सामजस्य की मात्रा जितनी अधिक होगी उतनी सुगमता जीवन में होगी। यदि सभ्यता का लक्ष्य जीवन की पूर्ति और सुख है तो सामंजस्य भी सभ्यता का एक लक्षण और कसौटी हो जाता है।

इस प्रकार सामान्यतः सभ्यता की परीक्षा के लिए उपरोक्त पांच लक्षण स्थिर किये जा सकते हैं। हिन्दू सभ्यता इन लक्षणों की कसौटी पर जैसी उतरे वैसी ही उसकी श्रेष्ठता होगी।

हिन्दू सभ्यता का मूल्यांकन :—प्रकृति ज्ञान में पुराने हिन्दू अपनी समकालीन किसी जाति से कम न थे। गत दो सौ वर्ष से योरुप ने वैज्ञानिक आविष्कारों की धूम मचा दी हैं और दिन दूनी रात चौगुनी ऐसी उन्नति की है कि आंखें चकाचौंध हो जाती हैं पर सतरहवीं शताब्दी तक योरुप का प्राकृतिक ज्ञान सामान्यतः प्राचीन भारत से अधिक न था। गणित ज्योतिष में हिन्दू उनसे बढ़कर ही थे। रसायन में उनके बराबर न थे पर वैद्यक में उनसे बहुत आगे निकल चुके थे। नहर तालाब बांध भवन इत्यादि बनाने में अन्य देशों से बहुत आगे थे। मोहनजोदड़ो के भूमिस्थित नगर इसके प्रतीक हैं। शरीर की बनावट तथा वनस्पतियो का ज्ञान हिन्दुओं को जैसा था वैसा किसी पुरानी जाति को न था। उन्होंने ऐसी दवाओं का पता लगाया जो आज भी आश्चर्य उत्पन्न करती हैं। मनोविज्ञान में हिन्दुओं के कुछ सिद्धान्त बड़े मार्के के हैं। यह सच है कि प्रकृति पर पूर्ण विजय नहीं हो पाई, अतिवृष्टि, अनावृष्टि इत्यादि प्राकृतिक विपत्तियों के परिणामों का यथोचित निराकरण नहीं हुआ, आने जाने के मार्गों में असुविधा बनी रही। वर्तमान समय के से आविष्कार नहीं हुए और हिन्दुओं को भौतिक शास्त्रों की ओर ध्यान देना था; फिर भी उन्होंने जितना किया वह उस समय की दृष्टि से प्रशंसनीय है।

तत्वज्ञान :—प्रकृति ज्ञान को छोड़कर तत्वज्ञान की ओर देखिए तो भारतवर्ष का गौरव और भी स्पष्ट प्रतीत होता है। उपनिषदों के समय से लेकर बारहवीं तेरहवी शताब्दी तक हिन्दुओं ने विश्व मीमांसाओं को सुलझाने का प्रयत्न बड़े योग और शक्ति के साथ किया। उनके निष्कर्षो से कोई सहमत हो या न हो पर उपनिषद, षडदर्शन, भगवद् गीता एवं बौद्ध और जैन दर्शनों के महत्व से कोई इन्कार

नही कर सकता। मैक्समूलर ने कहा था कि मानवी मस्तिष्क ने सबसे बड़े सिद्धान्त और सबसे बड़ी युक्तियाँ भारतवर्ष में ही निकाली। सारे तत्व-ज्ञान में विचारस्वातन्त्र्य और निर्भीकता कूट-कूट कर भरी है। जिधर तर्क ले जावे उधर वह जाने को तैयार है। अस्तु इस सम्बन्ध में हिन्दु सभ्यता का स्थान बहुत ऊँचा है। यदि कोई आपत्ति हो सकती है तो यह है कि इस ज्ञान में हिन्दु जाति ने अत्यधिक मानसिक शक्ति व्यय की और यथोचित सामजस्य की अवहेलना की। परलोक की धुन में बहुत से लोग इस लोक को भुला बैठे। किसी किसी काल में वैराग्य और सन्यास का ऐसा दौर दौरा हुआ कि बहुत से कुटुम्बो का जीवन अस्त व्यस्त हो गया बहुत-सा नैतिक बल समाज सेवा से खिच कर दूर जगलो और पहाडो में जा पडा। यहाँ तक कि राजाओ ने भी अपने उत्तरदायित्व की अवहेलना कर दार्शनिक अन्वेषण ही अपना लक्ष्य बना लिया यदि हिन्दुओ का तत्व ज्ञान का प्रेम जरा कम होता तो उसकी मानसिक प्रतिभा भौतिक शास्त्रो में और भी उन्नति करती और जीवनोपयोगी आविष्कारो के द्वारा मानव जाति की अधिक सेवा होती।

आत्म-संयम:—सत्य के ज्ञान मात्र से हिन्दुओं को सन्तोष न था। उसके आधार पर उन्होने जीवन का मार्ग निश्चित करने की भी चेष्टा की। उन्होने अच्छी प्रकार समझ लिया था कि मनुष्य और कुछ करे या न करे पर उसे अपनी प्रकृति पर विजय अवश्य प्राप्त करनी चाहिए। अपनी निर्बलताओ को दूर करना चाहिये। क्रोध, अहंकार, माया, लोभ आदि प्रवृत्तियो को वश में करना चाहिए। ब्राह्मण, बौद्ध, जैन आदि धर्मों में आत्म सयम की बडी महिमा है। गुरुओ के साथ या मठो की बडी-बडी पाठशालाओ में विद्यार्थियो को सबसे पहिले सयम सिखाया जाता था। गृहस्थियो को सयम का उपदेश दिया जाता था। वानप्रस्थो तथा सन्यासियो से तो पूर्ण सयम की आशा की जाती थी। हिन्दुओ में त्याग का आदर्श उच्च सयम का द्योतक है। इसके कारण लोग ससार के सब ऐश्वर्य और सुख को तुच्छ समझते थे। हिन्दु धर्म का प्रधान लक्षण सयम था। इसका अर्थ यह नही कि सब लोग पूरे सयमी हो गये थे। यदि ऐसा होता तो आपस के लडाई झगडे सब बिल्कुल मिट जाते। राज वर्गों और जनता में पूरा सयम नही था। दूसरों की भूमि छीनने की आकाक्षा थी। कभी २ क्रोध और ईर्षा की धूम मच जाती थी तो भी व्यक्तिगत जीवन के संयम का आदर्श बहुत ऊँचा था और बहुत से लोग उसे पालने की चेष्टा करते थे। सब स्कूलो में ब्रह्मचर्य पर जोर दिया जाता था। कला, साहित्य सब प्रकार सयमी जीवन व्यतीत करने का प्रचार किया जाता था। गौतम बुद्ध तथा जैन तीर्थकरो की मूर्तियाँ मानो सयम की ही मूर्तियाँ हैं, अनेक ब्राह्मण मूर्तियो में भी यही प्रधान लक्षण है। ग्रीस की

मूर्ति कला का प्रधान लक्ष्य शारीरिक सौंदर्य था और हिन्दू मूर्ति कला का नैतिक सौदर्य। बहुत से हिन्दू कवियों और लेखकों ने संयम और आत्म निग्रह के वर्णन में कलम तोड दी है।

परन्तु इस आत्म सयम के आदर्श और अभ्यास की जड़ में एक निर्बलता थी जो मध्यकालीन योरुप और पश्चिमी एशिया के अन्य देशों में भी दिखलाई देती है। प्राचीन हिन्दुओं ने कुछ प्रवृत्तियो को बिल्कुल दबाने अथवा यों कहिए मिटाने का प्रयत्न किया। वे यह भूल गये जैसा कि आजकल का मनोविज्ञान सिखाता है कि वह प्रवृत्तियाँ मिटाई नहीं जा सकतीं, मिटाने का प्रयत्न ही नैतिक और मानसिक जीवन के लिए हानिकर हो सकता है। इसलिये इन प्रवृत्तयों को दबाने या मिटाने के बजाय इनके ध्येय को ऊँचा करने का इनकी उन्नति के लिए अच्छे मार्ग निकालने का प्रबन्ध करना चाहिए। इनको स्वभावत: बुरा समझने की, इनकी निन्दा करने की आवश्यकता नहीं, इनको स्वीकार कीजिए फिर इनको परिवर्तित करने की चेष्टा कीजिये। ऐसा करने से व्यक्ति का जीवन पूर्ण और सुखमय होगा। उदाहरण स्वरूप मनुष्य में अहम् भाव प्राकृतिक है. विश्व को वह अहम् की दृष्टि से देखता है। क्रियाओं पर वह अपनी छाप लगाता है। वह सोचता है कि में देखता हुँ, मैं करता हूं इत्यादि इत्यादि। इस भाव से अभिमान उत्पन्न हो सकता है जिसके वश में मनुष्य दूसरों को तुच्छ समझता है और अत्याचारी हो जाता है परन्तु यदि इस अहम् के भाव को मिटाने का अत्यन्त प्रयत्न किया जाये तो व्यक्तित्व के नाश हो जाने का भय है। इसलिए इस अहम् को सामाजिकता से ऐसा परिपूर्ण कर दिया जाये कि 'मैं' समाज का एक आवश्यक अंग हो जाये और अहिंसा तया समाज सेवा उसका लक्ष्य हो जाये। इस प्रकार अहम् को मिटाने के वजाय अहम् की शुद्धि करनी चाहिए। इसी प्रकार काम को मिटाने के भावों ने स्त्री मात्र की निन्दा का रूप लिया। पर्दे का रिवाज शुरू हुआ, स्त्रियाँ घरों में बन्द रहने लगीं। ग्रहस्थ छोड़ने का उपदेश दिया जाने लगा। यह ठीक न था, हिन्दू संयम की यह निर्बलता स्वीकार करनी पडेगी कि इसमें दमन की मात्रा आवश्यकता से अधिक थी। मानवी प्रकृति को पूरी तरह न जानने के कारण वे यह भूल गये कि सब प्रवृत्तियों के विकास सामंजस्य और समाजीकरण से ही जीवन की पूर्णता होती है तथा इसमें कोई संदेह नही कि साधारणतः संयम में भारतीय आदर्श बहुत ऊंचा था और भारतवर्ष बहुत दूर तक मानवी प्रकृति पर विजय कर पाया था।

**सामाजिकता:**—सभ्यता की चौथी कसौटी सामाजिकता पर हिन्दू सभ्यता को आंकने के लिए हमें यह देखना है कि हिन्दुओं ने व्यक्ति की स्वार्थपरायणता की जगह

कहाँ तक सामाजिकता और समाज सेवा की स्थापना की। समाजसेवा का क्षेत्र केवल कुटुम्ब, ग्राम प्रान्त अथवा देश विशेष तक सीमित नही है जो मनुष्य अपने वर्ग या वर्ण के ही हित पर लगा हुआ है या अपने समुदाय के हितो पर ही अधिक जोर देता है, वह पूरा समाज सेवक नही हैं। इस युक्ति के अनुसार समाज का क्षेत्र मनुष्य जाति के बराबर है और सभ्यता की श्रेष्ठता उसके उन आदर्शों और सस्थाओ पर अवलम्बित है जिनके द्वारा मनुष्य जाति की सेवा होती हैं। आज तक कोई सभ्यता ऐसी नही जो इस कसौटी पर पूर्ण उतर सके। प्राचीन समय में चीन, मिश्र, पैलेस्टाइन, ग्रीस, रोम इत्यादि के निवासी अपने ही देश वालो से सहानुभूति रखते थे। परदेशियों को असभ्य अथवा निम्न श्रेणी का मानते थे और उन्हें दासता अथवा किसी नीचे पद के योग्य समझते थे। आजकल भी अमेरिका, इङ्गलड, जर्मनी इत्यादि देशो के रहने वाले गोरे वर्ण के लोग अपने आपको सर्वश्रेष्ठ मानते हैं और अन्य देशो की कमजोरी से अपने स्वार्थ साधन करने को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं पर उनको यह श्रेय प्राप्त है कि बलवान होते हुए भी उन्होने कभी दूसरे देशो पर अत्याचार नही किया। उन्होने दूर २ के देशों और द्वीपो में अपने उपनिवेश बनाये और अपनी सभ्यता का प्रचार भी किया, पर वर्तमान योरुपियन जातियो की भाँति आदि निवासियो को मार कूट कर नष्ट नही किया, अत्याधिक कार्य में नही पीसा तथा गुलाम नही बनाया। अशोक, कनिष्क इत्यादि के राजत्व काल में उन्होने दूसरे देशो की जो सेवा करने का प्रयत्न किया वह सराहनीय है। इस दृष्टि से हिन्दु सभ्यता और सभ्यताओ से श्रेष्ठ ठहरती है।

सामाजिकता की परीक्षा देश के वर्गों के पारस्परिक सम्बन्ध से भी होती है। इस दृष्टि में भी कोई सभ्यता परिपूर्ण नही हुई। ग्रीस और रोमादि की पुरानी सभ्यता दासता के आधार पर स्थित थी। इन देशो में लाखो दास थे जो मेहनत मजदूरी करते थे, अत्याचार सहते थे और स्वतन्त्र नागरिक आनन्द से राजनीति, साहित्य कला इत्यादि में लगे थे। मध्यकालीन योरुप में यद्यपि गुलामी बन्द हो गई पर खेतिहरो की दशा दासता की सी थी। एक धर्म या वर्ग विशेष के आदमी अन्य धर्मावलम्बियो की जान लेने के लिए उतारु रहते थे। धर्म के नाम पर लाखो मनुष्य मौत के घाट उतारे गए। वर्तमान समय में अमेरिका जैसे उन्नत देशो में समता का भाव पूर्णरूप से विकसित प्रतीत नहीं होता, स्नेह का क्षेत्र परिमित मालूम होता है। सभ्यताओं का यह दोष पुराने हिन्दुस्तान की सभ्यता में भी था और किसी २ अश में सब से अधिक था। वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति यद्यपि ऐतिहासिक कारणों से हुई, आगे चल कर यह इतनी सकुचित हो गई कि निम्नवर्ग मानसिक तथा आध्यात्मिक

उन्नति से सर्वथा वंचित कर दिया गया। उनकी आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई और सूत्रकार स्मृतिकार इत्यादि लिख गये कि इन जातियों का एक मात्र धर्म है द्विजों की सेवा करना। इस प्रकार समानता की वृत्तियाँ लुप्त हो गई और सामाजिक न्याय का भाव निर्बल हो गया। एक जाति में जन्म मात्र से ही आदमी का पद नियत हो जाता था। वैश्य कुल में जन्म होने से ही प्रकांड से प्रकांड वैश्य किसी विद्या पीठ का अध्यक्ष नहीं हो सकता था, शूद्र जाति में जन्म लेना ही वेद मंत्र पढने से वंचित होना था। जन्म से ही व्यवसाय की प्रवृत्ति नियत हो जाती थी। व्यापारी का लड़का व्यापारी, धोबी का धोबी के योग्य है का भ्रम मूलक सिद्धान्त लागू कर स्वतंत्र मानवी विकास के मार्ग में रुकावटों का ऐसा पहाड़ खड़ा कर दिया कि जो आज तक न हटाया जा सका। इस प्रकार हिन्दू संगठन तथा व्यक्तित्व के विकास को पूर्ण आघात पहुँचा।

जाति-पाँति के इस भेद ने हिन्दू समाज को सैकड़ों टुकड़ों में विभक्त कर दिया। ब्राह्मणों में अनेकों ब्राह्मण, वैश्यों में अनेकों वैश्य समुदायों की उत्पत्ति ने राष्ट्रीयता का भाव उत्पन्न न होने दिया। प्रत्येक जाति के हर एक टुकड़े का अलग अलग जीवन तथा अलग २ संसार था। हिन्दुत्व का भाव भी मुसलमानों के आने से प्रबल हुआ सामाजिक विच्छेद ने राजनैतिक विच्छेद को जन्म दिया, जिसके कारण देश को बार २ नीचा देखना पड़ा। छुआ छूत, खान पान और सगाई शादी के प्रतिबन्धों का मन पर यही प्रभाव पड़ता कि हमारा समाज एक नही है एक राष्ट्र नहीं है। अनेक समाज हैं। अनेक जनतायें हैं और जब इन समाजों में से किसी एक पर संकट पड़े तो अन्य समाजों को कोई प्रयोजन नही कि उस संकट को दूर करने में सहयोग दें। फल हुआ वह विनाशकारी पतन, जिससे हिन्दू समाज अब तक नही उठने पाया और खेद है कि स्वतंत्र भारत के अनेकानेक नागरिक उस विनाशकारी सामाजिक व्यवस्था से अब भी बुरी तरह चिपटे हुए हैं। अस्तु सामाजिकता और समाज सवा की दृष्टि से हिन्दू सभ्यता को वैसी सफलता नही हुई जितनी और मामलों में हुई थी।

सामंजस्य :—राष्ट्रीयता तथा समाज सेवा के भावो का इतना विकास न होते हुए भी यह स्पष्ट है कि राजनैतिक, आर्थिक और साधारण जीवन में एक प्रकार का सामंजस्य हो गया था, एक प्रकार का समझौता हो गया था जो शताब्दियों तक बना रहा। हिन्दू समाज के सम्बन्ध में एक प्रथा और एक आदर्श का उल्लेख विशेष रूप से होना चाहिए। राजनैतिक संगठन के सम्बन्ध में संघ प्रथा का उदय हो चुका था और वह सब को मान्य हो गई थी। हिन्दुस्तान जैसे विशाल देश में स्थायी राज-

नैतिक ऐक्यता असम्भव थी। किसी भी, राजधानी से इतने बड़े राज्य पर सीधा केन्द्रिक शासन न तो सम्भव था और न ठीक प्रकार हो सकता था। इस परिस्थिति में संघ सिद्धान्त निकाला गया। एक भाग को जीत कर विजेता कुछ विशेष मामलों को छोड़कर अन्य मामलों में स्थानीय शासक को स्वतंत्रता प्रदान कर उसका राज्य उसे वापिस दे देता था। इस प्रकार सब राज्य अपने स्थानीय मामलों में भिन्नता रखते हुए भी कुछ सिद्धान्तों में एक नीति का अनुसरण करते रहे उदाहरणस्वरूप सभ्यता के अनेक अंगों जैसे शिक्षा, साहित्य, कला इत्यादि को सबने प्रोत्साहन दिया। संघ सिद्धान्त आर्थिक जीवन में भी प्रवेश कर गया था। तरह २ के उद्योग धंधे अपनी श्रेणियाँ बनाकर बहुत-सा आत्म शासन करते थे और कुछ गम्भी मामलों को उच्च श्रेणी की संस्था को सुपुर्द कर देते थे।

सामंजस्य का यह सिद्धान्त धर्म में भी प्रवेश कर गया था। धार्मिक सामंजस्य का सबसे बड़ा लक्षण सहनशीलता और उदारता का प्रवेश और कट्टरता का अभाव है। हिंदु धर्म की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि उसमें कट्टरता को कोई स्थान नही धार्मिक रक्त पात जैसा अन्य देशों में हुआ यहाँ नाम को भी नहीं मिलता। एक राजा अपनी सब धर्मावलम्वी प्रजा को समानता की दृष्टि से देखता तथा राजनैतिक पद देता था ब्राह्मण धर्म ने बहुत से अनार्य मतों को कुछ बदल कर अपने धर्म में मिला लिया। सार्वभौम अहिंसा का सिद्धान्त जो हिन्दू धर्म के लगभग प्रत्येक समुदाय का आदर्श है, सामंजस्य तथा सहिष्णुता का ज्वलत प्रमाण है। हिन्दुओ का अहिंसा-आदर्श मनुष्य, पशु, पक्षी सब ही जीवधारियों के लिए है। यह सब से ऊंचा आदर्श है जिसकी कल्पना मानवी मस्तिष्क कर सका है। इस सिद्धान्त का जितना व्यवहार किया जायेगा उतनी मात्रा में सुख और शान्ति की वृद्धि विश्वमण्डल में होगी। पूज्य बापू ने इस महा मन्त्र की दीक्षा दे संसार की दृष्टि भारतीयता की ओर आकर्पित कर दी है।

इन बातों का विचार करते हुए हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि हिन्दू सभ्यता संसार की इनी गिनी सभ्यताओं में मुख्य स्थान रखती है। इस सभ्यता में अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, तर्क, सहनशीलता आदि ऐसे सिद्धान्त हैं जो भविष्य में सारे जगत पर प्रभाव डालेंगे और मानव जाति को नया मार्ग दिखला भारत को एक बार पुनः जगद्गुरु कहलाने का अवसर प्रदान करेंगे।

**हिन्दू समाज :**—हिन्दू सभ्यता पर दृष्टि पात करते हुए यह लिखना उचित प्रतीत होता है कि भारत का वर्तमान समाज अनेको जाति उपजातियो का सम्मिश्रण है। आदि जातियों के विवरण से आरम्भ करके मुसलिम जाति तक पहुँचते-पहुंचते हम देखते हैं कि द्राविडो ने भारत में प्रवेश किया, आर्य भारत में आये—यूनानी

यहाँ बस गये। शक, सिथियन, हूण आदि अनेक जातियाँ इसी प्रकार भारत में आकर यहाँ के लोगों से हिल मिल गईं। और यहीं के समाज में हज़म हो गईं। इस प्रकार वर्तमान समाज अनेकों जातियों का सम्मिश्रण है। हमारा यह कर्तव्य है कि हम भारतीय समाज के इस पहलू को भली भाँति समझें—हम न द्राविड़ हैं, न आर्य, न यूनानी हैं न शक, न सिथियन, न हूण, न पारसी। हम हैं भारतीय। और हमारा कर्तव्य है कि अपने आदि जातीय भेद भावों को दूर रख अपने वास्तविक रूप को पहिचानें और अपने आपको एक जातीय सूत्र में बाँध भारत में राष्ट्रीयता का प्रचार करें। हिन्दू काल की यह सब से प्रमुख देन है जो हमें एकता तथा सजातीयता की ओर ले जाती है।

### प्रश्न

१—ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध करो कि प्राचीन भारत का स्वातन्त्र्य प्रेम किसी देश से कम नहीं था।

२—सभ्यता में मूल्यांकन के क्या लक्षण हैं।

३—सभ्यता के लक्षणों के आधार पर हिन्दू सभ्यता का मूल्यांकन करो।

---

## अध्याय २१

# अरबों की सिन्ध विजय

इस्लाम का उदय :—छठी शताब्दी के अन्तिम चरण में जब विभाजक शक्तियाँ अत्यन्त प्रबलता से भारतवर्ष को छोटे छोटे टुकड़ों में विभक्त कर स्थानीय राजपूत राज्यों की स्थापना कर रही थी, ५६९ ई० में अरब देश के मक्का नामक नगर में मुहम्मद साहब के रूप में एक महान् आत्मा का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने अरब जातियों को जो पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष तथा अज्ञानता के कारण निरन्तर पतनावस्था को प्राप्त हो रही थी, धार्मिक व राष्ट्रीय सूत्र में संकलित किया। द्वन्द्व-युद्ध तथा संघर्ष इन जातियों की दैनिक क्रिया थी। उसमें मूर्ति-पूजा, वृक्ष-पूजा तथा रूढ़िवाद पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। अरब जाति की इस अधोगति ने मुहम्मद साहब के हृदय पर गहरा प्रभाव डाला, जिसके कारण उन्होंने उसके उत्थान का दृढ़ संकल्प किया। इसी बीच वे अपनी आत्मा में एक दिव्य ज्योति का अनुभव करने लगे और उन्हें आभास हुआ कि वह खुदा के दूत अर्थात् पैग़म्बर हैं, जो संसार का धार्मिक तथा

सामाजिक उद्धार करने के लिये अवतरित हुए हैं। उक्त उद्देश्य से प्रेरित मुहम्मद साहब ने अपनी जन्म भूमि मक्का में अपने ओजस्वी भाषणों द्वारा मक्का निवासियों को उनकी दुर्बलताओं तथा कुप्रथाओं का दिग्दर्शन कराना आरम्भ किया, परन्तु जैसा कि स्वाभाविक है, नगर-निवासियों को उनकी स्पष्टवादिता इतनी अप्रिय प्रतीत हुई कि वे उनकी जान तक लेने को उतारू हो गए। परिणाम-स्वरूप ६२२ ई० में मुहम्मद साहब मक्का छोड़कर मदीना चले आये और वहाँ अपने विचारों का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। स्थान-परिवर्तन की यह घटना इस्लामी इतिहास में "हिजरत" के नाम से प्रसिद्ध है। इस्लामी सन् हिजरी इसी घटना से आरम्भ होता है। मदीना-निवासियों को मुहम्मद साहब के विचार इतने हृदयग्राही प्रतीत हुए कि वे तुरन्त उनके अनुयायी हो गये। इस प्रारम्भिक सफलता ने धीरे-धीरे यह उग्र रूप धारण किया कि मुहम्मद साहब के जीवन काल में ही अरब जाति संसार की एक बहुत बड़ी धार्मिक तथा राजनैतिक शक्ति बन गई।

देवी, देवताओं की जगह निराकार अल्लाह ने ले ली, सैकड़ों क्या हजारों पृथक् कबीले एक संयुक्त कौम में परिवर्तित हो गये। सामाजिक तथा धार्मिक कुरीतियों के स्थान में एक उच्च तथा पवित्र राष्ट्रीय जीवन का उदय हुआ और इन सबसे श्रेष्ठतर बात हुई समता व भ्रातृत्व-भाव का उदय तथा समस्त जाति में एक अद्भुत स्फूर्ति का संचार। फल-स्वरूप वह समस्त विश्व पर अपने धर्म तथा सभ्यता की गहरी छाप लगाने के लिये उद्विग्न हो उठी और ६३२ ई० में पैगम्बर की मृत्यु के बाद वे अपने खलीफ़ाओं की अध्यक्षता में संसार के समस्त देशों पर विजय प्राप्त करने के लिये निकल पड़े।

५० वर्ष के अल्प-काल में ही वे सीरिया, फिलिस्तीन, मिश्र इत्यादि पर विजय प्राप्त कर वहाँ अपना धर्म फैलाने में सफल हुए। फारिस-विजय के पश्चात् इन्हें इसके निकटवर्ती देश भारतवर्ष पर आक्रमण करने की उत्कट अभिलाषा हुई। धर्म-प्रचार के अतिरिक्त भारतवर्ष की धन-धान्यता भी आक्रमण का विशेष कारण थी। शीराज और उरमुज से आने वाले व्यापारियों ने भारतवर्ष की अतुल धन-सम्पत्ति की असंख्य कहानियाँ गल्प के रूप में अपने देश में प्रचलित कर दी थी। इस असीम धन-राशि की प्राप्ति के लिए अरब लालायित हो उठे। इधर भारतवासियों की विशृङ्खलता उनको धर्म-प्रसार के लिए उचित क्षेत्र प्रदान कर रही थी। सातवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में अरबों की यह विचार-धारा सिन्ध आक्रमण के रूप में प्रस्फुटित हुई।

आक्रमण का तात्कालिक कारण:—इसी समय लंका के राजा ने कुछ

सामान भेंट-स्वरूप खलीफा तथा ईराक के गवर्नर हज्जाज के लिए भेजा। कुछ लोगों का कथन है कि यह भेंट न थी बल्कि घटना इस प्रकार थी कि ईराक के लंकास्थित राजदूत की असामयिक मृत्यु हो गई। इसलिए लंका-नरेश ने उसकी स्त्री और बच्चों को उसके रुपये तथा समस्त सामान सहित ईराक भेजा। जब ये आठ जहाज, जिनमें ये सामान ले जाया जा रहा था, देवल के निकट से गुजरे तो वहाँ के सामुद्रिक डाकुओं ने उन पर आक्रमण किया और उन्हें लूट लिया। देवल सिन्ध देश के वर्तमान ठट्टा नगर से २४ मील दक्षिण-पच्छिम की ओर एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था। जब इस घटना का समाचार खलीफा तथा हज्जाज को प्राप्त हुआ तो वे आग बबूला होगये।

आक्रमण:- हज्जाज ने तुरन्त देवल पर आक्रमण करने के लिए सेनायें भेजी, परन्तु वह सफलता प्राप्त न कर सकी और अरब सेनापति, जिसने इस सेना का नेतृत्व किया, अपने कुछ साथियों सहित युद्ध-स्थल में मारा गया। इससे हज्जाज, जो अत्यन्त दृढ़-प्रतिज्ञ व्यक्ति था, क्रोधान्ध हो उठा उसने सिन्ध का विध्वन्स करने तथा इस अपमान का बदला लेने का व्रत ले लिया। उसने एक विशाल सेना तैयार की और उसे अस्त्र-शस्त्र तथा अन्य सामग्री से पूर्णयया सुसज्जित कर मुहम्मद-बिन-कासिम को उसका सेनापति बनाया। बिन-कासिम खलीफा का सम्बन्धी था। अतः खलीफा ने भी उसको धन व अस्त्र-शस्त्र से पूर्ण सहायता की। मार्ग में मकरान के गवर्नर ने भी उसकी सहायता की। इसके अतिरिक्त उसने सिन्ध की सीमा पर पहुँच कर वहाँ क्षुब्ध जातियों के बहुत से सिपाही, जिनमें जाट तथा मेव मुख्य थे, अपनी सेना में भरती किये। इन लोगों के द्वारा सिन्ध के भौगोलिक रहस्य तथा वहाँ की राजनैतिक और सैनिक दुर्बलतायें जानने में उसे विशेष सहायता प्राप्त हुई।

इस प्रकार सब भाँति तैयार हो मुहम्मद-बिन कासिम ७१२ ई० में देवल पहुँचा और उसका घेरा डाल दिया। घोर युद्ध के पश्चात् हिन्दू परास्त हुए। नगर में तीन दिन तक मार-काट तथा लूट-मार होती रही। देवल का गवर्नर बिना लड़े ही भाग गया। इसलिए बिन-कासिम ने नगर का प्रबन्ध एक मुसलमान के सुपुर्द कर दिया।

दाहिर से युद्ध :—देवल पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् उसने सिन्धु नदी को पार करने के लिए नावों का एक पुल तैयार कराया। जब सिंध के राजा दाहिर को यह ज्ञात हुआ तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही। वह अपनी सेना सहित रावर चला गया और वहाँ युद्ध की तैयारी करने लगा। बिन-कासिम भी सेना सहित वहाँ पहुँचा, दाहिर अपने राजपूत सरदारों सहित एक विशाल सेना लेकर वहाँ पहिले ही मौजूद था। घोर युद्ध हुआ—दाहिर और उसके साथी वीरता से लड़े परन्तु इसी बीच

एक अग्नि-वाण दाहिर के हौदे में लगा जिससे उसमें आग लग गई। ठीक इसी समय उसका हाथी अपनी प्यास बुझाने के लिए पानी की ओर भागा—जब वह वापिस लौटा तो अरब सेना ने उसे चारो ओर से घेर लिया और उस पर बाण-वर्षा करने लगी। परिणाम यह हुआ कि दाहिर पृथ्वी पर गिर पडा परन्तु वह फिर उठा और एक अरब से, जो उसके समीप ही था, युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। अपने नेता की मृत्यु से हिन्दू सेना और भी उत्तेजित हो गई और क्रोधान्ध हो अरबों से भिड गई। परन्तु फिर भी मैदान अरबो के ही हाथ रहा। यह देख कर दाहिर की धर्मपत्नी रानी बाई ने अपने पुत्र जयसिंह सहित रावर दुर्ग में शरण ली। वहाँ रानी ने अपने ओजस्वी भाषणों द्वारा सेना में नवीन स्फूर्ति का संचार किया। वे अपनी मर्यादा और सम्मान की रक्षा के लिए अपने प्राणो की आहुति देने के लिए कटिबद्ध हो गये। अरब लोगो ने भी रावर दुर्ग का घेरा डाल दिया। ईंट व पत्थरों की मार सहते हुए, जो कि उन पर किले के भीतर से की जाती थी, उन्होने घेरा जारी रखा। रानी ने जब विजय की कोई आशा न देखी, तब सब स्त्रियो को अपने सम्मान की रक्षा के लिए जौहर का आदेश दिया। फलस्वरूप सब स्त्रियो ने अपने प्राणो की आहुति दे अपने को बन्दी होने से बचाया। मुहम्मद ने किले पर अधिकार कर लिया। सात सौ सैनिक जो किले में थे, मार डाले गये। दाहिर का अपार धन अरबो के हाथ लगा।

इस विजय से प्रोत्साहित हो वह ब्राह्मणाबाद की ओर बढा। वहाँ के लोगों ने बिना लडे ही आत्म-समर्पण कर दिया। ब्राह्मणाबाद के भग्नावशेष सिन्ध प्रान्त के शारदापुर नगर से ११ मील दक्षिण-पूर्व में आज भी दृष्टिगोचर होते हैं।

**मुहम्मद बिन-कासिम का सिन्ध प्रबन्ध** :—सिन्ध पर अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् मुहम्मद बिन-कासिम का ध्यान शासन-प्रबन्ध की ओर गया। जिन लोगो ने इस्लाम-धर्म स्वीकार कर लिया उनको जजिया तथा अन्य करों से मुक्त कर दिया। अन्य सब हिन्दुओ पर जजिया लगाया गया। परन्तु उनकी चल और अचल सम्पत्ति उन्ही के हाथ में रहने दी गई। उन्हें धार्मिक स्वतन्त्रता दे दी गई। ब्राह्मणो के साथ अच्छा बर्ताव किया गया। उन्हें उच्च पद दिये गये और शासन-प्रबन्ध उनको ही सौंप दिया गया।

**अरोर पर आक्रमण** :—ब्राह्मणाबाद पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् बिन-कासिम अरोर की ओर बढा। यह दुर्ग दाहिर के एक पुत्र के अधिकार में था। जब उसे पता लगा कि दाहिर युद्ध में मारा गया है तो वह अपने सम्बन्धियों सहित दुर्ग से निकला और चित्तौड़ की ओर चला गया। जब मुहम्मद को यह सूचना मिली तो उसने दुर्ग पर आक्रमण कर अपना अधिकार कर लिया।

• मुल्तान पर आक्रमण :—अरोर पर अधिकार करने के पश्चात मुहम्मद मुल्तान पहुँचा। सात दिन तक हिन्दू तथा मुसलमानों में घोर युद्ध होता रहा अन्त में विजय-पताका मुसलमानो के ही हाथ रही। किले की सब सेना मौत के घाट उतार दी गई। सेनानियों तथा पदाधिकारियो के समस्त परिवार बन्दी बना लिये गये। अमीर दाऊद नस्त्र मुल्तान का गवर्नर नियुक्त किया गया।

मुल्तान के समीपवर्ती क्षुब्ध वर्ग ने, जिसमें जाट तथा मेव विशेषतया थे, तुरन्त उसे हार्दिक सहयोग देना आरम्भ कर दिया सिंध की भांति मुहम्मद-बिन-कासिम ने यहाँ भी उदारता का परिचय दिया। मन्दिरों की सम्पत्ति पर उसने अधिकार अवश्य कर लिया परन्तु उन्हें तुर्कों की भाँति नष्ट-भ्रष्ट नहीं किया। हिन्दुओं के साथ व्यवहार में भी उसने तुर्कों से कहीं अधिक शिष्टता का परिचय दिया।

मुल्तान पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् उसने प्रसिद्ध जनरल अबू हकीम को एक विशाल सेना सहित कन्नौज भेजा कि वहाँ के राजा को इस्लाम-धर्म स्वीकार करने का आदेश दे। परन्तु उससे पहिले कि वह कन्नौज तथा उसके निकटवर्ती दोआब प्रांत में विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करे, उसका पतन हो गया।

मुहम्मद-बिन-कासिम की मृत्यु :—मुहम्मद-बिन-कासिम का पतन अत्यन्त आकस्मिक था। वास्तव में उसके भाग्य का सितारा उदय व अस्त होता हुआ ही दिखाई दिया। उसकी मृत्यु के विषय में इतिहासकारों के विभिन्न मत हैं। 'मीर-कासिम' के लेखक कहते हैं कि मुहम्मद-बिन-कासिम ने राजा दाहिर की दो लड़कियों को, जिनका नाम परमल देवी तथा सूरज देवी था, बन्दी बनाकर खलीफा के दर्बार में भेजा। खलीफा ने उन्हे अपने महल में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी। इन लड़कियों ने अपने पिता तथा परिवार का प्रतिशोध लेने तथा अपने सतीत्व की रक्षा करने का यह अच्छा अवसर समझा। अत्यन्त नम्रता-पूर्वक उन्होंने खलीफा से कहा कि "श्रीमान् जी हम दोनों आपके हरम प्रवेश के योग्य नही हैं क्योंकि मुहम्मद-बिन-कासिम ने यहाँ भेजने के पूर्व हमारा सतीत्व भ्रष्ट कर दिया है"। खलीफा यह सुनकर आग-बबूला हो उठा। उसने तुरन्त ही आदेश दिया कि मुहम्मद-बिन-कासिम को जीवित ही बैल की खाल में सिलवाकर प्रस्तुत किया जाये। खलीफा की आज्ञा का पहले इतना आदर किया जाता था, कि जब मुहम्मद-बिन-कासिम ने यह सुना तो उसने अपने आपको एक बैल की खाल में सीने की आज्ञा दी। तीन दिन पश्चात उसकी होगई। उसका मृतक शरीर एक बक्स में बन्द करके खलीफा के सामने लाया गया। उसने इसे दाहिर की लड़कियों के सामने खोलने की आज्ञा दी। यह देखकर लड़कियां अत्यन्त सन्तुष्ट हुईं। परन्तु अब उन्होने खलीफा को यह प्रकट कर दिया कि उन्होंने

केवल अपने पिता तथा परिवार का बदला लेने के लिये ही मुहम्मद बिन-कासिम पर यह दोषारोपण किया था, अन्यथा मुहम्मद-बिन कासिम निर्दोष था। और जब उन्होंने खलीफा से निवेदन किया कि आपको विवेकशील होना परमावश्यक है, आपने केवल दो लडकियो के कहने मात्र से ही बिना छान-बीन किये अपने वीर सेनापति को प्राण-दड दिया, तो उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने तुरन्त आज्ञा दी कि उन दोनो लडकियों को घोडो की पूछ में बांधकर उस समय तक घसीटा जाय जब तक कि उनकी मृत्यु न हो जाये।

कुछ मुसलमान इतिहासकार कहते हैं कि लडकियो की शिकायत सुनकर मुहम्मद बिन-कासिम को बन्दी बनाने तथा प्राण-दड देने की आज्ञा दी गई थी। यह मत पहले की अपेक्षा अधिक ठीक प्रतीत होता है। इस प्रकार तीन वर्ष के अल्पकाल में सिंध का यह विजेता २७ वर्ष की आयु में ही ससार से चल बसा।

**भारतवर्ष में 'अरब अधिकार' पर दृष्टिपात :—** सिंध पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् एक विशाल क्षेत्र अरब निवासियो के अधिकार में आ गया। इस प्रदेश का बहुत सा भाग मुसलमानो को दे दिया गया और उनसे दान के अतिरिक्त कुछ न लिया जाता था। उन्हें अवसरानुसार सैनिक सहायता करना अनिवार्य था। इस प्रकार भूमि पाने वाले सिपाहियो तथा पदाधिकारियो को स्वय कृषि करने की आज्ञा न थी। यह भूमि हिन्दुओ को कृषि करने के लिये दी गई जबकि वे स्वय उसकी आय का एक विशेष भाग अपने जीवन निर्वाह के लिये ले सकते थे। इस प्रकार हिन्दुओ को कृषि करने वाला वर्ग उनकी प्रजा बनकर रह गया, जिन पर वे निरकुश शासन करते थे। उनसे जो चाहें कार्य लें, जितना चाहें कर लगा दें और जिस प्रकार चाहें उस प्रकार रखें तथा युद्ध के समय प्राणो की बलि देने के लिये बाध्य करें। परन्तु सब सिपाहियो को इस प्रकार जागीरें नही दी गई। अधिकतर लोगो को वेतन देने की प्रथा रक्खी गई। इसके अतिरिक्त मुसलमान नेताओ तथा धार्मिक मठाधीशो को जागीरें दान के रुप में दी गई। उनसे कोई कर न लिया गया, वरन् इतना ही अभीष्ट था कि वह उस जागीर की आय से अपना तथा उस सस्था का व्यय चलायें।

अरब सिपाही देश में स्थान-स्थान पर बस गये—कुछ अपनी जागीरों में, कुछ अन्य स्थानो में। उन्होंने भारतीय स्त्रियों से विवाह कर लिए। यह स्थान शनैः शनैः मुस्लिम नगरों में बदल गये और धीरे धीरे व्यापारिक केन्द्र बन गये। अनेक मुस्लिम व्यापारी तुर्किस्तान, खुरासान के स्थल मार्ग से कुस्तुनतुनियाँ और भारत के बीच व्यापार करने लगे। जल मार्ग से भी पर्याप्त मात्रा में व्यापार होने लगा। अरब

से घोड़े तथा अस्त्र-शस्त्र और भारत से कपड़ा, मलमल इत्यादि मुसलमान देशों को जाने लगा। इस व्यापार से अरब व्यापारी मालामाल हो गये। भारतस्थित अरब, जिन के द्वारा यह व्यापार होता था, निरन्तर धनी होते चले गये। और जिन्हें जागीरें प्रदान की गई थी उन्होंने कृषक वर्ग का खून चूस-चूस कर अपने आपको धनी बना लिया। इस प्रकार विजेता के रूप में आये हुए अरब अपने धर्म-प्रचार को तो भूल गये, अपितु धनोन्मत्त हो भोग-विलास में फंस गये। और सिंध से आगे बढ़ने की उनकी इच्छा केवल स्वप्न बन कर रह गई।

**अरबों का भारत निवासियों के साथ व्यवहार** :—अरब निवासियों ने आरम्भ में हिन्दुओं को अपनी कट्टरता एवं धर्मान्धता का परिचय दिया। देवल तथा अरोर इत्यादि स्थानों पर मन्दिरों का विध्वंस, भीषण नर-संहार तथा स्त्री व बच्चों का बन्दी बनाना इस क्रूरता का द्योतक है। मुल्तान-स्थित सूर्य-मन्दिर का विध्वंस तथा लूट-मार मुहम्मद-बिन-कासिम ने स्वयं कराई। परन्तु समय के साथ उन्हें अनुभव होने लगा कि पराजित जाति की संस्कृति का पूर्ण विनाश असम्भव है। अतः उसने अपने अनुभव तथा हज्जाज के आदेशानुसार हिन्दुओं के साथ अच्छा वर्ताव करना आरम्भ कर दिया। उन्हें धार्मिक स्वतंत्रता दे दी गई। इसके स्थान पर उन पर जज़िया नामक धार्मिक कर लगा दिया गया। यह जज़िया आर्थिक स्थिति के अनुसार तीन श्रेणियों में विभक्त था। प्रथम धनिक वर्ग जिस पर ४८ दिरहम, द्वितीय मध्यम वर्ग जिस पर २४ दिरहम, तृतीय निम्न वर्ग जिस पर १२ दिरहम था।

**अरबों का राज्य प्रबन्ध** :—जज़िया के अतिरिक्त राजकीय आय का साधन भूमि-कर था। उसका नाम खिराज था। इसकी तीन श्रेणियां थीं; प्रथम गेहूँ और जौ की पैदावार जिस का $\frac{2}{5}$ भाग, सूखे प्रदेश में उक्त पैदावार का $\frac{1}{4}$ भाग, दूसरे खजूर, अंगूर तथा अन्य फलों की पैदावार का $\frac{1}{3}$ भाग और तीसरे शराब तथा अन्य खनिज पदार्थ का $\frac{1}{5}$ भाग खिराज के रूप में लिया जाता था। इनके अतिरिक्त भी कई अन्य कर थे जिनका ठेका प्रायः ठेकेदारों को दे दिया जाता था। कुछ वर्गों पर

गई कि भारतीय जनता उनके देने के योग्य न रही। काजी मुस्लिम नियमों के अनुसार न्याय करते थे। इससे हिन्दुओं पर बड़ा अत्याचार होता था। क्योंकि हिन्दू नियम बहुत-सी बातों में मुस्लिम नियमों से भिन्न थे। राजनैतिक दोषों पर प्राय प्राणदंड अथवा धर्म-परिवर्तन का दंड दिया जाता था। हिन्दू जनता अपने झगड़े प्राय पंचायतों द्वारा तय करती थी।

अस्थायी-अरब विजय —अरबों की सिंध विजय स्थायी न हो सकी इसके कई कारण थे। विजेता जाति ऐसे भिन्न २ वर्गों का मिश्रण थी जो रीति रिवाज, संस्कृति तथा मनोवृत्ति की भिन्नता के कारण एक सूत्र में नहीं बंध सकती थी। अत युद्ध कार्य समाप्त होने के पश्चात् जब उनके मिल जुल कर रहने का प्रश्न आया तो भिन्नता जागृत हो उठी और उनके पारस्परिक मतभेद उनकी स्थिरता पर कुठाराघात करने लगे। शांतिकाल में वही परम्परागत ईर्ष्या तथा द्वेष जाग उठे। सुन्नी शिया समस्या ने उग्र रूप धारण कर लिया, साम्प्रदायिकता के विष ने अरब जाति के टुकड़े २ कर दिये और प्रत्येक सम्प्रदाय हर समय दूसरे सम्प्रदायों के विनाश की ही सोचने में व्यस्त रहने लगा। अभीष्ट तो यह था कि सब मिलकर अपने राज्य की नींव को अच्छे शासन द्वारा दृढ़ बनाते। सिंध अत्यन्त ऊसर प्रदेश था, मुसलमान राज्य का यह अंग खलीफा के लिए आय के स्थान पर व्यय का कारण बन गया। इसलिए उसने भी उसकी ओर उदासीनता दिखलाई।

हिन्दु वर्ग मुसलमानों के प्रति अति घृणा रखता था। मुसलमान-संस्कृति हिन्दू संस्कृति से इतनी भिन्न थी कि साधारण हिंदू भी अपने आपको एक उच्च मुसलमान से अच्छा समझता था। इसलिये हिंदू वर्ग के लिए मुसलमान राज्य असह्य था और वह उसके साथ सहयोग देना पसन्द न करता था। सिंध प्रदेश के सीमावर्ती प्रदेश राजपूतों के अधिकार में थे, जो सदैव मुसलमानों से लोहा लेने व उसको नष्ट करने को उद्यत रहते थे। फल यह हुआ कि सिंध प्रदेश छोटी २ स्वतन्त्र रियासतों में बँट गया और भिन्न २ वर्ग उन पर शासक बन गये जो नाम मात्र में खलीफा के अधीन थे।

अरब-विजय के प्रभाव —राजनैतिक दृष्टि से सिन्ध विजय एक साधारण घटना थी। परन्तु इस विजय का मुसलमानी सभ्यता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। जब अरब निवासियों ने भारतवर्ष में पदार्पण किया तो वह भारतीय सभ्यता की उच्चता को देखकर चकित रह गये, हिन्दू दर्शनशास्त्र की उच्चता तथा उनके बौद्धिक विकास ने उन्हें विस्मित कर दिया। इस्लाम का एकेश्वरवाद भी उन्हें पहिले से ही ज्ञात था। साहित्य, कला, विज्ञान और दर्शन में वे उनसे आगे थे। भारतीय गायनाचार्य व कला

से घोड़े तथा अस्त्र-शस्त्र और भारत से कपड़ा, मलमल इत्यादि मुसलमान देशों को जाने लगा। इस व्यापार से अरब व्यापारी मालामाल हो गये। भारतस्थित अरब, जिन के द्वारा यह व्यापार होता था, निरन्तर धनी होते चले गये। और जिन्हें जागीरें प्रदान की गई थी उन्होंने कृषक वर्ग का खून चूस-चूस कर अपने आपको धनी बना लिया। इस प्रकार विजेता के रूप में आये हुए अरब अपने धर्म-प्रचार को तो भूल गये, अपितु धनोन्मत्त हो भोग-विलास में फंस गये। और सिंध से आगे बढ़ने की उनकी इच्छा केवल स्वप्न बन कर रह गई।

**अरबों का भारत निवासियों के साथ व्यवहार :**—अरब निवासियों ने आरम्भ में हिन्दुओं को अपनी कट्टरता एवं धर्मान्धता का परिचय दिया। देवल तथा अरोर इत्यादि स्थानो पर मन्दिरों का विध्वंस, भीषण नर-संहार तथा स्त्री व बच्चों का बन्दी बनाना इस क्रूरता का द्योतक है। मुल्तान-स्थित सूर्य-मन्दिर का विध्वंस तथा लूट-मार मुहम्मद-बिन-कासिम ने स्वयं कराई। परन्तु समय के साथ उन्हें अनुभव होने लगा कि पराजित जाति की संस्कृति का पूर्ण विनाश असम्भव है। अतः उसने अपने अनुभव तथा हज्जाज के आदेशानुसार हिन्दुओं के साथ अच्छा बर्ताव करना आरम्भ कर दिया। उन्हें धार्मिक स्वतंत्रता दे दी गई। इसके स्थान पर उन पर जजिया नामक धार्मिक कर लगा दिया गया। यह जजिया आर्थिक स्थिति के अनुसार तीन श्रेणियों में विभक्त था। प्रथम धनिक वर्ग जिस पर ४८ दिरहम, द्वितीय मध्यम वर्ग जिस पर २४ दिरहम, तृतीय निम्न वर्ग जिस पर १२ दिरहम था।

**अरबों का राज्य प्रबन्ध :**—जजिया के अतिरिक्त राजकीय आय का साधन भूमि-कर था। उसका नाम खिराज था। इसकी तीन श्रेणियां थीं; प्रथम गेहूँ और जौ की पैदावार जिस का $\frac{2}{5}$ भाग, सूखे प्रदेश में उक्त पैदावार का $\frac{1}{4}$ भाग, दूसरे खजूर, अंगूर तथा अन्य फलों की पैदावार का $\frac{1}{3}$ भाग और तीसरे शराब तथा अन्य खनिज पदार्थ का $\frac{1}{5}$ भाग खिराज के रूप में लिया जाता था। इनके अतिरिक्त भी कई अन्य कर थे जिनका ठेका प्रायः ठेकेदारो को दे दिया जाता था। कुछ वर्गों पर अपमान-जनक प्रतिबन्ध लगाये गये थे, उदाहरणार्थ कुछ जातियों को अच्छे वस्त्र पहिनने, घोड़े पर चढ़ने, सिर पर टोपी पैर में जूता पहिनने की आज्ञा न थी। पराजित जाति के लिये चोरी बहुत कड़ा दोष समझा जाता था और इस पर उनकी स्त्रियों तथा बच्चों को जलाने का दंड दिया जाता था। भारतनिवासियों के लिये अनिवार्य था कि प्रत्येक मुसलमान यात्री को तीन दिन तक खाना दे। इसके अतिरिक्त कई और भी अपमान-जनक नियमो का उल्लेख मुसलमान इतिहासकारों ने किया है। करों की संख्या तथा उनकी दर यहां तक बढ़ती

गई कि भारतीय जनता उनके देने के योग्य न रही। काजी मुस्लिम नियमो के अनुसार न्याय करते थे। इससे हिन्दुओ पर बडा अत्याचार होता था। क्योंकि हिन्दू नियम बहुत-सी बातो में मुस्लिम नियमो से भिन्न थे। राजनैतिक दोषो पर प्रायः प्राणदड अथवा धर्म-परिवर्तन का दड दिया जाता था। हिन्दू जनता अपने झगडे प्रायः पचायतो द्वारा तय करती थी।

अस्थायी-अरब विजयः—अरबो की सिंध-विजय स्थायी न हो सकी इसके कई कारण थे। विजेता जाति ऐसे भिन्न २ वर्गों का मिश्रण थी जो रीति-रिवाज, सस्कृति तथा मनोवृत्ति की भिन्नता के कारण एक सूत्र में नही बध सकती थी। अत. युद्ध-कार्य समाप्त होने के पश्चात् जब उनके मिल जुल कर रहने का प्रश्न आया तो भिन्नता जागृत हो उठी और उनके पारस्परिक मतभेद उनकी स्थिरता पर कुठाराघात करने लगे। शांतिकाल में वश-परम्परागत ईर्ष्या तथा द्वेष जाग उठे। सुन्नी-शिय्या समस्या ने उग्र रूप धारण कर लिया, साम्प्रदायिकता के विष ने अरब जाति के टुकडे २ कर दिये और प्रत्येक सम्प्रदाय हर समय दूसरे सम्प्रदायो के विनाश की ही सोचने में व्यस्त रहने लगा। अभीष्ट तो यह था कि सब मिलकर अपने राज्य की नीव को अच्छे शासन द्वारा दृढ बनाते। सिंध अत्यन्त ऊसर प्रदेश था, मुसलमान राज्य का यह अग खलीफा के लिए आय के स्थान पर व्यय का कारण बन गया। इसलिए उसने भी उसकी ओर उदासीनता दिखलाई।

हिन्दु वर्ग मुसलमानो के प्रति अति घृणा रखता था। मुसलमान-संस्कृति हिन्दू सस्कृति से इतनी भिन्न थी कि साधारण हिन्दू भी अपने आपको एक उच्च मुसलमान से अच्छा समझता था। इसलिये हिन्दू वर्ग के लिए मुसलमान राज्य असह्य था और वह उसके साथ सहयोग देना पसन्द न करता था। सिंध प्रदेश क सीमावर्ती प्रदेश राजपूतो के अधिकार में थे, जो सदैव मुसलमानो से लोहा लेने व उसको नष्ट करने को उद्यत रहते थे। फल यह हुआ कि सिंध प्रदेश छोटी २ स्वतन्त्र रियासतो में बँट गया और भिन्न २ वर्ग उन पर शासक बन गये जो नाम मात्र में खलीफा के अधीन थे।

अरब-विजय के प्रभावः—राजनैतिक दृष्टि से सिन्ध-विजय एक साधारण घटना थी। परन्तु इस विजय का मुसलमानी सभ्यता पर बडा प्रभाव पड़ा। जब अरब निवासियो ने भारतवर्ष में पदार्पण किया तो वह भारतीय सभ्यता की उच्चता को देखकर चकित रह गये, हिन्दू वेदान्तशास्त्र की उच्चता तथा उनके बौद्धिक विकास ने उन्हें विस्मित कर दिया। इस्लाम का ऐक्यवाद भी उन्हें पहिले से ही ज्ञात था। साहित्य, कला, विज्ञान और दर्शन में वे उनसे आगे थे। भारतीय गायनाचार्य व कला

विद् अरब-निवासियों के लिए उतने ही आश्चर्यजनक मनुष्य थे जितने यहां के दार्शनिक विद्वान तथा महान् साधु महात्मा—भारतीय आयुर्वेद की प्रशंसा सुनकर खलीफा हारूँ रशीद ने एक प्रसिद्ध आयुर्वेदाचार्य को भारत से आमन्त्रित किया जो उसके रोग का समाधान करने में सफल हुआ। शासनकला में भी अरब निवासियों ने भारतीयों से बहुत कुछ सीखा। ब्राह्मणों की उंचे पदों पर नियुक्ति करना उनके अनुभव, ज्ञान तथा योग्यता का ज्वलन्त प्रमाण है।

भारतवर्ष बौद्धिक क्षेत्र में अरबों से आगे था। अरब सभ्यता के अधिकतर अ ग जो अरबों द्वारा योरुप पहुँचे, अरब विद्वानों ने बौद्ध साधुओं तथा ब्राह्मण पंडितों की कृपा से अनेक वर्षों में प्राप्त किये थे। मंसूर की खिलाफत के समय ( ७५३ ई०—७७४ ई०) तक बग़दाद के दरबार में भारतीय विद्वानों का बहुत आदर किया जाता था अरब लोग बहुत से मूल ग्रन्थ भारत से अरब ले गये थे। ब्रह्म-गुप्त का ब्रह्म सिद्धात इनमें बहुत प्रसिद्ध है।

भारतीय विद्वानों की सहायता से इनका अनुवाद वहाँ की भाषा में किया गया। आगे चलकर अरबों ने इन्हें अपना लिया। भारतीय विद्वानों से अरबों ने ज्योतिष शास्त्र तथा अङ्कगणित सीखा; इसीलिये उन्होंने इसका नाम 'इल्म-हिन्दसा' अर्थात् 'भारत की विद्या' रखखा। खलीफा हारूँ रशीद के राज्यकाल में हिन्दुस्तान से विशेष सम्पर्क रहा। क्यों कि उसके मंत्री नव-मुसलिम थे जो आरम्भ में हिन्दू थे। अतः इनकी हिन्दू संस्कृति तथा भारतीय विद्याओं की ओर अधिक रुचि थी। उन्होंने बहुत से भारतीय विद्वानों को बगदाद बुलाया तथा अनेक अरब-निवासियों को भारतवर्ष विद्या सीखने को भेजा। इस प्रकार संस्कृत भाषा की वेदान्त, आयुर्वेद ज्योतिष इत्यादि विषयक पुस्तकों का अरबी भाषा में अनुवाद हुआ और उसे अरब लोगो ने भारतीय अलंकारिक भाषा से मुक्त कर अपनी शैली में मौलिकता के रूप में योरपीय जातियों के समक्ष रखा

## प्रश्न

१. छठी शताब्दी के अन्त में जो धार्मिक व राजनैतिक जागृति हुई उसका वर्णन करो।
२. अरबों ने सिंध पर क्यो आक्रमण किया ?
३. अरबों ने किस प्रकार सिंध पर विजय प्राप्त की ?
४. दाहिर की लड़कियो ने किस प्रकार मुहम्मद बिनकासिम से बदला लिया ?
५. अरबों ने हिन्दुओं के साथ कैसा वर्ताव किया ?

६. अरबों ने सिंध में कैसा शासन प्रबन्ध किया ?
७. अरब विजय स्थायी क्यों न हो सकी ?
८. अरब विजय का भारत तथा अरब पर क्या प्रभाव पड़ा ?

---

## अध्याय २२

# गजनवी—तुर्कों के भारत आक्रमण

**तुर्कों का उत्कर्ष:**—अरब आक्रमण भारतीय इतिहास में एक साधारण घटना बन कर रह गई। उनकी विजय सिन्ध के ऊसर प्रदेश तक ही सीमित रही। समस्त भारत पर उसका कोई प्रभाव नही पडा। इसके तीन सौ वर्ष बाद तुर्कों ने भारत पर आक्रमण किया। इस बीच भारत भिन्न २ राजपूत रियासतो में बँटा रहा। तुर्कों का उत्थान ७५० ई० की खिलाफत क्रान्ति से सम्बन्धित है।

इस क्रान्ति से खलीफा के दरबार में अरबो का प्रभुत्व कम तथा ईरानी प्रभुत्व अधिक हो गया। फारसी प्रभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगा। खलीफाओं ने अपने अंगरक्षक, तथा सेना में तुर्क अधिक संख्या मे भरती करने आरम्भ कर दिये। धीरे २ तुर्क तथा ईरानी पदाधिकारियों का प्रभाव इतना बढ गया कि खलीफा उनके हाथ की कठपुतली बनकर रह गया। केन्द्रीय सत्ता की शक्ति-हीनता का एक प्रभाव यह भी हुआ कि प्रांतीय शासक अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने की अभिलाषा करने लगे और अन्त में समस्त साम्राज्य छोटी-छोटी रियासतो में विभक्त हो गया। ऐसे समय अब्दुल मलिक समानी ने ( ६५४—६६१ ) ट्रांसऑक्सियाना पर अधिकार कर अलप्तगीन नामक अपने तुर्क दास को खुरासान का गवर्नर नियुक्त किया।

**अलप्तगीन तथा उसके उत्तराधिकारी:**—अलप्तगीन अत्यन्त योग्य तथा वीर शासक था। अपने स्वामी की मृत्यु के पश्चात् जब वह पदच्युत कर दिया गया तब उसने गजनी पर अधिकार कर लिया व जहाँ पहले उसका पिता गवर्नर रह चुका था इस पर्वतीय प्रदेश में वह स्वतन्त्र शासक की भांति आचरण करने लगा। उसकी मृत्यु के पश्चात् ९७७ ई० में गजनी की शासन सत्ता अमीर सुबुक्तगीन के हाथ मे आई और तब से गजनी एक प्रभावशाली साम्राज्य बनना आरम्भ हो गया।

**सुबुक्तगीन :**—सुबुक्तगीन अलप्तगीन का दास था। उसने उसे नेशापुर मे नस्र नामक व्यापारी से खरीदा था। नस्र उसे तुर्किस्तान से बुखारा लाया।

अपनी योग्यता के कारण वह एक पद से दूसरे पद तक उन्नति करता चला ग
और अल्पकाल में ही अमीर-उल-उमरा अर्थात् सर्वश्रेष्ट अमीर की उपाधि
विभूषित किया गया। अपने स्वामी की मृत्यु के पश्चात् अमीरों ने उसे सिंहासनारू
किया। सुबुक्तगीन योग्य तथा महत्वकांक्षी शासक था। गजनी का छोटा राज्य उसः
आकांक्षाओं के योग्य न था। इसलिए उसने अपने साम्राज्य की वृद्धि के लि
अफगानों को एकता के सूत्र में संकलित किया। उनकी सहायता से उसने अफग
निस्तान तथा सीस्तान पर विजय प्राप्त की। कई वर्ष के निरन्तर संघर्ष के पश्चात् व
अपने पुत्र महमूद के लिए खुरासान प्रांत प्राप्त करने में सफल हुआ। इस प्रकार प
तीय प्रदेश में अपनी स्थिति दृढ़ करने के पश्चात् सुबुक्तगीन धार्मिक श्रेय प्राप्त कर
तथा साम्राज्य वृद्धि के लिये भारत की ओर अग्रसर हुआ।

सुबुक्तगीन का भारत आक्रमण:—पहिला भारतीय शासक जिसने सुबु
गीन का विरोध किया, साही वंशीय जयपाल था। उसका राज्य सरहिन्द से लमग
तथा काश्मीर से मुलतान तक था। ६८६—८७ ई० में सुबुक्तगीन ने जयपाल
सीमा में प्रवेश किया और कई जिलों व नगरों पर अधिकार कर बहुत सा लूट
माल लेकर चला गया। जयपाल इस घटना से अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और शीघ्र ही बद
लेने की तैयारी करने लगा। उसने एक विशाल सेना एकत्रित की और लमग
के आगे बढ़ कर गजनी के साम्राज्य के कुछ भाग पर अपना अधिकार कर लिया। ज
सुबुक्तगीन को यह पता लगा तो वह भी एक विशाल सेना लेकर उसका सामना क
को आया और लमगान क्षेत्र की सीमा पर आ पहुँचा जहां पर जयपाल अपनी से
सहित पहिले ही पड़ा था। जयपाल इस विशाल जन-समूह को देखकर अत्यन्त भ
भीत हुआ और उसने सुबुक्तगीन का आधिपत्य स्वीकार कर लिया तथा कर देने व
प्रार्थना की। परन्तु महमूद के आग्रहवश सुबुक्तगीन ने जयपाल का प्रस्ताव अस्वीकृ
कर दिया। इस पर जयपाल ने दूसरी बार अपना राजदूत उसकी सेवा में भेजा औ
कहा कि यदि वह संधि करने को तैयार न होगा, तो घोर युद्ध होगा जिसका परिणा
अनिश्चित है। परन्तु यह निश्चित है कि यदि हमको सफलता की कोई आशा न रह
तो हम अपनी सम्पत्ति को अग्नि की भेंटकर युद्ध-स्थल में कूद जायेंगे। फिर यदि उ
विजय प्राप्त हुई तो उसको मृतक शरीरों तथा हड्डियों के अतिरिक्त और कुछ
मिलेगा। इस पत्र की प्राप्ति पर सुबुक्तगीन ने सन्धि करना स्वीकार कर लिया
जयपाल ने एक लाख दिरहम, ५० हाथी तथा कुछ नगर व किले सुबुक्तगीन को दे
स्वीकार कर लिये। इन शर्तों को पूरा करने के लिये उसने सुबुक्तगीन के दो यो
पदाधिकारियों को अपने साथ ले जाना स्वीकार किया। परन्तु ज्यों ही जयपाल

अपने साम्राज्य में पदार्पण किया, त्योंही उसने अपने विचार बदल दिये। सुबुक्तगीन के दोनो पदाधिकारी बन्दी बना लिये और उसने सन्धि की धारायें पूरी करने से इन्कार कर दिया।

जब सुबुक्तगीन को यह पता चला तो उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। तुरन्त वह विशाल सेना लेकर भारत पर आ धमका और जयपाल का समीपवर्ती प्रदेश पूर्णतया नष्ट-भ्रष्ट कर दिया तथा लमगान पर अधिकार कर गजनी लौट गया। जयपाल के अनेक सेनापति खेत रहे और बहुत से सैनिक युद्ध-स्थल में काम आये। इससे जयपाल के प्रतिशोध की भावना भभक उठी। सन् ९९१ में उसने अजमेर, कालिंजर और कन्नौज के राज्यो से मिलकर सुबुक्तगीन को परास्त करने की सोची। उन राज्यो ने जन और धन से उसकी सहायता की। इस प्रकार एक विशाल सेना एकत्रित कर वह लमगान के निकट सुबुक्तगीन से युद्ध करने आ पहुँचा। सुबुक्तगीन ने अपनी सेना को पांच भागो में विभक्त किया और आदेश दिया कि वे एक साथ युद्ध में न जाय बल्कि बारी-बारी से युद्ध करे, जिससे कि विश्राम करने का समय भी मिलता रहे तथा युद्ध भी चलता रहे और जब हिन्दू-सेना निरन्तर युद्ध करते-करते थक जाय तो सब सामूहिक रूप से आक्रमण करें। इसके अतिरिक्त धर्म के लिए मर मिटने के भाव ने जो प्राय. मुसलमानो को सब कुछ बलिदान करने को प्रोत्साहित करता रहा है, उनमें नवीन स्फूर्ति का संचार किया। फल यह हुआ कि घोर युद्ध के पश्चात् हिन्दू परास्त हुए। जयपाल ने अतुल धन तथा २०० हाथी अमीर को भेंट किये तथा उसका आधिपत्य स्वीकार किया। पेशावर प्रान्त सुबुक्तगीन को दे दिया गया। इस प्रकार भारत-विजय का द्वार खोल २० वर्ष राज्य करने के पश्चात् सुबुक्तगीन ९९७ ई० में इस संसार से चल बसा।

महमूद:—सुबुक्तगीन की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र महमूद गजनी सिंहासन पर बैठा। सुबुक्तगीन सदैव उसे एक होनहार युवक समझता रहा। कहा जाता है कि उसके जन्म के पहिले सुबुक्तगीन को एक स्वप्न दिखाई दिया, जिसमें उसने देखा कि उसके घर में एक पेड उगा, जो इतना विशाल तथा ऊँचा हो गया कि समस्त संसार उसकी छत्रछाया में आ गया। ठीक उसी सुबह उसे सूचना मिली कि उसके यहाँ एक पुत्र उत्पन्न हुआ है। वह पुत्र महमूद था। स्वप्न सत्य सिद्ध हुआ क्योंकि महमूद अपने समय के सर्व प्रसिद्ध विजेताओ में गिना जाता है। वह अत्यन्त वीर, दृढ़-प्रतिज्ञ तथा महत्वाकांक्षी था। उसकी धार्मिक कट्टरता चरम सीमा पर पहुँच गई थी।

अपने सिंहासनारूढ होने के पश्चात् महमूद ने समानी सम्राट् नूह से अपने पद

की स्वीकृति ली, परन्तु अतिशीघ्र जब समानी वंश में पारस्परिक वैमनस्य इतना फैल गया कि वे सदैव एक दूसरे की जान लेने को तैयार रहने लगे; यहाँ तक कि उनमें से एक पक्ष ने अतियोग्य शासक मनसूर को पदच्युत कर उसकी आँखें निकलवा लीं तो महमूद का हृदय घृणा से टुकड़े २ हो गया। उसने नये समानी सम्राट् का आधिपत्य स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और अपने आपको गजनी तथा खुरासान का स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया और अमीर के बदले सुल्तान की उपाधि ग्रहण की। इस प्रकार अपनी स्थिति को दृढ़ बनाने के पश्चात् महमूद ने धन प्राप्ति की आशा से १००० से १०२६ ई० तक भारतवर्ष पर कई आक्रमण किये। आक्रमणों का द्वार तो सुबुक्तगीन खोल ही गया था।

**महमूद के भारत आक्रमण:**—प्रथम आक्रमण १००० ई० में सीमावर्ती नगरों पर किया गया इसमें वह कई नगरों और किलों पर अधिकार कर गजनी लौट गया।

उसके युद्ध-प्रेम; धन-लोलुपता तथा महत्वाकांक्षा ने महमूद को चैन से न बैठने दिया। १००० ई० में वह दस सहस्त्र अश्वारोही लेकर पुनः भारत पर चढ़ आया। जयपाल ने, जो सुबुक्तगीन से युद्ध कर चुका था, उसका सामना किया। परन्तु २८ नवम्बर १००१ ई० में वह परास्त हुआ और उसके १५००० हिन्दू सैनिक काम आये। जयपाल अपने १५ सम्बन्धियों सहित पकड़ा गया, जयपाल ने संधि करली, जिसके अनुसार उसने २ लाख ५० हजार दीनार तथा ५० हाथी युद्ध-क्षति के रूप में देना स्वीकार किया। परन्तु जयपाल अपने इस अपमान को सहन न कर सका। बार-बार पराजय तथा असफलता से निराश हो उसने इस प्रकार अपमानित होने के स्थान पर मरना उचित समझा। उसने एक चिता बनवाई और जीवित ही उसमें बैठ कर अपने प्राण विसर्जन कर दिये।

**मुल्तान पर आक्रमण:**—चौथी बार महमूद मुल्तान पर आक्रमण करने चला। मुल्तान का शासक अब्दुल फतह दाऊद था। स्वतंत्र मार्ग अपनाने के बदले उसने पंजाब के राजा अनंगपाल से प्रार्थना की कि वह मुल्तान जाने के लिए अपने देश से गुज़रने की आज्ञा दे। अनङ्गपाल और दाऊद में मैत्री सम्बन्ध होने के कारण उसने महमूद को मार्ग देने से इन्कार कर दिया। क्रुद्ध हो महमूद ने अनङ्गपाल पर आक्रमण कर दिया और उसको परास्त कर दिया।

इसके पश्चात् महमूद मुल्तान की ओर बढ़ा और उस पर अधिकार कर वहाँ के नागरिकों को एक विशाल धन देने के लिए बाध्य किया।

ठीक इसी समय उसे सूचना मिली कि काशगर के बादशाह ने गजनी पर

आक्रमण कर दिया है। इसलिए वह गजनी लौट गया। सेवकपाल, जो जयपाल का धेवता था, इस्लाम-धर्म स्वीकार कर चुका था परन्तु ज्योंही महमूद भारत से रवाना हुआ वह फिर हिन्दू हो गया और अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया। जब महमूद को यह ज्ञात हुआ तो वह उसको दण्ड देने के लिए फिर चल दिया। सेवकपाल परास्त हुआ और उसको विश्वासघात करने के कारण बड़ा हरजाना देना पड़ा।

**लाहौर पर आक्रमण**:—छठा आक्रमण १००८ ई० में लाहौर के राजा आनन्दपाल के विरुद्ध हुआ। आनन्दपाल ने मुलतान के शासक दाऊद को स्वतन्त्र होने में सहायता दी थी। उसे दड देने के लिये महमूद ने लाहौर पर आक्रमण किया। आनन्दपाल ने भारतीय रियासतों से सहायता माँगी और उज्जैन, ग्वालियर, कालिंजर, कन्नौज आदि कई रियासतों ने उसे सैनिक सहायता दी। इस प्रकार हिन्दुओं का एक विशाल सैन्य दल इस स्वतन्त्रता सग्राम में अपने प्राणों की आहुति देने को तैयार हो गया। स्त्रियों ने अपने आभूषण बेचकर इस युद्ध में आर्थिक सहयोग दिया। मुलतान प्रांत की खोखर जाति ने भी आनन्दपाल की सहायतार्थ एक विशाल दल भेजा। इस दल-बल को देखकर महमूद चकित रह गया। उसके ६००० 'धनुधारियों' ने तुरन्त धावा बोल दिया परन्तु ३०००० खोखरों ने उनका सफाया कर दिया। यह देखकर महमूद निराश हो गया और युद्ध बन्द करने का विचार किया परन्तु ठीक इसी समय आनन्दपाल का हाथी युद्धस्थल से भाग निकला। यह देखकर हिन्दू सेना के पैर उखड गये और उन्होंने रण-क्षेत्र से भागना आरम्भ कर दिया। महमूद ने उनका पीछा करने की आज्ञा दी। अनेक हिन्दू पकडे गये और उनको मौत के घाट उतार दिया गया। असख्य धन तथा बहुत से हाथी महमूद के हाथ लगे।

**कांगड़ा पर आक्रमण**:—अपनी सफलता से प्रोत्साहित हो महमूद ने इसी वर्ष कागडा के किले पर आक्रमण किया। यह दुर्ग एक पहाडी पर स्थित था और यहाँ पर अपार धन एकत्रित था। मुसलमानों ने किले का घेरा डाल दिया। जब हिन्दुओं ने मुसलमानों को निरतर बढते हुए देखा तो उन्होंने दुर्ग का द्वार खोल दिया। इस प्रकार इस किले पर सरलता से महमूद का अधिकार हो गया। फरिश्ता लिखता है कि यहा महमूद को असख्य धन मिला। सात लाख दीनार, नौ मन सोना, २०० मन चाँदी तथा बीस मन हीरे जवाहिरात मिले। इस वर्णन में अतिशयोक्ति प्रतीत होती है। फरिश्ता आदि के इस वर्णन से हम यह परिणाम निकालते हैं कि यहाँ महमूद को बहुत-सा धन हाथ लगा। अब यह गजनी लौट गया वहाँ सर्वसाधारण व विदेशी राजदूतों को यह धन दिखाया गया जिसको देखकर सब चकित होगये।

महमूद के उपरोक्त आक्रमणों में सबसे प्रसिद्ध आक्रमण थानेश्वर का था, जो १०१४ ई० में हुआ। सुलतान ने सुना था कि थानेश्वर में बहुत से विशाल हाथी वर्तमान हैं जो युद्ध में बहुत सहायक सिद्ध हो सकते हैं। उनकी शक्ति पर थानेश्वर का राजा विश्वास करता था। अतः वह अपने धर्म का कट्टर अनुयायी था। महमूद विजय तथा धर्म के प्रचार की धारणा से थानेश्वर पर चढ़ आया। हिन्दू बड़ी वीरता से लड़े परन्तु विजय महमूद के हाथ रही, और उसने नगर तथा मंदिरों को लूट असंख्य धन प्राप्त किया।

**कन्नौज तथा मार्ग में स्थित स्थानों पर आक्रमण** :—इन विजयों के कारण महमूद की सारे इस्लाम—संसार में प्रसिद्धि हो गई और क्या खुरासान क्या तुर्किस्तान समस्त मुसलमान जगत के निवासी उसकी सेना में भर्ती होने के लिए लालायित रहने लगे। फल यह हुआ कि उसकी सेना वीर और उत्साही सैनिकों से परिपूर्ण होगई। इस प्रकार एक विशाल सेना से सुसज्जित हो उसने कन्नौज पर आक्रमण करने का विचार किया। १०१८ ई० में वह गज़नी से चल पड़ा और मार्ग के सब दुर्ग विजय करता हुआ बुलन्दशहर आया। वहाँ हरदत्त नामक एक स्थानीय राजा ने उसकी आधीनता स्वीकार कर ली और अपने दस सहस्र साथियों सहित मुसलमान हो गया। एक ताम्रपत्र, जिस पर इस राजा का उल्लेख है, मिला है।

इसके उपरान्त महमूद ने महावन के राजा कुलचन्द के विरुद्ध अपनी सेना भेजी। हिन्दू बड़ी वीरता से लड़े परन्तु परास्त हुए लगभग (५००००) पचास हज़ार मनुष्य मारे गये। जब कुलचन्द ने सफलता की कोई आशा न देखी तो उसने अपने सम्मान की रक्षा करने के लिए अपनी स्त्री को स्वयं मार डाला और इसी समय आत्मघात कर लिया। १८५ हाथी तथा असंख्य धन महमूद के हाथ लगा।

इस विजय के पश्चात् सुलतान मथुरा की ओर बढ़ा। वहां के मन्दिरों की सुन्दरता को देखकर महमूद चकित रह गया। परन्तु उनका सौन्दर्य भी उनकी रक्षा न कर सका। महमूद ने उनको नष्ट-भ्रष्ट करने की आज्ञा दी। पल भर में गगनचुम्बी मन्दिर व विशाल भवन धराशायी कर दिये गये। प्रसिद्ध इतिहासकार उतबी ने मथुरा का ऐसा रोचक वर्णन किया है कि उसको पढ़ कर आश्चर्य होता है कि किस प्रकार एक मनुष्य इतनी सुन्दर नगरी को नष्ट-भ्रष्ट करने का विचार अपने मन में ला सकता है। परन्तु यह सब कुछ हुआ और असंख्य धन महमूद के हाथ लगा।

मथुरा के लूटने तथा नष्ट-भ्रष्ट करने के पश्चात् महमूद वृन्दावन की ओर बढ़ा। यह नगर चारो ओर किलों से घिरा हुआ था। वहाँ के राजा ने जब यह सुना कि महमूद उसकी ओर आ रहा है तो मन्दिरों तथा किलों को महमूद की लूट-मार के

लिए छोडकर भाग खडा हुआ। महमूद ने नगर को खूब लूटा और असख्य द्रव्य लेकर वहाँ से लौटा।

इसके पश्चात् जनवरी १०१६ ई० में वह कन्नौज की ओर बढा। मुसलमान इतिहासकारो के मतानुसार कन्नौज में ७ किले और १० हजार मन्दिर थे। परिहार राजा राज्यपाल ने बिना युद्ध किये ही आत्म-समर्पण कर दिया। महमूद की आज्ञा से नगर के मन्दिर नष्ट कर दिये गये तथा नगर-वासियो को मार डाला गया और उनकी सम्पत्ति लूट ली गई। महमूद का हृदय न मालूम कैसे इस भीषण नर-सहार को सह सकता था।

इस लूट-मार तथा मार-काट के पश्चात् महमूद बुन्देलखड होता हुआ और मार्ग के किले जीतता हुआ गज़नी को लौट गया।

**क्षत्रिय सम्मान की झलक :**—जब कन्नौज के निकटवर्ती राजपूत रियासतो को पता चला कि राजपाल ने बिना युद्ध किये ही महमूद की आधीनता स्वीकार कर ली है तो वे उसकी कायरता पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उन्होने राजपाल के इस कार्य को राजपूत सम्मान पर एक बडा भारी कलङ्क समझा। चदेलराज गड ने सर्वप्रथम अपनी घृणा प्रकट की और उसके पुत्र विद्याधर ने ग्वालियर के राजा सहित राजपाल पर चढाई की और उसे मार डाला।

**चदेल पर आक्रमण :**—जब महमूद को उक्त घटना की सूचना मिली तो अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और चन्देल राजा को उसकी अशिष्टता का मजा चखाने के लिए १०१६ ई० में गजनी से चल दिया। महमूद ने चन्देरा प्रदेश में प्रवेश किया। गड एक विशाल सेना सहित पहले ही तैयार था। गड की तैयारी देखकर महमूद निराश हो गया। वह घोडे से उतरा और भगवान् से विजय की प्रार्थना की। इधर महमूद की ये दशा थी, उधर गड महमूद की सेना को देखकर डर गया और रात में ही मैदान छोड कर भाग गया। चन्देल कैम्प मुसलमानो ने लूट लिया और बहुत-सासामान तथा ५८० हाथी उनके हाथ लगे।

**ग्वालियर पर आक्रमण:**—(१०२१-२२ ई० में) इसके बाद महमूद ने ग्वालियर का घेरा डाल दिया। ग्वालियर के राजा ने राजपाल के विरुद्ध चन्देलो का साथ दिया था, महमूद के हृदय में इसका काँटा था। इसलिए चन्देलो के राजा गड पर आक्रमण के पश्चात् उसने ग्वालियर के राजा को पाठ देना चाहा। राजा ने शीघ्र ही महमूद का आधिपत्य स्वीकार कर लिया।

**कालिंजर विजय :**—इसके बाद महमूद कालिंजर के प्रसिद्ध किले की ओर बढा, यह गड चन्देल के अधिकार में था। गड महमूद की शक्ति से भली भांति परिचित

था। इस लिये उसने मुलतान से संधि कर ली। असंख्य धन तथा हीरे जवाहिरात भेंट स्वरूप प्राप्त कर महमूद गज़नी लौट गया।

**सोमनाथ का सर्वप्रसिद्ध आक्रमण।**—महमूद का सर्वप्रसिद्ध आक्रमण सोमनाथ के मन्दिर पर १०२५ ई० में हुआ। यह उनका सोलहवाँ आक्रमण था। महमूद ने सोमनाथ के मन्दिर के धन और बहु-मूल्य वस्तुओं की चर्चा बहुत दिनों से सुन रक्खी थी। इसलिये उसने ३० हजार अश्वा-रोहियों और बहुत से स्वयं सेवकों सहित इस मन्दिर की ओर प्रस्थान किया। मुलतान होता हुआ वह अजमेर पहुँचा और नगर को लूटता तथा मार्ग के ग्रामों व नगरों को नष्ट करता हुआ वह सोमनाथ पहुँचा। सोमनाथ के मन्दिर की सबसे आश्चर्यजनक वस्तु सोमनाथ जी की मूर्ति थी जो रिक्त स्थान में बिना किसी आधार के लटकी थी। हिन्दू मुसलमान जो कोई उस मूर्ति को देखता था चकित रह जाता था। समुद्र की लहरें स्वाभाविक रूप में मन्दिर तक आती और उस मूर्ति का चरणस्पर्श करती प्रतीत होती थी। हिन्दू यहाँ दर्शनार्थ आते थे तथा बहुत-सी बहुमूल्य वस्तुएँ उपहार स्वरूप चढाते थे। मन्दिर के नाम दस सहस्र गाँव थे। एक सहस्र ब्राह्मण मूर्ति की उपासना-सेवार्थ मन्दिर में निरन्तर रहते थे।

महमूद ने सोमनाथ के किले पर आक्रमण किया। निकटवर्ती राजपूत राजा महमूद से सामना करने तथा मंदिर की रक्षार्थ वहाँ एकत्रित हुए। महमूद ने दुर्ग प्रवेश का आदेश दिया। मुसलमान सैनिकों ने किले में प्रवेश करने का भरसक प्रयत्न किया परन्तु सफल न हो सके। अगले दिन भी उनका प्रयत्न सफल न हो सका। इसी बीच में गुजरात के राजा भीमदेव के नेतृत्व में और हिन्दू सेना आ गई। यह देख कर महमूद निराश हो गया। वह घोड़े से उतर पड़ा और अत्यन्त ओजस्वी भाषणों द्वारा सेना को प्रोत्साहित किया और उनसे प्रार्थना की कि इस्लाम के लिए जान की बाजी लगा दो। यदि मर गए तो शहीद होगे तथा स्वर्ग प्राप्त होगा, और यदि जीवित रहे तो गाजी कहलाओगे तथा सांसारिक ऐश्वर्य तुम्हारे कदम चूमेगा। इस भाषण ने मुस्लिम सेना में अपूर्व साहस का संचार किया। घोर युद्ध होने लगा, ५ हजार हिन्दू खेत रहे. महमूद की विजय हुई और उसने मंदिर में प्रवेश किया। ब्राह्मणों ने मंदिर की मूर्ति की रक्षार्थ असंख्य धन देना स्वीकार किया, परन्तु उसने अस्वीकार कर दिया, और कहा "मैं मूर्ति बेचने वाले के नाम से नहीं बल्कि मूर्ति तोड़ने वाले के नाम से प्रसिद्ध होना चाहता हूं।" यह कह कर उसने गदा द्वारा मूर्ति के टुकड़े २ कर दिये। मूर्ति के टुकड़े वह अपने साथ ले गया और उसका एक टुकड़ा मसजिद के सामने गिरवा दिया, जिससे कि लोग मसजिद में प्रवेश करने से पूर्व उस

पर होकर गुजरें। इस प्रकार महमूद ने हिन्दू भावनाओं को ठुकरा कर इस्लामी दुनियाँ में प्रसिद्धि प्राप्त की। वह सोमनाथ के मंदिर के चदन के किवाड तथा असंख्य धन जो मन्दिर के कोष में जमा था गजनी लिवा ले गया।

अन्हलवाड़ा पर आक्रमण :—सोमनाथ पर विजय प्राप्त करने के पश्चात महमूद ने अन्हलवाडा के राज्य पर आक्रमण किया। क्योंकि वहाँ के राजा ने सोमनाथ के युद्ध में उसके विरुद्ध सहायता की थी। राजा उस समय खन्दार नामक दुर्ग में था, जो चारों ओर से समुद्र से घिरा था। ज्वार के उतार के साथ महमूद ने समुद्र पार किया और किले को घेर लिया। जब राजा को महमूद के आगमन का पता चला तो वह किला छोडकर भाग गया। महमूद ने समस्त देश पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। उसने सब पुरुषों का वध करा दिया तथा स्त्रियों को दास बना गजनी ले जाने की आज्ञा दी।

इस प्रकार लूट-मार करता हुआ अपार धन लेकर महमूद गजनी के लिए रवाना हुआ। राजपूताने के राजपूतों से बचने के लिए उसने सिन्ध होते हुए गजनी लौटना चाहा, परन्तु यह मार्ग उसे अत्यन्त दुःखदायक प्रतीत हुआ, क्योंकि इस मार्ग का पथ-प्रदर्शक सोमनाथ के मन्दिर का पुजारी था। उसके हृदय में प्रतिशोध की अग्नि प्रज्वलित थी। इसलिए वह सुल्तान को धोखा दे ऐसे मार्ग से ले गया जिधर को उसे अधिक कष्ट उठाना पडा और बहुत से सैनिक मारे गए। सुल्तान उसकी चाल समझ गया और उसे प्राणदण्ड की आज्ञा दी। इसे ब्राह्मण ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। ज्योंही महमूद आगे बढा, जाटों ने उसकी सेना पर आक्रमण कर दिया और उसका बहुत सा सामान लूट लिया। इस प्रकार टूटी-फूटी दशा में महमूद गजनी पहुँचा। खलीफा को जब इस विजय की सूचना मिली तो उसने एक प्रशंसा-पत्र तथा एक पोशाक भेंट स्वरुप उसके लिये भेजी।

अन्तिम आक्रमण :—महमूद का अन्तिम आक्रमण १०२६ ई० में जाटों के विरुद्ध हुआ। लाहौर के पतन के पश्चात् जाट शक्ति प्राप्त कर गए थे। उन्होंने, जैसा कि पहिले उल्लेख किया गया है, सोमनाथ से लौटते हुए उसकी सेना पर आक्रमण कर उसका बहुत सा सामान लूट लिया था; महमूद ने उनको दण्ड देने के लिए गजनी से प्रस्थान किया और उनको परास्त कर गजनी लौट गया।

महमूद के कार्य :—महमूद एक प्रभावशाली शासक था। यह कोई कम बात न थी कि उसने गजनी के एक छोटे से राज्य को एक विशाल साम्राज्य में परिणत कर दिया, और वह भी केवल तलवार के बल पर। यह सत्य है कि गजनी के निकटवर्ती देशों की राजनैतिक दशा उसमें बहुत सहायक सिद्ध हुई। रूमानी वंश का पतन,

भारत में केन्द्रीय सत्ता का विनाश छोटे छोटे राज्यों की स्थापना तथा उनका पारस्परिक वैमनस्य इसकी शक्ति के हेतु पर्याप्त साधन जुटा सके। मुसलमानों की कट्टरता व धर्मान्धता तथा मनुष्य की स्वाभाविकता धनलोलुपता, जिसकी पुष्टि भारत की अतुल धनराशि करती थी उसकी सफलता में सहायक हुई। केवल सैन्य-बल तथा पशुबल से भारतवर्ष में स्थायी साम्राज्य स्थापित करना असम्भव था। इस प्रकार का प्रयत्न, जैसा कि आगामी इतिहास से पता चलेगा, सर्वथा निष्फल ही रहता है। ऐसा ही महमूद के साथ भी होता। और यदि वह ऐसा करने का प्रयत्न भी करता तो उसकी सारी प्रसिद्धि, जिससे समस्त इस्लामी ससार प्रभावित हो उठा, मिट्टी में मिल जाती। परन्तु भारतवर्ष में साम्राज्य-स्थापन उसका उद्देश्य ही न था। उसके तुर्क सरदार भारतवर्ष की गर्म जलवायु की अपेक्षा अफगानिस्तान की हरी भरी घाटियों के लिए ही अधिक लालायित रहते थे। महमूद स्वयं भारत के धन का अभिलाषी था, और जब उसको मन्दिरों तथा नगरों के लूटने से पर्याप्त मात्रा में धन प्राप्त हो जाता तो वह ग़ज़नी लौट जाता था। साम्राज्य-स्थापन का उसको लेश-मात्र भी ध्यान न था, तो भी महमूद का कार्य महान् था। प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक अनेक कठिनाइयाँ उसके मार्ग में बाधक थीं, परन्तु उनको हँसते हँसते सहन किया और जहाँ जहाँ गया विजय-श्री उसके हाथ रही। राजपूताने के वृहत् रेगिस्तान को पार कर सोमनाथ पहुँचना, तथा कठिन से कठिन स्थिति में भी धैर्य्य न खोना उसकी विलक्षण शक्ति के द्योतक हैं। भारतीय आक्रमणों में जब कभी उस पर संकट पड़ा तो उसने अत्यन्त धैर्य से उसका सामना किया। आनन्दपाल नें जब भारतीय रियासतों को सुसंगठित कर उसके आक्रमणों को स्वतंत्रता-समर का रूप दिया और खोखरों द्वारा पाँच हजार मुसलमानों को मौत के घाट उतार दिया तो भी महमूद ने धैर्य से ही काम लिया। यद्यपि निराशा और शंका का तुमुल द्वन्द उसके अन्तस्तल में उथल-पुथल मचा रहा था तथापि उसके धैर्य का ही परिणाम था कि पराजय विजय में परिवर्तित हो गई। दैवयोग से आनन्दपाल का हाथी युद्ध-स्थल से भागा और भारतीय सेना में भगदड़ मच गई जिसका पूर्ण लाभ महमूद ने उठाया। इसी प्रकार चन्देल-संघर्ष के समय तथा सोमनाथ-विजय के अवसर पर ओजस्वी भाषण देकर उसने पराजय को विजय का सुन्दर रूप दिया। यह एक सफल सेनापति के महान् गुण हैं। वह तुर्क सेना की प्रवृत्ति से भली भांति परिचित था। अतः उसने उन्हें सदैव युद्ध में व्यस्त रखा। इसलिए उसने उनकी मानवी प्रवृत्ति, जो प्रायः शान्ति के समय उन्हें विनाश की ओर अग्रसर करती है कभी जाग्रत ही न होने दी। वह एक आक्रमण की लूट मार को समाप्त भी न होने देता था कि वह दूसरे आक्रमण की तैयारी करने लगता था और तुर्क लोग फिर स्वर्ग व

ऐश्वर्य के स्वप्न देखने लगते थे। इस प्रकार निरन्तर व्यस्त रख उसने उन्हें आलोचना का अवसर ही न दिया। यह महमूद की महानता थी। भीषण नरसंहार विध्वंसकारी प्रवृत्ति तथा उसका अमानुषिक व्यवहार उसके प्रति हमारे हृदय में घृणा उत्पन्न करता है। परन्तु उसकी वीरता, सफलता और धैर्य हमें उसकी प्रशंसा करने को बाध्य करता है। भय उसे छू तक नही गया था। एक बार तुर्कों ने उसके साम्राज्य पर आक्रमण किया। महमूद ने एक साथ सब सेनापति सामना करने के लिये भेजे परन्तु सब असफल रहे। इस पर उन्होंने महमूद से प्रार्थना की कि वह स्वयं सेना का संचालन करे। महमूद ने नि.संकोच तथा निर्भय होकर सेना का नेतृत्व स्वीकार किया और विजय कर दिखलाई। यही कारण था कि वह गज़नी के छोटे राज्य को विशाल साम्राज्य बनाने में सफल सिद्ध हुआ।

महमूद का व्यक्तित्व:—महमूद यद्यपि अशिक्षित था तथापि वह साहित्य तथा कला से विशेष प्रेम करता था। वह विद्वानों का बड़ा आदर करता था और उनकी कविता तथा शिक्षा बड़े सम्मान से सुनता था। यही कारण था कि एशिया के प्रत्येक भाग से साहित्यिक तथा कलाविद् उसके दरबार में उपस्थित रहते थे। इन विद्वानों में अलबरूनी सर्व प्रसिद्ध था। वह एक महान् गणितज्ञ, दार्शनिक तथा ज्योतिषी था, संस्कृत भाषा में वह अत्यन्त पारंगत था। तारीखे-सुबुक्तगीन का रचयिता तथा महान् इतिहासकार उतबी उसके दरबार के रत्नो में से था। प्रसिद्ध कवि उजैरी इसकी सभा का भूषण था। शाहनामा का लेखक फिरदौसी इसका प्रसिद्ध राजकवि था। कहा जाता है कि सुल्तान महमूद ने उसे वचन दिया था कि यदि वह उसकी प्रशंसा में कोई अद्भुत ग्रन्थ लिखे तो वह उसको प्रति पद एक स्वर्ण दीनार प्रदान करेगा। फिरदौसी ने अथक परिश्रम के पश्चात् शाहनामा नामक ग्रन्थ प्रस्तुत किया। इसमें ६० हजार पद थे, इसलिये उसे ६० हज़ार स्वर्ण दीनार दिये जाने चाहिये थे परन्तु इतने बड़े धनको दृष्टि से ओझल होते देखकर महमूद चौंक उठा और उसने फिरदौसी को साठ हज़ार रजत दीनार देनेचाहे। जिसको कवि ने अस्वीकार कर दिया। इस घटना से फिरदौसी की आत्मा कोइतना कष्ट हुआ कि उसने सुल्तान की एक आलोचना लिखी। कुछ दिन पश्चात् महमूद को अपनी भूलपर पश्चाताप हुआ और उसने ६० हज़ार स्वर्ण दीनार, एक पोशाक फिरदौसी को भेंट स्वरूप भेजी। परन्तु जब यह भेट फिरदौसी तक पहुँची तो उसका शव ले जाया जा रहा था। भावुक कवि असह्य दुख के कारण इस असार संसार से चल बसा। यह घटना महमूद के लालच की द्योतक है जो किसी भी प्रकार मिटाई नहीं जा सकती।

वह अत्यन्त विद्या-प्रेमी था। उसने गज़नी में एक विश्वविद्यालय तथा पुस्तका-

लय की स्थापना की। उसने अनेक सुन्दर भवन भी बनवाये जो उसके कला-प्रेम के द्योतक हैं।

महमूद अत्यन्त न्यायप्रिय शासक था। वह अपनी जनता की जान व माल की रक्षा करने के लिए सदैव तत्पर रहता था और अपने निकट सम्बन्धियों को भी दन्ड देने से न हिचकता था। एक बार दुश्चरित्र होने के कारण उसने स्वयं अपने भतीजे का वध करवा डाला था। एक बुढ़िया की प्रसिद्ध कहानी, जिसमें बुढ़िया ने सुल्तान को सुदूर देशों में कुप्रबन्ध के कारण बुरा-भला कहा, प्रसिद्ध तथा प्रचलित है। इस प्रकार हम देखते हैं,कि महमूद अत्यन्त न्याय-प्रिय शासक था।

महमूद अत्यन्त लालची भी था। कहा जाता है कि उसने अपनी मृत्यु के समय अपना सारा धन अपने सामने रखवाया और उसे देखकर रोने लगा, उससे पृथक् होते हुए उसे अत्यन्त दुख हुआ। फिरदौसी को स्वर्ण दीनार के बदले रजत दीनार का एक मात्र कारण भी उसका लालच ही था। भारत के नगरों तथा मन्दिरों की लूट-मार से यही पता चलता है कि वह रुपये से कितना प्रेम करता था, परन्तु रुपये को वह व्यय करने को तैयार रहता था। गजनी के पुस्तकालयों, शिक्षालयों तथा संग्रहालयों में उसने बड़ी उदारता-पूर्वक धन व्यय किया। हो सकता है कि वह सदुपयोग में धन व्यय करने में अधिक उदार हो जाता हो और अपव्यय में उदासीन।

महमूद प्रथम श्रेणी का धर्मान्ध तथा कट्टर मुसलमान था। अपने धर्म के प्रचार के लिये वह सब कुछ करने को तैयार था। मुसलमानों के प्रति वह गाज़ी न्यायप्रिय, धर्मभीरु, उदार-हृदय सब कुछ था, परन्तु हिन्दू तथा अन्य धर्मावलम्बियों क लिये उसके हृदय में तनिक भी स्थान न था। उनको समूल नष्ट करने में वह तनिक भी संकोच नहीं करता था। हिन्दू जाति का अमानुषिक संहार, हिन्दू स्त्रियों तथा बच्चों का नारकीय दासत्व, सुन्दर से सुन्दर नगरों व मन्दिरों का विध्वंस उसकी अमानुषिक कट्टरता के ज्वलंत उदाहरण हैं। कोई निष्पक्ष इतिहासकार यह कहे बिना नहीं रह सकता कि मुसलमानों के लिये वह कुछ भी हो किंतु अन्य धर्मावलम्बियों के लिये उसका व्यवहार पूर्णतया घृणित तथा अवांछनीय था। उसके हृदय में मनुष्य जाति तथा उसकी भावनाओं के लिए कोई स्थान न था तो भी, महमूद के गुणों व दोषों को तथा उस समय को ध्यान में रखते हुये हम कह सकते हैं कि महमूद एक वीर सेनानी-न्यात-प्रिय तथा विद्या-प्रेमी सुल्तान था।

**महमूद की मृत्यु तथा उसके उत्तराधिकारी:**—महमूद गजनवी की मृत्यु १०६० ई० में हुई। उसकी मृत्यु के पश्चात् मुहम्मद गद्दी पर बैठा। परन्तु उसके

छोटे भाई मसऊद न १०३१ ई० में सेना की सहायता से उसे गद्दी से उतार दिया। मसऊद की प्रेरणा से मुहम्मद के दासों ने स्वयं उसको बन्दी बना लिया और उसकी आँखें निकलवा ली।

मसऊद वीर साहसी तथा स्पष्टवादी पुरुष था। वह इतना दानशील था कि लोग उसको खलीफा कहा करते थे। वह अत्यन्त बलवान् मनुष्य था। कहा जाता है कि कोई मनुष्य उसकी गदा को एक हाथ से नहीं उठा सकता था। मदिरा पान उसका व्यसन था।

**भारत और मसऊद :**—जिस समय मसऊद गद्दी पर बैठा उस समय गज़नी पर सलजूक तुर्कों की निगाह लगी हुई थी। अतः मसऊद को इतना समय नहीं था कि वह गजनी को छोड़कर भारत पर ध्यान दे सके। फल यह हुआ कि गजनी के भारतीय साम्राज्य का गवर्नर एक स्वतन्त्र शासक की भाँति आचरण करने लगा; और मसऊद की आज्ञाओं की अवहेलना करने लगा। जब मसऊद ने यह सुना तो वह बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने उसे फुसलाकर गजनी बुलवाया और उसको एक प्रीति-भोज में आमन्त्रित कर उसको बन्दी बना लिया। बन्दीगृह में कुछ दिन पड़े रहने के पश्चात उसको प्राण-दण्ड दे दिया गया और उसके स्थान पर नियालतगीन को गवर्नर बना दिया गया।

**नियालतगीन का बनारस पर आक्रमण :**—कुछ दिन पश्चात् नियालतगीन ने बनारस पर आक्रमण किया। महमूद गज़नवी भी इस प्रसिद्ध तथा समृद्धि-शाली नगर तक नहीं पहुँच सका था। आक्रमण सफल हुआ और नियालतगीन असंख्य द्रव्य हीरे जवाहरात लेकर तथा शासक-वर्ग से बहुत से हाथी उपहार स्वरूप प्राप्त कर वापिस आया। काज़ी शीराज नामक नगर-नियन्त्रक इस शानदार सफलता को सहन न कर सका।

**काज़ी शीराज़ तथा नियालतगीन के पारस्परिक वैमनस्य का परिणाम**—काज़ी शीराज़ ने सुल्तान गज़नी को लिखा कि नियलातगीन ने बनारस में यह झूठा प्रचार किया है कि वह सुल्तान मसऊद का पुत्र है और इससे लाभ उठा कर उसने शासक-वर्ग से बहुमूल्य भेंटें स्वीकार की है। इसके अतिरिक्त तुर्किस्तान से ७० दास मंगवाये हैं जो सुल्तान का विरोध करते हैं। गजनी के अन्य विरोधियों को भी आश्रय दे वह स्वतन्त्र होने की चेष्टा कर रहा है। काज़ी की इस सूचना के साथ ही साथ अन्य पुरुषो द्वारा बनारस विजय तथा वहां से प्राप्त धन की सूचना सुल्तान को मिली। सुल्तान उलझन में पड़ गया कि वास्तविकता क्या है। इसलिये उसने अपने उच्च सभासदो की एक सभा की और उसमे तै किया कि तिलक नामी एक नव मुसलमान को, जो भारतवर्ष का ही रहने वाला था, भारत का गवर्नर बनाया जाये।

तिलक यद्यपि निम्न श्रेणी का आदमी था। उसने १०३३ ई० में जब नियालतगीन को जब वह बनारस आक्रमण से वापिस आया तो आसानी से परास्त कर दिया परन्तु वह युद्ध-स्थल से भाग गया। तिलक ने उसका वध करने के लिए एक बड़ा पारितोषिक घोषित किया और शीघ्र ही जाटों ने उसका सिर काट कर उसके सामने प्रस्तुत किया। जब मसऊद को यह सूचना मिली तो उसके हर्ष की सीमा न रही।

**सोनीपत पर आक्रमण :**—इस सफलता से मसऊद इतना प्रोत्साहित हुआ कि वह स्वयं भारत आया और सोनीपत की ओर बढ़ा। वहाँ का राजा बिना ही लड़े भाग गया और उसका समस्त कोष मसऊद के हाथ आ गया इस प्रकार मसऊद बहुत-सा धन लेकर गजनी लौट गया।

**भारत आने में मसऊद की भारी भूल :**—भारत पर आक्रमण करना मसऊद की मूर्खता थी, क्योंकि ग़जनी राज्य पर सैलजूक तुर्क ताक लगाये बैठे थे। मसऊद की अनुपस्थिति का लाभ उठा उन्होंने गज़नी पर आक्रमण कर दिया और उसका एक भाग लूटकर ले गये। इसके अतिरिक्त उन्होंने नेशापुर तथा खुरासान पर आक्रमण कर सैलजूक वंश की स्थापना की, और वहाँ से निरन्तर गज़नी साम्राज्य पर आक्रमण करते रहे' १०४० ई० उन्होंने मसऊद को परास्त किया। इस पराजय से गजनी-साम्राज्य को बहुत धक्का लगा। और सैलजूक शक्ति खुरासान में स्थापित हो गई।

**मसऊद की मृत्यु तथा उसके उत्तराधिकारी:**—सुल्तान मसऊद पराजय से भयभीत हो अपने समस्त परिवार सहित भारतवर्ष की ओर भागा। मार्ग में उसके तुर्क तथा हिन्दू दासों ने विद्रोह कर दिया और उसको बन्दी बना कर उसके भाई मुहम्मद को, जिसकी मसऊद ने आँखें निकलवा लीं थीं तथा गद्दी से उतार दिया था—सौंप दिया, और उसे सुल्तान घोषित कर दिया। अब गजनी की गद्दी के लिए बड़ा झगड़ा होता रहा और कभी एक तो कभी दूसरा सुल्तान होता रहा। गज़नी की गद्दी महमूद तथा सैलजूक वंश के झगड़े का कारण बनी रही।

**बहराम:**—महमूद-वंशीय बहराम गजनी का अन्तिम सुल्तान था। उसने अपने भारतीय साम्रज्य को संभाला और १०४३ ई० में जब हिन्दुओं ने एक संघ बना लाहौर को घेरा तो उसने उनको परास्त किया, परन्तु गौर के सरदार के साथ उसका झगड़ा हो गया। जिसके कारण गौर अधिकारी अलाउद्दीन ने गज़नी पर आक्रमण कर उस पर अपना अधिकार कर लिया। बहराम भारत भाग आया। मार्ग में उसका देहान्त हो गया। उसके पश्चात् उसका पुत्र खुसरो मलिक ग़ज़नी के भारतीय साम्राज्य का स्वामी हुआ जब मुहम्मद गौरी ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया तब वह लाहौर में राज्य करता था।

इस प्रकार हम देखते है कि तलवार के जोर से जिस महान् साम्राज्य की स्थापना महमूद ने की थी, कुछ ही पीढियों तक चलकर अपना अस्तित्व खो बैठा। तलवार राज्य जीत सकती है किन्तु उसे स्थायी नही बना सकती महमूद के साम्राज्य का पतन इसका सदैव द्योतक रहेगा।

### प्रश्न

१. सुबुक्तगीन कौन था? उसके भारतीय आक्रमणो के विषय में तुम क्या जानते हो?
२. महमूद गजनवी ने भारत पर क्यो आक्रमण किये? उसके प्रसिद्ध आक्रमणो का वर्णन दो।
३. महमूद के व्यक्तित्व पर एक टिप्पणी लिखो।

---

## अध्याय २३

# गौर वंश

**मुहम्मद गौरी** :—गौर, गजनी और हिरात के बीच में एक छोटा-सा राज्य है। ग्यारहवी शताब्दी के अन्तिम चरण में इसने बहुत उन्नति की, जैसा कि पिछले अध्याय में उल्लेख किया गया है कि अलाउद्दीन ने गजनी पर आक्रमण कर, महमूद-वंशीय बहराम को निकाल बाहर किया। अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् (११६१) उसका पुत्र गौर की गद्दी पर बैठा, परन्तु दो वर्ष राज्य करने के पश्चात् ११६३ ई० में उसका देहान्त हो गया, और उसका चचेरा भाई गयासुद्दीन बिनसाम सुल्तान हुआ। उसने गजनी की गद्दी अपने छोटे भाई मुईज्जुद्दीन को दे दी। यही मुईज्जुद्दीन इतिहास में मुहम्मद गौरी के नाम से प्रसिद्ध है। भारत में मुसलमान साम्राज्य की स्थापना का श्रेय इसी को है।

**मुहम्मद गौरी के भारतीय आक्रमण** :—मुहम्मद गौरी को भारतीय मुसलमान रियासतो के जीतने में कोई कठिनाई नही पडी। ११७३ ई० में उसने उच्छ नामक रियासत पर आक्रमण किया और रानी को अपनी ओर मिला कर उसको जीतने में सफल हुआ। ११७४ ई० में उसने मुलतान पर अधिकार कर लिया। उच्छ और मुल्तान होता हुआ गौरी सुल्तान अन्हलवाडा पहुँचा, परन्तु वहाँ उसे परास्त होकर वापस लौटना पड़ा। इसके पश्चात् मुहम्मद गौरी ने पेशावर और

सिन्धु प्रदेश पर अधिकार कर लिया और वहाँ से बहुत-सा धन तथा लूट का सामान लेकर वापस लौट गया। अब उसका ध्यान लाहौर की ओर गया। महमूद-वंशीय खुसरो मलिक, जिसका पहले उल्लेख किया जा चुका है, वहाँ राज्य करता था। उसने वीरतापूर्वक सुल्तान का सामना किया। फल यह हुआ कि मुहम्मद गौरी ने मलिक से संधि कर ली, और स्यालकोट के किले में एक सेना छोड़ वह स्वदेश लौट गया। उसकी अनुपस्थिति में खुसरो ने कुछ सेना लेकर खोखर जाति की सहायता से स्यालकोट पर आक्रमण कर दिया, परन्तु सफल न हो सका। जब मुहम्मद को यह पता लगा तो उसने तुरन्त लाहौर पर आक्रमण कर दिया और चालाकी से ११८६ ई० में लाहौर पर विजय प्राप्त करने में सफल हुआ। खुसरो मलिक पकड़ा गया और मार डाला गया। इस प्रकार सुबुक्तगीन वंश का अन्त हो गया।

**तत्कालीन भारत की राजनैतिक स्थिति** :—मुहम्मद गौरी ने मुस्लिम भारत पर अधिकार कर लिया, किन्तु वास्तविक भारत अभी उसकी छत्रछाया मे नहीं आया था। उस पर अधिकार प्राप्त करने के लिए, उसे उन राजपूतों से लोहा लेना था, जिनके लिए युद्ध मनोविनोद की सामग्री था, तथा जो अपनी शान तथा मर्यादा की रक्षा करने के लिए अपना सब कुछ स्वाहा करने को उद्यत रहते थे, साहस तथा वीरत्व जिनकी घुट्टी मे पड़ा था परन्तु मिथ्याभिमान, पारस्परिक ईर्ष्या, असहयोग तथा वैमनस्य के कारण ऐसी वीर जाति भी अधोगति को प्राप्त हुई, और एक के पश्चात एक रियासत मुसलमान आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट हो गई तथा अन्त में समस्त भारत उनके अधिकार मे आ गया।

**पाँच प्रमुख रियासतें** :—इस समय उत्तरी भारत में पाँच प्रमुख रियासतें थी। कन्नौज, जिसमे गहरवार राजपूत राज्य करते थे, देहली तथा अजमेर जिस पर पृथ्वीराज चौहान राज्य करता था; विहार तथा बंगाल, जहाँ पाल तथा सेन वंश का राज्य था, गुजरात, जहाँ बघेला राजपूत राज्य करते थे और पाँचवे जेजक भुक्ति का चंदेल राज्य।

इनमें देहली तथा कन्नौज की रियासत अधिक प्रसिद्ध तथा शक्तिशाली थी, परन्तु पारस्परिक वैमनस्य के कारण यह किसी प्रकार भी मिल कर कार्य नहीं कर सकती थी। इस पारस्परिक मतभेद से लाभ उठाकर मुहम्मद गौरी विजय पर विजय प्राप्तकरता चला गया; और अन्त में भारतपर सर्वत्र मुसलमानी राज्य हो गया।

**तराइन का प्रथम युद्ध**:—अपनी सेना को सुसंगठित कर मुहम्मद गौरी गजनी से निकल पड़ा और सरहिन्द नामक स्थान पर अधिकार कर आगे बढ़ा। जब पृथ्वीराज को यह पता चला तो वह उसका सामना करने के लिए पंजाब की ओर बढ़ा

हम्मद गौरी के आक्रमण को उसने सार्वजनिक आपत्ति तथा भारतवर्ष का स्वातन्त्र्य ग्राम समझा। उसने समस्त राजपूत वर्ग से प्रार्थना की कि वे सामूहिक रूप में सका सामना करें। बारहवी शताब्दी के उस गये गुजरे समय में भी पृथ्वीराज की ार्थना भारतवासियो को हृदयग्राही सी प्रतीत हुई, और जयचन्द के अतिरिक्त अन्य ब राजपूत रियासतें पृथ्वीराज के झण्डे के नीचे एकत्रित हो भारत माता की रक्षा े लिए अपने प्राणो की बलि देने को उद्यत हो गई। ११६१ ई० में तराइन के दान में, जो थानश्वर से चौदह मील के अन्तर पर स्थित है, घोर युद्ध हुआ। राजपूतो ने अपूर्व साहस से गौरी की दाईं और बाईं पत्ति पर आक्रमण किया, और उसको तितर-बितर कर स्वय मुहम्मद गौरी द्वारा अनुशासित केन्द्रीय रक्षा पक्ति को भग करने में सफल हुए। राजपूत सेना ने मुहम्मद गोरी को चारो ओर से घेर लिया। ऐसे समय में सुल्तान ने पृथ्वीराज के भाई गोविन्दसहाय से स्वय द्वन्द-युद्ध कर अपनी रक्षा करनी चाही। उसने तलवार का एक हाथ गोविन्दसहाय के मारा जिससे उसके दाँत टूट गये। वीर राजपूत ने इसका बदला उसकी दाई भुजा पर वार करके चुकाया। गौरी इस सख्त वार को सहन न कर सका और अपने घोडे से गिर कर मृत्यु का आह्वान करने ही को था कि एक खिलजी सिपाही अपनी जान जोखिम में डाल कर सुल्तान को युद्ध-स्थल से दूर हटा ले जाने में सफल हुआ। परन्तु इस घटना से मुसलमान सेनाये हतोत्साहित हो गईं और युद्ध-स्थल को छोडकर भाग निकली। अनक सिपाही युद्ध में काम आये। मुहम्मद गौरी गजनी लौट गया। वहाँ उसने रण से भागने वाले सेनापतियो को कठिन दण्ड दिया और इस पराजय के प्रतिशोध की तैयारी करने लगा। राजपूतो की यह विजय प्रकट करती है कि भारत की सामूहिक शक्ति किसी भी वाह्य आक्रमणकारी को परास्त करने के लिए पर्याप्त थी। परन्तु ईर्ष्या व द्वेष उसके एक सूत्र में सगठित होने में बाधक थे।

**तराइन का दूसरा युद्ध**—पृथ्वीराज द्वारा पराजित मुहम्मद गौरी के हृदय में पराजय का काँटा खटक रहा था। उसने पृथ्वीराज से बदला लेने का दृढ सकल्प कर लिया। अत. दूसरे ही वर्ष ११६२ ई० में वह एक विशाल सेना ले भारतवर्ष पर चढ आया, तथा तराइन के मैदान में डेरा डाल दिया। पृथ्वीराज फिर हिन्दुत्व के लिए चिन्तित हो उठा। उसने अपने सम कालीन राजपूत सरदारो को एक बार पुन सगठित कर फिर भारतवर्ष की स्वतन्त्रता की रक्षा करने की प्रार्थना की। बात की बात में सैकडो राजपूत राजा फिर अपनी सेना लेकर समर भूमि में उपस्थित हुए और तीन लाख सिपाहियो तथा ३० ० हाथियो की एक विशाल सेना एकत्रित हो गई। इस बार केवल जयच द ही तटस्थ रहा। कहा जाता है कि पारस्परिक वैमनस्य के

कारण उसने स्वयं सुल्तान को पृथ्वीराज पर आक्रमण करने का निमन्त्रण भेजा था। खेद है कि हमारे मत-भेद किस सीमा तक पहुँच गए थे। हमें वैमनस्य ने इतना अन्धा बना लिया था कि हमारे अधिपति इस प्रकार के नीच कार्य करने में, जिनसे सारे देश की मान-मर्यादा तथा स्वतन्त्रता का अपहरण होता था, संकोच न करते थे।

तराइन के युद्ध-स्थल में दोनो सेनाओं में मुठभेड़ हुई। सुल्तान ने अपनी सेना के केन्द्रीय भाग को पीछे छोड़, शेष सेना को पाँच भागो में विभक्त किया और ऐसी व्यवस्था की कि चार भाग लडते रहें। और प्रत्येक भाग कुछ देर लड़ने के पश्चात् भागने का बहाना करके मैदान छोड़ भाग जाता और उसके स्थान में पाँचवाँ भाग आ जाता था। इस प्रकार धोखे से समस्त दिन हिन्दू सेनाओं को व्यस्त रख संध्या-समय सुल्तान की पूरी सेना ने भागने का बहाना किया, जिसे देखकर निश्छल धर्म-युद्ध करने वाले राजपूत सेनापतियों ने समझा कि मुसलमान भाग निकले। भागते हुए शत्रु पर हमला करना उनके युद्ध-नियम के विरुद्ध था, अतः उनमें से अधिकतर सारे दिन परिश्रम करने के पश्चात् अपने कैंम्प को लौट गये, और कुछ ने तितर-बितर दिशा में भागती हुई सेना का पीछा किया। सुल्तान, जिसने पहिले ही यह अनुमान लगा लिया था, और भागने का प्रदर्शन इसी प्रयोजन से किया था, अपनी १२ हजार सिपाहियों की सेना सहित, जो सारे दिन आराम करती रही थी, युद्ध-स्थल में कूद पड़ा; और बात की बात में खोया हुआ मैदान जीत लिया। असंख्य हिन्दू सेनानी खेत रहे। सुल्तान की चाल सफल हुई। पृथ्वीराज, जो ऐसी दशा में कर ही क्या सकता था, मैदान छोड़ कर भाग निकला, परन्तु पकड़ा गया और मार डाला गया। राजपूतों की इस पराजय ने हिन्दू राजाओं की कमर तोड़ दी। परन्तु देश-द्रोही जयचन्द को इसकी प्रसन्नता हुई। मूर्ख राजा न जानता था कि दो वर्ष पश्चात् उसकी भी यही दशा होगी। इस पराजय से भारतीय राजाओं का साहस भग्न हो गया। उनका नैतिक पतन हो गया और मुहम्मद गौरी ने आसानी के साथ सरस्वती, झाँसी इत्यादि प्रसिद्ध दुर्गों पर अधिकार कर लिया। यदि पृथ्वीराज की भाँति कोई और साहसी राजपूत राजा इस अनुभव से प्रभावित हो फिर भारतवर्ष को सुसंगठित कर चालाकी का प्रतिशोध चालाकी से करता तो भारतीय इतिहास की रूपरेखा दूसरी ही होती।

सुल्तान ने आगे बढकर अजमेर पर आक्रमण किया। उसने अनेकों मन्दिरों का विनाश किया तथा उसके स्थान पर मस्जिदें बनवाई गईं। अजमेर का राज्य एक नियमित कर पर पृथ्वीराज के लड़के को दे दिया गया। अपने भारतीय साम्राज्य को अपने विश्वस्त गुलाम कुतुबुद्दीन को सुपुर्द कर सुल्तान गजनी लौट गया। कुतुबुद्दीन ने थोड़े ही समय में मेरठ तथा दिल्ली के आस-पास के प्रदेश पर पूर्ण अधिकार कर देहली में अपनी राजधानी बनाई।

कन्नौज-विजयः—देहली और अजमेर को परास्त कर मुहम्मद गोरी ने सोचा कि जयचन्द को परास्त किये बिना भारतवर्ष में मुसलमानी साम्राज्य की आशा करना व्यर्थ है। कन्नौज उस समय भारत का सर्वशिरोमणि राज्य था, तथा कन्नौज राज्य की शक्ति सर्वोपरि समझी जाती थी। जयचन्द को भी अपनी शक्ति पर गर्व था। इसके अतिरिक्त वह आशा करता था कि मुहम्मद गोरी महमूद गजनवी की भांति लूट-मार करके वापिस लौट जायेगा और इस प्रकार पृथ्वीराज के पतन के पश्चात वह उत्तरी भारत का एकछत्र स्वामी बन जायेगा किन्तु स्वार्थान्ध जयचन्द की सारी आशायें, जिनको वह भारतवर्ष की बाजी लगाकर पूरी करना चाहता था, मिट्टी में मिल गई जब ११९४ ई० में सुल्तान एक विशाल सेना लेकर कनौज पर चढ आया। राजा जयचन्द ने पृथ्वीराज की भांति अन्य राजपूत राजाओं से सहायता की प्रार्थना भी न की। सम्भव है कि उसे सहायता की आशा न हो। चदावर के स्थान पर, जो वर्तमान फिरोजाबाद के निकट स्थित है, घोर युद्ध हुआ। जयचन्द के अजेय हाथी तथा प्रबल सेनायें परास्त हुई, और वह स्वयं एक तीर से घायल होकर नीचे गिर पडा और मार डाला गया।

विजयी सेना ने इसके पश्चात् कन्नौज कोष पर अधिकार किया, जो आसनी नामक दुर्ग में एक अत्यन्त सुरक्षित स्थान पर एकत्रित था। यह आसनी अथवा "असी' जैसा कि उतबी नामक इतिहासकार लिखता है, कनौज के दक्षिण पश्चिम में २० मील की दूरी पर स्थित था।

*बनारस पर आक्रमण*—अब सुल्तान बनारस की ओर बढ़ा। बनारस पूर्व काल से ही हिन्दुओं का पवित्र स्थान रहा है, वहां के विशाल मन्दिरों की सुन्दरता को देखकर मनुष्य की भूख भागती थी। सुल्तान ने सैंकडो मन्दिरो का विध्वस कर असख्य धन प्राप्त किया, और उनके स्थान पर बहुत सी मसजिदो का निर्माण किया। इस प्रकार का विध्वस इस्लाम के अनुयायियो का धार्मिक कृत्य था। मुसलमान समाज में इस प्रकार के कार्य करने वाला सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था। इसलिए हमें मुसलमान विजेताओं के इतिहास में ऐसे कार्यों के अनेकों उदाहरण मिलते हैं।

जब सुल्तान बनारस में ठहरा हुआ था तो बहुत से छोटे २ हिन्दू राजा उसका आधिपत्य स्वीकार करने आये। इस प्रकार कन्नौज विजय से समस्त दोआब और उनका निकटवर्ती प्रदेश उसके हाथ में आ गया। कोल अथवा वर्तमान अलीगढ को विजय करने के पश्चात सुल्तान गजनी लौट गया।

कुतुबुद्दीन की विजय.—(अजमेर) सुल्तान की अनुपस्थिति में कुतुबुद्दीन को सर्वप्रथम अजमेर राज्य में हस्तक्षेप करना पडा। तराइन के पश्चात् अजमेर राज्य एक

निश्चित कर के बदले पृथ्वीराज के पुत्र को दे दिया गया था। परन्तु हरिराज नामक पृथ्वीराज के एक कुटुम्बी ने उसे निकाल बाहर किया और स्वयं अजमेर का राजा बन बैठा। जब कुतुबुद्दीन ने यह सुना तो वह सेना लेकर अजमेर पहुँचा। हरिराज युद्ध में काम आया। अजमेर का राज्य पहिले ही राजा को दे दिया गया और उसके निरीक्षण के लिए एक मुसलमानी गवर्नर नियुक्त कर दिया गया।

अन्हलवाड़ा:—११९७ ई० में अजमेर से कुतुबुद्दीन ऐबक अन्हलवाड़े की ओर बढ़ा। वहाँ के राजा भीमदेव ने मुहम्मद गोरी को भी परास्त कर दिया था, फिर भी ऐबक ने उस पर आक्रमण करने का साहस किया। भीमदेव परास्त हुआ, और ऐबक बहुत-सा माल, २० हजार दास-दासियाँ तथा २०० हाथी लेकर वापस लौटा।

इसके पश्चात् ऐबक ने शीघ्र ही ग्वालियर, बियाना इत्यादि पर अधिकार कर लिया।

बिहार-विजय:—बंगाल व बिहार-विजय भारतवर्ष के इतिहास की आश्चर्य-जनक घटनायें हैं। ११९७ ई० में गोरी का एक सेनापति जिसका नाम मुहम्मद बिन-बख्तियार था, २०० अश्वारोही लेकर बिहार विजय के लिए निकल पड़ा, और एक के बाद एक दुर्ग विजय करता हुआ चला गया। बिहार उस समय पाल-वंशीय राजाओं के अधिकार में था। बुद्ध धर्म वहाँ अपनी पतित अवस्था में अब भी वर्तमान था। बौद्ध-विहार साधु-संन्यासियों से, जो अपने कार्य को भूलकर विषय-वासनाओं और धनलोलुपता के शिकार हो चुके थे, भरा पड़ा था। यही कारण था कि जब उत्तरी भारत को विजय करने के लिए मुसलमानों को असंख्य वीरों की बलि देनी पड़ी, वहाँ बिहार प्रान्त केवल मुट्ठी-भर सिपाहियों ने जीत लिया। बुद्ध-विहारों को नष्ट कर दिया गया। असंख्य भिक्षुक, भिक्षुकायें मौत के घाट उतार दिये गये। बौद्धों के पुस्तकालय जलाकर खाक कर दिये गये। इस प्रकार भारतीय-ज्ञान की अमूल्य निधि स्वाहा हो गई। बिहार-विजय करने के पश्चात् असंख्य धन लेकर मुहम्मद-बिन-बख्तियार कुतुबुद्दीन की सेना में उपस्थित हुआ, ऐबक उनसे अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसे एक पोशाक उपहार-स्वरूप भेंट की।

बंगाल विजय:—इस विजय के पश्चात ११९९ ई० में बिहार का विजेता मुहम्मद-बिन-बख्तियार बंगाल विजय के लिए निकल पड़ा। अपनी सेना को पीछे छोड़, जिसकी संख्या अधिक न थी, मुहम्मद-बिन-बख्तियार केवल १२ अश्वारोहियों के साथ बंगाल की राजधानी में पहुँचा। इतनी कम सेना तथा रण-सामग्री के साथ प्रान्तों की विजय के लिए चल देना भारत की आन्तरिक कमजोरी का द्योतक है। इसका उसको

पहिले ज्ञान हो चुका था कि बगाल और बिहार में केवल जाने मात्र की देर है अन्यथा उसकी विजय में कोई बाधा नही, नही तो कैसे सम्भव था कि मुहम्मद गौरी लाखो वीरो की सेना से भारत पर आक्रमण करके भी अपनी चाल से सफल हो तथा उसके दो विशाल प्रान्तो में से एक पर २०० सैनिको और दूसरे पर केवल १२ सैनिको द्वारा उसके दास का दास विजय प्राप्त कर सके। नदिया नगर अर्थात् राजधानी में प्रवेश करने पर लोगो ने उन्हें घोडो के व्यापारी समझा, इसलिए मार्ग में किसी ने कुछ न कहा, परन्तु जब राजभवन के द्वार पर जाकर उन्होने मार-काट आरम्भ की तो उनका रहस्य भी खुल गया। सैन वशीय राजा लक्ष्मण सैन उस समय खाना खा रहा था, जब उसने घायलो की चीत्कार सुनी और वास्तविक घटना का पता चला, तो उसके होश उड गये। उससे कुछ न बन पडा, और महल के पिछले द्वार से भाग निकला। मुहम्मद बिन-बख्तियार ने राज-कोष पर अपना अधिकार कर लिया। रानिया, दासियाँ सेवक इत्यादि बन्दी बना लिये गये। राजा भाग कर ढाका पहुँचा। वहाँ उसके वशज बहुत दिन तक राज्य करते रहे।

बख्तियार ने नदिया को पूर्णतया नष्ट कर डाला, और लखनौती तथा गौड को अपनी राजधानी बनाया। उसने समस्त प्रदेश पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया, तथा मुस्लिम पद्धति के अनुसार शासनकार्य प्रारम्भ कर दिया। उसने मुहम्मद गौरी के नाम का खुतबा पढवाया और उसका सिक्का प्रचलित कर दिया। इसके अतिरिक्त मुसलमानो, विद्वानो तथा धार्मिक पुरुषो के लिये कालिजो तथा मठो की स्थापना भी कर दी।

बगाल पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् मुहम्मद बिन-बख्तियार ने पर्वतीय मार्ग से तिब्बत पर भी आक्रमण किया परन्तु सफलता प्राप्त न हुई।

**कालिंजर विजय:**—१२०२ ई० में चन्देल साम्राज्य के प्रसिद्ध किले कालिंजर पर आक्रमण किया गया, चन्देल-वशीय राजा परमाल आसानी से परास्त हुआ। नगर को लूट कर तथा मन्दिरो को नष्ट-भ्रष्ट करके ऐबक महोबा की ओर बढा। उस पर अधिकार प्राप्त कर उसने कालपी तथा बदायू के दुर्ग भी जीत कर अपने अधिकार में कर लिये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक के पश्चात् दूसरे हिन्दू राज्य मुस्लिम साम्राज्य में विलीन होते गये। समस्त उत्तरी भारत पर उनका सुदृढ राज्य स्थापित हो गया। बिहार तथा बगाल की घटनाएँ, भारत की आन्तरिक क्षीणता, पारस्परिक ईर्ष्या तथा वैमनस्य की पराकाष्ठा की प्रतीक हैं।

**साम्राज्य में खलबली**—मुहम्मद गौरी अपने भारतीय साम्राज्य ही से सन्तुष्ट न हुआ। उसने पश्चिम की ओर भी अपना साम्राज्य बढाने का विचार किया।

१२०४ ई० में एक विशाल सेना ले उसने खिवारिज्म पर आक्रमण किया, परन्तु खिवारिज्म के बादशाह ने खुरासान की सहायता से गौरी को पूर्णतया परास्त किया। इस पराजय से सम्पूर्ण गजनी-साम्राज्य में खलबली मच गई। गजनी के एक पदाधिकारी ने भारतवर्ष जाकर सेना को एक जाली पत्र दिखाकर अपने आपको मुल्तान का गवर्नर घोषित किया। ताजउद्दीन यलदज नामक मुहम्मद गौरी के दास ने गजनी पर अधिकार कर लिया और नगर के द्वार बन्द कर सुल्तान को अन्दर प्रवेश करने से रोक दिया। पंजाब में खोखर जाति ने विद्रोह कर दिया। ऐसे समय में सुल्तान ने धैर्य तथा साहस से काम लिया। उसने पहले गजनी और मुल्तान को सम्भाला और फिर क़ुतुबुद्दीन को साथ ले खोखरों का पीछा किया। झेलम नदी के किनारे वे पूर्णतया परास्त हुए। उसके पश्चात् सुल्तान लाहौर लौट आया। खोखर यद्यपि परास्त हो गये, परन्तु प्रतिकार के अणु उनके हृदय में विद्यमान रहे। उन्होंने सुल्तान के प्राण लेने का षड्यन्त्र किया और १२०६ ई० में गजनी को जाते हुए जब सुल्तान 'धाम्मक' नामक स्थान पर ठहरा तब एक खोखर ने छुरा भोंक कर उसे मार डाला।

**मुहम्मद गौरी का व्यक्तित्व :**—तबकाते नासिरी का लेखक हाफ़िज मिनहाज, मुहम्मद गौरी के साहित्य तथा विद्या-प्रेम की बहुत प्रशंसा करता है। फरिश्ता लिखता है कि वह विद्वानों का बहुत आदर करता था। यदि हम मुहम्मद गौरी और महमूद गजनवी की तुलना करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महमूद प्रथम श्रेणी का धर्मान्ध था, जब कि मुहम्मद गौरी एक राजनीतिज्ञ था। उसने देख लिया था कि भारतवर्ष अधोगति को प्राप्त है; अतः आरम्भ से ही उसने इस पर दृष्टि रखी। फल यह हुआ कि समस्त भारत पर मुस्लिम साम्राज्य स्थापित करने में सफल हुआ।

धर्मान्ध व अर्थान्ध महमूद ने इस पर ध्यान तक न दिया, वह एक भीषण प्रलयंकारी बवंडर की भाँति आया और चला गया, और लाखों मनुष्यों को मौत के घाट उतार गया; अबलाओं तथा अनाथ बालकों को बुरी तरह सताता गया। एक विशाल प्रदेश के सहस्रों नगरों को विध्वंस कर, अपार धन लेकर तथा एक जाति की भावनाओं को कुचल कर चला गया। उसने कोई स्थायी कार्य न किया। महमूद भारतीय इतिहास में एक क्रूर, धर्मान्ध के नाम से याद किया जायेगा। जब कि मुहम्मद गौरी को एक विजेता के नाम से पुकारा जावेगा। जिसका ध्येय एक देश में राजनैतिक व्यवस्था स्थापित करना था। इसमें सन्देह नहीं कि वह पुराने सम्राटों की भाँति साम्राज्य-लिप्सा रखता था और इसलिए इतने विशाल साम्राज्य से सन्तुष्ट न हो, उसने पश्चिम की ओर बढ़ना चाहा परन्तु सफल न हो सका।

महमूद ने भारतवर्ष की वास्तविक शक्ति अर्थात राजपूत वर्ग से कभी टक्कर न ली। सम्भव था कि यदि वह यह प्रयत्न करता तो पराजित हो अपनी ख्याति को नष्ट कर देता। अपने आक्रमणों मे भी वह ऐसे मार्ग से जाता था कि उनसे टक्कर न लेनी पडे, सोमनाथ जाने के लिए उसने राजपूताने से इसीलिए बचना चाहा। मुहम्मद गौरी ने आरम्भ में ही उस शक्ति से लोहा लिया और डट कर उनका सामना किया तथा जय-श्री का वरण किया।

उसकी मृत्यु के पश्चात् गजनी-साम्राज्य पतन की ओर चल दिया। सुल्तान के कोई पुत्र न था, जो उसके राज्य को संभालता। इसलिए भारतीय साम्राज्य के लिए अमीरो ने कुतुबुद्दीन ऐवक को सुल्तान चुन लिया।

**भारत में मुसलमानों की सफलता के कारण :**—भारतवर्ष के इतिहास का राजपूत काल बारहवी, तेरहवी शताब्दी में अर्थात् मुसलमान-विजय के समय समाप्त हो जाता है। तीन, चार हजार वर्ष से हिन्दू सभ्यता स्वतन्त्रतापूर्वक विकसित होती रही थी, औरचारो ओर देश-देशान्तर में फैल रही थी। विदेशी आगन्तुको को हिन्दू बना रही थी। उनका सम्पर्क दूसरी सभ्यताओ से हुआ, उनका प्रभाव भी उस पर पड़ा, परंतु वह अपने ही निराले मार्ग पर चलती रही। विदेशी आक्रमणकारियो के सामने कभी-कभी उसे सिर झुकाना पडा, पर थोडे ही दिनो में या तो उसने इन विदेशी आक्रमण-कारियो—उदाहरणार्थ ग्रीक, हूण और अरब लोगो को भारत से निकाल दिया; या सिथियन, यूची, कुशान आदि की तरह उन्हें अपने में पूर्णतया विलीन कर लिया। हिन्दू-धर्म, भाषा, साहित्य, रीति-रिवाज, कला, साहित्य और विज्ञान की अमिट छाप उन पर शीघ्र ही लग गई और यद्यपि हिन्दू वर्ण व्यवस्था के कारण वे हिन्दू समाज के विभिन्न समुदायों में पूर्णतया नही मिल पाये; तो भी पुराने समुदायो की भाँति वे भी एक नई जाति या उपजाति बनकर हिन्दू-समुदाय का ही एक अंग हो गए।

बारहवी, तेरहवी शताब्दी में हिन्दू सभ्यता का सम्पर्क पश्चिमी एशिया की प्रबल मुसलमान जाति से हुआ। जिसमे मुहम्मद साहब ने इतना जोश भरा था कि ईरान, ग्रीस, स्पेन, हिन्दुस्तान, चीन आदि किसी देश की सभ्यता भी उन्हें अपने में न मिला सकी। खुदा की एकता, मुहम्मद की पैगम्बरी, कुरान की सचाई बहिश्त व दोजख के ऐसे स्पष्ट व कडे सिद्धान्त लेकर वह अवतरित हुई कि किसी भी सभ्यता को उनका मुकाबला करना तथा उसे अपने में विलीन करना असम्भव हो गया।

मुस्लिम मतावलम्बियो की धर्मान्धता, कट्टरता और उनकी अन्य धर्मों के प्रति पाषाण-हृदयता इस बात की द्योतक है कि उनके पैगम्बरो ने अनुयायियो को तर्कना शक्ति से काम लेने का आभास तक भी नही दिया था। इसी कारण से वे अपनी

अनोखी सभ्यता लिए हुए चारों ओर रातदिन राजनैतिक प्रभुता प्राप्त करते हुए चले गए। उनकी इस सफलता का विश्लेषण करने के लिए हमे सर्वप्रथम भारतीय इतिहास की एक विशेषता पर दृष्टि डालनी आवश्यक है। हमारा राजनैतिक इतिहास संयोजक तथा विभाजक शक्तियों के द्वन्द्व से परिपूर्ण पड़ा है। जब संयोजक शक्तियां अधिक प्रबल हुई तब मौर्य, गुप्त, वर्धन इत्यादि साम्राज्य बने। केन्द्रीय सत्ता स्थापित हुई तथा भारत सशक्त तथा सबल हुआ, परन्तु जब विभाजक शक्तियो ने जोर पकड़ा तब देश छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्यों में बंट गया। कोई केन्द्रीय शक्ति न रही जो देश की सामूहिक शक्ति का प्रतीक होती। आठवी सदी के पश्चात ये शक्तियाँ इतनी प्रबल हो उठी कि समस्त देश सैकड़ों छोटे छोटे राज्यो में विभक्त हो गया, जिससे भारतीय एकता का भाव बिल्कुल मिट गया। एक भारत सैकडो तथा हजारों उपभागों में परिवर्तित हो गया और एक उपभाग दूसरे उपभाग से कोई सम्बन्ध न रखता था। यदि उसका एक भाग चौहान राज्य है तो उसका दूसरा भाग जिस पर गहरवार वंश का आधिपत्य हैं पहिले भाग से कोई भी पारस्परिक सम्बन्ध न रखता था। पंजाब, सिंध अथवा देहली या अजमेर पर आक्रमण उन नरेशों की दृष्टि में भारत पर आक्रमण न था, जिसका सामना करना सबका सामूहिक कर्तव्य हो वरन् यह एक ऐसे स्वतंत्र देश पर था जिसका उनके राज्यो से कोई सम्बन्ध न हो और जिसके पतन से, उसके समीपवर्ती अन्य भागों का कोई भी लाभ अथवा हानि न हो। इस प्रकार राष्ट्रीय-भाव ही नही वरन् सम्भवत: उनमें धार्मिक तथा सामाजिक एकता के भाव भी नही रह गये थे, उनमें मत-मतान्तर के भाव थे, वर्णों के भाव थे, जातियों के भाव थे, उपजातियों के भाव थे तथा उसकी भी शाखाओं के भाव थे; पर हिन्दुत्व के भाव न थे, एक समाज अथवा राष्ट्रीयता के भाव न थे। विभाजक शक्तियों की यह पराकाष्ठा इस सीमा तक पहुँच गई थी कि एक का पतन दूसरे का मनोरंजन था। आपसी ईर्ष्या, वैमनस्य, जो छोटी रियासतो में दैनिक सम्पर्क से और भी अधिक हो जाती है इतनी बढ़ चुकी थी कि कोई भी किसी शक्ति को श्रेष्ठ मान कर उसका नेतृत्व स्वीकार कर सामूहिक रूप में किसी विदेशी आक्रमणकारी का सामना करने को तैयार न था। इसके विपरीत मुसलमान जनता इस्लाम के बन्धुत्व सूत्र में सुदृढ़ रूप से बंधी थी, जिसमें मनुष्य-भेद, जाति-भेद अथवा वर्ग-भेद न था। सामूहिक रोज़ा नमाज़ अथवा सामूहिक खान-पान द्वारा उनमें मुस्लिम ऐक्यवाद इतना दृढ़ बना दिया गया था कि उनमें एक का मरण, सबका मरण, तथा एक का जीवन, सब का जीवन था। ऐसी दशा मे भारत मुसलमान आक्रमणकारियो के सामने कैसे ठहर सकता था।

राजपूतों में अनुशासन का सर्वथा अभाव था। प्रत्येक वर्ग को अपनी वीरता तथा श्रेष्ठता का इतना गर्व था कि यह अन्य वर्गों को अपमानित तथा तुच्छ दृष्टि से देखता था अत किसी प्रकार भी अन्य किसी वर्ग का नेतृत्व स्वीकार करने को तैयार न था। प्रथम तो पारस्परिक वैमनस्य ईर्ष्या तथा द्वेष के कारण विभिन्न रियासते सामूहिक रूप में सकलित हो किसी आक्रमणकारी का सामना करने को तैयार न थी। यदि किसी समय पंच बद्ध हो युद्ध-स्थल में एकत्रित भी हो गई तो किसी के नेतृत्व में एक योजनानुसार युद्ध करने के लिये तैयार न होती थी। "अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग; वाली बात थी। मुसलमानो का अनुशासन, सगठन तथा अविरल उत्साह इसके विपरीत अद्वितीय था। अपने सेनाध्यक्ष की आज्ञा पर प्रत्येक मुसलमान सैनिक प्राणार्पण करने को तत्पर था। यही कारण था कि मुट्ठी-भर मुसलमान अपने से कई-गुनी हिन्दू सेना पर विजय प्राप्त करने में सफल हो जाते थे।

मुसलमानो की धार्मिक-कट्टरता भी उनकी विजय में सहायक थी। उनका धर्म उन्हें शिक्षा देता था कि विधर्मियो के सामने एक हो जाओ, और उन्हे समझा-बुझा कर अथवा तलवार के बल पर मुसलमान धर्म ग्रहण करने के लिये बाध्य कर दो। उस कार्य में यदि तुम वीर-गति को प्राप्त हुए तो शहीद कहलाओगे और स्वर्ग तथा उसका तमाम ऐश्वर्य तुम्हारे अधिकार में होगा, और यदि हिन्दुओ या अन्य धर्मावलम्बियो को मौत के घाट उतारने अथवा अपनी वीरता के बल पर इस्लाम ग्रहण कराने में सफल हुए तो गाजी कहलाओगे और सासारिक ख्याति तथा ऐश्वर्य के पात्र बनोगे। ऐहलौकिक तथा पारलौकिक सुख के यह स्वर्ण स्वप्न कुछ इतने स्पष्ट, आकर्षक एव ओजस्वी भाषा में मुसलमानो के सामने रखे गये कि उच्च से उच्च कोटि का विद्वान् मुसलमान भी इसकी वास्तविकता पर अटल विश्वास कर उसकी प्राप्ति का इच्छुक हो उठा। इस उद्देश्य से प्रेरित हो मुसलमान भारत पर आक्रमण करने आये जिसकी पूर्ति के लिये उनमें से प्रत्येक अपूर्व स्फूर्ति, धर्य तथा बलिदान करने को तत्पर रहने लगा। हिन्दुओ में इस प्रकार की कोई भावना न थी। बन्धुत्व की भावना का ह्रास पहिले ही हो चुका था। विभाजक शक्ति ने राष्ट्रीयता का पूर्णतया सकुचन कर देश तथा धर्म पर बलिदान की भावना को पूर्णतया ठेस पहुँचाई थी। वर्ग या जाति-सम्मान के अतिरिक्त और कोई उत्तेजक शक्ति उन्हें प्रोत्साहन देने के लिये न थी और यह मुट्ठी भर शासक-वर्ग के ही लोगो तक सीमित हो सकती थी। अत उस प्रदेश की अन्य जनता अधिकतर इन सघर्षों की ओर उदासीन रहती थी। उनके प्रति मुसलमान या हिन्दुओ की जीत केवल स्वामी का परिवतन या जिससे उसे सरोकार न था। जो कोई भी स्वामी होगा उसकी सेवा करना, उसे कर देना, वह अपना कर्तव्य समझे बैठे थे।

हिन्दुओं की वर्णव्यवस्था भी जो केवल सामयिक सत्य थी, उनकी असफलता का कारण हुई। जन्म से ही एक जाति का राजनीति, देश-रक्षा तथा युद्ध-कला के लिये निर्वाचित होना, और अन्य वर्ग का-चाहे उनमें कोई कितना ही श्रेष्ठ योद्धा तथा राजनीतिज्ञ क्यों न हो-वंचित हो जाने में सार्वजनिक उदासीनता प्रगट करता है ऐसी दशा में देश के आने-जाने से उन्हें क्या प्रेम तथा क्षोभ होता। इस प्रकार हिन्दू समाज की व्यवस्था, जो समय की मांग से कई शताब्दी पीछे रह गई थी, उसके लिये विशेष घातक हुई। जब उसे एक ऐसी जाति से सामना करना पड़ा, जिसमें भंगी के कार्य करने वाले से लेकर न्यायाधीश तक कार्य करने वाला, तलवार चलाने, विधर्मियों का खून करने अथवा उनसे युद्ध कर शहीद होने में अपना गर्व समझता था।

हिन्दुओं की युद्ध-कला भी समय के साथ अपनी प्रगति स्थिर न रख सकी। वह अनुभव पर अनुभव प्राप्त करने पर भी हाथियों को सेना का महत्त्वपूर्ण विभाग समझते रहे। यद्यपि सिकन्दर के आक्रमण के समय अन्य अनेकों युद्ध-स्थलों में हाथी ही उनकी पराजय का मुख्य कारण हुए थे, तो भी रूढ़िवादी हिन्दू सेनानी अपनी प्राचीन युद्ध-प्रणाली से इतने चिपटे हुए थे कि किसी प्रकार भी उसे छोड़ने को तैयार नहीं थे। चाहे वह सर्वनाश ही क्यों न कर बठें जैसा कि वास्तव में हुआ। जब कि भारत के समीपवर्ती मुसलमान देश अश्व सेना की विद्युतगति द्वारा एक ही प्रयास में युद्ध-स्थल में अधिकार करने का सफल-प्रयोग कर रण-कुशलता में कई पग आगे बढ़ चुके थे। उस समय रूढ़िवादी हिन्दू अपने हाथियों पर विश्वास किये बैठे थे और सैन्य-कला में कोई परिवर्तन करने को तैयार न थे। हिन्दुओं का यह रूढ़िवाद तथा उसके मानवी युद्ध नियम जिनमें छल छिद्र का कोई स्थान न था उनके पतन का प्रमुख कारण हुआ। राजपूत पराक्रम, साहस तथा वीरता में संसार में अपनी समानता नहीं रखते थे, परन्तु सिद्ध हस्त युद्ध-कला के सामने यह वीरता किसी प्रकार सफलता नहीं देख सकती जैसा कि लाठी चलाने वाली एक सहस्र सेना बन्दूक वाले के सामने नहीं ठहर सकती।

मुसलमानों की एक बहुत बड़ी शक्ति उनके अद्वितीय भर्ती-क्षेत्र में निहित थी। अफगानिस्तान तथा उसके निकटवर्ती मुसलमान प्रदेश मुसलमान सेना को असंख्य सैनिक देने पर भी रिक्त न होनेवाले स्रोत थे इस प्रकार मुसलमानों के पास किसी प्रकार सफल सैनिकों की कमी न हो सकती थी। यही कारण था कि महमूद गजनवी तथा मुहम्मद गौरी को कभी सैनिक भर्ती करने के लिये पराक्रमी तथा वीर सिपाहियों की कमी न हुई। उनके प्रत्येक आक्रमण में असंख्य सैनिक मृत्यु को प्राप्त होते थे, परन्तु वह क्षति उनके लिये अधीरता तथा निराशा का कारण न हो सकती

थी, क्योंकि क्षति-पूर्ति करने वालो में धन, ऐश्वर्य तथा धार्मिक-ख्याति प्राप्ति की इच्छा इतनी प्रबल थी कि वह इन धर्म-युद्धो में एक की जगह दस सम्मिलित होने को तैयार रहते थे और इसे अपना सौभाग्य समझते थे कि उन्हें इसमें सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त हो। इसके विपरीत हिन्दुओ का भर्ती-क्षेत्र अत्यन्त सकुचित तथा सीमित था। एक छोटी-सी रियासत और उसमें भी वह वर्ग-विशेष अर्थात् केवल क्षत्रिय किस प्रकार निरन्तर सघर्ष द्वारा वीरगति को प्राप्त होने वाले सेनानियो की कमी को पूरा कर सकते थे। जब कोई विशाल सेना एक बार पराजय को प्राप्त हुई है तब भारतीय सैन्य सचालको के सामने यह समस्या अपने उग्र रूप में उपस्थित हुई और वह उसको हल करने में सर्वथा असफल रहे हैं। राणा सागा, राणा प्रतापसिंह तथा पानीपत के तृतीय युद्ध के पश्चात मरहठो के सामने इसी प्रकार की समस्या उपस्थित हुई। हिन्दुओं की यह दुर्बलता उनके विनाश का विशेष कारण हुई।

मुसलमान समाज-व्यवस्था, जिसमें प्रत्येक मुसलमान को सैन्य-क्षेत्र में प्रवेश कर उन्नत होने का अधिकार था, लोगों को विशेष प्रोत्साहन-वर्धक सिद्ध हुई। इसने हर एक महत्वाकाक्षी मनुष्य में योग्यता तथा साहस दिखाने और इस प्रकार उन्नत होने के लिये रूह फूंक दी। यहा तक कि उनके दास भी सैनिक उन्नति के लिये लालायित रहने लगे। किसी से रक्त सम्बन्ध न होने के कारण उन्होने अपनी योग्यता प्रदर्शन ही अपनी सफलता की कुंजी समझ ली। फलस्वरूप दासो में अद्वितीय योद्धा तथा पराक्रमी मनुष्य हुए, जिनकी स्वतन्त्र मुसलमान समता न कर सके। कुतुबुद्दीन, इल्तुमिश, बलबन इन्ही में हुए। क्योंकि उस समय के बादशाह अनेक दास रखते थे, इसीलिये यह दास, जो बादशाह को सब प्रकार अपना आधार मानते थे, उनकी बहुत बडी शक्ति हो गये। भारतीय शासको में इस प्रकार की सगठित तथा समुचित शक्ति प्राप्त करने का कोई साधन न था। फल यह हुआ कि वह मुसलमान विजेताओ के सामने न ठहर सके।

कहने का तात्पर्य यह है कि जब मुसलमान भारत में आये, तब उन्हें यहाँ की जनता अस्त-व्यस्त मिली, छोटे छोटे राज्यो में देश विभक्त मिला, यहाँ उन्हें पारस्परिक द्वेष और ईर्ष्या पराकाष्ठा पर पहुँची मिली। समय के प्रतिकूल वर्ण-व्यवस्था मिली फल यह हुआ कि हिन्दुओ में अदम्य साहस तथा सराहनीय शौर्य के होते हुये भी मुसलमान सफल रहे।

## प्रश्न

१—मुहम्मदगौरी ने किस प्रकार भारत में मुसलमान राज्य की स्थापना की।

२—बिहार और बगाल किस प्रकार मुसलमान राज्य में सम्मिलित हुये—

३—मुहम्मद गौरी और महमूद गजनवी के चरित्र की तुलना करो—
४—भारत में मुसलमानों की सफलता के क्या कारण थे ?

———

## अध्याय २४

# "दास वंश"

**कुतुबुद्दीन ऐबक** :—कुतुबुद्दीन आरम्भ में मुहम्मद गौरी का एक दास था, वह वंश, जिसका वह प्रथम सुल्तान था, गुलाम वंश के नाम से प्रसिद्ध है, क्योंकि इस वंश के सब सुल्तान या तो स्वयं दास थे या दासों की सन्तान थे। नेशापुर के मुख्य काजी ने इसे तुर्की सौदागरों से खरीदा और अपने बच्चो के साथ उसका पालन-पोषण किया। उनके साथ उसने कुरान पढ़ी तथा घुडसवारी और तीर चलाने में दक्षता प्राप्त की। शीघ्र ही वह अपने साहस और वीरता के लिये प्रसिद्ध हो गया। काजी की मृत्यु के बाद उसके पुत्रो ने उसे एक व्यापारी के हाथ बेच दिया। उस व्यापारी से उसे मुहम्मद गौरी ने खरीद लिया। उसकी आकृति अच्छी न थी, किन्तु अपनी योग्यता तथा प्रशंसनीय गुणों के कारण वह दिनोदिन उन्नति करता गया। बहुत दिन तक वह गौरी के अस्तबल का अध्यक्ष रहा। स्वामि-भक्ति उसका विशेष गुण था। अपने जीवन पर्यन्त उसने अपने स्वामी की इस योग्यता से सेवा की कि वह भारतवर्ष का वाइसराय बना दिया गया और मुहम्मद गौरी की मृत्यु के पश्चात् वहाँ का सुल्तान घोषित हुआ। गद्दी पर बैठने के पश्चात उसने मुहम्मद गौरी के उत्तराधिकारियों से मुक्ति-पत्र प्राप्त कर अपनी स्थिति को दृढ़ बनाया, क्योंकि मुसलमान-सिद्धान्तानुसार केवल स्वतन्त्र नागरिक ही गद्दी का अधिकारी हो सकता था। मुहम्मद गौरी के प्रभावशाली पदाधिकारियों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर उसने अपने आपको और भी सुरक्षित कर लिया। अपनी पुत्री का निकाह उसने ताजउद्दीन से और अपनी बहिन का नासिरउद्दीन कुबैचा से तथा अपनी दूसरी पुत्री का विवाह अपने ही एक दास इल्तुतमिश से कर दिया।

अब केवल हिन्दुओं का भय रह गया। दोआब के हिन्दू यद्यपि परास्त हो चुके थे, तो भी वे निरन्तर स्वाधीनता का प्रयत्न करते रहते थे। उन्हें शान्त तथा सन्तुष्ट रखने के लिए कुतुबुद्दीन ने नीति-कुशलता से कार्य किया। भारत का २० वर्ष का अनुभव तथा उसकी ख्याति, जो उसने भारतीय युद्ध-स्थानों में प्राप्त की थी बड़ी

सहायक सिद्ध हुई। इसके अतिरिक्त उसने अपने व्यवहार से हिन्दू-वर्ग को सन्तुष्ट रखा। सत्य है कि उनसे जजिया लिया जाता था, किन्तु उन्हें सामाजिक तथा धार्मिक स्वतन्त्रता थी।

१२१० ई० में लाहौर में पोलो खेलते समय घोड़े से गिर कर उसका देहान्त हो गया। दास-पद से राज्य-पद प्राप्त करना उसकी योग्यता का प्रमाण है। मुसलमान इतिहासकार उसके गुणों की प्रशंसा करते हुए उसकी दान-शीलता को विशेष महत्व देते हैं और उसे लाखबख्श की उपाधि से विभूषित करते हैं।
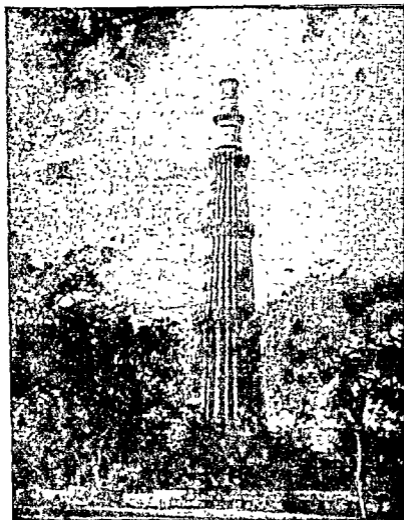
(कुतुब मीनार देहली)

कुतुबुद्दीन को इमारतें बनवाने का भी बड़ा शौक था। भारतवर्ष में निरन्तर संघर्ष ने उसे इस ओर अधिक ध्यान देने का अवसर नहीं दिया, तो भी देहली में उसने एक विशाल जामा मस्जिद बनवाई; वर्तमान कुतुबुमीनार, जिसका नाम "ख्वाजा कु बुद्दीन" नामक एक सन्त के नाम पर रक्खा गया है, जिसकी समाधि इसके निकट ही है, उसी ने आरम्भ की।

कुतुबुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् लाहौर में ही उसका पुत्र आरामशाह सुल्तान घोषित कर दिया गया, परन्तु उसकी अयोग्यता से सब परिचित थे, इसलिये प्रभावशाली अमीरों के एक दल की सहायता से शमसउद्दीन इल्तुतमिश नामक कुतुबुद्दीन के दास तथा दामाद ने देहली पर अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न किया। आरामशाह उसका सामना करने के लिये देहली आया, परन्तु नगर के बाहर ही परास्त हुआ और भाग गया। इस प्रकार इल्तुतमिश देहली की गद्दी पर बैठा।

# शमसउद्दीन इल्तुतमिश [ १२१०-१२३६ ई० ]

शमसउद्दीन इल्तुतमिश की योग्यता :—शमसउद्दीन इल्तुतमिश, जो १२१० ई० में देहली की गद्दी पर बैठा, गुलाम वंश का सब से प्रभावशाली बादशाह था। कुतुबुद्दीन का दास होने के कारण वह एक दास का भी दास था। और अपनी योग्यता के कारण इस उच्च पद पर पहुँचा। गद्दी के लिये योग्यता के अतिरिक्त उसका और कोई अधिकार नहीं था; क्योंकि मुस्लिम सिद्धान्तानुसार प्रत्येक व्यक्ति यदि योग्य है, बादशाह चुना जा सकता है। अतः उसने अपने को गद्दी का उत्तराधिकारी समझ अपनी शक्ति से देहली की गद्दी पर अधिकार प्राप्त कर लिया; परन्तु उसके सामने बहुत-सी कठिनाइयाँ थी।

शमशउद्दीन के सम्मुख कठिनाइयाँ :—सर्वप्रथम इलदुज तथा नासिरुद्दीन कुबैंचा जैसे अन्य प्रभावशाली दास राज्य प्राप्त करने के उत्सुक थे; और प्रतिक्षण इसके लिये प्रयत्नशील रहते थे। दूसरे, मुहम्मद गौरी तथा कुतुबुद्दीन के अमीर इल्तुतमिश की इस अनाधिकार चेष्टा से असन्तुष्ट थे। क्योंकि वह समझते थे कि कुतुबुद्दीन के वंशज ही गद्दी के अधिकारी हैं।

तीसरे भारतवर्ष जैसे रूढिवादी देश में जहाँ मर्यादा तथा जातिवाद इतना गहरा बैठ चुका था। एक दास के दास का बादशाह होना अत्यन्त अपमानजनक प्रतीत होता था। राजपूत वर्ग प्रथम तो किसी भी मुसलमान को और विशेषतया ऐसे निम्न श्रेणी के व्यक्ति को अपना सम्राट् मानने के लिये तैयार न था।

ऐसी परिस्थिति में इल्तुतमिश के लिए सम्भव न था कि वह चैन से राज्य कर सके। परन्तु वह कठिनाइयों से भागने वाला व्यक्ति न था। उसने बड़े धैर्य-पूर्वक उन कठिनाइयों का सामना किया।

**प्रतिद्वन्द्वियों पर विजय**—सर्वप्रथम उसने कुतुबी अमीरों को दबाया जिन्होंने सामूहिक रूप में देहली के निकटवर्ती प्रदेश में कुतुबी वंश के अधिकार की रक्षा के हेतु विद्रोह कर दिया था। सुल्तान ने जूड के युद्धक्षेत्र में उन्हें परास्त किया और उनमें से अधिकतर मौत के घाट उतार दिये गये।

तत्पश्चात वह अपने प्रतिद्वन्दी इलदुज तथा कुबैचा की ओर आकृष्ट हुआ।
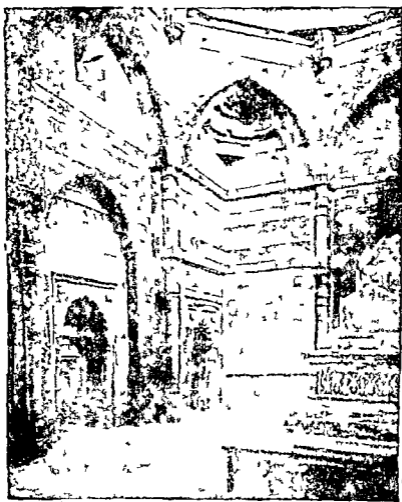
इल्तुतमिश का मकबरा देहली (आन्तरिक भाग)

इलदुज़ जैसा कि पहले भी उल्लेख किया जा चुका है, सुल्तान मुहम्मद गोरी का एक दास था। उसकी योग्यता तथा वीरता से प्रसन्न होकर सुल्तान ने उसे तिरमान का शासक बना दिया था। अपने स्वामी की मृत्यु के अनन्तर अमीरों तथा गोर अधिपति की स्वीकृति से उसने ग़ज़नी पर अधिकार कर लिया। थोड़े ही समय पश्चात् कुतुबुद्दीन ने गज़नी पर आक्रमण कर उसे गद्दी से उतार दिया। परन्तु कुतुबुद्दीन स्वयं विजयोन्मत्त हो अत्यधिक मदिरा पान करने लगा। इसलिये गज़नी के प्रभावशाली अमीर उससे असन्तुष्ट हो गये। और उन्होंने इलदुज़ पुनः आमन्त्रित किया तथा इससे ग़ज़नी फिर उसके अधिकार में आ गया कुतुबुद्दीन भारत भाग आया और देहली साम्राज्य पर ही राज्य करने गा। इलदुज़ के ग़जनी प्राप्त करने के कुछ कालोपरान्त खिवारिज्म के बादशाह ने ग़जनी पर आक्रमण किया। इलदुज़ गज़नी छोड़कर भारत भाग आया। उसने नासिरुद्दीन को जो सिन्ध तथा पंजाब का गवर्नर था परास्त कर पंजाब पर अपना अधिकार कर लिया। इल्तुतमिश इलदुज़ के इस कार्य को कैसे सहन कर सकता था। इसके अतिरिक्त इलदुज़ का पंजाब पर अधिकार होना उसके लिये स्थायी भय का कारण था। अतः उसने इलदुज़ पर आक्रमण कर १२१५ ई० में तराइन के युद्ध में उसे पूर्णतया परास्त किया। इलदुज़ बन्दी बना लिया गया और बदांयू के दुर्ग में रखा गया। कुछ समय के पश्चात् उसे प्राण-दण्ड दे दिया गया।

इलदुज़ से निवृत्त होने के पश्चात् उसने नासिरुद्दीन कुबैचा पर, जो निरन्तर स्वतन्त्र होने तथा देहली पर अधिकार करने का प्रयत्न करता रहता था, आक्रमण किया। १२१७ ई० में इल्तुतमिश ने उसे परास्त किया उसने इल्तुतमिश की अधीनता स्वीकार कर ली। परन्तु वह षड़यन्त्र रचता रहा जिससे खिन्न होकर १२२७ ई० में इल्तुतमिश ने उसे पूर्णतया परास्त करने का व्रत ले लिया। जब कुबैचा ने यह सुना तो वह भक्कर के किले में जा छिपा। इल्तुतमिश उच्छ के किले पर अधिकार कर भक्कर की ओर बढ़ा। कुबैचा ने विजय की कोई आशा न देखकर अपने पुत्र को संधि करने के लिये भेजा। परन्तु इल्तुतमिश ने उसे बन्दी कर लिया। इससे कुबैचा के होश उड़ गये। उसने सिन्ध के पार भागना चाहा, परन्तु बीच में ही उसकी नाव उलट गई और वह मर गया।

चंगेजखाँ का आक्रमण :—१२२० ई० में भारतवर्ष एक प्रलयंकारी आक्रमण से बाल-बाल बचा। इस समय मुगलों के वीर सरदार चंगेजखाँ ने अपनी विशाल सेना ले समस्त मध्य एशिया को अस्त-व्यस्त कर दिया था। १२२१ ई० में उसने खिवारिज्म के बादशाह जलालुद्दीन को परास्त कर उसके साम्राज्य पर अधिकार

कर लिया। जलालुद्दीन स्वदेश छोड़कर प्राण-रक्षा के लिये भारत की ओर भागा। सिन्ध नदी के तट पर डेरे डाल उसने इल्तुतमिश की सेवा में एक राजदूत भेजा जिसके

द्वारा उसने शरण की याचना की। और देहली में कुछ दिन शान्तिपूर्वक रहने को आज्ञा मांगी। परन्तु इल्तुतमिश ने यह सोचकर कि जलालुद्दीन का देहली में रहना संकट का कारण हो सकता है, क्योंकि उसकी उपस्थिति में तुर्क सरदार उससे मिल कर स्वयं उसके (इल्तुतमिश) ही विरुद्ध षडयन्त्र रच सकते हैं, इसीलिए उसने राजदूत को केवल यह उत्तर देकर टाल दिया कि देहली का जलवायु उसके सुल्तान के लिए स्वास्थ्यप्रद नहीं हो सकता। अतः उसका यहाँ रहना ठीक नहीं, इसी बीच चंगेजखाँ अपने साथियों सहित जलालुद्दीन को खोजता हुआ भारत आ धमका। जलालुद्दीन ने और कोई उपाय न देख युद्ध कर प्राण देने की सोची। सिन्धु नदी के किनारे घोर युद्ध हुआ हुआ। जलालुद्दीन और उसके साथी वीरतापूर्वक लड़े; और मंगोल सेना के दाँत खट्टे कर दिये; परन्तु अन्त में परास्त हुए। जलालुद्दीन के तीस सहस्र साथियों में से केवल सात हजार आदमी जीवित बचे। वह अपनी प्राण-रक्षा के हेतु सिन्धु नदी में कूद पड़ा और शत्रु-दल के तीरों की बौछारों में नदी पार की। अब उसने खोखरों की सहायता से कुबैचा पर आक्रमण कर सिन्धु प्रान्त को पूर्णतया भ्रष्ट कर दिया। कुबैचा ने मुलतान के किले में शरण लेकर प्राण बचाये परन्तु इसी बीच में जलालुद्दीन को सूचना मिली कि ईराक में एक सेना उसकी सहायता के लिए तैयार है। अतः वह सिन्धु नदी के मार्ग से वापिस लौट गया। चंगेजखाँ और उसके साथियों को भी भारत की गर्मी कड़ी प्रतीत हुई। अतः वे भी अपने देश को लौट गये। इस प्रकार एक बला भारतवर्ष से टल गई।

**इल्तुतमिश और बंगाल** :—चंगेजखाँ के भारत से वापिस लौट जाने पर इल्तुतमिश ने ठंडी साँस ली और उसने अपनी आन्तरिक स्थिति दृढ़ करने की सोची। कुतुबुद्दीन की मृत्यु के पश्चात बंगाल के खिलजी सरदारों ने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। अली मरदान नामक खिलजी सरदार ने अपना सिक्का भी प्रचलित कर दिया था। एक स्वतन्त्र शासक की भाँति वह अपने नाम का खुतबा पढ़वाने लगा। गयासुद्दीन नामक खिलजी सरदार ने भी, जो बंगाल के समीपवर्ती भाग पर राज्य करता था, उनका अनुकरण किया। उसने भी जाजनगर, कामरूप (आसाम प्रान्त) तिरहुत इत्यादि प्रदेश को जीतकर अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। जब इल्तुतमिश ने गयासुद्दीन के विरुद्ध सेनायें भेजी तो उसने संधि कर ली। इस सन्धि में उसने ३८ हाथी तथा ८०००० चाँदी के सिक्के भेंट किये। परन्तु ज्योंही इल्तुतमिश वापिस हुआ उसने बिहार के गवर्नर को निकाल बाहर किया और स्वयं बिहार प्रान्त पर शासन करने लगा। यह देखकर अवध के जागीरदार इल्तुतमिश के पुत्र नासिरुद्दीन ने उस पर आक्रमण किया। गयास पुनः परास्त हुआ और मारा गया। अन्य

खिलजी बन्दी बना लिए गये । इस प्रकार १२२५ ई० तक बंगाल मुसीबत का कारण बना रहा ।

१२३० ई० में जब बगाल के गवर्नर का देहान्त हो गया तो खिलजी सरदारों ने फिर विद्रोह का भण्डा खडा किया । सुल्तान स्वय वहाँ गया और उसे परास्त कर उसने अलाउद्दीन जानी को गवर्नर बनाया ।

खलीफा और इल्तुतमिश :—१२२५ ई० में बगदाद के खलीफा ने इल्तुमिश को सेवा में एक पत्र तथा एक पोशाक भेजी । इस पत्र द्वारा उसने इल्तुतमिश को भारतवर्ष के मुसलमान-साम्राज्य का अधिपति घोषित किया और मुसलमान जनता से अपील की कि उसकी आज्ञाओं का पालन करें । अब इल्तुतमिश की स्थिति और भी दृढ हो गई और वे लोग भी जो इल्तुतमिश को राज्य का नियमित अधिकारी स्वीकार न करते थे उसे बादशाह मानने लगे । ऐसा प्रतीत होता है कि इल्तुतमिश ने स्वयं भेंट भेजकर अपनी स्थिति दृढ बनाने के लिए खलीफा से यह अधिकार-पत्र प्राप्त किया हो ।

कुछ भी हो अब इल्तुतमिश की स्थिति और दृढ हो गई थी । और उसे विद्रोह इत्यादि शान्त करने में अधिक आसानी तथा सुविधा होने लगी ।

अन्य विजय:—१२२६ ई० में इल्तुतमिश ने रणथम्भौर पर विजय प्राप्त की और १२२७ ई० में उसने इन्दौर पर अधिकार कर लिया । इसी वर्ष में इल्तुतमिश ने ग्वालियर नरेश मंगलदेव पर आक्रमण कर उसे परास्त किया और अगले वर्ष ग्वालियर को उस ने अपने साम्राज्य में मिला लिया । इसके बाद उज्जैन पर विजय प्राप्त कर वहाँ के महाकाली के प्रसिद्ध मन्दिर को नष्ट-भ्रष्ट कर वह देहली लौटा ।

इल्तुतमिश का निधन:—मालवा से लौटने पर जब सुल्तान जुमा की निमाज पढ़ रहा था तो मुलाहिद वर्ग के लोगों ने उसे कत्ल करने का प्रयत्न किया किन्तु वह असफल रहा परन्तु कार्य की अधिकता से इल्तुतमिश का स्वास्थ्य खराब हो गया था । वह निरन्तर बीमार रहने लगा और १२३५ ई० में उसका देहान्त हो गया ।

इल्तुतमिश का व्यक्तित्व:—इल्तुतमिश गुलामवंश का वास्तविक संस्थापक है । एक दास के दास का सुल्तान पद पर पहुँचना उसकी महानता तथा योग्यता का पूर्णतया परिचायक है । एक अस्त-व्यस्त राज्य को जिसमें चारो ओर छिन्न-भिन्नता के चिन्ह दृष्टि-गोचर हो रहे थे, एक सुदृढ साम्राज्य बनाना उसके धैर्य तथा साहस का स्पष्ट प्रमाण है ।

यलदज तथा कुबैचा जैसे प्रभावशाली सरदारो को परास्त कर समस्त उत्तरी भारत पर अधिकार करना, बंगाल के खिलजी सरदारो पर अपना सिक्का बैठाना तथा

मध्य-प्रान्त के स्वतन्त्र राजपूत राज्यों को मुसलिम-साम्राज्य में सम्मिलित करना कोई छोटा कार्य न था। युद्ध में व्यस्त रहने वाला इल्तुतमिश एक सेनानायक ही न था वरन् विद्वानों तथा धार्मिक पुरुषों का आश्रयदाता भी था। "तबक़ात नासिरी" का लेखक हाफ़िज मिनिहाज-सिराज उसके इस गुण की विशेष प्रशंसा करता है। वह निर्माणकला का बहुत प्रेमी था। उसने कुतुबमीनार को पूरा कराया तथा अजमेर में एक मसजिद बनवाई।

इल्तुतमिश के उत्तराधिकारी:—इल्तुतमिश अपने पुत्रों की अयोग्यता से भली भाँति परिचित था, इसलिए उसने अपनी पुत्री रज़िया बेगम को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। लेकिन अमीरों को एक लड़की का गद्दी पर बैठना उचित प्रतीत न हुआ। अतः उन्होंने उसके ज्येष्ठ पुत्र रुकनुद्दीन को सुल्तान घोषित किया। रुकनुद्दीन अत्यन्त निकम्मा तथा विलास-प्रिय शासक था। कभी कभी वह शराब के नशे में हाथी पर निकलता तो चाँदी के सिक्के बखेरता चला जाता था। इस प्रकार वह आमोद-प्रमोद में अपना जीवन व्यतीत करता रहा और उसकी माता शाहतुर्कान शासन-प्रबन्ध करती रही। लेकिन जब माता तथा पुत्र ने मिलकर कुतुबुद्दीन नामक एक राजकुमार का बध कर दिया तो अमीर, जो पहले ही उसके विरुद्ध थे, सर्वथा उनके विरुद्ध हो गए। बदायूँ, मुल्तान, लाहौर तथा हाँसी आदि स्थानों पर विद्रोह प्रारम्भ हो गये। रुकनुद्दीन इनको शान्त भी नहीं कर सका था कि उसकी माता ने रज़िया की जान लेने का षड़यन्त्र रच दिया। षड़यन्त्र का भेद खुल गया, दिल्ली की जनता में विद्रोह की आग भड़क उठी और उन्होंने शाहतुर्कान को बन्दी बना लिया। रुकनुद्दीन उस समय लाहौर में था, उसके देहली पहुँचने से पहले ही, अमीरों ने रज़िया को सुल्तान घोषित कर दिया। रुकनुद्दीन पकड़ा गया और बन्दीघर में डाल दिया गया। जहाँ १२३६ ई० में उसका देहान्त हो गया।

रज़िया (१२३६ से १२४० ई०):—गद्दी पर बैठते ही रज़िया को एक कठिन परिस्थिति का सामना करना पड़ा। मुहम्मद जुनैदी नामक राजमन्त्री तथा अनेक अमीरों ने उसे सुल्तान स्वीकार न किया। मुल्तान, लाहौर, बदायूँ और हाँसी के गवर्नरों ने भी इसके विरुद्ध भावना का प्रदर्शन किया, परन्तु अपने साहस तथा योग्यता से रज़िया ने विद्रोही अमीरों को दबा दिया। जुनैदी सीरमूर पर्वती प्रदेश की ओर चला गया, जहां उसका कुछ समय के उपरान्त देहान्त हो गया।

उसके शासन-काल के आरम्भ में किरामत तथा मुलाहिद वर्ग ने मिलकर विद्रोह करना चाहा। १००० की संख्या में एकत्रित होकर वे जामा मसजिद पर चढ़

आये और मुसलमानों को मारना-काटना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु शीघ्र ही राज्य-सेना ने आकर उन्हें तितर-बितर कर दिया।

रज़िया का व्यक्तित्व:—रज़िया अत्यन्त उदार और न्यायशील सुल्ताना थी। वह पर्दे का परित्याग कर स्वयं दरबार में उपस्थित होती और राज्य-कार्य-संचालन करती थी। लाहौर के गवर्नर के विरुद्ध वह स्वयं सेना लेकर गई और उसे अपना आधिपत्य स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। परन्तु उसका स्त्री होना उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता थी जिसे तुर्क सरदार क्षमा करने को तैयार न थे। वह अपने एक दास जमालुद्दीन याकूत की ओर आकर्षित हो गई। तुर्की सरदारों को यह बात बहुत बुरी प्रतीत हुई। धीरे-धीरे असन्तोष इतना बढ गया कि उसने विद्रोह का रूप धारण कर लिया।

रज़िया के विपक्ष में विद्रोह:—सर्वप्रथम अलतूनिया नामक सरहिन्द के सरदार ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया। रज़िया एक सेना लेकर उसको दबाने गई, परन्तु जब वह तावरहिन्द नामक स्थान पर पहुँची तो तुर्की सरदारों ने याकूत का वध करवा डाला और रज़िया को एक दुर्ग में बन्दी कर दिया। ऐसी स्थिति में रज़िया ने चालाकी से काम लिया। वह वेष बदल कर कारागार से निकल भागी। उसने अलतूनिया को अपनी ओर मिला लिया और उससे विवाह करने का वचन दिया। इसके बाद वह एक विशाल सेना लेकर देहली की ओर चली। मुईजउद्दीन बहरामशाह; रज़िया का भाई, जिसे अमीरों ने सुल्तान घोषित कर दिया था, उसका सामना करने को आया उसने कैथल नामक स्थान पर रज़िया को परास्त किया। अलतूनिया के साथियों ने उसका साथ छोड़ दिया। अलतूनिया और रज़िया भाग निकले। कुछ दूर चल कर उन्हें हिन्दू किसानों ने पकड़ लिया और मार डाला। इस प्रकार साढे तीन वर्ष राज्य करने के पश्चात रज़िया १२४० ई० में इस संसार से चल बसी।

## बहराम शाह (१२४०—४१ ई०)

बहरामशाह:—रज़िया की मृत्यु के पश्चात उसका भाई बहरामशाह गद्दी पर बैठा। उसका शासनकाल षडयन्त्रों तथा विद्रोहों से परिपूर्ण है।

यह षडयन्त्र प्रायः चालीस दासों की ओर से हुए। इन चालीस दासों में से मलिक बदरुद्दीन नामक दास ने सुल्तान को गद्दी से उतारना चाहा। निजामुलमुल्क अर्थात् प्रधानमन्त्री तथा सुल्तान दोनों उससे असन्तुष्ट थे। उधर निजामुलमुल्क सुल्तान से भी अप्रसन्न था, क्योंकि उसने उसे एक बार प्राणदण्ड देना चाहा था। इसलिए प्रधानमन्त्री ने ऐसी चालाकी से काम लिया कि सुल्तान और बदरुद्दीन तथा चालीस

गुलामों के पारस्परिक सम्बन्ध निरन्तर खराब होते चले गये। वह बदरुद्दीन से स्वयं मिलता और उसके षड्यन्त्रों में सम्मिलित हो जाता। उधर सुल्तान से उसके सब भेद बता उसे उसके विरुद्ध भड़का देता था। इस प्रकार दोनों वर्गों में उसने अत्यन्त क्षोभ पैदा कर दिया। सुल्तान ने बदरुद्दीन को बदायूँ भेज दिया, परन्तु वह कुछ दिन पश्चात् बिना सुल्तान की आज्ञा के देहली आ गया। उस पर उसको मृत्यु-दण्ड दिया गया। इससे चालीस दास-वर्ग क्रोधान्ध हो उठा।

सुल्तान, ४० दास तथा वजीरः—इसी बीच में मंगोल सरदार बहादुर ताहिर भारत पर चढ आया। लाहौर का गवर्नर उसका सामना न कर सका। अतः बहराम ने स्वयं सेना ले जाकर उसे रोकना चाहा, परन्तु वजीर ने कहा कि सेना आपकी आज्ञा मानने को तैयार नहीं है और सेना के इस व्यवहार में चालीस गुलामों का हाथ है। उसने इस बहाने सुल्तान से उन्हें पकड़वाने की आ॰ा ले ली उधर उसने उन गुलामों से कह दिया कि सुल्तान तुम्हारा वध कराना चाहता है। इस प्रकार वजीर ने सुल्तान और चालीस गुलामों का झगड़ा पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया और अब वह स्वयं भी सुल्तान के विरुद्ध हो गया। फल यह हुआ कि सब अमीरों ने मिल कर सुल्तान को बन्दी बना लिया। कुछ दिन पश्चात् १२४२ ई० में उसे मृत्यु-दण्ड दे दिया गया। इसी बीच चालीस गुलामों को वजीर निजामुलमुल्क की चालाकी का पता चल गया अतः उन्होंने उसे भी कत्ल कर दिया।

अलाउद्दीन (१२४१ से १२४६ ई० ):—बहरामशाह की मृत्यु के पश्चात् इल्तुतमिश का पुत्र अलाउद्दीन गद्दी पर बैठा, परन्तु वह भी निकम्मा सिद्ध हुआ। इसलिए १२४६ ई० में उसे गद्दी से उतार दिया गया।

नासिरुद्दीनः—(१२४६ ई० से १२६६ ई० तक)—अलाउद्दीन को गद्दी से उतार देने के पश्चात् नासिरुद्दीन महमूद को गद्दी पर बैठाया गया। नासिरुद्दीन धार्मिक प्रकृति का सीधा मनुष्य था। वह राजकोष का बहुत आदर करता था और उसमें से कुछ भी अपने व्यक्तिगत व्यय के लिए लेना न्याय-विरुद्ध समझता था। वह कुरान लिखकर अपनी जीविका कमाता था। वह किसी भी व्यक्ति को ठेस न पहुँचाना चाहता था। उसके व्यवहार की ऐसी अनेक बातें प्रचलित हैं। ऐसा सीधा मनुष्य १३ वीं शताब्दी के शासन-कार्य के लिए बिल्कुल उपयुक्त न था, परन्तु उसे बलबन जैसा योग्य मन्त्री मिल गया जिसने शासन-भार अपने ऊपर ले लिया।

बलबनः—यह इलबारी तुर्क था। इल्तुतमिश भी इसी तुर्क वर्ग से था। बलबन का पिता १०००० परिवारों का प्रधान था, परन्तु बलबन के भाग्य में परिवारों की प्रधानता से कहीं उच्च पद लिखा था। जब वह युवावस्था को पहुँचा तो मंगोलों ने उसे कैद कर लिया था। और बगदाद लाकर ख्वाजा जलालुद्दीन के हाथ बेच दिया

ख्वाजा ने उसमें बडप्पन के चिन्ह देखे, इसलिए उसके साथ दया का बर्ताव किया और कुछ दिन पश्चात् उसे दिल्ली में इल्तुतमिश के हाथ बेच दिया।

बलबन इल्तुतमिश का व्यक्तिगत सेवक हो गया। अपनी व्यवहार-कुशलता से उसने सुल्तान को मोहित कर लिया, जिससे प्रसन्न होकर वह सुल्तान द्वारा चालीस गुलामो के वर्ग में सम्मिलित कर लिया गया। रजिया के शासन-काल में वह अमीर आखेट बना दिया गया। परन्तु जब अमीरो ने उसके विरुद्ध षडयन्त्र रच दिया तो वह भी उनके साथ सम्मिलित हो गया। रजिया के शासनोपरान्त जब बहराम गद्दी पर बैठा तो उसने उन समस्त अमीरों को जिन्होने उसे गद्दी प्राप्त कराने में सहायता दी थी, उच्चपद प्रदान किया। अब बलबन को भी रिवाडी का जागीरदार बना दिया गया। बलबन ने अपने अधिकृत प्रदेश में बहुत उन्नति की और शीघ्र ही सर्वप्रिय हो गया।

१२४५ ई० में जब मगोल सरदार मगूखाँ ने सिंघ पर आक्रमण कर उसका घेरा डाल दिया तो बलबन एक विशाल सेना लेकर उसका सामना करने गया। उसने अपनी सेना को ऐसा सगठित किया कि मगोल परास्त हुए। इस विजय ने बलबन की प्रसिद्धि में चार चाँद लगा दिये। १२४, ई० में जब सुल्तान नासिरुद्दीन गद्दी पर बैठा तो उसने बलबन को अपना प्रधानमन्त्री बना दिया और राजकार्य पूर्णतया उसके सुपुर्द कर स्वय धार्मिक क्रियाओ में व्यस्त रहने लगा।

विद्रोह शान्त करना —बलबन अपने मन्त्री काल में विद्रोह शान्त करने में सलग्न रहा। १२४६ ई० में उसने रावी नदी को पार कर जूद के पर्वतीय प्रदेश में खोखरो आदि विद्रोही जातियो का परास्त किया। उसके पश्चात् बलबन ने मेवात और रणथम्भोर पर विजय प्राप्त की। १२४६ ई० में जब वह देहली वापिस हुआ तो सुल्तान ने अपनी पुत्री का विवाह उससे कर उसे सम्मानित किया।

१२५१ ई० में नागौर में विद्रोह हुआ। उसे शान्त करने के बाद ग्वालियर, चंदेरी, मालवा और नरवर पर अधिकार प्राप्त कर तथा बहुत-सा धन ले बलबन देहली लौटा।

बलबन का पदच्युत होना—इस प्रकार समस्त साम्राज्य पर जो इलतुतमिश की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्रो के शासन-काल में अस्त-व्यस्त हो चुका था, बलबन अधिकार प्राप्त करने में सफल सिद्ध हुआ। परन्तु बलबन के दिनो-दिन बढते हुए प्रभाव को अन्य अमीर सहन न कर सके। उन्होंने सुल्तान नासिरुद्दीन से उसकी शिकायत करनी प्रारम्भ कर दी। यहाँ तक कि नासिरुद्दीन ने बलबन जैसे विश्वास-पात्र मन्त्री को पदच्युत कर उसे अपनी जागीर पर वापिस भेज दिया। अमीरों ने

उसका वध कराने का भी प्रयत्न किया, परन्तु सफल न हो सके। ईर्ष्या व द्वेष कभी कभी कैसे बुरे काम करा देते हैं, इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है।

**मुहम्मद जुनैदी का मन्त्री बनना** :—बलबन के उपरान्त मुहम्मद जुनैदी प्रधानमन्त्री बनाया गया। और इमादउद्दीन नामक एक नव-मुस्लिम का जो उसका प्रिय था, राज्य-प्रबन्ध में विशेष हाथ रहने लगा। यह बात अन्य अमीरों को बुरी लगी। बलबन के समय के अन्य पदाधिकारी भी या तो पदच्युत कर दिये गये या निम्न पद पर पहुँचा दिये गये। तबकात-नासिरी का लेखक काजी मिनहाज सिराज भी काजी अर्थात् न्यायाधीश के पद से हटा दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि शासन-प्रबन्ध निरन्तर दूषित होता चला गया। अमीरों का असन्तोष इतना बढ़ा कि वह पहले की तरह फिर षडयन्त्रों ही की सोचने लगे। समस्त साम्राज्य फिर अशान्त हो गया। वातावरण इतना दूषित हो गया कि चारों ओर से प्रार्थना पत्र आने लगे कि इमादउद्दीन को हटाया जाय।

**बलबन का पुनः मन्त्री बनना** :—जुनैदी को मन्त्री-पद से हटाने का आन्दोलन इतना बढ़ा कि कड़ा, मानिकपुर, तिरहुत, बदायूं इत्यादि के अमीरों ने संयुक्त रूप से बलबन को फिर बुलाने का आग्रह किया। अन्त में अमीरों के दोनों दलों में समझौता हो गया और शान्ति-पूर्वक १२५४ ई० में बलबन फिर प्रधानमन्त्री बना दिया गया।

**बलबन का विद्रोहियों को दबाना** :—बलबन के आते ही शासन-प्रबन्ध की कायापलट हो गई। उसने दोआब के सब विद्रोही अमीरों को दबा दिया। १२५५ ई० में कुतलगखाँ ने, जिसने सुल्तान की विधवा माँ से विवाह कर लिया था और जो अवध का जागीरदार था, विद्रोह कर दिया। दोआब के अन्य अमीरों ने भी उसकी सहायता की। सिन्ध के गवर्नर ने भी उसी समय विद्रोह कर उसका साथ दिया। इस प्रकार साम्राज्य-व्यापी विप्लव हो गया। परन्तु बलबन इन सबको शान्त करने में सफल हुआ।

१२५६ ई० में बलबन ने मेवाती विद्रोहियों को शान्त किया। मेवातियों ने समस्त हरियाना, शिवालिक तथा बियाना प्रदेश को लूट कर उजाड़ दिया। यह मेवाती प्रायः उपद्रव करते रहते थे। इस बार बलबन ने इन्हें पूर्णतया पराजित किया और उनमें से १२००० मृत्यु के घाट उतार दिये गये और उनके २५० सरदार बन्दी बना लिये गये।

इसी समय चंगेजवंशीय हलाकूखाँ का राजदूत देहली आया। बलबन ने उसका बड़ा शानदार स्वागत किया।

नासिरुद्दीन महमूद के राज्य-काल के १२६० से १२६६ ई० तक का कोई वृत्तान्त नहीं मिलता। तबकात-नासिरी का लेखक अपना इतिहास १२६० ई० पर ही समाप्त कर देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में मंगोलों ने भारत पर बहुत से आक्रमण किये और उन में बलबन अधिक सफलता प्राप्त न कर सका।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पूरे २० वर्ष तक बलबन ने अपने धैर्य तथा वीरता से राज्य की रक्षा की। मंगोलों के संकट से भारतवर्ष को मुक्त रखना, विद्रोहियों को शान्त करना तथा इल्तुतमिश के पश्चात् दूषित वातावरण को संभालना बलबन ही का काम था। १२६६ ई० में सुलतान नासिरुद्दीन की मृत्यु हो गई और बलबन देहली की गद्दी पर बैठा।

**बलबन १२६६ ई० से १२८६ ई० तक**:—बलबन के सामने इस समय तीन प्रश्न थे। राज्य गौरव को, जो इल्तुतमिश के निकम्मे उत्तराधिकारिओ के समय में नष्ट हो गया था; फिर से प्राप्त करना, जो देश की व्यवस्था ठीक रखने से ही प्राप्त हो सकता था।

दूसरे चालीस दासों की शक्ति को समाप्त करना, क्योंकि यह निरन्तर विद्रोह कराने के लिए प्रयत्न करते रहते थे।

तीसरे मंगोलों के आक्रमणों को रोकने का उपाय करना।

**व्यवस्था ठीक करना**:—शान्ति तथा सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए बलबन को सर्वप्रथम एक सुसंगठित सेना की आवश्यकता थी। अतः उसने पैदल और घुडसवारो की एक विशाल सेना अस्त्र-शस्त्र से पूर्णतया सुसज्जित की और उस को विश्वासपात्र अमीरों के अधिकार में रक्खा। इस सेना की सहायता से उसने दोआब के विद्रोही सरदारो तथा मेवातियों को पूर्णतया परास्त किया। मेवाती देहली और उसके निकटवर्ती प्रदेश के लिए आतंक बन गये थे। वे किसी भी समय राजधानी में प्रवेश कर सड़क पर चलने फिरने वाले नगर-निवासियो पर आक्रमण कर उनके वस्त्र इत्यादि लूट ले जाते थे। और देहली के निकटवर्ती जंगलो में अदृश्य हो जाते थे। सुल्तान ने इन समस्त जंगलो को साफ करा दिया और मेवातियों को परास्त कर उनमें से अधिकतर को मृत्यु दण्ड दिया। राजधानी की सुरक्षा के लिए उसने चारों ओर सैनिक चौकियां बनवाईं और प्रभावशाली अमीरों को इनका सरक्षक बनाया। इस प्रकार उसने शान्ति स्थापित कर दी। मेवाती-सकट को शान्त करने के पश्चात् बलबन ने दोआब की ओर ध्यान दिया। इस प्रान्त में कम्पिल, और भोजपुर डाकुओ के अड्डे थे। इन्होंने व्यापारियों का नाक में दम कर रक्खा था। कोई भी व्यापारी

यहाँ से शान्ति-पूर्वक बिना लूटे-पिटे नहीं जा सकता था। इससे व्यापार सर्वथा बन्द हो गया। सुल्तान स्वयं एक विशाल सेना लेकर वहाँ गया और उनको दबाया। वहाँ व्यवस्था स्थिर रखने के लिये उसने सुदृढ़ अफगान् सैनिक दस्ते नियुक्त किये। डाकुओं के अड्डे सैनिक अड्डों में परिणत हो गये।

जिस समय सुल्तान इस व्यवस्था-स्थापना में व्यस्त था उसी समय रुहेलखण्ड प्रदेश में भारी विद्रोह हुआ, और अमरोहा तथा बदायूँ के सरदारों को दबाना अत्यन्त कठिन हो गया। इसकी सूचना पाते ही सुल्तान अपनी सेना का विशेष भाग ले उनकी ओर बढ़ा। यहाँ पहुँचते ही उसने विद्रोहियों का कत्लेग्राम कराना प्रारम्भ कर दिया। सम्पूर्ण प्रदेश लाशों से पट गया। खून की धारायें गंगा नदी तक पहुँच गईं। निकटवर्ती सब जंगल साफ कराके उसमें सड़कें बनवाई गईं। इस प्रकार इस प्रदेश में शान्ति तथा सुव्यवस्था स्थापित कर सुल्तान ने जुद के पर्वतीय प्रदेश की ओर प्रस्थान किया। वहाँ भी खोखर इत्यादि अन्य जंगली जातियों ने लूट-मार को ही अपना नित्यकर्म बना लिया था। सुल्तान ने उन्हें पूर्णतया परास्त कर अधिकतर को प्राण-दण्ड दिया।

**सरदारों की शक्ति तोड़ना** :—इस प्रदेश के युद्धों ने उसे पूर्णतया प्रगट कर दिया कि अमीर सर्वथा अयोग्य तथा निकम्मे हैं। उनमें से अधिकतर को, जिनकी संख्या लगभग २००० थी, इल्तुतमिश ने जागीरें दे दी थीं, जिनके बदले उन्हें सुल्तान को सैनिक सेवायें अर्पित करना अनिवार्य था। परन्तु उनमें से अधिकतर प्रायः अब बूढ़े हो गये थे और सैनिक सेवाओं के योग्य नहीं थे। उनमें से कुछ जो इस योग्य थे वे प्रायः सरकारी पदाधिकारियों को रिश्वत देकर सकटकाल में घर ही रह जाते थे और कभी युद्ध में न जाते थे। कुछ मर चुके थे और उनके उत्तराधिकारी या उनकी विधवायें जागीर से लाभ उठाती थी और सैनिक आवश्यकता के समय अपनी प्रजा में से कुछ आदमी सैनिक सहायता के रूप में भेज देती थीं। बलबन ने इस व्यवस्था को ठीक करना चाहा। उसने इन जागीरदार अमीरों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया। वह जो बूढ़े हो चुके थे, और सैनिक सेवाओं के सर्वथा अयोग्य थे, उनकी जागीर वापिस ले ली गईं; तथा उनके जीवन-निर्वाह के लिये कुछ पेन्शन दे दी गई।

नवयुवक जिन्हें जागीरें रखने की आज्ञा दी, परन्तु उन्हें आदेश दिया कि वे ठीक तरह अपना कर्तव्य पालन करे।

विधवायें और अनाथ बालक जो किसी प्रकार की सेवा न दे सकते थे, उनकी जागीरें वापिस ले ली गईं और उनके निर्वाह के लिये कुछ भूमि छोड़ दी गई।

इस प्रकार उसने अयोग्य अमीर दासों की कमर तोड़ दी। वे सब मिलकर फखरुद्दीन कोतवाल-देहली की सेवा में, जिसका बलबन पर बड़ा प्रभाव था, उपस्थित

हुये और उससे प्रार्थना की कि वह सुल्तान से उनकी जागीरें वापिस दिलाने का प्रयत्न करें। कोतवाल के प्रयत्न से सुल्तान ने अपनी प्रथम आज्ञा वापिस ले ली। परन्तु इस घटना से अमीरो के प्रभुत्व को बडा धक्का लगा और अब उनका इतना प्रभाव न रहा जितना पहले था।

**बलबन का राज्य प्रबन्ध :**—दासो की शक्ति छिन्न भिन्न करने के पश्चात् बलबन का ध्यान राज्य प्रबन्ध की ओर आकृष्ट हुआ। वह जानता था कि भारतवर्ष जैसे विशाल देश में केवल तलवार के ही बल पर शान्ति स्थापित करना सर्वथा असम्भव है। आन्तरिक सुव्यवस्था तथा अच्छा शासन प्रबन्ध ही इसके आधार हो सकते हैं। अत उसने अपनी शासन व्यवस्था ठीक करने की सोची। उसका राज्य-प्रबन्ध केन्द्रीय था। प्रान्तीय गवर्नर उसकी आज्ञा के बिना किसी प्रकार का स्वतन्त्र कार्य नही कर सकते थे। उसके पुत्रो को भी महत्वपूर्ण मामलो में सुल्तान के ही आदेशानुसार कार्य करने की आज्ञा थी। न्याय के मामले में सर्वदा सुल्तान कठोरता से काम लेता था। वह अपने कुटुम्बियो तथा सम्बन्धियो को भी किसी अपराध पर क्षमा करने को तैयार न था। अमीरो को अपने कर्मचारियो तथा सेविकाओ के साथ भी दुर्व्यवहार करना निषेध था। ऐसे एक अमीर सेवक को जो बदायूँ का जागीरदार था जिसने अपने सेवक को प्राण-दण्ड दे दिया था, उसने कोडे लगवाने का दण्ड दिया। उस समय इतना करना बहुत बडी बात थी। अमीरो व गवर्नरो के कार्य्य तथा साम्राज्य की आन्तरिक स्थिति की सूचना देने के लिए सुल्तान ने अच्छे गुप्तचर विभाग का आयोजन किया। जिसके कर्मचारियो का कर्तव्य था कि वह प्रत्येक प्रकार के अन्याय तथा महत्वपूर्ण मामलो की सूचना सुल्तान तक पहुँचायें, परन्तु उन्हे आदेश था कि यदि वे झूठी सूचना देंगे तो कठोर दण्ड के भागी होंगे। इस प्रकार आन्तरिक शान्ति स्थापित कर सुल्तान का ध्यान वाह्य शान्ति की ओर आकृष्ट हुआ।

**सुल्तान और मंगोल**—सुल्तान को हर समय मगोल आक्रमणो का भय रहता था। मगोल इस समय पराकाष्ठा पर थे। उन्होंने बगदाद तथा गजनी पर अधिकार कर लिया था। उन्होने लाहौर पर अपना अधिकार कर लिया था और निरन्तर सिन्ध तथा पूर्वी पजाब पर आक्रमण कर उस प्रदेश को लूटते रहते थे। अत सुल्तान ने स्वय एक सुसगठित सेना का आयोजन किया। उसने अपने साम्राज्य में सुदृढ किले बनवाए और वहाँ विशेषतया मुल्तान तथा समाना में अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित सेना रक्खी और अपने पुत्र बुगराखाँ को सीमा प्रान्त का गवर्नर नियुक्त किया। इस प्रकार सीमा सुरक्षित हो गई।

मगोल भय का एक यह प्रभाव पडा कि बलबन किसी भी दूर देश पर विजय

प्राप्त करने न जा सका। उसका पूरा ध्यान अपनी साम्राज्य-रक्षा पर ही केन्द्रीयभूत हो गया।

तुग़रिल विद्रोह—१२८० ई०:—जैसा कि पहिले उल्लेख किया जा चुका है बलबन की सीमान्त-नीति का यह प्रभाव पड़ा कि देहली से दूर-स्थित बंगाल इत्यादि साम्राज्य के भागों पर सुलतान का केवल नाम मात्र का ही शासन रह गया। इल्तुत-मिश के समय में भी बंगाल के गवर्नर ने कई बार विद्रोह कर स्वतन्त्रता स्थापित करने का प्रयत्न किया था। बलबन के समय में भी ऐसा ही हुआ। राजधानी से दूरी तथा यातायात के साधनों का अभाव बंगाल-शासकों के पक्ष में थे। इस समय तुग़रिलबेग बंगाल का गवर्नर था। बलबन ने ही उसे नियुक्त किया था। परन्तु उसके सलाहकारों ने उसे पथ-भ्रष्ट कर दिया। इन लोगों ने समझाया कि सुल्तान वृद्ध है और मंगोल-भय के कारण वह राजधानी से अधिक समय के लिये अनुपस्थित नहीं रह सकता। ऐसी स्थिति में क्यों नहीं स्वतन्त्र होने का प्रयत्न किया जाये। तुग़रिल की यह बात समझ में आ गई। उसने जाज नगर पर आक्रमण कर दिया और बहुत-सा सामान तथा हाथी लूट कर ले गया। बलबन को उसके इस कार्य पर अत्यन्त क्षोभ तथा सन्देह हुआ। और जब उसने सुल्तान मुग़ीसउद्दीन का खिताब धारण कर अपना स्वतन्त्र सिक्का प्रचलित कर दिया तथा अपने नाम का खुतबा पढवाना प्रारम्भ कर दिया तो सन्देह की पुष्टि हो गई। बहुत-सा रुपया दरबारी अमीरों को भेंट-स्वरूप देकर तुग़रिल ने अपनी स्थिति को और भी दृढ़ बना लिया।

सुल्तान को तुग़रिल के इस व्यवहार से अत्यन्त दुःख हुआ। वह कई दिन तक राज्य-कार्य भी न कर सका। उसने अमीरखाँ नामी अवध के जागीरदार को एक विशाल सेना सहित तुग़रिल को दण्ड देने के लिए भेजा; परन्तु वह परास्त हुआ। यह सुनकर बलबन के क्रोध का पारावार न रहा। उसने क्रोध में ही अमीरखाँ को उसकी पराजय के लिए प्राण-दण्ड देने की आज्ञा दी। यह सर्वथा अन्याय था। परन्तु जब दूसरा प्रयास भी इसी प्रकार असफल रहा तो बलबन को स्थिति की गम्भीरता का [illegible]ता लगा और उसने स्वयं बंगाल-विद्रोह शान्त करने का विचार किया। उसने बुगरा-[illegible]ाँ को सीमान्त प्रदेश से बुलाया और अपने छोटे पुत्र महमूद को सीमान्त की [illegible]क्षा का भार सौंप बुगराखाँ सहित तुग़रिलबेग को दण्ड देने के लिए वर्षा ऋतु की [illegible]रवाह न करता हुआ बंगाल की ओर अग्रसर हुआ। अवध में एक विशाल नाविक [illegible]ड़ा तैयार कर वह वर्षा ही में बंगाल की राजधानी पर जा धमका। तुग़रिल भयभीत [illegible] अपने साथियों सहित जाज नगर के जंगली प्रदेश में भाग गया। परन्तु सुल्तान ने [illegible]सका पीछा करने के लिए वही सेना भेजी और तुग़रिल को दंड देने की दृढ़ प्रतिज्ञा

की। जब बहुत खोज करने के पश्चात् भी तुग़रिल का कोई पता न लगा तो सेना निराश हो गई। परन्तु इसी समय कोल अर्थात् वर्त्तमान अलीगढ के अमीर को अनाज के व्यापारियो की एक मंडली मिली यह मंडली तुग़रिल को अनाज इत्यादि पहुँचाती थी दंड के भय से इसने तुग़रिल का भेद बता दिया। तुरंत सेना ने उस ओर प्रस्थान किया। तुग़रिल और उसके साथी उस समय मनोविनोद में व्यस्त थे आक्रमण का उन्हें स्वप्न में भी ध्यान न था। हाथी व घोड़े निश्चिंततापूर्वक चरने के लिए खोल दिये गये थे। अतः अकस्मात् जब तीस चालीस सरदारो की टुकड़ी ने प्रवेश कर उसके कैम्प में मार-काट प्रारम्भ कर दी तो उसके होश उड़ गये। तुग़रिल एक बिना काठी के घोडे पर सवार हो भाग निकला परन्तु एक सिपाही ने तीर द्वारा घायल कर उसे नीचे गिरा दिया। उसका सिर उतार लिया गया। स्त्रियां व बच्चे बन्दी बना लिए गये, सुल्तान इस सफलता से अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उन सरदारों को, जिन्होंने जान जोखिम में डालकर तुग़रिल का वध किया था, अमूल्य पारितोषिक प्रदान किये। लखनौती के बाज़ार में तुग़रिल के अनेक साथियों तथा सम्बन्धियों को फांसी का दण्ड दिया गया, जिसे देखकर बहादुर से बहादुर सेनापतियों के हृदय दहल गये। इसके पश्चात् बंगाल का शासन बुग़राखां के सुपुर्द कर और उसे कर्त्तव्य-परायणता की शिक्षा दे वह देहली लौट आया। उसकी अनुपस्थिति में देहली तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश में भी विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी थी। फख़रुद्दीन कोतवाल-देहली ने जिसे सुल्तान राजधानी का कार्य-भार सौंप गया था, विद्रोह शान्त कर दिया था। जब सुल्तान को इसका पता चला तो उसने विद्रोहियों को कठोर दण्ड देना चाहा, परन्तु काज़ी के समझाने से सुल्तान ने मृत्यु-दण्ड के बदले कुछ को देश-निकाला और कुछ को कैद का दण्ड दिया।

महमूद की मृत्यु :—विद्रोह तो शान्त हो गये, परन्तु १२८५ ई० में मंगोलों ने पंजाब पर आक्रमण कर दिया। उसका पुत्र महमूद जिसे बलबन ने बुग़राखां की अनुपस्थिति में सीमाप्रान्त का गवर्नर नियुक्त किया था, मंगोल संघर्ष में काम आया। प्रसिद्ध कवि ख़ुसरो भी जिसने युद्ध में भाग लिया था बन्दी बना लिया गया। परन्तु वह कुछ कालोपरान्त मुक्त कर दिया गया। महमूद योग्य, उदार-हृदय, साहित्य-प्रेमी तथा सभ्य राजकुमार था। अत्यन्त पितृभक्त तथा विश्वासपात्र होने के कारण बलबन को उसकी मृत्यु का बड़ा दुःख हुआ। उसका स्वास्थ्य बिगड़ना प्रारम्भ हो गया। उसने अपने पुत्र बुग़राखां को बंगाल से बुलाया और उसे राजमुकुट भेंट करना चाहा। परन्तु बुग़राखां अत्यन्त बेपरवाह मनुष्य था, वह शिकार का बहाना लेकर लखनौती वापिस चला गया और वहां आमोद प्रमोद से जीवन व्यतीत करने लगा। इस पर

उसने महमूद के पुत्र कैखुसरो को अपना उत्तराधिकारी बनाने की सोची और अमीरों से इसकी चर्चा की।

बलबन की मृत्यु —१२८६ ई० में बलबन का देहान्त हो गया। वृद्धावस्था में वह प्रिय पुत्र महमूद की मृत्यु को सहन न कर सका और एक वर्ष के भीतर ही इस संसार से चल बसा।

बलबन का व्यक्तित्व :—बलबन ने चालीस वर्ष निरन्तर परिश्रम का जीवन व्यतीत किया। उसका राज्य-काल भारत में ही नही वरन् एशिया के इतिहास में क्रान्ति व विप्लव का काल था। बलबन ने अपूर्व उत्साह तथा अदम्य साहस और धैर्य्य से ऐसे युग में अपने पद तथा गौरव की रक्षा ही नहीं की वरन् उसके सम्मान तथा प्रतिष्ठा में आश्चर्य-जनक वृद्धि की। उसके मन्त्री बनने से पहले इल्तुतमिश के उत्तराधिकारियो ने देहली-साम्राज्य की मान-मर्यादा को मिट्टी में मिला दिया था। परन्तु बलबन ने अपनी गम्भीरता, वीरता एवं दृढता द्वारा इसके गौरव को पुनः उच्च श्रेणी पर पहुँचा दिया। उसके दरबार की शान देखने योग्य थी बड़े सुन्दर आभूषण तथा वस्त्र से सुसज्जित हो वह दरबार में सिंहासन ग्रहण करता और इतना गम्भीरता-पूर्ण आचरण करता कि किसी को हंसने का या तुच्छ बात कहने का साहस भी न होता था। राज्य-पद की वह इतनी उच्च भावना रखता था कि अपने सेवकों के सम्मुख भी अपनी पूर्ण पोशाक में ही आता था। उसका अनुशासन इतना कठोर था कि उसके इष्ट मित्र भी दरबार में व्यंग्य-पूर्ण आचरण करने का साहस न करते थे। वह निम्न श्रेणी तथा तुच्छ वर्ग के मनुष्यों से मिलना पसन्द न करता था। पदाधिकारियों की नियुक्ति में वह उच्च वंश का सदैव ध्यान रखता था। और भूल कर भी निम्न श्रेणी के मनुष्यो को कोई जिम्मेदार पद देने को तैयार न था। युवावस्था के आरम्भ में वह मदिरापान करता था। परन्तु सुल्तान होने के पश्चात् उसने मदिरापान तथा अन्य इस प्रकार के आमोद-प्रमोद में भाग लेना सर्वथा बन्द कर दिया। धार्मिक उत्सवों में वह पूर्ण भाग लेता था तथा नियमपूर्वक जुम्मे की नमाज में जाता था। वह सदैव विद्वान् और पवित्र मनुष्यों की संगति में रहता था। और उनके साथ ही भोजन इत्यादि करता था। प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो उसकी सभा का रत्न था। यही नहीं वह स्वयं साधुओं तथा विद्वानों के निवास-स्थान पर जाता था। आखेट उसे बहुत प्रिय था। विद्रोहियों और विधर्मियों के प्रति उसका व्यवहार बहुत कठोर था। क्रोध की दशा में वह अपने को पूर्णतया भूल जाता था। तुगरिल के समस्त सम्बन्धियों व साथियों का प्राण दण्ड और इस प्रकार के अनेकों उदाहरण इसको पूर्णतया सिद्ध करते हैं कि न्याय की दृष्टि में उसके प्रति अपने निकट सम्बन्धी तथा साधारण वर्ग एक समान थे; परन्तु

इस कठोरता के पीछे एक सच्चे पिता की आत्मा तथा प्रेम निहित था। बुगराखाँ को कठोर आदेश तथा शिक्षा देने के पश्चात् जब वह बंगाल छोड़कर चलने लगा तो पितृप्रेम से गद्‌गद् हो उठा और उसे छाती से लिपटा कर अपनी प्रेम-पिपासा शान्त की। अपने पुत्र महमूद की मृत्यु से उसे इतना दुख हुआ कि वह मर ही गया।

बलबन की वीरता तथा धैर्य्य प्रशसनीय है। मंगोल-आक्रमणकारियो को परास्त करने तथा अनेक विद्रोह शान्त करने में उसने इसका पूर्ण परिचय दिया। सफल सेनानायक के साथ-साथ वह एक श्रेष्ठ शासक भी था।

उसने गद्दी पर बैठते ही समझ लिया था कि भारत जैसा विशाल देश तलवार के बल पर एक सूत्र में बद्ध नही किया जा सकता। सुव्यवस्था इसके लिये अनिवार्य है इसलिए उसने शासन-प्रबन्ध की ओर विशेष ध्यान दिया। समस्त राज्य को डाकुओ व लुटेरो से मुक्त कर उसने शान्ति स्थापित की। यदि बलबन ऐसे समय के बदले, जबकि मंगोलो का प्रत्येक क्षण भय लगा रहता था, किसी अन्य समय में अवतीर्ण होता तो भारत के श्रेष्ठ सम्राटो तथा महान् विजेताओ मे उसकी गणना होती।

**कैकबाद तथा गुलाम वंश का पतन ( १२८६ ई० से १२९० ई० ).—** बलबन की मृत्यु के पश्चात् गुलाम वश पतन की ओर अग्रसर हुआ। भय तथा सकट के उस काल में व्यवस्था बनाये रखने के लिये बादशाह का व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली होता है। जब किसी योग्य शासक की मृत्यु के पश्चात अथवा उसकी अनुपस्थिति में उसके स्थान की पूर्ति करने वाला योग्य उत्तराधिकारी नही होता तो साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो पतन की ओर अग्रसर हो जाता है। यही हाल गुलाम वंश के समय मे हुआ। बलबन के बाद उसके उत्तराधिकारियो में कोई ऐसा न था जो उसके साम्राज्य को संभाल सकता। फल यह हुआ कि वह साम्राज्य, जिसको बलबन और इल्तुतमिश ने खून पसीने से सीचा था, पतन की ओर चल दिया। बलबन ने महमूद के पुत्र कैखुसरो को अपना उत्तराधिकारी चुना था। परन्तु फखरुद्दीन कोतवाल-देहली ने उसको अधिकार से वचित कर बुगराखाँ के पुत्र कैकबाद को गद्दी पर बैठाया जो नासिरुद्दीन मुहम्मद बुगराखाँ के नाम से सुल्तान हुआ। बुगराखाँ ने इस पर कोई आपत्ति नही की। कैकबाद का लालन-पोषण कठोर देख-रेख मे हुआ था। बाल्य-काल से उसे भोग-विलास की सामग्री तथा मदिरापान इत्यादि से सर्वथा वचित रक्खा गया था। ऐसा राजकुमार अकस्मात् अपने आपको एक विशाल साम्राज्य के ऐश्वर्य में पा सब कुछ भूल गया और प्रथम श्रेणी का विलास-प्रिय हो गया। जब कि कैकबाद प्रतिक्षण भोग-विलास में व्यस्त तथा मदिरा के नशे में

चूर पड़ा रहता था तब राजकार्य मलिक निजामुद्दीन जो फखरुद्दीन कोतवाल-देहली का भतीजा था, करता था।

निजामुद्दीन की महत्वाकाँक्षायें :—निजामुद्दीन महत्वाकांक्षी मनुष्य था। कैकबाद की यह दशा तथा बुगराखाँ की अनुपस्थिति देखकर उसने राज-गद्दी पर अधिकार करना चाहा। उन सब अमीरों को, जो बलबन और इल्तुतमिश के समय से साम्राज्य के स्वामिभक्त तथा सेवक रहे थे, उसका आचरण खटकने लगा। परन्तु निजामुद्दीन की महत्वाकांक्षा बढ़ती ही गई। उसने सोचा कि वह अपनी मनोकामना में तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कैखुसरो को जिसे बलबन ने उत्तराधिकारी नियुक्त किया था अपने मार्ग से न हटा दे। इसलिये उसने कैकबाद को बहका कर कैखुसरो को सीमाप्रान्त से, जहाँ वह गवर्नर था, देहली बुलवाया और मार्ग में रोहतक के निकट उसका वध करा दिया।

इस सूचना के प्राप्त होते ही अमीर और मालिक भयभीत हो गये। सबको अपनी आत्मरक्षा की पड़ गई। इधर निजामुद्दीन का व्यवहार निरन्तर अधिक सन्देहपूर्ण होता गया। उसने कई प्रभावशाली अमीरों का अत्यन्त निरादर किया। उसी समय पंजाब पर मंगोल आक्रमण हुआ। सौभाग्य से वह परास्त हुए। इस पर निजामुद्दीन ने समस्त मंगोलों पर जो पहले गुलाम वंशीय सुल्तानों के समय देहली के निकट बस गये थे और जिन्होंने मुसलमान धर्म स्वीकार कर लिया था, यह आरोप लगाया कि यह स्वदेशी मंगोल भाइयों से गुपचुप मैत्री रखते हैं, अतः इन सब को प्राण-दण्ड दिया जावे। कैकबाद निजामुद्दीन के हाथों की कठपुतली हो चुका था, उसने उन सब को प्राण-दण्ड दे दिया। वृद्ध फ़खरुद्दीन ने निजामुद्दीन को समझाया, परन्तु उसने कोई परवाह न की; क्योंकि वह कैखुसरो; मंगोल और प्रभावशाली अमीरो को अपने मार्ग से हटाना चाहता था। इस प्रकार राजधानी में दो विरोधी दल बन गये। एक खिलजी-दल दूसरा तुर्क-दल और दोनों राजसत्ता प्राप्त करने के इच्छुक रहने लगे। जब बुगराखाँ को इस स्थिति का पता चला तो वह देहली आया और उसने अपने पुत्र कैकबाद को साम्राज्य संभालने की शिक्षा दी परन्तु उसने कोई परवाह न की। निराश हो बुगराखाँ वापिस लौट गया। इसी समय मदिरापान की अधिकता के कारण कैकबाद पर फालिज पड़ गया। अब राज-कार्य बिल्कुल अस्त-व्यस्त हो गया। ऐसे समय में जलालुद्दीन खिलजी ने कुछ तुर्क अमीरों को अपनी ओर तोड़ लिया और अपने दल तथा उक्त अमीरों की सहायता से कैकबाद का वध कर उसके शव को यमुना में फेंक स्वयं सुल्तान बन बैठा। इस प्रकार उसने खिलजी वंश की नींव डाली।

**दास काल और उसकी विशेषतायें :**—१२०६ से १२६० ई० तक के ८४ वर्ष के समय पर्यन्त दस सुल्तान दिल्ली के सिंहासन पर भारत के शासक ए जो दास अथवा दासो के आत्मज थे। इन बादशाहो को हम तीन श्रेणियो में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम कुतुबुद्दीन और उसके वशज, जो साम्राज्य के सस्थापन की भूमि तैयार कर द्वितीय सुल्तान आरामशाह के सिंहासनारूढ होते ही विस्मृति में विलीन हो गये। द्वितीय कुतुबुद्दीन का दास शमसउद्दीन, इल्तुनमिश तथा उसके उत्तराधिकारी, जिन्होने पूरे छप्पन वर्ष तक राज्य किया। तीसरे शमसी दासो का नेता बलबन तथा उसके वशज, जिन्होने ४४ वर्ष तक भारतवर्ष को सुरक्षा तथ सुव्यवस्था प्रदान की। इन दस दास बादशाहो ने ऐसे समय तथा ऐसी विचारधारा में शासनभार सभाला कि दस में से कुतुबुद्दीन, इल्तुनमिश और बलबन केवल तीन का ही मृत्यु शय्या पर देहान्त हुआ। शेष सात का षडयन्त्रो द्वारा अथवा अपने अधिकार-रक्षा में युद्ध-स्थल में वध हुआ। इससे सिद्ध होता है कि यह समय अनिश्चिन्तता का युग था। जिसमें किसी सुल्तान का अधिकार सुरक्षित न था। मुसलिम सिद्धान्तानुसार उत्तराधिकार पैत्रिक न था, वरन् जनता की इच्छा पर निर्भर था, जो एक व्यक्ति को उसकी योग्यता द्वारा ही दिया जा सकता था। अत जब कोई शासक अयोग्य तथा अकर्मण्य सिद्ध हुआ तभी जनता ने उसे गद्दी से उतार अन्य व्यक्ति को सुल्तान घोषित कर दिया। इस प्रकार के विप्लव मुसलिम-सिद्धान्तो में ही निहित थे। परन्तु ऐसे समय में जब यातायात के साधन सुलभ न थे। भारत जैसे विशाल देश में निर्वाचन द्वारा किसी योग्य शासक का निश्चित करना असम्भव था। अत निर्वाचन अधिकार समस्त जनता के स्थान पर प्रभावशाली अमीरो तथा दरबारियो तक ही सीमित हो गया। परन्तु इस सीमित निर्वाचन का सचालन तथा उसके निर्णय को मान्य बनाने की कोई व्यवस्था न होने के कारण यह अधिकार तलवार के बल में परिणत हो गया। जिसमें शौर्य तथा सैन्य सबलता अधिक हुई वही सुल्तान बन बैठा। दूसरी ओर कुतुबुद्दीन के पुन आरामशाह तथा शमशउद्दीन के अयोग्य उत्तराधिकारिया का अयोग्यता के कारण पदच्युत होना यह सिद्ध करता है कि अयोग्यता तथा अकर्मण्यता मुसलिम जनता को असह्य थी। यह ठीक भी था, यदि ऐसा न होता तो मगोल आक्रमण तथा हिन्दू राजाओ का असन्तोष, जो अपनी स्वतन्त्रता का अपहरण न भूले थे, मुस्लिम-साम्राज्य के अस्तित्व को ही मिटा डालते।

मुसलिम राजवाद के सिद्धान्त के साथ-साथ यह भी सकेत करना आवश्यक प्रतीत होता है कि अमीरो का एक वर्ग सदैव यह प्रयत्न करता रहा कि उत्तराधिकारी पूर्व सुल्तान का वशज ही हो। अर्थात् कुतुबुद्दीन के पश्चात अमीरो के एक भाग ने

उसके पुत्र आरामशाह को सुल्तान घोषित किया। इल्तुतमिश के बाद योग्यता तथा अयोग्यता उसके पुत्रों तथा मन्त्रियों में ही देखी जाती रही। बलबन के पश्चात् उसके प्रपौत्रों को ही सुल्तान घोषित किया गया। इस प्रकार से निर्वाचित तथा पैतृक उत्तराधिकार में एक प्रकार का सामजस्य हो गया था। उत्तराधिकारी योग्य हो परन्तु वह प्रायः पूर्व सुल्तान का ही वंशज हो तो ठीक है। यह पैतृक उत्तराधिकार इतनी जड़ पकड़ गया था कि पुत्रों में यदि कोई योग्य न हो तो अमीर तथा सरदार पुत्रियों तथा पिता के जीवन-काल में ही पुत्रों को सुल्तान मानने को तैयार थे। रज़िया तथा बुग़राख़ाँ के होते हुए उसके पुत्र कैकबाद का गद्दी पर बैठाना इसकी पुष्टि करता है। इस प्रकार दास वंश ने मुसलिम उत्तराधिकार सिद्धान्त में एक विशेष परिच्छेद जोड़ा।

दास-वंश के शासनकाल में यत्र-तत्र अनेक विद्रोह होते रहे। हिन्दू राजा तथा सरदार अवसरानुसार अपनी स्वतन्त्र-सत्ता स्थापित करने को लालायित रहते थे। उनका स्वातन्त्र्य प्रेम उन्हें अपने अधिकृत प्रदेश की प्राप्ति के लिए मर मिटने का प्रोत्साहन देता था। यदि कोई प्रदेश हाथ से चला जाये तो वर्तमान गुरिल्लाओं की भाँति अवसरानुसार छापे मार कर वह विदेशी सत्ता को क्षति पहुँचाने को तत्पर थे। यही कारण था कि दास वंश के समस्त बादशाह सदैव विद्रोह दबाने में ही व्यस्त रहे। बलबन अपने चालीस वर्ष के निरन्तर संघर्ष द्वारा भी हिन्दुओं को पूर्णतया परास्त न कर सका। उनका स्वाभिमान किसी सत्ता को उच्च मानने की आज्ञा न देता था। यही विद्रोह की जड़ थी।

दास सुल्तान अपनी इस आन्तरिक स्थिति तथा विदेशी मंगोल आक्रमणों की ओर सदैव सतर्क रहे। इसलिए उन्होंने अपनी उत्तरी पश्चिमी सीमा को मंगोलों तथा दक्षिणी पश्चिमी सीमा को राजपूतों के विरुद्ध सुदृढ बनाने के लिए ग्वालियर नागौर, सरहिंद, हाँसी, भटिंडा, समाना, उच्छ, मुल्तान और लाहौर में दुर्ग स्थापित कर उन्हें योग्य जागीरदारों के सुपुर्द किया। इसी प्रकार वर्तमान उत्तर प्रदेश में सम्भल, बदायूँ, अवध अलीगढ़ में गढ बनाने से पहाड़ी हिन्दू राजाओं तथा प्रभावशाली हिन्दू सरदारों से अपनी रक्षा करनी चाही। तब भी अमरोहा और सम्भल प्रदेश में ऐसे भयंकर तथा विद्रोह हुए कि खून की नदियाँ बह गईं।

**दास सुल्तानों की जागीर प्रथा:**—दास वंश को अपनी आन्तरिक स्थिति दृढ़ बनाने के लिए अपने प्रभावशाली अमीरों को भी अधिकार देना आवश्यक था, जिससे वह भी अपने आपको एक छोटा सा सुल्तान समझ कर सन्तुष्ट रहें। अतः उनकी जागीर-प्रथा पूर्णतया समयानुकूल थी।

दास सुल्तानों की कठिनाइयों का परिणाम:—दास सुल्तान सदैव सकट से घिरे रहे। मुगोल, हिन्दू, राजपूत, ग्रमीर सरदार, यह सब इतनी सतर्कता चाहते थे कि उन्हें अपनी शासन-व्यवस्था को संभालने तथा उसे निश्चित करने का समय ही न मिल सका। और न वह कला तथा साहित्य की ओर ही अधिक ध्यान दे सके। हिन्दुओं के व्यक्तिगत मामले के लिये पचायत तथा उनकी न्याय-व्यवस्था को उन्होंने वैसा ही छोड़े रक्खा। मुसलमानों के लिए उन्होने काजी-न्यायालय स्थापित किये।

इतना होते हुए भी दास सुल्तान भारत जैसे आत्माभिमानी देश में साम्राज्य की जड़ दृढ़ करने में सफल हुए, यह प्रशसनीय है।

## प्रश्न

१—दास वंश का सस्थापक कौन था? उसके विषय में तुम क्या जानते हो?
२—इल्तुतमिश ने अपने प्रतिद्वन्दियों पर किस प्रकार विजय प्राप्त की?
३—इल्तुतमिश के समय चगेजखाँ क्यों भारत पर चढ़ आया? उसके आक्रमण का क्या परिणाम हुआ?
४—इल्तुतमिश ने किस प्रकार तुर्क साम्राज्य को सगठित किया?
५—रजिया के विषय में तुम क्या जानते हो?
६—बलबन ने अपने प्रधान मत्री काल में क्या राज्य कार्य किये?
७—बलबन का चरित्र-चित्रण करो।
८—दास वश का अन्त कैसे हुआ?
९—दास काल की क्या विशेषतायें थीं?

---

## अध्याय २५

# खिलजी वंश(१२९०—१३२० ई०)

जलालुद्दीन—कैकबाद के वध के पश्चात जलालुद्दीन देहली की गद्दी पर बैठा। देहली के निकट किलुगढी में एक सभा में उसका राज्याभिषेक हुआ।

जनता में असंतोष तथा विद्रोह:—यद्यपि कैकबाद के वध के पश्चात् जलालुद्दीन सुल्तान् बन गया था। तो भी बलबन-वर्ग और खिलजी-वर्ग की तनातनी के कारण उसने एक वर्ष तक किलुगढी को अपनी राजधानी बनाये रक्खा और वहीं अमीरों और व्यापारियों को अपना निवास-स्थान बनाने की आज्ञा दी। जलालुद्दीन

की अवस्था उस समय ७० वर्ष की थी, वह अत्यन्त नम्र तथा दयालु बादशाह था। वह युद्ध के सर्वथा विरुद्ध था। वह अपनी अत्यधिक नम्रता के कारण १३ वी शताब्दी में जब कि चारों ओर षड़यन्त्रों तथा सीमा-प्रान्त पर मंगोलों का भय लगा रहता था, सुल्तान होने के योग्य न था। जलालुद्दीन के राज्य-काल के दूसरे वर्ष में मलिक छज्जू नामक कड़ा के जागीरदार ने, जो बलबन का भतीजा था, विद्रोह कर दिया। अन्य कई अमीर भी उसके साथ मिल गये। जनता ने भी उसका साथ दिया और वह अपने वंशजो के साम्राज्य पर अधिकार करने के लिए देहली की ओर चल दिया।

**सुल्तान की सहिष्णुता** :—सुल्तान ने तुरन्त एक सेना उसका सामना करने के लिए भेजी। उसके ज्येष्ठ पुत्र अरकलीखाँ ने विद्रोहियों को पूर्णतया परास्त किया। मलिक छज्जू जो एक किले में जा छिपा था पकड़ा गया, और सुल्तान की सेवा में भेज दिया गया। उसके अन्य साथी बन्दी बना लिये गये और फटे पुराने वस्त्र पहिना कर सुल्तान के सामने पेश किये गये। मलिक छज्जू तथा नसके साथ जाललुद्दीन के व्यवहार को वर्णन करने से पहिले यह कह देना उचित प्रतीत होता है कि जब कैकबाद के वंशज मलिक छज्जू ने कड़ा में विद्रोह किया तो जनता ने भी खुशी मनाई। जिससे यह प्रगट होता है कि जन साधारण खिलजी वंश की इस अनाधिकार चेष्टा से प्रसन्न न थे। अपने अधिकार को दृढ़ बनाने के लिए जलालुद्दीन को फूँक-फूँक कर कदम रखना आवश्यक था। इसलिए उसने प्रारम्भ से ही बलबन के वंशजों के प्रति बड़ी श्रद्धा प्रगट की। उसने मुइज्जी महल को, जो बलबन अपूर्ण छोड़ गया था, पूर्ण कराया और उसे चित्रकारो से विभूषित कराया। इस प्रकार अपने आपको बलबन का सेवक प्रगट कर उसने जनता के हृदय में जगह कर ली। अन्य तुर्क सरदारों को उच्च पद प्रदान कर उसने सन्तुष्ट कर दिया। यही कारण था कि जब मलिक छज्जू के साथियों को बुरी दशा में सुल्तान के सामने लाया गया तो सुल्तान उनकी दयनीय दशा देख कर रोने लगा। उसने उनके साथ अच्छा बर्ताव किया और उनको स्नान कराने तथा अच्छे वस्त्र पहनाने की आज्ञा दी और बोला कि तुम्हारा कोई दोष नही है क्योंकि तुमने अपने पहले स्वामी का नमक हलाल करने का प्रयत्न किया। मलिक छज्जू मुल्तान भेज दिया गया। वहाँ उसके साथ अच्छा बर्ताव किया गया और उसके साथी क्षमा कर दिये गये।

**सुल्तान की उदारता की समालोचना**:—सुल्तान जलालुद्दीन ने बलबन के वंशज इलबारी तुर्कों के साथ जो उदारता का व्यवहार किया इससे उन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा, परन्तु १३ वी शताब्दी में इतनी उच्च श्रेणी की उदारता उचित

न थी। खिलजी सरदारो ने इसे सुल्तान की मूर्खता तथा कमजोरी समझ असन्तोष प्रगट किया और विद्रोहियो का वध करने पर आग्रह किया। परन्तु जलालुद्दीन ने कहा कि मैं ऐसा करने के बदले प्रसन्नता से राजगद्दी छोड दूँगा। इस प्रकार के आचरण से एक लाभ अवश्य हुआ कि बलबन वर्ग, जो खिलजी-वर्ग के ही समान शक्तिशाली था और जिसके साथ प्रजा की सहानुभूति भी थी, शान्त हो गया। कडा की जागीर उसने अपने भतीजे तथा दामाद अलाउद्दीन को दे दी। परन्तु जलालुद्दीन की नम्रता अन्तिम सीमा पर पहुँच गई थी। चोरों और डाकुओ को भी क्षमा करना प्रारम्भ कर दिया था। उसके इस प्रकार के व्यवहार से जनता में असन्तोष तथा शासन में खराबी पैदा होने लगी। जनता के हृदय में से राजा का भय सर्वथा उठ गया। अमीर खुल्लम खुल्ला षड्यन्त्री गीत गाने लगे। बात यहाँ तक बढी कि एक बार मदिरा-समारोह में अमीरो ने जलालुद्दीन की अत्यन्त समालोचना की। समालोचना में कुछ अन्य लोगों ने मिल कर औचित्य का सर्वथा उल्लघन कर दिया। उनमें से एक ने यहाँ तक कह दिया कि सुल्तान के टुकडे-टुकडे कर मैं ताजउद्दीन को गद्दी पर बैठा दूँगा। जब सुल्तान को यह पता लगा तो उसने इन अमीरो को बहुत बुरा भला कहा। सुल्तान क्रोधान्ध हो उठा और तलवार पृथ्वी पर फेंक कर गर्जना करते हुए कहने लगा कि देखूँ कौन मेरे प्राण लेने का साहस करता है। परन्तु मलिक नसरतशाह ने बादशाह के क्रोध को शान्त कर दिया और अमीरों को भविष्य में ऐसा आचरण न करने की प्रतिज्ञा दिला कर क्षमा कराया।

सीदी मौला —जलालुद्दीन की कठोरता का केवल एक उदाहरण इतिहास में मिलता है। वह सीदीमौला नामक एक फकीर के साथ किया गया। बतलाया जाता है। कि यह फकीर गयासुद्दीन बलबन के समय उत्तरी प्रदेश से देहली आया। वह अत्यन्त सादा पुरुष था। उसने एक शानदार मठ की स्थापना कर उसके सभालने तथा गरीबो को भोजन तथा वस्त्र बाँटने में बहुत रुपया लगाया। उसके इस खर्च को देख कर सब लोग चकित रहते थे।

यही नही, वर्ष में दो बार वह इतनी शानदार दावत करता कि अच्छे से अच्छे अमीर भी न कर सकते थे। मौला की इस करामात को देखकर लोग उस पर श्रद्धा रखने लगे। सुल्तान का ज्येष्ठ पुत्र खानखाना उसका शिष्य हो गया। उसकी देखा देखी कई अमीर भी उसकी सगति करने लगे और वहाँ राजनैतिक बातो पर विचार विनिमय होने लगा। वहाँ एक दिन काजी जलाल काशानी के प्रस्तावानुसार यह तय पाया कि एक विशेष दिन जुम्मे की नमाज में सुल्तान का वध कर मौला को खलीफा घोषित कर दिया जावे और काजी स्वय को सुल्तान का शासक बना दिया

जावे, परन्तु षड्यन्त्र का भेद खुल गया और सब षड्यन्त्रकारी पकड़े गये। मौला दर्बार में लाया गया और सुल्तान ने शेख अबबकर के शिष्यों को सम्बोधित करके कहा, "आदरणीय साधुओ ! क्या आप लोगों में से कोई साधु नाम को गंदा करने वाले इस मौला से षड्यन्त्र का बदला नही ले सकता ?" तुरन्त उनमें से एक ने उठ एक उस्तरे से मौला पर आक्रमण किया और उसको बुरी तरह घायल कर दिया और अर्कलीखाँ ने तुरन्त एक पीलवान को आज्ञा दी कि वह साधु को अपने हाथी से कुचलवाये। इस प्रकार सीदीमौला को प्राण-दण्ड मिला। काजी, जो अधिक दण्ड का अधिकारी था, बदायूँ भेज दिया गया। उसके साथियों को कठोर दण्ड दिया गया। उसी दिन एक प्रलयकारी तूफान आया और उसी वर्ष दुभिक्ष पड़ा। लोगों ने इसका यह अर्थ लगाया कि यह सीदीमौला के वध का परिणाम है।

रणथम्भोर पर आक्रमण :—१२६० ई० में रणथम्भोर के प्रसिद्ध दुर्ग पर आक्रमण किया गया। राजा ने अपने साथियों सहित किले में प्रवेश कर द्वार बन्द कर दिया। देहली की सेना किले का घेरा डाले पड़ी रही। परन्तु कुछ न कर सकी। सुल्तान ने सफलता की आशा न देख घेरा उठाने की आज्ञा दी, और बोला कि एक दुर्ग की विजय के बदले एक मुसलमान का रक्त अधिक महत्व रखता है। अतः सहस्रों मुसलमानों की वलि देकर एक किला जीतने से उसका न जीतना कहीं अच्छा है। अहमदशाह इत्यादि सुल्तान के अन्य साथियों ने सुल्तान की इस प्रकार की दुर्बलता की हानियों को समझाया परन्तु उसने एक न सुनी।

मंगोल आक्रमण :—१२६२ ई० में हुलाकूखाँ के पौत्र अब्दुल्ला ने असंख्य दल से भारत पर आक्रमण किया। सुल्तान ने एक विशाल सेना ले उसका सामना किया। मंगोल परास्त हुये, दोनों दलों में संधि हो गई और अब्दुल्ला स्वदेश लौट गया। परन्तु उलुग नामक चंगेजखाँ का पौत्र अपने कुछ साथियों सहित यहाँ रह गया। सुल्तान ने अपनी एक पुत्री का विवाह उससे कर दिया। उन्होंने इस्लाम-धर्म स्वीकार कर लिया। उनके बसने के लिये भूमि इत्यादि की व्यवस्था कर दी गई। परन्तु भारतवर्ष की जलवायु उनके अनुकूल न थी। अतः उनमें से अधिकतर अपने देश लौट गये और शेष यहीं रह गये, तथा यहीं के लोगों में मिल-जुल गये।

मंदौर पर आक्रमण :—इसके पश्चात सुल्तान ने मंदौर प्रदेश पर आक्रमण किया। उसके भतीजे तथा दामाद अलाउद्दीन ने भिलसा पर विजय प्राप्त कर असंख्य द्रव्य सुल्तान की सेवा में भेजा, जिससे प्रसन्न होकर सुल्तान ने अवध की जागीर उसे प्रदान कर दी। भिलसा में ही अलाउद्दीन ने देवगिरी के यादव

राज्य की धन-धान्यता की प्रशंसा सुनी और बिना सुल्तान की आज्ञा लिये उस पर आक्रमण करने चल दिया।

अलाउद्दीन :—अलाउद्दीन अत्यन्त महत्वाकांक्षी मनुष्य था। भिलसा की विजय के पश्चात् जैसे ही वह दिल्ली क्षेत्र से बाहर हुआ उसकी आकांक्षायें जाग्रत हो गईं, और वह देवगिरी के अपार धन को, जिसके बारे में उसने अनेकों कहानियाँ सुनी थीं, प्राप्त करने के लिये लालायित हो उठा। इसके अतिरिक्त अपनी स्त्री तथा उसकी माता के निरन्तर झगडों के कारण वह देहली क्षेत्र से बाहर किसी दूर प्रदेश में अपनी भाग्य परीक्षा करना चाहता था। अतः सुल्तान से अपनी इच्छा प्रकट किये बिना ही चन्देरी राज्य पर आक्रमण करने की आज्ञा ले उसने देवगिरी की ओर प्रस्थान किया और ८००० आठ हजार घुडसवारों को ले इलीचपुर पहुँचा।

अलाउद्दीन का देवगिरी पर आक्रमण :—यहाँ से देवगिरी से १२ मील की दूरी तक वह बिना किसी विरोध के पहुँच गया। उसने अपने विचार का कोई प्रदर्शन न किया। वरन् उसने यह प्रगट किया कि "मैं अपने चचा सुल्तान जलालुद्दीन से क्षुब्ध होने के कारण राजमुन्दरी के राजा के यहाँ नौकरी करने जा रहा हूँ।" भाग्यवश देवगिरी में इस समय पर्याप्त सेना न थी, क्योंकि राजा रामचन्द्र का पुत्र शंकरदेव अपनी सेना सहित दक्षिण में तीर्थयात्रा को गया हुआ था। अलाउद्दीन ने यह स्वर्ण अवसर देखा और तुरन्त देवगिरी की ओर चल दिया। राजा ने शीघ्रता से दो, तीन सहस्र नवयुवकों की सेना एकत्रित कर, अलाउद्दीन को रोकने भेजा। परन्तु यह सेना परास्त हुई और रामचन्द्र यादव ने अपने आपको देवगिरी के किले में बन्द कर मुसलमानों के आक्रमण को सहन करने का इरादा किया। इसी बीच में मुसलिम सेना नगर में प्रवेश कर गई और वहाँ ब्राह्मणों तथा धनी व्यापारियों को पकड कर मारने तथा लूटने लगी। अलाउद्दीन ने नागरिकों का नैतिक साहस तोड़ने के लिये यह अफवाह फैला दी कि उसका चचा जलालुद्दीन खिलजी बीस हजार सिपाहियों की विशाल सेना लिए दक्षिण विजय के लिये आ रहा है। जब राजा रामचन्द्र ने यह सुना तो उसका साहस टूट गया और उसने अलाउद्दीन ही से संधि करने में भलाई समझी। अलाउद्दीन ने भी यही ठीक समझा, क्योंकि वह समझता था कि यदि शंकरदेव अपनी सेना सहित वापस आ गया तो स्थिति बिल्कुल खराब होने का भय है, और पराजय की दशा मे वह समझता था कि खानदेश, मालवा तथा गोंडवाना प्रदेश से जीवित जाना न होगा। सन्धि हो गई रामचन्द्र ने ५० मन सोना, ७ मन हीरे जवाहिरात, चालीस हाथी, कई सहस्र घोडे तथा नगर का लूट का माल देने का वचन दिया। परन्तु इसी समय शंकरदेव वापस

आ गया, और वह सन्धि की अन्तिम धारा अर्थात् लूट का माल ले जाने से सहमत न हुआ। उसने अलाउद्दीन से लूट का माल वापिस करने के लिए कहा, परन्तु अलाउद्दीन इससे सहमत न हो सका। अतः शंकरदेव से युद्ध करना अनिवार्य हो गया। एक हज़ार सेना दुर्ग में घेरे के लिये छोड़कर अलाउद्दीन शेष सेना ले शंकरदेव से युद्ध करने चल दिया, परन्तु शंकरदेव की विशाल सेना से परास्त हुआ। इसी बीच में एक हज़ार सैनिक, जो किले का घेरा डाले पड़े थे; छोड़कर आ गये और परास्त सेना में नई स्फूर्ति का संचार हो गया। हिन्दू सेना ने समझा कि सुल्तान जलालुद्दीन की फौज देहली से आ गई है। उनका साहस टूट गया। विजय पराजय में परिणित हो गई। विजय प्राप्त करने के पश्चात् अलाउद्दीन वापस आया और किले का घेरा और कठोर कर दिया। अब रामचन्द्रदेव को और भी कड़ी शर्तें मानने के लिए बाध्य किया गया। उससे कहा गया कि एक मुसलमान सेना देवगिरि में रखनी पड़ेगी और उसका खर्च यादवराव को एलीचपुर प्रदेश देकर सहन करना पड़ेगा। इस प्रकार असंख्य धन ले एक शानदार सफलता के साथ अलाउद्दीन वापस लौटा।

**अलाउद्दीन की विजय पर जलालुद्दीन की प्रसन्नता :**—जब जलालुद्दीन को इस सफलता का पता चला, तो वह फूला न समाया। उसने उसकी खुशी मनाने के लिए प्रीति-भोज किये और अमीरों से विचार विनिमय किया कि उसे स्वयं अलाउद्दीन से भेंट करने चला जाना चाहिए, या नहीं। अहमद ने इसके लिए मना किया और इसके विरुद्ध उसको मार्ग में ही रोकने की सम्मति दी जिससे कि लूट का माल उससे प्राप्त हो सके। सुल्तान ने इस सम्मति की पूर्णतया अवहेलना की और राजधानी को वापस चला आया। कुछ दिन पश्चात् अलाउद्दीन ने उसकी सेवा में एक पत्र भेजा। उसमें लिखा था कि यदि आप आज्ञा दें और मुझे मेरी रक्षा का विश्वास दिलावें, तो मैं दक्षिण की लूट का माल भेंट करने के लिए आपकी सेवा में उपस्थित हो जाऊँ।" सीधे साधे सुल्तान ने आज्ञा दे दी, और अपने दो विश्वासपात्र पदाधिकारियों को अलाउद्दीन की सेवा में भेजा। परन्तु उन्होंने अलाउद्दीन तथा उसकी सेना का आचरण बिलकुल विरुद्ध पाया। इसी बीच अलाउद्दीन का भाई इलमासबेग देहली आया और बोला कि अलाउद्दीन सुल्तान से इतना भयभीत है कि आत्महत्या करने अथवा साम्राज्य को छोड़ किसी सुरक्षित स्थान पर भाग अपनी भाग्यपरीक्षा करने के लिए उद्यत है। सुल्तान बातों में आ गया, और स्वयं कुछ अपने साथियों सहित उससे भेंट करने कड़ा की ओर चल दिया।

**सुल्तान का वध और अलाउद्दीन का सुल्तान होना :**—सीधा-साधा सुल्तान जैसे ही अलाउद्दीन से गले मिलने के लिये आगे बढ़ा, त्यों ही अलाउद्दीन ने

अपने साथियो को सुल्तान पर आक्रमण करने का सकेत कर दिया, तथा उसका वध करा दिया। तत्पश्चात् अपने आपको सुल्तान घोषित कर रास्ते में अपार धन बखेरता हुआ वह देहली की ओर चल दिया।

**अलाउद्दीन की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ:**—गद्दी को सुरक्षित करने के लिए उसके सामने कई कठिनाइया थी। प्रथम जलाली अमीर अभी अपने स्वामी जलालुद्दीन की हत्या को नही भूले थे, और उसका बदला लेने के इच्छुक थे। दूसरे मलका जहाँ सुल्ताना जलालुद्दीन की बेगम अपने पुत्र अर्कअलीखाँ और कद्रखाँ को बादशाह बनाने का षड्यन्त्र रच रही थी। तीसरे, जनता अलाउद्दीन के घृणित कार्य का विरोध करने को तैयार थी।

**कठिनाइयां पर विजय**—अलाउद्दीन ने अमीरो को उच्चपद तथा अमूल्य भेंट से अन्धा कर दिया। इसी प्रकार जनता में बहुत-सा द्रव्य बाँटा गया इससे उसने उनके हृदय में जगह करली। कडा से आते हुए प्रत्येक विश्राम-स्थान पर वह पाँच मन सोना प्रजा में वितरित करता था। जब वह देहली के निकट पहुँचा तो कद्रखाँ जिसे मलका सुल्ताना ने सुल्तान घोषित कर दिया था, जलालुद्दीन का विरोध करने के लिए आगे बढा। मलका ने अपने दूसरे पुत्र अरकअलीखाँ को भी, जो मुल्तान का हाकिम था, अलाउद्दीन का विरोध करने के लिए पत्र रवाना किया। परन्तु उसने लिख भेजा कि अमीरो के असहयोग तथा अलाउद्दीन की विशाल सेना को देखते हुए विजय प्राप्त करना असम्भव है। इधर रात में ही कद्रखाँ की सेना का एक भाग अलाउद्दीन से जा मिला जिसे देखकर वह स्वय कुछ घोडे तथा अपने साथी लेकर मुल्तान चला गया। अब अलाउद्दीन ने देहली में प्रवेश किया और गद्दी प्राप्त की। अमूल्य भेंट तथा उच्च पद दे उसने जनता तथा अमीरो का हृदय मोल ले लिया। प्रसिद्ध इतिहासकार बरनी लिखता है कि जनता तथा अमीर अलाउद्दीन के सोने से इतने अन्धे हो गये, कि उन्होने उसके अन्याय का जिक्र भी न किया, और जलालुद्दीन की अयोग्यता तथा कायरता के गीत गाने लगे। वे अलाउद्दीन के भाग्य, वीरता, और धैर्य की मुक्त-कंठ से सराहना करने लगे।

गद्दी पर बैठते ही अलाउद्दीन ने अलफखाँ और जफरखाँ अपने प्रसिद्ध सेनापतियो को जलालुद्दीन के पुत्रो को बन्दी बनाने के लिए मुल्तान की ओर भेजा राजकुमार पकडे गये तथा वापसी में हाँसी के पास वे दोनो अन्धे कर दिये गये। मलका जहाँ बन्दी बना ली गई। आगे चलकर उसका वध कर दिया गया।

**अलाउद्दीन की सीमान्त नीति:**—इस प्रकार गद्दी को सुरक्षित कर अलाउद्दीन का ध्यान मगोल आक्रमणो की ओर गया। मगोलो को पूर्णतया परास्त

कर तथा सीमान्त दुर्गों को दृढ़ कर उसने बलवन के कार्य को पूर्ण किया। उसके शासन-काल के दूसरे ही वर्ष मंगोल सरदार अमीर दाऊद एक विशाल सेना ले मुल्तान, सिंध तथा पंजाब विजय के लिए भारत पर चढ़ आया, परन्तु अलग़ख़ाँ ने उसे मार भगाया। अगले वर्ष फिर उन्होंने अपने सरदार सलादी के नेतृत्व में एक विशाल सेना के साथ भारत में प्रवेश किया। इस बार ज़फ़रख़ाँ ने उन्हें परास्त किया; और उनके नेता तथा २००० ( दो हजार ) साथियों को बन्दी कर देहली भेज दिया। परन्तु मंगोलों का सबसे भयंकर आक्रमण १२९९ ई० में हुआ। इस बार कुतलग ख्वाजा अपनी असंख्य सेना से देहली पर चढ़ आया। राजधानी में भगदड़ मच गई। तुरन्त ज़फ़रख़ाँ और अलग़ख़ाँ उसके विरुद्ध लड़ने भेजे गये। सुल्तान स्वयं बारह हज़ार वीर सामन्तों को लेकर युद्ध-स्थल में पहुँचा। मंगोल परास्त हुए परन्तु वीर सेनापति ज़फ़रख़ाँ इस युद्ध में काम आया। ज़फ़रख़ाँ की प्रशंसा मंगोलों ने भी बहुत की है। उसका नाम इतना डरावना हो गया कि मंगोल अपने जानवरों तक को उसका नाम लेकर डराने लगे।

अभी इस आक्रमण से अवकाश भी न पाया था कि तारगी नामक मंगोल सरदार एक विशाल सेना ले भारत पर चढ़ आया। निज़ामुद्दीन औलिया की कृपा से यह संकट टल गया। पराजय के होते हुए भी मंगोल आक्रमण बन्द न हुए। और १३०४ ई० में अलीबेग और ख्वाजातारा लाहौर के उत्तर से शिवालिक की तराई से होते हुए, अमरोहा तक पहुँच गये। गाजी तुगलक ने, जो इस समय दीपालपुर का हाकिम था, उन्हें परास्त किया। मंगोल आक्रमण अब भी बन्द न हुए। परन्तु गाजी तुगलक उनको प्रत्येक वार परास्त करने में समर्थ हुआ। १३०७ ई० में इकबालमन्द नामक सरदार के सेनापतित्व में वे एक बड़ी सेना ले भारत पर चढ़ आये। वह परास्त हुआ। और अपने हज़ारों साथियों सहित मारा गया। अब मंगोल इतने भयभीत हुए कि उन्होंने भारत की ओर मुँह न किया। परन्तु अलाउद्दीन ने बलबन की नीति का अनुकरण किया, सीमा-प्रान्त के दुर्ग अस्त्र-शस्त्र और सेना से सुसज्जित रखे, और योग्य सेनापति उनकी रक्षा के लिए भेजे गये।

आन्तरिक नीति :—जलालुद्दीन के पुत्रों से निश्चिन्त होकर अलाउद्दीन ने जलाली सरदारों की ओर ध्यान दिया। वह समझता था कि यह लोग कुछ समय के लिए लोभ के वश हो उसके साथी बन गये हैं। किसी भी समय वे आपत्ति पैदा कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त जो रुपया लेकर अपने पिछले स्वामी को भूल सकते हैं, वह किसी अन्य आदमी से रुपया लेकर अपने वर्तमान स्वामी के विरुद्ध भी हो सकते हैं। इसलिये ऐसे अमीरों का अन्त करना ही उचित होगा। यह सोचकर

अलाउद्दीन ने अपने सेनापति नसरतखाँ को जलाली सरदारो की शक्ति तोडने का काम सौंपा। नसरतखाँ ने उनमें से अनेकों की जायदादें जब्त कर ली। कुछ को मृत्यु दण्ड दे दिया, और कुछ की आँखें निकलवा ली या बन्दीगृह में डाल दिया। इस प्रकार उसने समस्त जलाली सरदारो का नाश कर दिया तथा करोडो रुपयो की सम्पत्ति खज़ाने में जमा कर दी।

गुजरात-विजय—१२९७ ई० में अलफखाँ और नसरतखाँ को गुजरात पर आक्रमण करने के लिये भेजा गया। गुजरात अपने धन के लिए प्रसिद्ध था। उन्होंने अन्हलवाडे का घेरा डाला। राजा कर्ण की रानी कमलादेवी को जिसने आक्रमणकारियों से बचकर भागने का प्रयत्न किया था, पकड लिया गया। समस्त देश पूर्णतया लूट लिया गया, और मुस्लिम सेनापतियो ने सोमनाथ के मन्दिर की मूर्ति जो उस मूर्ति के स्थान पर स्थापित की गई थी जिसे महमूद गजनवी ले गया था, भेंट स्वरूप अलाउद्दीन की सेवा में भेजी। गुजरात का राजा कर्ण तथा उसकी पुत्री देवल देवी ने देवगिरी के यादव राजा रामचन्द्र के यहाँ जाकर शरण ली। अपनी असफलता से उत्साहित हो अलफखाँ, व नसरतखाँ खम्बात के प्रसिद्ध नगर की ओर बढ़े, और उसे लूटा। उन्होंने व्यापारियो से अथाह धन तथा हीरे जवाहिरात भेंट के रूप में लिये। प्रसिद्ध मलिक काफ़ूर नामक दास भी खम्बात की लूट में ही उनके हाथ लगा। उसके साहस तथा योग्यता से मोहित हो अलाउद्दीन उसे उच्च से उच्च पद देता चला गया, और अन्त में वह उसका प्रधानमन्त्री बन गया।

सेना में विद्रोह—गुजरात से वापस आते समय अलगखाँ तथा नसरतखाँ ने मार्ग में सैनिको से उनको लूट का ⅕ भाग माँगा। यह बात सैनिकों को पसन्द न आई। सैनापतियो ने लूट के माल की सही जाँच करने के लिये सैनिकों की तलाशी लेनी आरम्भ कर दी इस पर सैनिको ने विद्रोह कर दिया और नसरतखाँ के भाई इज्जउद्दीन को कत्ल कर डाला, तथा अलगखाँ पर भी आक्रमण किया परन्तु वह भाग निकला। सुल्तान का भतीजा मारा गया। सारी सेना में विद्रोह की आग भडक उठी। बडी कठिनाई से नसरतखाँ शान्ति करने में सफल हुआ। विद्रोही नेता गिरफ्तार कर लिये गये, और उन्हें प्राण-दण्ड दिया गया। कुछ गिरोह बन्द लोग भाग निकले और कुछ ने हिन्दू रियासतो में जा उनकी शरण ली।

विद्रोहियों को कठिन दण्ड—अलाउद्दीन की स्वीकृति से इन विद्रोही लोगों की स्त्रियो तथा बच्चों को बन्दी बना लिया गया। बरनी लिखता है कि अबोध बालको के टुकडे २ कर दिये गये। बच्चों को अपनी माताओ के लिए टुकड़े-बीच में से चीर उन्हें बच्चो के खून से नहलाया गया। स्त्रियो के साथ

वहार किया गया कि वर्णन नही किया जा सकता। इस प्रकार के दण्ड तथा पाशविक कार्यों को देख कर किसका हृदय द्रवित नहीं हो जाता।

**अलाउद्दीन की आकांक्षायें :**—अपने शासन के प्रथम तीन वर्ष अलाउद्दीन की पूर्ण सफलता के दिन थे। उसके सेनापतियों ने प्रसिद्ध विजय प्राप्त कर धन से राज्य-कोष भर दिया। उसके कई पुत्र उत्पन्न हुये। कोई शक्तिशाली अमीर या विद्रोही उसका सामना करने के लिए न रहा तथा उसकी सेना अत्यंत विशाल एवं सुसंगठित हो गई थी। कोई बड़ा विद्रोह भी इस काल में न हुआ। इससे उसकी आकांक्षायें बढ़ गईं। वह एक नया धर्म चलाने तथा सिकन्दर की भांति विश्व-विजय करने के स्वप्न देखने लगा। अपनी इन योजनाओं के विषय में वह विभिन्न प्रकार की बातें किया करता था :—

'खुदा ( परमेश्वर ) ने इस्लाम के प्रवर्तक मुहम्मद साहब को चार प्रभावशाली मित्र दिये थे। उनके द्वारा उन्होंने इस्लाम धर्म को फैला कर अमरकीर्ति प्राप्त की। मैं भी अलफ़खाँ, नसरतखाँ, जफ़रखाँ, उलुगखाँ नाम के चार मित्र रखता हूँ। अतः मैं भी यदि चाहूँ तो एक धर्म आरम्भ कर सकता हूँ। अपनी और मित्रों की तलवार के बल पर उसे मैं विश्वव्यापी कर अमर-कीर्ति प्राप्त कर सकता हूँ। इसके अतिरिक्त मेरे पास अथाह धन और विशाल सेना है, अतः मैं देहली को अपने किसी प्रतिनिधि के अधिकार में छोड़ सिकन्दर की भांति विश्व-विजय प्राप्त करने के लिए निकल पड़ूँ।" इस प्रकार की योजनायें निरन्तर उसके मस्तिष्क में आती रहती थी। एक दिन क्रियात्मक रूप देने के विचार से उसने प्रसिद्ध इतिहासकार बरनी के चचा काजी अलाउलमुल्क से इस विषय में विचार-विनिमय किया। काजी ने उसे निम्नलिखित सम्मति दी:—

"नियम व धर्म भगवान् की प्रेरणा से अवतरित होते हैं। वह योजनाओं द्वारा प्रसारित नही किये जा सकते। सृष्टि के आरम्भ से वर्तमान समय तक एक विशेष प्रकार की विभूतियों पर ही, जिन्हें अवतार या पैगम्बर कहते हैं, वह अवतरित हुये। और जिस प्रकार शासन व न्याय बादशाहो का नियम रहा इसी प्रकार नियम व धर्म उन विशेष प्रकार के व्यक्तियों का कार्य रहा है, जिस प्रकार किसी अवतार के लिये राजपद कोई विशेष महत्व नही रखता, यद्यपि कुछ धर्म-प्रवर्तक राज्यकार्य करते रहे हैं। इसी प्रकार एक सम्राट के लिये धर्म-प्रवर्तक होना उचित नही। अतः सम्राट को इन झंझटों में न पड़ कर उचित शासन-व्यवस्था स्थापित करने पर ही ध्यान देना चाहिये जहाँ तक दूसरी योजना का सम्बन्ध है, वास्तव में यह उच्च सम्राट के लिये श्रेयस्कर है, उसकी विश्व-विजय की आकांक्षा सर्वथा उचित है। परन्तु अब सिकन्दर का समय

नहीं, न अरस्तु जैसा प्रधानमन्त्री ही प्राप्य है। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष में ही अभी बहुत कार्य शेष हैं। रणथम्भौर, चित्तौड, चन्दरी, मालवा, धार, उज्जैन अभी साम्राज्य क्षेत्र से बाहर हैं। समस्त उत्तरी भारत में विद्रोही नाम को भी शेष न रहें। मगोलो को इतनी बुरी तरह परास्त किया जावे कि वह फिर भारत की ओर आने का विचार ही न करें। यही महत्वपूर्ण कार्य है अत सुल्तान का कर्त्तव्य है कि पहिले इन कार्यो को पूर्ण करें और तत्पश्चात् अन्य प्रदेश जीतने की इच्छा करें"। काजी के महत्वपूर्ण भाषण तथा लाभप्रद बातें सुन सुल्तान बहुत प्रसन्न हुआ और उसे उचित भेंट दे विदा किया, तथा उसने पहिले समस्त भारत पर विजय प्राप्त करने का विचार कर लिया।

**रणथम्भौर का आक्रमण**—१२९९ ई० में अलाउद्दीन ने अलगखाँ और नसरतखाँ को एक विशाल सेना के साथ रणथम्भौर-विजय के लिये भेजा। आक्रमण का कारण यह था कि रणथम्भौर के राणा हमीर ने कुछ शाही अपराधियो को शरण दी थी। मार्ग में अन्य दुर्गों को जीतते हुए यह रणथम्भौर पहुँचे, और किले का घेरा डाल दिया परन्तु एक दिन जब नसरतखा घेरे का निरीक्षण कर रहा था तो किले के अन्दर से फेंका हुआ एक पत्थर उसके ऐसा लगा, कि दो दिन पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। राणा हमीर ने इस अवसर का लाभ उठा किले के फाटक खोल दिये, और एक विशाल सेना ले मुसलमानो पर आक्रमण कर दिया और उन्हें मार भगाया। जब सुल्तान को इस पराजय का पता लगा तो वह रणथम्भौर की ओर बढा। मार्ग में जब वह तिलपता के स्थान पर था तब उसके भतीजे अकातखाँ ने अपने नव-मुस्लिम साथियो की प्रेरणा से उसका वध कर, सुल्तान बनने की योजना की। उसने सुल्तान पर आक्रमण कर दिया और उसे बुरी तरह घायल कर दिया। अकातखाँ का प्रयत्न पूर्णतया सफल न हो सका। सुल्तान ने अपनी सेना की सहायता से स्थिति को सभाल लिया। अकातखाँ पकडा गया, और उसे तथा उसके साथियों को प्राण दड मिला। तत्पश्चात् सुल्तान रणथम्भौर पहुँचा। राजपूतो ने वीरतापूर्वक मुसलमानों का सामना किया और अपने पूर्ण प्रयत्न से भी अलाउद्दीन रणथम्भौर पर विजय प्राप्त करने में सफल न हो सका।

**राजधानी में अराजकता**—इसी बीच देहली से अधिक दिन अनुपस्थित रहने के कारण वहाँ कुछ लोगो ने गद्दी पर अधिकार प्राप्त करने का षड्यन्त्र रच दिया। षड्यन्त्रकारियो ने उमरखाँ और मगूखाँ नामक राजकुमारो को सुल्तान बनाना चाहा, परन्तु उनका प्रयत्न भी निष्फल रहा।

इसके पश्चात् हाजी मौला ने एक गम्भीर षड्यन्त्र रच दिया। उसने देहली की जनता की सहानुभूति, जो तत्कालीन कोतवाल तुरमुजी के व्यवहार से क्षुब्ध थी,

अपनी ओर कर ली। फिर वह एक जाली आज्ञा-पत्र द्वारा एक विशाल जन-समूह एकत्रित कर देहली में प्रवेश करने तथा राजकोष पर अधिकार प्राप्त करने में सफल हुआ। राजकोष उसने अपने सरदारों में बाँट दिया और एक सैयद को, जो शाह नजफ का पौत्र था। गद्दी पर बैठा दिया। आश्चर्य है कि विश्व-विजय के स्वप्न देखने वाले अलाउद्दीन की राजधानी इतनी अरक्षित थी कि उसकी अनुपस्थिति में एक साधारण व्यक्ति बिना किसी विशेष आपत्ति के उस पर अधिकार प्राप्त कर सकता था।

**स्थिति पर विजय प्राप्त करना:**—जब सुल्तान को यह सूचना मिली तो उसने अपने सौतेले भाई हामिद को देहली भेजा। उसने हाजी मौला को बुरी तरह परास्त किया। हाजी मारा गया और सैयद को गिरफ्तार कर अलाउद्दीन की सेवा में भेज दिया गया। उसके साथी निराश होकर इधर-उधर भाग गये। हाजी मौला के अपराध में उसके सम्बन्धियों तथा कोतवाल के पुत्रों को, हाजी जिनका दास था, षड्यन्त्र के अपराध में फांसी लगवा दी गई। मध्य-काल के न्याय का यह विचित्र ढंग था कि करने वाला कौन और दण्ड का भागी कौन; ध्यान देने योग्य है। इन षड्यन्त्रों से अलाउद्दीन ने विचार किया कि षड्यन्त्रियों की जड़ उखाड़ फेंकने के लिये नियम बनाना अति आवश्यक है।

इनके लिये शीघ्रातिशीघ्र समय प्राप्त करने के लिये सुल्तान ने रणथम्भौर के घेरे को और कठोर कर दिया। घेरा निरन्तर एक वर्ष तक चलता रहा। अन्त में मुसलमान सेना दुर्ग में प्रवेश करने में सफल हुई। हमीर, उसका परिवार, तथा समस्त शेष सेना मौत के घाट उतार दी गई। इस प्रसंग में मीर मोहम्मदशाह नामक हमीर के एक मंगोल सेनापति की घटना उल्लेखनीय है। जब वह घायल दशा में युद्ध-स्थल में पड़ा था तो अलाउद्दीन ने पूछा कि "यदि मैं तुम्हारे घावों का उपचार कर तुम्हारा जीवन बचालूँ तो तुम क्या करोगे।" वीर सेनापति ने कहा "मैं तुम्हें प्राण-दण्ड दे हमीरदेव के पुत्र को गद्दी पर बिठाऊँगा।" इस प्रकार की स्वामि-भक्ति देहली के सुल्तान पर क्रियात्मक टिप्पणी थी। इस उत्तर को पाकर सुल्तान ने, यद्यपि उसे हाथी से कुचलवाने की आज्ञा दी, उसका हृदय वीर तथा स्वामि-भक्त सेनापति के उत्तर से द्रवित हो उठा। रणथम्भौर उलुगखाँ को दे दिया गया। परन्तु कुछ ही समय पश्चात उसका देहान्त हो गया।

**मेवाड़ पर आक्रमण:**—रणथम्भौर की सफलता के पश्चात उसने राजपूताने की प्रमुख रियासत मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। मेवाड़-विजय अत्यन्त कठिन कार्य था। सिसोदिया वंश की वीरता, मेवाड़ की भौगोलिक स्थिति, तथा चित्तौड़गढ़ ने

उसे अजेय बना दिया था। वर्षों के निरन्तर सघर्ष तथा विशाल धन-जन-क्षति के पश्चात् अलाउद्दीन चित्तौड विजय में सफल हुआ। चित्तौड-विजय के पश्चात् चित्तौड-दुर्ग खिज्रखाँ को दे दिया गया। और उसका नाम खिज्राबाद रखा, परन्तु १३११ ई० मे राजपूतो के दबाव के कारण वह चित्तौड खाली कर देने के लिये बाध्य हो गया। अब सुल्तान ने चित्तौड मालदेव को दे दिया, जिसका ७ वर्ष तक इस पर अधिकार रहा। तब राणा हमीर ने च लाकी से उसे छीन लिया।

**मालवा पर विजय :**—चित्तौड-पतन के पश्चात अलाउद्दीन ने मालवा पर आक्रमण किया। वहाँ का राजा बडी वीरता से लडा, परन्तु परास्त हुआ और मालवा मुस्लिम गवर्नर के अधिकार में दे दिया गया।

**समस्त उत्तरी भारत पर विजय'**—तत्पश्चात् अलाउद्दीन ने माडू, उज्जैन, धारानगरी और चन्देरी पर आक्रमण किया और वहाँ के र.जपूतो को सुल्तान का आधिपत्य स्वीकार करने को बाध्य किया। इस प्रकार १३०५ ई० के अन्त तक स-स्त उत्तरी भारत अलाउद्दीन के अधिकार म आ गया। अलाउद्दीन अब दक्षिण-विजय के लिये लालायित हो उठा।

**दक्षिणी भारत पर विजय :**—भारतवर्ष का मुसलमान साम्राज्य अभी दृढ न हो गया था। अत. दक्षिणी विजय एक कठिन समस्या समझी जाती थी। दक्षिणी भारत की भौगोलिक स्थिति, वहाँ की प्राकृतिक दशा, हिन्दू राजाओ का शक्तिशाली विरोध, दक्षिण की दूरी, यातायात के साधनों की कमी, एसी कठिनाइयाँ थी, जिनके कारण दक्षिण-विजय यदि असम्भव नही तो कठिन अवश्य समझी जाती थी, परन्तु अलाउद्दीन बाधाओ की तनिक भी परवाह न करता था। बाधाये उसमें केवल उत्साह का सचार करती थी। अत उनकी परवाह न करते हुये मलिक काफूर की अध्यक्षता में एक विशाल सेना दक्षिण-विजय के लिये भजी गई।

**देवगिरि पर आक्रमण**—मार्ग मे जाते समय उसने देवगिरि पर आक्रमण किया। राजा कर्ण ने गुजरात-आक्रमण के समय से अपनी पुत्री सहित वहाँ शरण ले रखी थी। आक्रमण का उद्देश्य कर्ण की पुत्री को प्राप्त करना तथा देवगिरि के शासक रामचन्द्रदेव को, कर्णदेव को शरण देन का दड देना था। राजा कर्णदेव तथा यादव सेनायें मुसलमान आक्रमणकारियो को न रोक सकी। देबल देवी राजा कर्ण की पुत्री को किसी सुरक्षित स्थान में भेजने की योजनायें भी असफल रही। उलुगखाँ ने उसे जबरदस्ती उसके पिता से छीन लिया और वह देहली भेज दी गई। १३०७ ई० में उसका विवाह खिज्रखाँ से कर दिया गया। मलिक काफूर ने समस्त यादव राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और तमाम देश में लूट मचा दी। रामचन्द्र देव को सन्धि

करनी पड़ी। राजा देहली भेज दिया गया। उसे रायरायान का खिताब दे नवसारी की जागीर व्यक्तिगत रूप से दे दी गई। इस उदारता के वर्ताव के कारण उसने कभी स्वतन्त्र होने का प्रयत्न नहीं किया।

साम्राज्य लिप्सा के अतिरिक्त दक्षिण के आक्रमण का विशेष कारण वहाँ की अतुल सम्पत्ति-प्राप्ति भी था। अलाउद्दीन ने दक्षिण की धन-धान्यता की अनेक कहानियाँ सुनी थी और आन्तरिक शान्ति स्थापित कर रखने तथा मगोल आक्रमणों से भारतवर्ष की रक्षा करने के लिये उसे एक विशाल, सुसगठित तथा सुसज्जित सेना की आवश्यकता थी, जो बिना धन के सम्भव न थी। इस धन-प्राप्ति के लिये सुल्तान की लालची आँखें दक्षिण पर पड़ी, जो धन-धान्य से पूर्ण होते हुए भी अछूता पड़ा था।

वारंगल-विजयः—१३०९ ई० में मलिक काफूर एक विशाल सेना से वारंगल विजय के लिये चल पड़ा। यहाँ काकतीय वंश का राज्य था। सुल्तान ने काफूर को आदेश दिया था कि यदि राजा उसे हीरे, जवाहिरात, हाथी, घोड़े इत्यादि दे तो संधि करना उचित होगा, क्योंकि काकतीय राज्य एक शक्तिशाली राज्य है। अतः सम्भव है कि संघर्ष में विजय उसी के हाथ रहे तथा मुसलमानों को जन-धन और माल से हानि उठानी पड़े। राजा के देश से -से अधिक प्रयोजन नहीं; प्रयोजन तो धन से है। दुर्गम मार्ग से गुजरता हुआ मलिक काफूर वारंगल जा पहुँचा। राजा प्रताप रुद्रदेव ने किले का दरवाजा बन्द कर लिया। किला दृढ़ बना हुआ था। जब काफूर को घेरा डाले बहुत दिन हो गये तो रुद्रदेव ने संधि का प्रस्ताव रक्खा, जिसमें उसने अलाउद्दीन का आधिपत्य स्वीकार किया और वार्षिक कर देने का वचन दिया, परन्तु मलिक काफूर ने उसको अपना सर्वकोष देने का आग्रह किया। जब काफूर को घेरा डाले अधिक समय व्यतीत हो गया, तो राजा को तंग आकर यह शर्त भी माननी पड़ी। इस प्रकार असंख्य द्रव्य ले मलिक काफूर १३१० ई० में देहली लौट आया।

द्वार समुद्र की विजयः—पहले आक्रमण की सफलता से प्रोत्साहित हो अलाउद्दीन ने सुदूरवर्ती दक्षिण तक साम्राज्य फैलाना चाहा। वीर बल्लोल तृतीय ने वर्तमान मैसूर राज्य को मिलाकर होयसल राज्य को प्रभावशाली राज्य बना लिया था। अपनी वीरता तथा दानशीलता के कारण होयसल राजा वीर बल्लोल तृतीय की कीर्ति समस्त दक्षिण में फैल गई थी। परन्तु ईर्ष्या-द्वेष जो हिन्दू-जाति की प्रथम दुर्बलता है, वहाँ भी थी। होयसल तथा देवगिरि का यादव वंश एक दूसरे के घातक शत्रु थे। फल यह हुआ कि अन्त में दोनों राज्यों का भक्षण कर मलिक काफूर ने उन्हें

मुसलिम-साम्राज्य में मिला लिया। यादव-वंश की सहायता, दक्षिण का भेद-भाव देने तथा होयसल वंश की दुर्बलताओं का पता देने के लिए मुसलमानों की ओर थी। बल्लाल परास्त हुआ और उसने आत्मसमर्पण कर दिया। परन्तु आत्मसमर्पण पर्याप्त न था। काफूर ने कहा कि या तो वह मुसलमान धर्म स्वीकार करे अथवा विधर्मी की तरह कर देना और देहली की आधीनता स्वीकार करे। राजा ने असंख्य धन तथा ३६ हाथी और बहुत-सा सोना, मोती, हीरे, जवाहिरात दे देहली की अधीनता स्वीकार की। वह इस भेंट के साथ देहली भेज दिया गया। वहाँ उसके साथ अच्छा वर्ताव किया गया, और वह कुछ दिनों बाद स्वदेश लौट गया।

मदूरा-विजय.—द्वार समुद्र पर विजय प्राप्त करने के पश्चात काफूर ने पाण्ड्य-राज्य पर आक्रमण करने की सोची। पाण्ड्य राज्य हस्ताक्षेप करने का बहाना भी अलाउद्दीन के हाथ आ गया था। मदूरा की गद्दी के लिए इस समय दो उत्तराधिकारी थे। एक सुन्दर पाण्ड्य दूसरा उसका भाई वीर पाण्ड्या। सुन्दर पाण्ड्या अपने पिता का औरस पुत्र होने के कारण वास्तव में अधिकारी था। परन्तु वीर पाण्ड्या ने अपनी वीरता से राज्य पर अधिकार कर उसे देश से निकाल दिया था। इस पर सुन्दर पाण्ड्या ने अलाउद्दीन की शरण ली और उससे सहायता की याचना की। तुरन्त मलिक काफूर एक सेना ले मदूरा की ओर चल दिया। मार्ग में उसने अनेक मन्दिरों का विध्वस कर धन प्राप्त किया। ऐसा प्रतीत होता है कि काफूर रामेश्वर के मन्दिर तक पहुँच गया, और वहाँ के प्रसिद्ध मन्दिर को लूट असंख्य द्रव्य सहित वापिस लौटा। रामेश्वरम् पहुँचने से पहिले वह मदूरा पहुँचा। जब वीर पाण्ड्या को मलिक काफूर के आगमन की सूचना मिली, तो यह राजधानी छोड़कर भाग गया। इसलिए बिना युद्ध किये काफूर ने मदूरा में प्रवेश कर राज-कोष व मन्दिरों को लूट कर बहुत-सा धन प्राप्त किया।

शंकरदेव की पराजय:—रामचन्द्रदेव की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र शंकरदेव ने वार्षिक कर देना बन्द कर दिया, और देहली के सहायक राज्य होने के कारण, जब काफूर ने होयसल वंश के विरुद्ध उससे सहायता माँगी तो उसने मना कर दिया। जब अलाउद्दीन को इसका पता चला तो उसके क्रोध का वारापार न रहा और १३१२ ई० में उसने काफूर को एक विशाल सेना के साथ उसे परास्त करने भेजा।

काफूर ने समस्त महाराष्ट्र प्रान्त उजाड दिया। शंकरदेव परास्त हुआ और उसे प्राण-दण्ड दिया गया। काफूर ने गुलबर्गा पर अधिकार कर लिया और कृष्णा तथा तुंगभद्रा तक समस्त प्रदेश को जीतकर उस पर अधिकार कर लिया। रायचूर

तथा मुद्गल के प्रसिद्ध किलों पर अधिकार कर लिया गया। इस प्रकार वह समस्त दक्षिण पर विजय प्राप्त करने में सफल हुआ। १३१२ ई० में अलाउद्दीन अपनी पूर्ण शक्ति पर पहुँच गया, और सम्पूर्ण भारत पर उसका साम्राज्य छा गया। परन्तु विजयोन्मत्त सम्राट् ने कभी यह नहीं सोचा कि उसका साम्राज्य व्यवस्था-सूत्र में न बंधने के कारण एक जन-समूह ही है, जो उसकी शक्ति क्षीण होते ही छिन्न-भिन्न हो जायेगा।

**नव-मुसलिम-समस्या :**—मंगोल अथवा नव-मुसलिम, जिनका वर्णन खिलजी वंश में आता रहा है, खिलजी-काल में सदैव संकट व भय का कारण बने रहे। वह अब भी अपने आपको विदेशी मानते थे, और समझते थे कि उन्हें अपने धर्म तथा देश-परिवर्तन का उचित पुरस्कार नही मिला। इसमें कुछ सत्य भी था। जलालुद्दीन ने अपनी पुत्री का विवाह मंगोल सरदार अलगखाँ से कर दिया था। परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् वास्तव में मंगोलों के साथ कठोर बर्ताव किया गया। अलाउद्दीन ने उन्हें राज्य-पदो से पृथक् कर दिया था। उनकी वृत्तियाँ पूर्णतया बन्द कर दी थी। उन्हें अमीरों के यहाँ नौकरी करने का अधिकार था। परन्तु यदि कोई नौकरी इत्यादि न मिले तो राज्य की ओर से उन्हें कोई सहायता इत्यादि नही मिलती थी। उन्होंने सुल्तान से वारम्बार आग्रह किया कि उनके साथ दया तथा न्याय-संगत व्यवहार किया जाये। परन्तु उसने इस पर कोई ध्यान न दिया। निराश होकर उन्होंने सुल्तान का बध करने का षड्यन्त्र रचा। एक दिन जब वह बाज के शिकार के लिए इधर-उधर फिर रहा था, उन्होंने उसे मारना चाहा। परन्तु षड्यन्त्र का पता लग गया। अलाउद्दीन क्रोधान्ध हो उठा। उसने आदेश दिया कि समस्त नव-मुसलिम मौत के घाट उतार दिये जायें। प्रसिद्ध इतिहासकार बरनी लिखता है कि २०-३० सहस्त्र के लगभग नव-मुसलिमों को प्राण-दण्ड मिला, जिनमें से कुछ ही को षडयन्त्र का ज्ञान था। उनके घर लूट लिए गए। उनके परिवार निकाल बाहर कर दिये गये। षड्यन्त्रकारियों का तो कहना ही क्या, उनके सिर बीच से चीर दिये गये, और उनके शरीर की बोटी-बोटी अलग कर दी गई। इस हृदय-विदारक घटना के पश्चात राजधानी या उसके निकट किसी की षड्यन्त्र रचने का साहस न हुआ।

**अलाउद्दीन का राज्यपद:**—अलाउद्दीन सबसे पहिला सुल्तान था जो राजकीय कार्यों में धार्मिक हस्तक्षेप पसन्द न करता था। उसके नियमों का आधार सम्राट् की इच्छा थी। उसका शरीअत के नियमों से कोई सम्बन्ध न था। उसका तथा काजी मुगीस का वार्तालाप उसके राजत्व-सिद्धान्त का पूर्ण दिग्दर्शन कराता है। उसका विचार था कि बादशाह को अपनी इच्छानुसार दण्ड देने का तथा बेईमान व व्यभिचारी पदाधिकारियों के हाथ पैर कटवाने का अधिकार है। परन्तु

काजी कहता था कि ऐसा करना अवांछनीय तथा शरीअत के विरुद्ध है। फिर सुल्तान ने पूछा कि, "वह धन, जो मैंने देवगिरि में हजारों आदमियों को बलि दे, प्राप्त किया
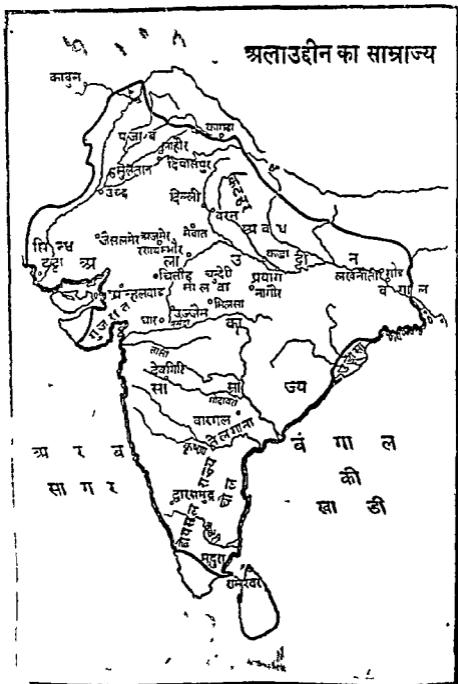
है मेरी व्यक्तिगत सम्पत्ति है अथवा राज्य-कोष की ?" काजी ने उत्तर दिया :— "श्रीमान् ! चूँकि यह धन जनवर्ग की शक्ति से प्राप्त हुआ है अत यह धन जनता का है, और अतएव इसका राज्य-कोष में जमा होना ही उचित है। यदि आप इसको अपनी स्वयं की शक्ति से प्राप्त करते तो यह शरीअत के अनुसार आपका होता।" सुल्तान, जो इस धन को अपना समझता था, काजी की बात सुन क्रोधान्ध हो उठा। उसने फिर कहा—"इसमें मेरा कितना भाग है ?" काजी भयभीत हुआ, परन्तु नम्रता-पूर्वक बोला—"जब सम्राट् यह प्रश्न पूछते हैं तो मुझे शरीअत से ही उत्तर देना पड़ता है, इसलिए सत्य बताना ही मेरा कर्त्तव्य हो जाता है। अन्यथा यदि सुल्तान परीक्षार्थ ही मुझ से पूछ रहे हों और किसी विद्वान् से पूछने पर मेरे कथन की असत्यता प्रकट हो तो मैं दण्ड का भागी होऊँगा तथा सुल्तान की दृष्टि से गिर जाऊँगा। इसलिए जैसा शरीअत में लिखा है वैसा ही सुल्तान के सामने रखता हुआ यह सेवक कह सकता है कि यदि आप उच्चकोटि के खलीफाओं तथा धर्म के सिद्धान्तों का अनुकरण करें तो आपका भाग केवल एक सिपाही के भाग के बराबर है। यदि आप साधारण व्यक्तियों की भाँति अपने आपको साधारण सिपाही-वर्ग के बराबर न रखना चाहें तो आपका भाग इतना है जितना सेनापति और पदाधिकारियों का। यदि आप राजनीतिज्ञ की भाँति आचरण करना चाहें तो राज्य-पद सर्वश्रेष्ठ है। अतः उस पद का मान तथा गौरव रक्षा के लिए अधिक ठाट-बाट से रहने की आवश्यकता है तो आपका इसमें अधिक भाग है। परन्तु आपको अन्तिम न्यायाधीश के सम्मुख उसका उत्तर देना होगा।" सुल्तान आगबबूला हो गया। इस पर काजी ने पुनः स्थिरता-पूर्वक उत्तर दिया—"श्रीमान् चाहे इस तुच्छ सेवक को बन्दी बनायें अथवा मारें, या टुकड़े २ कर डालें; इसने जो कहा है वह नियमानुकूल है। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।" यह कह काजी चला गया। वह जानता था कि उसे सुल्तान की इच्छानुकूल उत्तर न देने पर प्राण दण्ड मिलेगा। परन्तु उसे आश्चर्य हुआ जब दूसरे दिन सम्राट् ने उससे नम्रता पूर्वक वर्ताव किया तथा उसे एक भेंट दिलवाई, और उसने बड़ी नम्रता से काजी से अपने सिद्धान्त की इस प्रकार व्याख्या की—"विद्रोहियों को शान्त करने के लिए, जिसमें अनेकों सिपाहियों की बलि दी जाती है, मैं ऐसी आज्ञायें प्रकाशित करता हूँ जो उसे रोकने के लिए मैं उचित समझता हूँ और जो जन-साधारण के हित में होती है। यदि मनुष्य मेरी आज्ञा की अवहेलना कर मेरा अपमान करते हैं, अथवा राज या जन-साधारण के हितों को क्षति पहुँचाते हैं, तो मैं अवसरानुकूल जो उचित समझता हूँ करता हूँ। मैं नहीं जानता कि अन्तिम न्यायाधीश के यहाँ दण्ड का भागी हूँ अथवा उपहार का।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि अलाउद्दीन अपने को शरीअत की शृंखलाओं में नहीं बाँधना चाहता था। वह तनिक भी परवाह न करता था कि शरअ क्या कहती है या कानून क्या कहता है उसकी बुद्धि उसकी शरअ थी, उसका अवसरानुकूल आदेश उसका नियम था।

षड्यन्त्र-तत्व —अलाउद्दीन ने अपने शासन प्रबन्ध में उस योग्यता तथा प्रखर बुद्धि का परिचय दिया जो प्राय एक साधारण सेनापति में देखने में नहीं आती, हाजी मौला नव मुसलिम तथा अकातखाँ के षड्यन्त्रो ने उसको विश्वास दिला दिया कि साम्राज्य में से षड्यन्त्रकारी तत्वो का निकाल फेंकना अत्यन्त आवश्यक है। विद्रोह के कारणो का विवेचन करने से वह इस परिणाम पर पहुँचा कि षड्यन्त्र के चार कारण हैं—

(१) सुल्तान द्वारा जनता के मामलो की अवहेलना।

(२) मद-पान।

(३) अमीरो तथा सैनिकों का प्राय मिलन।

(४) धन का आधिक्य।

यदि सुल्तान जनता के दुःखो की सुनाई न करे तो यह अवश्यम्भावी है कि वह क्षुब्ध होकर सम्राट् को उसके पद से च्युत कर दे, और उसके स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को सम्राट् बनाये। दूसरे, उसने सोचा कि मदिरा-पान से मनुष्य विवेकशील न रह कर उद्दण्डता और उच्छृखलता पर आ जाता है। अत मदिरा-पान षड्यन्त्र का दूसरा कारण हो सकता है। अमीरो का परस्पर मिलन, जो समालोचना का अधिक अवसर प्रदान करता है, षड्यन्त्र का तृतीय कारण बन सकता है। धन का आधिक्य षड्यन्त्र का चौथा कारण है, क्योंकि धन की प्रचुरता मनुष्य को अन्धा बना देती है तथा उसमें किसी भी समय साम्राज्योन्मूलन की भावना जागृत हो उठती है।

षड्यन्त्र के तत्वों का विनाश —इस व्याख्या के पश्चात् सुल्तान ने कई ऐसे नियम बनाये जो षड्यन्त्रो के तत्वो का विनाश कर दें। प्रथम, वह जागीर, जो इनाम अथवा किसी रूप में लोगो को मिली हुई थी, जब्त कर ली गई जिससे प्रत्येक मनुष्य रोटी कमाने की चिन्ता में पडकर षड्यन्त्र आदि सब कुछ भूल गया। दूसरे उसने एक श्रेष्ठ गुप्तचर विभाग का आयोजन किया, जो पदाधिकारियों तथा जनता की कार्यवाही उस तक पहुँचाता रहे, जिससे कि यदि कोई चिन्ताजनक बात हो तो शीघ्र उसका निदान किया जा सके। तीसरे, उसने मदिरा पान निषेध कर दिया। सुल्तान ने स्वय आदर्श रूप मदपान बन्द कर दिया। अमीरो को व्यक्तिगत रूप में
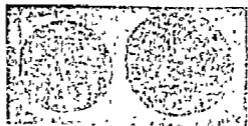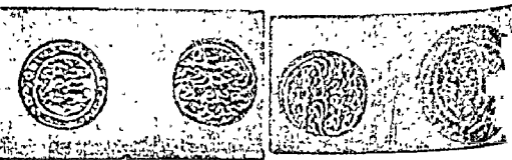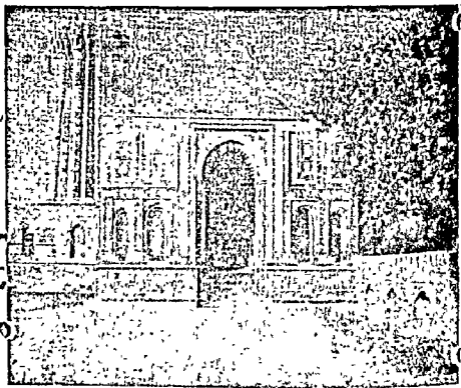
देहली सुल्तानों के सिक्के

अपने घरों में मदपान की आज्ञा दी गई। परन्तु मदिरा-भोज अथवा और अन्य प्रकार के प्रीति-भोज बन्द कर दिये गये। परिणाम यह हुआ कि जीवन के आमोद-प्रमोद रुक गये। जीवन शुष्क तथा उदासीन हो गये। परन्तु इसका परिणाम यह अवश्य हुआ कि षड्यन्त्र बन्द हो गये।

हिन्दुओं के प्रति व्यवहार:—हिन्दुओं के प्रति अलाउद्दीन का व्यवहार अत्यन्त कठोर था। जब सुल्तान ने काजी से पूछा कि एक मुसलिम राज्य में हिन्दुओं का क्या स्थान है तो काजी ने उत्तर दिया कि मुस्लिम कानून कहता है कि हिन्दुओं को मुसलमानों के साथ प्रतिक्षण नम्रता तथा सम्मानसूचक व्यवहार करना उचित है। यदि कर-प्राप्त-कर्त्ता उसमें चांदी मांगे तो उनको सोना देना चाहिए। इस प्रकार के नम्रता-सूचक उदाहरण देते हुए उसने सुल्तान को समझाया कि एक मुसलमानी राज्य में हिन्दुओं का आत्म-सम्मान कोई स्थान नहीं रखता। उसका धर्म है कि पग २ पर वह मुसलमानों की आज्ञा का पालन करे चाहे उचित हो अथवा अनुचित। स्वयं पैगम्बर ने कहा है कि या तो हिन्दू इस्लाम-धर्म स्वीकार करें अन्यथा वह प्राण दण्ड तथा दासत्व के अधिकारी हैं। हनीफी स्कूल के अतिरिक्त किसी भी वर्ग ने उन्हें जज़िया वसूल कर स्वधर्म-पालन की आज्ञा नहीं दी। इसके अतिरिक्त अन्य वर्ग हिन्दुओं को धर्म-परिवर्तन अथवा प्राण-दण्ड की ही आज्ञा देते हैं। इस प्रकार के विचार काजी ने सुल्तान के सामने प्रकट किये। दोआबे के विद्रोह के कारण वह स्वयं हिन्दुओं से नाराज़ था। काजी के वार्तालाप ने उसे और दृढ़ कर दिया। और वह निरन्तर हिन्दुओं के प्रति कठोरता का व्यवहार करता चला गया। भूमि-कर पैदावार का पचास प्रतिशत कर दिया गया। इसको इस कठोरता से लागू करवाया कि एक बिस्वा भूमि भी बिना कर न रहने दी। इसके अतिरिक्त चराई और गृह 'कर', अर्थात् जानवर चराने तथा घर बनवाने पर भी कर लागू किये गये।

इन नियमों का इस कठोरता से पालन किया गया कि चौधरी और मुकद्दमों के पास कर देने के पश्चात साफ कपड़े पहनने तथा गद्दी के घोड़े रखने के लिए कुछ भी न बचता था। सुल्तान की नीति भी यही थी। वह चाहता था कि हिन्दुओं के पास केवल जीविका-मात्र ही बचे। ध्यान यह भी किया जाता था कि इतना कम भी न बचे कि वह भूमि छोड़ भाग खड़े हों, तथा विद्रोह कर दें और [illegible]

तो उतना ही गोश्त दुकानदार के शरीर से काट लिया जाता था। इस प्रकार के कठोर दंड बेईमानी करने वालो, अथवा रिश्वत लेने वालों को दिये जाते थे। इस प्रकार उसने नियन्त्रण विधान को सर्वथा सफल बनाया और बाजार मे आजकल की भांति किसी चीज की कमी अथवा अधिकता न होने दी।

**सुधारों का परिणाम:**—उसके उपरोक्त सुधारों का परिणाम यह हुआ कि उसकी समस्त सेना पूर्णतया सगठित हो गई। विद्रोह तथा मगोल आक्रमण का कोई भय नही रहा। षड्यन्त्र योजनायें मिट्टी में मिल गईं। अपराधो में कमी हो गई। भावों के निश्चित तथा सस्ते होने के कारण किसी को कमी अनुभव न हुई।

**शान्ति की आलोचना:**—परन्तु यह शान्ति केवल दिखावे की वस्तु थी। आमोद-प्रमोद सर्वथा बन्द होने से अमीर अपने जीवन को भार समझने लगे। उनकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अपहरण उन्हें काटे के सदृश खटकने लगा। व्यापारियों को अत्याधिक बन्धन खुलने लगे। अपने साथ अन्याय तथा पाशविक व्यवहार के कारण नव-मुस्लिम उपयुक्त अवसर की खोज में रहने लगे। कृषक-वर्ग की सम्पूर्ण कमाई का अपहरण आदि सब ऐसी बातें थी जिससे सम्पूर्ण जनता पूर्णतया क्षुब्ध हो उठी और उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगी। ज्योंही वृद्धावस्था ने सुल्तान की बुद्धि तथा बल को कम करना आरम्भ किया, असन्तोप के चिन्ह सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगे।

**अलाउद्दीन की वृद्धावस्था और मृत्यु:**—सुल्तान वृद्धावस्था मे मलिक काफ़ूर के हाथों की कठपुतली बन गया। काफ़ूर ने भी अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए झगड़ों को शान्त करने की अपेक्षा बढ़ाने में मदद की। उसने सुल्तान से शिकायत की कि बेगम तथा उसके ज्येष्ठ पुत्र खिज्रखां सेनापति अलफखां से मिल उसका वध करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसी समय बेगम ने अपने द्वितीय पुत्र का अलफखां की पुत्री से विवाह करने का प्रस्ताव रखा। इससे अलाउद्दीन का विश्वास दृढ़ हो गया। इसी समय अपने पिता की बीमारी की खबर सुनकर खिज्रखां अमरोहे से देहली आया। उसके बिना आज्ञा आने का अर्थ सुल्तान ने उल्टा लगाया और उसे आज्ञा-उल्लंघन करने के अपराध में मार्ग में ही रोक लिया। मलिक काफ़ूर ने यह सब दिखलाकर षड्यन्त्रो को रोकने की आज्ञा प्राप्त की। खिज्रखां बन्दी बनाकर ग्वालियर के किले में भेज दिया गया और उसकी माँ को पुरानी देहली में। अब काफ़ूर ने सुल्तान के एक अयोग्य पुत्र शहाबुद्दीन को उत्तराधिकारी बना दिया। काफ़ूर चाहता था कि सुल्तान की मृत्यु के पश्चात् कुछ दिन तक उसको बादशाह बनाकर फिर उसको मार कर गद्दी का स्वयं मालिक बन जावे। अपनी चालाकी से उसने सब योग्य अधिकारियो को मार्ग से हटा दिया। जब देहली इस प्रकार षड्यन्त्र का घर बनी हुई थी, उस समय साम्राज्य में

सब जगह विद्रोह हो रहे थे। कोई उन्हें दबाने वाला ही नही था। गुजरात, चित्तौड तथा देवगिरी स्वतन्त्र हो चुके थे। और सुल्तान अपने सामने साम्राज्य को छिन्न भिन्न होता देख क्रोध के घूंट पी-पी कर रह जाता था। ऐसी दशा में १३१६ ई० में उसका देहान्त हो गया।

**अलाउद्दीन का व्यक्तित्व:**—अलाउद्दीन का शासन-काल कठोरता की पराकाष्ठा का काल है। वह प्रकृति का अत्यन्त क्रूर और बडा जिद्दी था। नियम और धर्म के लिए उसके हृदय में स्थान नही था। परन्तु वह दृढ प्रतिज्ञ, अथक परिश्रमी, राजकीय समस्याओ को समझने वाला तथा उनकी उचित व्याख्या करने की क्षमता रखता था। यही कारण था कि वह राज्य की समस्त युक्तियो को अपन विचारानुसार सुलझाने में सफल हुआ। वह प्रथम श्रेणी का सेनापति था। उसने जो प्रबन्ध किया, चाहे वह सेना का हो अथवा व्यापार का, या षड्यन्त्र रोकने का, वह पूर्णतया सफल हुआ। हम उसके हल से सहमत न हो परन्तु यह अवश्य कह सकते हैं कि जो कुछ हल उसने किया, जो नियम भी उसने बनाया, उसको पूर्ण-रूप से लागू किया। उसमें कोई बाधा न आने दी और उनके द्वारा वह अपनी उद्देश्य पूर्ति कर सका। अपने प्रबन्ध में उसने मौलिकता का परिचय दिया। नियन्त्रण विधान का निकालना, तथा सफल बनाने के नियम निर्धारित करना, भूमिकर व उसका प्रबन्ध करना उसके मस्तिष्क की देन थी।

परन्तु उसके नियम व हल स्थायी न हो सके। वे तलवार के बल पर निर्धारित थे। अत ज्यो ही वह बल क्षीण हुआ वे स्वत ही अस्त व्यस्त होते चले गए।

## अलाउद्दीन के उत्तराधिकारी

**अलाउद्दीन के नियम पर गृह-युद्ध.**—अलाउद्दीन की मृत्यु ने देहली में गृह-युद्ध प्रारम्भ कर दिया। अमीरो के कितने ही विरोधी दल बन गये, जो सत्ता प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगे। मलिक काफ़ूर ने राज्य वश के सब उत्तराधिकारियो को अलग कर दिया। अलाउद्दीन का वसीयतनामा दिखा कर उसने उमरखाँ को, जिसकी आयु केवल छ वर्ष की थी, गद्दी पर बैठा दिया और स्वय उसका सरक्षक बन राज्य-प्रबन्ध करने लगा। खिज्रखाँ तथा शादी खाँ की आँखें निकलवा ली गई और मलिकाजहाँ को कैद कर लिया गया। मुबारिक खाँ तीसरा राजकुमार किसी प्रकार इस आपत्ति से बच गया। परन्तु वह भी अत्यन्त कडी देख-रेख में रक्खा गया। अलाउद्दीन के सब विश्वास-पात्र पदाधिकारी एक-एक करके पृथक कर दिये गए। और उनके स्थान पर निम्न श्रेणी के मनुष्य नियुक्त कर दिये गये। इससे अमीर-वर्ग

अत्यन्त असंतुष्ट हुआ, और वह अपनी प्राण-रक्षा के लिये चिंतित हो उठा। एक षड्-यन्त्र रचा गया। जिसमें अलाउद्दीन के गुलामों ने काफूर तथा उसके साथियों का वध कर १३१६ ई० में मुबारिक-शाह को गद्दी पर बैठाया।

कुतुबुद्दीन मुबारिक-शाह:—अपने शासन-काल के केवल २ वर्ष में मुबारिकशाह ने प्रशंसनीय योग्यता से शासन-प्रबन्ध किया। राजनैतिक वन्दी मुक्त कर दिये गये। जब्त की गई जागीरें फिर वापिस कर दी गई, और अनेक कर, जिनसे व्यापार में बाधा पड़ी हुई थी, स्थगित कर दिये गये। इस प्रकार जीवन सुहावना हो गया। पुराने बन्धनों तथा नियमों के ढीले हो जाने से सम्राट् का भय कम हो गया और श्रद्धा अधिक। इस प्रकार गद्दी को सुरक्षित कर मुबारिकशाह आमोद-प्रमोद में व्यस्त रहने लगा और शासन-प्रबन्ध तथा राज-कार्य की ओर उदासीन हो गया। परन्तु कोई महत्वपूर्ण विद्रोह या षड्यन्त्र इस काल में न हुआ। केवल १३१६ ई० में देवगिरि के राजा हरपाल देव ने विद्रोह किया परन्तु वह शीघ्र ही दवा दिया गया। उसकी जीवित ही खाल निकलवा ली गई। खुसरो नामक गुजरात-निवासी एक निम्न श्रेणी के व्यक्ति ने, जिसे सुल्तान अपना विश्वास-पात्र समझता था, तैलगाना पर आक्रमण कर सफलता प्राप्त की, और बहुत सा धन प्राप्त कर देहली आया। दक्षिण की इस विजय से मुबारिक का दिमाग और भी सातवें आसमान पर चढ़ गया। वह अधिक विलासप्रिय और चिड़चिड़ा हो गया। अब वह छोटे २ अपराधों पर कठोर दण्ड देने लगा। राज्य-दरबार दुराचार का अड्डा बन गया। और वहाँ अशिष्ट से अशिष्ट व्यवहार होने लगा। बात यहाँ तक बढ़ी कि बादशाह स्त्रियों के वस्त्र तथा आभूषण पहिन नाच-रंग करने अमीरों के घर जाने लगा। इस प्रकार के व्यवहार से साम्राज्य के प्रत्येक भाग में विद्रोह के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे और खुसरो बादशाह का वध कर स्वयं गद्दी प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा। मुबारिक के शिक्षक ज़ियाउद्दीन ने उसे इसकी सूचना दी, परन्तु उसने इसकी परवाह न की। फल यह हुआ कि एक रात को षड्यन्त्रकारी महल में प्रविष्ट हो गये। उसने भाग निकलने का प्रयत्न किया, परन्तु पकड़ा गया और मार डाला गया तथा खुसरो नासिरुद्दीन के नाम से गद्दी पर बैठा।

खुसरो का शासन प्रबन्ध:—गद्दी पर बैठते ही खुसरो ने चारों ओर आतंक पैदा कर दिया। मुबारिकशाह के सब नौकर व मित्र मृत्यु के घाट उतार दिये गये। प्रभावशाली अमीरों में से कुछ का उनके घर पर ही वध कर दिया गया। कुछ चालाकी से महल में बुलाकर मार डाले गये। उनकी स्त्रियाँ तथा लड़कियाँ अपने वर्ग को दे दी गई। इसी प्रकार राज्य-वंश की स्त्रियों का भी अपमान किया

गया। अपने सहायक षड्यन्त्रकारियों को उसने ऊँचे पद देकर सम्मानित किया। प्रान्तीय गवर्नरों को पोशाकें भेंट की गई। गाजी तुगलक के अतिरिक्त सबने इनको स्वीकार किया। राज्य-कोष का धन निकाल जनता में वितरण कर दिया गया, जिससे उनकी सहानुभूति भी उसके साथ हो जावे।

खुसरो अब यद्यपि मुसलमान हो चुका था। वह अपने पहले हिन्दू धर्मावलम्बियों को प्रोत्साहन देने लगा। गो-वध निषेध कर दिया गया। वह अपने सम्बन्धियों को गुजरात से बुला उच्च पदों पर नियुक्त करने लगा। उसने इस्लाम धर्म का निरादर करना आरम्भ कर दिया। उसके इस वर्ताव से देहली सुल्तान का सब गौरव नष्ट हो गया। यदि इस समय कोई योग्य हिन्दू शासक हिन्दुओं को सगठित कर देहली पर अधिकार प्राप्त करना चाहता तो अवश्य कर सकता था। परन्तु राजपूत अपने ही पारस्परिक झगडों में व्यस्त थे, उन्हें दिल्ली का ध्यान भी न था।

अलाउद्दीन के अमीर अत्यन्त क्षुब्ध हुये और वे खुसरो को गद्दी से उतारने का विचार करने लगे। खुसरो का वर्ताव फखरुद्दीन जूना नामक गाजी तुगलिक के पुत्र को सबसे अधिक अपमान-जनक लगा। उसने अपने पिता को, जो अब भी दीपालपुर का शासक था, समस्त सूचना विस्तृत रूप से दी। गाजी क्रोधान्ध हो उठा, परन्तु उसने पहले अपने पुत्र जूना को देहली से निकाल लेना चाहा। एक दिन जूना खाँ, जब उसे एक अरब घोडे पर सवारी की जाँच के लिए भेजा गया देहली से भाग निकला और सरस्वती में अपने पिता की सेना से जो उस पर अधिकार प्राप्त करने के लिये भेजी गई थी, जा मिला। अपने पुत्र को सुरक्षित कर गाजी तुगलक ने सब अमीरों से प्रार्थना की कि वे खुसरो के विरुद्ध सहायता दें। मुलतान के गवर्नर के अतिरिक्त सबने उसका साथ दिया। इस प्रकार सुसगठित हो वह देहली की ओर अग्रसर हुआ। जब खुसरो को इस बात का पता चला तो उसने एक सेना उसका सामना करने के लिये भेजी, परन्तु यह सेना गाजी तुगलक जैसे अनुभवी तथा योग्य सेनापति का क्या सामना करती। वह परास्त हुई और गाजी तुगलक देहली पहुँच गया। उसने इन्द्रपत में रजिया के मकबरे के पास डेरे डाले। खुसरो ने समस्त प्रजा को अपनी ओर मिलाने के विचार से समस्त राज्य कोष, प्रजा तथा सिपाहियों में बाँट दिया। परन्तु सिपाही, जो गाजी तुगलक के आक्रमण के समर्थक थे, रुपया ले अपने घर चले गये ऐसी दशा में भी खुसरो तथा उसके साथी बडी वीरता से लडे और एक बार गाजी सेना के दाँत खट्टे कर दिये। गाजी तुगलक ने अपने ३००० साथियों सहित रण-स्थल में कूद विजय प्राप्त की। खुसरो रण क्षेत्र से भाग

निकला और एक बाग में जा छिपा परन्तु अगले दिन वह पकड़ा गया और मार डाला गया। गाजी की विजय पूर्ण थी। खुसरो के सब साथी गुजरात की ओर भागते हुये मारे डाले गये। विजय प्राप्त करने के पश्चात् गाजी तुगलक ने अलाउद्दीन के सब अमीरों की एक सभा की, और उसमें पूछा कि अलाउद्दीन का कोई वंशज शेष है या नहीं जिसे देहली की गद्दी पर बैठाया जावे। परन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि कोई वंशज शेष नहीं। उन्होंने उससे प्रार्थना की कि वही गद्दी पर बैठे। अमीरों के आग्रह करने पर उसने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और गयासुद्दीन तुग़लक के नाम से गद्दी पर बैठा। उसने भी अपने साथी तथा अमीरों को उच्च-पद प्रदान कर अपनी कृतज्ञता का परिचय दिया।

## प्रश्न

१—अलाउद्दीन खिलजी ने गद्दी प्राप्त करने के बाद जनता तथा पदाधिकारियों से नम्रतापूर्ण बर्ताव क्यों किया।
२—अलाउद्दीन खिलजी ने किस प्रकार राजगद्दी पर अधिकार प्राप्त किया।
३—अलाउद्दीन की क्या आकाक्षायें थी—उसने इनमें क्यों परिवर्तन कर दिया।
४—अलाउद्दीन खिलजी ने किस प्रकार उत्तरी भारत पर विजय प्राप्त की।
५—मलिक काफ़ूर की दक्षिण विजय यात्राओं का वर्णन करो।
६—अलाउद्दीन ने शासन प्रबन्ध में कहाँ तक शरअ के अनुकूल कार्य किया।
७—अलाउद्दीन ने षडयन्त्र के तत्वों का किस प्रकार विनाश किया।
८—अलाउद्दीन खिलजी के सैनिक प्रबन्ध का वर्णन करो।
९—अलाउद्दीन खिलजी के भाव नियन्त्रण के विषय में तुम क्या जानते हो।
१०—खुसरो ने किस प्रकार गद्दी प्राप्त की और उसका पतन कैसे हुआ।

---

## अध्याय २६

# तुगलक वंश

**गयासुद्दीन का प्रारम्भिक जीवन :**—गयासुद्दीन एक साधारण घराने में पैदा हुआ था। उसका पिता तुर्क था और उसकी माता भारतीय महिला। इस प्रकार उसमें भारतीय तथा तुर्क रक्त-मिश्रित होने के कारण उसमें दोनों जातियों के गुणों का समावेश था। उसमें भारतीयों जैसी नम्रता और तुर्कों जैसी दृढ़ता थी।

अलाउद्दीन के समय वह सीमाप्रान्त का गवर्नर नियुक्त किया गया वहाँ उसने मगोलो को परास्त कर भारतीय साम्राज्य की रक्षा की।

वारंगल-आक्रमण :—अपने शासन-काल के दूसरे ही वर्ष अर्थात् सन् १३२१ ई० में उसने वारगल को एक सेना भेजी। काकतीय राजा प्रतापरुद्रदेव वहाँ राज्य करता था। अलाउद्दीन के समय उसने अलाउद्दीन का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। परन्तु अब उसने वार्षिक कर देना बन्द कर दिया था और अपने को स्वतन्त्र राजा घोषित कर दिया था। गयासुद्दीन ने तुरन्त सेना ले फखरुद्दीन जूना अर्थात् आगामी मुहम्मद तुगलक को वहाँ भेजा। देवगिरि होता हुआ तथा मार्ग के विद्रोही शासको को परास्त करता हुआ वह वारगल पहुँचा और किले का घेरा डाल दिया।

हिन्दू लोग बडी सख्या में उसका सामना करने के लिये एकत्रित हुए। घोर युद्ध हुआ। दोनो सेनाओ के अनेक सैनिक मारे गये। अन्त में रुद्रदेव ने सन्धि प्रस्ताव भेजा। जूना ने उसे स्वीकार न किया। इसी समय यह अफवाह फैली कि गयासुद्दीन की मृत्यु हो गई है। वर्षा के कारण कई दिन डाक बन्द रहने का भी यही अर्थ लगाया गया। कई अमीरो ने सैनिको को वहका कर राजकुमार का साथ छोड कर भाग जाने का प्रचार किया। जब जूनाखाँ को यह पता लगा तो उसने इन अमीरो को पकडने का प्रयत्न किया। परन्तु वह अपनी सेनायें ले बच कर भाग गये। इससे मुसलमान सेना की सख्या बहुत कम हो गई। अत जूनाखाँ देहली वापिस चला आया। जब सुलतान को इस घटना का पता चला तो उसको बडा दुख हुआ। उसने सन् १३२३ ई० में फिर जूनाखाँ को एक फौज दे वारगल की ओर भेजा हिन्दू वीरता से लडे। परन्तु रुद्रदेव ने सफलता की आशा न देख अपने परिवार तथा पदाधिकारियो सहित समर्पण कर दिया। वह देहली भेज दिया गया। वारगल का नाम बदल करसुलतानपुर रक्खा गया। राजा से पिछला सब कर वसूल किया गया और समस्त देश प्रान्तो में विभक्त कर और प्रत्येक प्रान्त में एक पदाधिकारी नियुक्त कर जूनाखाँ असख्य धन ले देहली लौट आया।

लखनौती आक्रमण:—वारगल विजय के पश्चात १-२८ ई० में लखनौती के दो राजकुमार शिहाबउद्दीन और नासिरउद्दीन को उनके भाई बहादुरशाह ने, जो सोनार गाँव का शासक था, राज्य से निकाल दिया। वे देहली आये और तुगलकशाह की शरण माँगी तथा अपने उचित अधिकार-प्राप्ति में सहायता की माँग की। गयासुद्दीन राजधानी को जूनाखाँ पर छोड स्वय लखनौती की ओर चला। बहादुरशाह परास्त हुआ और बन्दी बनाकर देहली लाया गया। लखनौती के वास्तविक शासक

नासिरुद्दीन ने अपने जमींदारों तथा सरदारों सहित सुल्तान की आधीनता स्वीकार की। इसलिये उसका प्रदेश उसको वापिस कर दिया गया। लखनौती से वापिस आने पर सुल्तान ने तिरहुत के राजा हरीसिंहदेव को परास्त किया जो एक विशाल सेना ले सुल्तान पर आक्रमण करने के लिये आया था। राजा सपरिवार बन्दी बना लिया गया। और उसका देश एक मुसलमान गवर्नर अहमद खाँ को दे दिया गया।

गयासुद्दीन की मृत्यु:—लखनौती से वापिस आने पर सुल्तान देहली से छः मील की दूरी पर अफगानपुर में ठहरा। यहाँ उसके पुत्र जूनाखाँ ने उसके स्वागत में एक लकड़ी का महल बनवाया था। सुल्तान इसमें ठहरा। परन्तु भोजन से निवृत होने के पश्चात् जब सुल्तान उसमें आराम कर रहा था तो जूनाखाँ ने हाथियों की परेड दिखलाने की आज्ञा माँगी। ज्योंही हाथी उसके चबूतरे पर चढ़े महल गिर पड़ा और सुल्तान उसके नीचे दब कर मर गया। कहा जाता है कि जूनाखाँ ने सुल्तान की हत्या के लिये यह महल इस प्रकार बनवाया था कि वह हाथियों के चढ़ने से गिर पड़े। कुछ लोगों का मत है कि महल स्वतः ही गिर पड़ा। जूनाखाँ का इसमें कोई हाथ न था। परन्तु आधुनिक खोज से पता चलता है कि महल का गिरना एक षड्यन्त्र था और उसमें जूनाखाँ का हाथ अवश्य था।
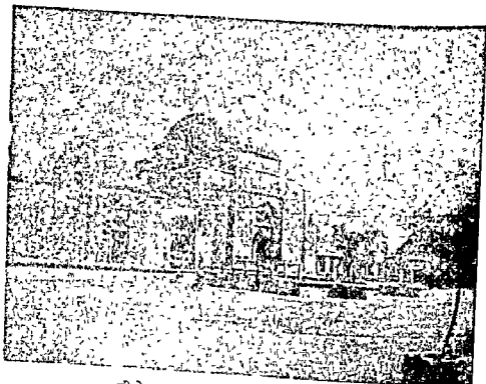
फ़ीरोजशाह तुगलक का मकबरा (देहली)

गयासुद्दीन का शासन-प्रबन्ध:—गयासुद्दीन ने वैसी ही शासन-व्यवस्था जारी रक्खी जैसी कि चली आ रही थी। वह अत्यन्त न्याय-प्रिय शासक था। धार्मिक व्यक्ति होने के कारण उसका नियम शरीअत पर निर्धारित था। भ्रष्टाचार तथा उत्कोच को रोकने के लिये उसने अपने नौकरों को उचित वेतन दिये। वह उन्हीं को उन्नति देता था जो ईमानदारी और कार्य-पटुता का परिचय देते थे। खुसरो ने राज्य-कोष बिल्कुल रिक्त कर दिया था। अतएव गयासुद्दीन ने साम्राज्य की आर्थिक दशा ठीक करने की सोची। प्रथम उसने जागीर तथा मिलक-भूमि के आदान-प्रदान का निरीक्षण किया और जो जागीर खुसरो तथा मुबारिकशाह ने अनियमित रूप से लोगों को दे दी थीं उन्हें वापिस ले लिया। दूसरे उसने भूमि कर की उचित व्यवस्था की। अलाउद्दीन के समय पचास प्रतिशत भूमि-कर लिया जाता था। उसने इस अनुचित रूप से कर बढ़ाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया और अपने पदाधिकारियों को आज्ञा दी कि वे देखें कि मुकद्दम तथा चौधरी अधिक कर वसूल करके कृषक वर्ग के साथ अन्याय तो नहीं करते हैं। हाँ उन पर घराई और चराई नामक कर क्षमा कर दिये गये, जिससे वह कर वसूल करने में दिलचस्पी लें।

भूमि-कर वसूल करने के लिये पहले ठेके की प्रथा थी। ज्योंही किसी गाँव का ठेका किसी मुकद्दम को दिया कि वह ठेके से अधिक रुपया वसूल कर लेता था। जितना ठेके का रुपया होता था उसको राज्य-कोष में जमा कर शेष अपने पास रखता था। गयासुद्दीन ने यह प्रथा बन्द कर दी और मुकद्दमों को जितना रुपया वाजिब हो उतना ही वसूल करने तथा जमा करने का आदेश दिया गया। माल विभाग के कर्मचारियों पर भी पाबन्दी कम कर दी और यदि वह एक दो प्रतिशत अधिक लेते तो उन्हें दण्ड न दिया जाता था। इसी प्रकार जागीरदार यदि दो चार प्रतिशत अधिक वसूल कर लेते तो उनको क्षमा कर दिया जाता था। परन्तु ऐसे नम्र बादशाह के समय भी हिन्दुओं के साथ अच्छा बर्ताव न होता था। उन्हें सदैव तुच्छ समझा जाता था। माल-विभाग को आदेश था कि न तो उनके पास इतना रुपया छोड़ा जावे कि वह विद्रोह कर दें, और न इतना कम कि वह कृषि छोड़ बैठें। एक कुशल सैनिक होने के कारण सुल्तान का सेना की ओर विशेष ध्यान था। वह सैनिकों से पिता की भाँति प्रेम करता था और उन्हें अच्छा वेतन दे उनके साथ अच्छा बर्ताव करता था। सेना में अनुशासन पर विशेष ध्यान दिया जाता था। घोड़ों को दागने तथा हुलिए की प्रथा उसने उसी प्रकार जारी रखी जैसी अलाउद्दीन के समय में थी।

गयासुद्दीन एक नम्र तथा उदार-हृदय बादशाह था। पुराने साथियों के सा. उतना ही स्वतन्त्रता-पूर्वक मिलता जितना वह सुल्तान होने से पहले, मि.ल.

वह अपने धर्म का कट्टर अनुयायी था। परन्तु उसने विधर्मियों को तलवार के बल पर धर्म-परिवर्तन करने के लिए बाध्य नहीं किया। उसका धार्मिक जीवन अत्यन्त पवित्र था। खुसरो के पश्चात् साम्राज्य को सम्भालना उसका साहसपूर्ण काम था।

## "मुहम्मद तुगलक"

मुहम्मद तुगलक का चरित्र :—ग़यासुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् १३२५ ई० में उसका पुत्र जूनाखां मुहम्मद तुगलक के नाम से गद्दी पर बैठा। मध्य-कालीन बादशाहों में वह अत्यन्त योग्य शासक था। उसकी बुद्धि विलक्षण तथा स्मरण-शक्ति आश्चर्य जनक थी। उच्च कोटि का कवि, महान् दार्शनिक, ज्योतिषी, गणितज्ञ यह शासक विद्वत्ता में अपनी कोई समानता न रखता था। वह अपनी लेखन-कला तथा रचना-कला के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध था। वह उच्च कोटि का वक्ता तथा कई भाषाओं का ज्ञाता था। उसकी दान-शीलता चरम सीमा को पहुँच गई थी। इब्नबतूता उसके इस गुण की बहुत प्रशंसा करता है। वह एक कट्टर मुसलमान था, तथा समस्त धार्मिक क्रियाओं को बड़ी श्रद्धा पूर्वक करता था। परन्तु उसके राज्य में धर्म को कोई स्थान न था। उसकी उदारता का परिचय उसके हिन्दुओं के प्रति व्यवहार से मिलता है। उसने सती जैसी कुप्रथाओं को रोकने का भी प्रयत्न किया, परन्तु उसके सब कार्यों को जनता भली भाँति समझ न सकी।

अतएव पागलपन तथा क्रूरता का दोषारोपण इस सम्राट् पर किया जाता है। इसके लिए अधिकतर मुस्लिम धार्मिक व्यक्ति जिम्मेदार हैं। इस सम्राट् की उदारता सराहनीय थी। वह हिन्दुओं तथा मुसलमानों के साथ समान वर्ताव करता था। मुस्लिम-वर्ग अपना विशेषाधिकार छिन जाने से उससे क्षुब्ध हो गया। अतः उसको बदनाम करने का प्रयत्न करने लगा। सत्य यह है कि सम्राट् में वीरता, धीरता तथा मौलिकता कूट २ कर भरी थी। परन्तु वह जिद्दी था। योग्य सहकारियों के अभाव तथा निरन्तर दुर्भिक्ष इत्यादि ने उसके प्रयत्न विफल कर दिए।

शासन सम्बन्धी परिवर्तन :—प्रथम शासन सम्बन्धी परिवर्तन जो मुहम्मद तुगलक ने किया वह दोआब में कर का बढ़ाना था। बरनी, जो कि स्वयं दोआबे के बुलन्दशहर जिले का निवासी था, इस कर की अत्यधिक आलोचना करता है। क्योंकि इसका प्रभाव उसके निवास-स्थान पर पड़ता था इसलिए बरनी की आलोचना निष्पक्ष नहीं कही जा सकती। कर बढ़ाने का कारण यह था कि सुल्तान प्रान्तों की पैदावार के अनुसार कर की दर नियुक्त करना चाहता था। दोआब साम्राज्य का सबसे अधिक उपजाऊ प्रान्त था। यहाँ यह कर अधिक हो सकता था। इसलिए पहिले उसने अपनी नीति को दोआबे में प्रयोग करना चाहा। दूसरे दोआब का

जमीदार वर्ग कृषक-व पड्यन्त्रकारी होने के कारण सुल्तान उन पर उतना ही छोडना चाहता था जितने में उनका निर्वाह हो सके। जिससे वह हर समय जीविकोपार्जन में ही व्यस्त रह सकें। अलाउद्दीन ने भी ऐसा ही किया था। यद्यपि यह भूमि-कर अलाउद्दीन की दर से ( बढाने के बाद भी ) कम था तो भी कृषक उसे पूरा न कर पाये। इसका कारण यह था कि इस वृद्धि के बाद ही दोआब में दुर्भिक्ष पड गया। इसलिए इतनी पैदावार न हुई जितनी कि स्वाभाविक रूप से होती थी। परन्तु सुल्तान ने समझा कि यह लोग जान बूझ कर कर नही दे रहे। इसलिए सुल्तान क्रोधान्ध हो उठा और उसने निष्ठुरता से कर वसूल करने का आदेश दिया। लोग देने में असमर्थ होने के कारण घर छोड कर भाग निकले। उनका पीछा किया गया और जगलो में जहाँ वे छिपे थे घेर लिया गया। इसलिये कुछ लोग दुर्भिक्ष तथा दुर्व्यवहार के कारण मर गये। इसी बीच में सुल्तान को वास्तविकता का पता चला तो उसने तुरन्त स्थिति को सुधारने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। उसने तकावी बटवाई, कुएं खुदवाये, तथा विभिन्न प्रकार के कृषि-सम्बन्धी अन्य-अन्य साधनो की सुविधा की। परन्तु उससे लाभान्वित होने के पूर्व ही बहुत से मनुष्य ससार छोड चुके थे। इसलिये उन्हें इस सहायता का कोई लाभ न हुआ। इस प्रकार सुल्तान का यह सुधार अत्यन्त असफल रहा तथा इससे जनता में क्षोभ तथा असतोष फैला। अपनी जल्द-बाजी तथा हठ-धर्मी के कारण सुल्तान भी इस असफलता का उत्तरदायी है।

**राजधानी का बदलना**.—मुहम्मद तुगलक का दूसरा कार्य जिससे देहली की जनता को बहुत कष्ट उठाना पडा, वह राजधानी का परिवर्तन था। अपने राज्य-काल के प्राथमिक वर्षों में जब सुल्तान बेहाउद्दीन गहरतास्प का विद्रोह शान्त करने के लिये चला तो अपने साम्राज्य की विशालता को देखते हुये उसे देवगिरि की स्थिति पसन्द आई। उसने सोचा कि देवगिरि ऐसा स्थान है जो साम्राज्य के उत्तरी तथा दक्षिणी भागो के लिये अधिक केन्द्रीय है, और यहां से दोनो भागो पर अधिक नियन्त्रण स्थापित किया जा सकता है। दूसरे, उस समय जब राजधानी के पतन का अर्थ ही साम्राज्य पतन था। उसने सोचा कि देवगिरि अपनी दूरी के कारण मगोल आक्रमणकारियो से अधिक सुरक्षित है। वह यह भूल गया कि यात[illegible] साधनो के अभाव में साम्राज्य के अरक्षित भागो से दूर रहना भी साम्रा[illegible] के पतन का आह्वान है।

कहा जाता है कि सुल्तान ने देहली की समस्त जनता को [illegible] देवगिरि जाने का आदेश दिया और सबको वहाँ जाने के लिये बाध्य किया, [illegible]रन्तु वर्तमान खोज से ज्ञात हुआ है कि सब लोगो को वहाँ अनिवार्य रूप से ज[illegible] नही था।

यद्यपि उसने बहुत-सी सुविधायें प्रदान कीं, तो भी उस समय के यातायात के साधन तथा दक्षिण का दुर्गम मार्ग, तीसरे यात्रियों की सब सम्पत्ति सहित यात्रा, इन सबसे लोगों को इतना कष्ट हुआ कि उनमें से बहुत-से तो मार्ग ही में मर गये। जो वहाँ पहुँचे वह अपनी हरी-भरी दोआब की जन्म-भूमि के दर्शन को तड़फने लगे। सैकड़ों के रोजगार छिन गये, सैकड़ों को घर प्राप्त न हुये, और इधर-उधर मारे २ फिरते रहे। आधुनिक शरणार्थी समस्या से सम्बन्धित स्थान-परिवर्तन की सब कठिनाइयाँ उनके सामने उपस्थित हुईं। इन कठिनाइयों, मंगोल-आक्रमण तथा उत्तरी भारत के विद्रोह की सफलता से सुल्तान को अपनी भूल का अनुभव हुआ और पुनः उसने सबको दिल्ली लौटाने का आदेश दिया। यद्यपि सुल्तान ने जनता की क्षति-पूर्ति के लिये बहुत-सा धन बँटवाया और मार्ग में बहुत-सी सुविधायें दीं; परन्तु लोगों को अत्याधिक हार्दिक तथा आर्थिक कष्ट हुआ और हजारों जानें जाती रहीं। सुल्तान की जल्दबाजी तथा उसकी परिस्थिति की अपूर्ण परख उसकी उत्तरदायी है।

तांबे का सिक्का:—मुहम्मद तुगलक के शासन-काल की महत्वपूर्ण घटना उसका टकसाल-सुधार है। उसने सब धातुओं का मूल्य निर्धारित कर उसकी अनुपात से सिक्के बनवाये। यह वास्तव में एक अच्छा विचार था, परन्तु आश्चर्य-जनक घटना यह हुई कि जब अपनी मौलिकता से उसने तांबे का सिक्का प्रचलित कर; उसे चांदी के सिक्के की जगह चलाना चाहा, कहा जाता है कि सुल्तान की अत्यधिक दान-शीलता तथा राजधानी बदलने के कारण राज्य-कोष में चांदी की कमी पड़ गई। इसके अतिरिक्त दोआबे के दुर्भिक्ष के कारण राज्य-कोष की आय में भारी कमी हुई। गवर्नमेंट दिवालिया सी हो गई। इस परिस्थिति से बचने के लिये सुल्तान ने तांबे का सिक्का चलाया। मौलिकता तथा प्रयोग-प्रेम भी इसका कारण था। फारसी सम्राटों का उदाहरण उसके सामने था। उन्होंने कागज का सिक्का चलाने का प्रयत्न किया था। तांबे का सिक्का प्रचलित तो हो गया, परन्तु वह कोई ऐसी विशेषता न रख सका कि वह राज्याधिकार में ही रह सके। फल यह हुआ कि
प्र जता ने तांबे के सिक्के बना चांदी के सिक्कों की जगह चलाना आरम्भ कर दिया।
व्यक्ति का घर टकसाल-गृह हो गया। प्रजा ने अपने टैक्स इत्यादि सिक्के के रूप मे
आरम्भ कर दिये तथा इन्हीं सिक्कों द्वारा आवश्यक वस्तुएं खरीदनी तथा ऋण दे
आरम्भ कर दिया। सोना तथा चांदी तिजोरियों में बन्द हो गया। इस सिक्के के देन
े तो सब तैयार रहते, परन्तु लेने को कोई तैयार न था। व्यापार स्थगित होने लगा।
सुल्तान ने इस स्थिति को देखा तो उसे अपनी भूल ज्ञात

हुई। सुल्तान को, जो अपनी जनता से सीधेपन का वर्ताव करना चाहता था, इसकी प्रजा ने ही धोखा देना आरम्भ कर दिया। लाचार हो मुहम्मद तुगलक को सिक्का बन्द करना पड़ा। उसने जनता को आज्ञा दी कि वह तांबे के सिक्के के बदले चाँदी के सिक्के राज्यकोष से ले जायें। इसमें भी प्रजा ने कितनी बेईमानी सुल्तान से की होगी, कही नही जा सकती।

चौदहवी शताब्दी के भारत में इस प्रकार के सिक्के की असफलता अनिवार्य थी। उस समय की जनता को तांबा तांबा ही था। सुल्तान का सख्त से सख्त आदेश से भी वह चाँदी के मूल्य का नहीं हो सकता था। सिक्के को विनिमय का वैधानिक साधन समझने का विचार उस समय की जनता में मौजूद न था। दूसरे टकसाल-गृह राज्य के विशेष अधिकार की वस्तु न रही, क्योंकि सिक्के में कोई ऐसी बात न रक्खी जा सकी कि साधारण मनुष्य आसानी से उसका निर्माण न कर सके। अत उसकी यह योजना असफल रही।

## प्रारम्भिक विद्रोह :—

बहाउद्दीन गहरताश्प का विद्रोह —बहाउद्दीन मुहम्मद तुगलक का(१३२७–२८) फुफेरा भाई सागर का जमीदार था—दक्षिण के विदेशी अमीरो पर उसका विशेष प्रभुत्व था। इसलिए उसकी इच्छा हुई कि उनकी सहायता से वह देहली के सिंहासन पर अधिकार प्राप्त कर ले। १३२७—२८ ई० में उसने अपनी उद्देश्य पूर्ति के लिए विद्रोह कर दिया, परन्तु कुछ अमीरो ने जो सुल्तान के विश्वास-पात्र तथा स्वामिभक्त थे, बहाउद्दीन का घोर विरोध किया और उसे मांडू में शरण लेने के लिए बाध्य कर दिया। जब सुल्तान को विद्रोह की सूचना मिली तो उसने ख्वाजाजहाँ को एक सेना ले उसे परास्त करने भेजा। देवगिरी के निकट दोनो सेनाओ में घोर युद्ध हुआ। बहाउद्दीन तथा उसके साथी वीरता से लड़े परन्तु परास्त हुए। बहाउद्दीन ने भागकर कम्पिल के राजा के यहाँ शरण ली। ख्वाजाजहाँ ने वहाँ भी उसका पीछा किया और अन्त में देहली से सैनिक-सहायता प्राप्त होने पर वह राजा को पूर्णतया परास्त करने में सफल हुआ। अब बहाउद्दीन ने होयसल राजा वीरवल्लाल तृतीय के यहाँ शरण ली। वल्लाल जो कम्पिल के राजा का विनाश देख चुका था, किस प्रकार उसे शरण में रख सकता था। उसने बहाउद्दीन के साथ अच्छा वर्ताव किया परन्तु शरण देने के बदले उसने उसे बन्दी बनाकर ख्वाजाजहाँ के पास भेज दिया, जिसने उसे हाथ-पैर बांध कर देहली भेज दिया। जहाँ उसको प्राणदण्ड दिया गया। साम्राज्य के इस प्रथम विद्रोह ने सुल्तान पर प्रकट कर दिया कि देहली राजधानी दक्षिण के लिए दूरी पर है। यहाँ से दक्षिण पर पूरा निरीक्षण नही रक्खा जा सकता इसलिए उसके

मन में विचार आने लगा कि देहली के बदले किसी अन्य उपयुक्त तथा केन्द्रीय स्थान को राजधानी बनाना उचित होगा। इस विचार ने जैसा कि पहिले उल्लेख किया जा चुका है सुल्तान को देहली से देवगिरी को राजधानी बदलने का प्रोत्साहन दिया।

मंगोल आक्रमण:—१३३२ ई०—देवगिरि को राजधानी—परिवर्तन करने में अत्यन्त कष्ट हुआ। उस परिवर्तन के पश्चात् शीघ्र ही उत्तर में अराजकता के चिन्ह दृष्टि-गोचर होने लगे। कई प्रान्तीय गवर्नरों ने कर भेजना बन्द कर दिया। मुल्तान के गवर्नर ने स्थिति से लाभ उठाकर अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। मंगोल, जो सदैव भारत पर आक्रमण करने के लिए लालायित रहते थे। १३३२ ई० में भारत पर बढ़ आये और लाहौर, मुल्तान इत्यादि पर विजय प्राप्त कर देहली पर आ धमके। फिरिश्ता लिखता है कि सेना का मुख्य भाग नई राजधानी देवगिरि में होने के कारण सुल्तान ने अपने आपको मंगोलों का सामना करने के अयोग्य पाकर मंगोल सेनापति की सेवा में अमूल्य भेंट भेज उसके समक्ष संधि का प्रस्ताव रक्खा। वह इस अमूल्य भेंट को देख कर चकित रह गया। अतः उसने सन्धि का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और समस्त प्रदेश को नष्ट-भ्रष्ट करता गुजरात तथा सिन्ध के मार्ग से वापिस लौट गया। सुल्तान को इस प्रकार एक विदेशी आक्रमण का सामना करना अत्यन्त लज्जा-स्पद घटना है, आक्रमणकारी को इस प्रकार अमूल्य भेंट दे वापिस भेजना एक प्रकार का आत्मसमर्पण, आधीनता स्वीकार करना तथा रिश्वत सी है। जो किसी आत्म-सम्मानी व्यक्ति या समाज को सर्वथा असह्य है। मंगोल-आक्रमण ने सुल्तान पर प्रकट कर दिया कि राजधानी-परिवर्तन सर्वथा गलत था। उसका अर्थ था समस्त उत्तरी भारत से हाथ धो बैठना? इसलिये उसने पुनः देवगिरि से देहली राजधानी परिवर्तन की आज्ञा दी। जिससे साम्राज्य के अरक्षित भाग अर्थात् उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश पर कठोर दृष्टि रख उसे संकट से मुक्त रक्खा जा सके।

वाह्य-नीति:—मुहम्मद तुगलक भी अन्य मध्यकालीन सम्राटों की भाँति अपने विशाल साम्राज्य से सन्तुष्ट न था। उसकी इच्छा थी कि दूरवर्ती भूभागों पर अधि-कार प्राप्त कर उन्हें अपने साम्राज्य का अङ्ग बनाये। इसलिए उसने एक विशाल सेना का आयोजन कर खुरासान पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहा। खुरासानी अमीरों ने, जो उसकी दान-शीलता की प्रशंसा सुनकर धन प्राप्ति की इच्छा से उसके दरबार में ठहरे हुए थे, उसे इस आक्रमण के लिए प्रोत्साहित किया। एशिया की स्थिति को दृष्टि में रखते हुए खुरासान-विजय की आशा भी थी। इसलिये सुल्तान की आकाँक्षा कुछ अनुचित न थी, परन्तु तुगलक साम्राज्य की आर्थिक दशा शोचनीय थी। वह अभी राजधानी-परिवर्तन तथा सिक्का-प्रचलन से ही न संभल पाया था;

दुर्भिक्ष ने उसकी कमर तोड़ रखी थी। दूसरे खुरासान का दुर्गममार्ग तथा वहाँ का पहाड़ी प्रदेश उसकी विजय को असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य बनाते थे। इसलिये अच्छा हुआ कि उसने स्वयं ही इस योजना को क्रियान्वित करने का प्रयत्न न किया, अन्यथा सम्भव था कि इस में सफल न होता।

**नगरकोट विजय:**—१३३६ ई० में मुहम्मद तुगलक ने नगरकोट पर आक्रमण किया। इस पहाड़ी दुर्ग की भौगोलिक-स्थिति इसे अजेय बनाये हुए थी। मुहम्मद से पहले अन्य मुसलमान विजेताओं ने इसी कारण से इस पर आक्रमण करने का साहस न किया। मुहम्मद ने भी इसकी शक्ति के विषय में सुन रक्खा था, इसलिये उसकी इच्छा हुई कि नगरकोट पर विजय प्राप्त कर उसे अपने साम्राज्य में मिलाया जाये। बात की बात में असंख्य मुस्लिम सेना नगरकोट जा पहुँची. राजा परास्त हुआ और उसने अधीनता स्वीकार कर ली। नगरकोट को उसे ही वापिस कर दिया गया।

**हिमालय आक्रमण:**—नगरकोट विजय के पश्चात् १३३७ से १३३८ ई० तक मुहम्मद ने हिमाचल प्रदेश पर आक्रमण किया। आक्रमण का उद्देश्य वर्णन करते हुए इब्नबतूता तथा बरनी लिखते हैं कि मुहम्मद तुगलक वर्तमान कुमायूँ प्रदेश स्थित पहाड़ी रियासतों पर प्राधिपत्य स्थापित करना चाहता था; क्योंकि वहाँ के राजा प्राय: अपने समीपवर्ती तुगलक-राज्य के भागों पर आक्रमण कर उसकी शान्ति को भंग करते रहते थे। सुल्तान ने अपने योग्य सेनापतियों के नेतृत्व में एक लाख अश्वारोहियों की सेना इस प्रदेश पर विजय प्राप्त करने के लिये भेजी। पहाड़ी कठिनाइयों का सामना कर हजारों सैनिकों से युक्त इस विशाल सेना ने पहाड़ी राजाओं को सुल्तान की आधीनता स्वीकार करने तथा वार्षिक कर देने के लिए बाध्य कर दिया।

कुछ इतिहासकार इस आक्रमण को चीन का आक्रमण बताते हैं, परन्तु यह सर्वथा निराधार है, क्योंकि इब्नबतूता जो स्वयं इस आक्रमण में मौजूद था इसकी स्थिति का वर्णन देते हुए कहता है कि अमरोहे के पास बहने वाली एक नदी (शायद राम गंगा से अभिप्राय है) इस पहाड़ी प्रदेश से निकलती .; इससे स्पष्ट है कि यह देश चीन नहीं हो सकता, वरन् वर्तमान कुमायूँ प्रदेश ही है।

**चीन से सम्बन्ध**:—हिन्दू-काल में चीन के साथ भारतवर्ष के मैत्रिक सम्बन्ध थे। मुसलमान-काल में ये सम्बन्ध प्राय: समाप्त-से हो गये थे, परन्तु मुहम्मद तुगलक ने इन्हें फिर जाग्रत किया। १३४० ई० में चीन के मंगोल सम्राट् ने मुहम्मद तुगलक की सेवा में एक राजदूत भेजा। जिसे सम्भल के निकट हिमालयप्रदेश स्थित

बौद्ध मन्दिरों के पुनः निर्माण तथा मरम्मत की आज्ञा भी दी गई। यह राजदूत मुहम्मद तुगलक के लिये अमूल्य राज भेंट लाया था। सुल्तान ने भी इब्नबतूता को अपने राजदूत की हैसियत से चीन सम्राट् की सेवा में भेजा। राजदूत का यह आवागमन सिद्ध करता है कि सुल्तान चीन से मैत्रिक सम्बन्ध स्थापित करने का इच्छुक था।

साम्राज्य विद्रोह :—मुहम्मद तुगलक की नीति ने समस्त साम्राज्य में असन्तोष उत्पन्न कर दिया। उसके राजधानी-परिवर्तन, सिक्का-प्रचलन, कर-वृद्धि तथा दुर्भिक्ष ने आर्थिक सकट प्रस्तुत कर स्थिति को और गम्भीर कर दिया। सुल्तान की उग्रता तथा कठोर-दण्ड अराजकता में और सहायक सिद्ध हुए। इसलिये उसके राज्य-काल में सर्वथा विद्रोह होते रहे।

माबर विद्रोह :—१३३४-१३३५ ई० में जब सुल्तान उत्तरी भारत में दुर्भिक्ष का प्रबन्ध करने तथा दोआब के विद्रोही अमीरों को दबाने में व्यस्त था। उसे यह सूचना मिली कि सैय्यद जलालुद्दीन अहसानशाह नामक माबर के गवर्नर ने विद्रोह कर अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया है। अहसानशाह को विश्वास था कि उत्तरी भारत की कठिनाइयों में व्यस्त होने के कारण सुल्तान साम्राज्य के इस सुदूर भाग पर अधिकार स्थापित करने का अवसर प्राप्त नहीं कर सकता, परन्तु जब सुल्तान को यह पता चला तो वह एक विशाल सेना ले माबर की ओर चल दिया। परन्तु देवगिरी से आगे तिलंगाना में उसकी सेना में महामारी फैल गई, जिसके कारण अधिकतर सैनिक मृत्यु को प्राप्त हुए। यह देखकर सुल्तान वापिस हो गया और माबर स्वतन्त्र हो गया।

अन्य विद्रोह :—शाही सेना की महामारी का समाचार दम के दम में समस्त देश में फैल गया। इससे प्रोत्साहित होकर गवर्नरों ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। दौलताबाद के गवर्नर मलिक होशंग ने भी ऐसा ही किया परन्तु जब उसे शाही सेना के आगमन की सूचना मिली तो कोंकण थाना के हिन्दू राजा के यहाँ शरण ली। इसी प्रकार हांसी में सैय्यद इब्राहीम नामक गवर्नर ने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया, परन्तु वह परास्त हुआ और उसे प्राणदण्ड दिया गया। १३३८ ई० में बंगाल के गवर्नर बहरामखाँ का देहान्त हो गया। उसकी मृत्यु के पश्चात् मलिक फखरुद्दीन नामक एक अमीर ने राज-सत्ता पर अधिकार प्राप्त कर अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया। दुर्भिक्ष में व्यस्त सुल्तान इस ओर ध्यान भी न दे सका और बंगाल उसके हाथ से जाता रहा।

आईनउल्मुल्क का विद्रोह १३४०—४१ ई० :—परन्तु सब से महत्व-पूर्ण विद्रोह अवध के गवर्नर आईनउल्मुल्क का था, यह गवर्नर सुल्तान का अत्यन्त

विश्वासपात्र और स्वामिभक्त अमीर था, जो सुल्तान की उग्रता के कारण विद्रोह करने के लिए बाध्य हो गया। सुल्तान को दक्षिण से सूचना मिली कि दौलताबाद के गवर्नर कतलगखाँ के पदाधिकारियों ने समस्त साम्राज्य की राजकीय आय हज्म करली है और कतलगखाँ को इसका पता होते हुए भी उसने उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की। सुल्तान ने इस सूचना पर विश्वास कर, बिना छान-बीन किये कतलगखाँ को दौलताबाद से बुला आईनउल्मुल्क को उसके स्थान पर बदल दिया। कतलगखाँ की स्वामिभक्ति को देखते हुए उसका असामयिक परिवर्तन किसी की भी समझ में न आया और अमीरों ने इसका अर्थ यह लगाया कि सुल्तान अवध के गवर्नर आईनउल्मुल्क से क्रुद्ध है अतः उसकी बदली दौलताबाद को कर दी है। यह संदेह और भी दृढ़ हो गया। जब सुल्तान ने आईनउल्मुल्क को अपने स्त्री बच्चे राजधानी में छोड़ अ‌केले ही दौलताबाद में जाने की आज्ञा दी। इस पर आईनउल्मुल्क ने सोचा कि बिना संघर्ष किये ही प्राण-दण्ड प्राप्त करने के बदले क्यों न विद्रोह कर अपनी भाग्य परीक्षा की जाए। मुहम्मद तुग़लक से क्षुब्ध अन्य अमीरों ने भी जो आईनउल्मुल्क के सभासद थे उसका अनुमोदन किया। स्थिति की गम्भीरता ने सुल्तान को चिंतित बना दिया; क्योंकि आईन एक शक्तिशाली तथा स्वामिभक्त अमीर था। इसलिए उसका विद्रोह सफल हो सकता था। अवध के देहली के निकट होने के कारण इसका अर्थ साम्राज्य का विनाश था परन्तु मुहम्मद ने धैर्य से काम किया और समाना, अमरोहा इत्यादि से सेना मंगा वह विद्रोह को शान्त करने में सफल हुआ। आईन परास्त हुआ, परन्तु क्षमा कर दिया गया। इसके बाद सुल्तान निरन्तर कठिनाइयों में फंसता चला गया। विद्रोह तथा कठिनाइयाँ पराकाष्ठा पर पहुँच गईं। जब दक्षिण में विदेशी अमीरों ने विद्रोह कर साम्राज्य को बिल्कुल अस्त-व्यस्त कर दिया।

*दक्षिण की राज्य-स्थिति*:—अपने शासन-काल के आरम्भ में तथा अपने पिता के समय दक्षिण तुगलक साम्राज्य का एक अङ्ग बन चुका था। परन्तु सन् १३३५ ई० में जैसा कि पहिले उल्लेख किया जा चुका है, माबर स्वतन्त्र हो गया था। १३३६ ई० में हरिहर और उसके भाई बुक्कराय ने विजयनगर राज्य की नींव डाली। १३४४ ई० में वारंगल-प्रदेश भी प्रतापरुद्र के पुत्र कृष्ण के नेतृत्व में स्वतन्त्र हो गया। केवल देवगिरि और गुजरात साम्राज्य में रह गये। असफलता ने सुल्तान को अत्यन्त चिड़चिड़ा बना दिया, और उसके हृदय में मनुष्य-मात्र के लिए कोई सहानुभूति न रह गई। जो विरोधियों को शान्त करने के लिये अति आवश्यक है, वह सब को सम-दृष्टि से देखने लगा, देवगिरि के प्रसिद्ध गवर्नर कुतलगखाँ को पदच्युत कर उसके भाई को देवगिरि का गवर्नर बना दिया। क्योंकि कुतलगखाँ
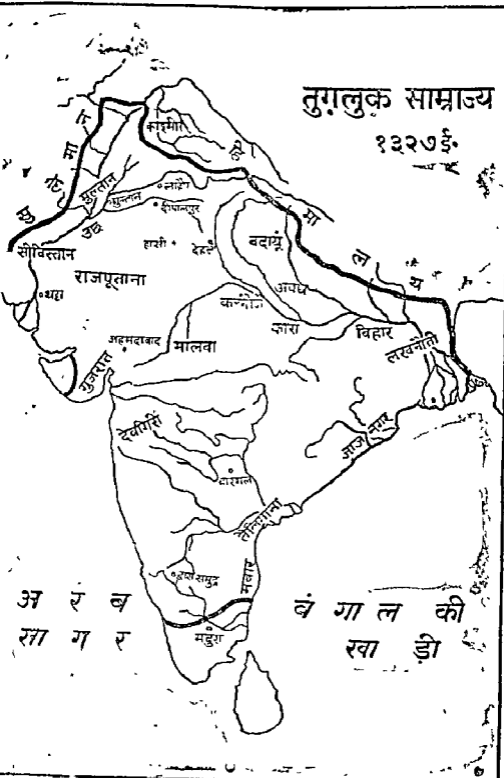
अत्यन्त प्रिय शासक था। इसलिए जनता इस व्यवस्था से अति असन्तुष्ट हुई। इसी बीच में सुल्तान ने एक बहुत बडी भूल की। उसने यह समझा कि दक्षिण के विद्रोहो का कारण विदेशी अमीर हैं। इसलिये उसने मालवा तथा मेवात के गवर्नर अमीर अजीज खुम्मार द्वारा प्रभावशाली अमीरो का वध करा दिया। इससे अमीर क्षुब्ध तथा व्याकुल हुए और अपनी रक्षा के लिए सगठित होने का प्रयत्न करने लगे। सर्वत्र सैनिक विद्रोह होने लगा। सुल्तान अत्यन्त क्षुब्ध हो स्वय गुजरात पहुँचा और उसने भडौच से दौलताबाद के गवर्नर को आदेश भेजा कि अमीरो को ले उसकी सेवा में भडौच उपस्थित हो। मार्ग में शाही सेना और अमीरो में झगडा हो गया। उससे अमीरो को यह सन्देह हो गया कि सुल्तान उन्हें प्राण-दण्ड देगा। अत उन्होने शाही सेना पर आक्रमण कर दिया और दौलताबाद आ गये तथा किले पर आक्रमण कर दिया और गवर्नर को बन्दी बना लिया। समस्त राजकोष उनके हाथ लगा। जब सुल्तान को यह सूचना मिली तो वह स्वय दौलताबाद गया और विद्रोहियो को परास्त किया। परन्तु इसी समय सुल्तान को यह सूचना मिली कि गुजरात में तागी ने विद्रोह कर दिया है। इसलिए उसे गुजरात जाना पडा। ज्योंही सुल्तान गुजरात की ओर रवाना हुआ, अमीरों ने दुगुनी शक्ति से फिर विद्रोह कर दिया। उन्होने दौलताबाद पर फिर अधिकार कर लिया, और हसन नामी अपने प्रसिद्ध सेनापति को अलाउद्दीन नाम से बादशाह घोषित कर दिया। यही हसन बहमनी वश का सस्थापक हुआ, इस प्रकार बहमनी वश की नीव पडी।

**सुल्तान की भूल**—जैसा कि पहिले उल्लेख किया जा चुका है कि विदेशी अमीरो को छोड सुल्तान तागी के विद्रोह को शान्त करने गुजरात चला आया था। यह उसकी भूल थी कि वह एक विद्रोह को अधूरा छोड दूसरी ओर चला गया। पहिले उसे विदेशी अमीरो को पूर्णतया दबाना चाहिये था। जिससे कि एक ओर से निश्चित हो जाता। उसे अधूरा छोडने का फल यह हुआ कि देवगिरि उसके हाथ से निकल गया।

**सुल्तान का निधन**—सुल्तान तागी का पीछा करता एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता रहा, परन्तु सदैव तागी उसके चगुल से निकल जाता था। उसने मार्ग में करनाल की सेना को परास्त किया और गोदले के स्थान पर बीमार होने के कारण दो-तीन दिन ठहर गया। फिर कुछ सेना एकत्रित कर उसने ठाठा की ओर प्रस्थान किया। परन्तु वह वहीं बीमार पडा और २० मार्च सन् १३५१ ई० में ससार से चल बसा। उसका विशाल साम्राज्य जो लाहौर से द्वार समुद्र तक और ठाठा से लखनौती तक फैला हुआ था, उसके सामने ही छिन्न भिन्न हो गया।

मुहम्मद तुगलक का व्यक्तित्व: –मुहम्मद तुगलक अपने समस्त जीवन में कठिनाइयों से लड़ता रहा और कभी निराश हो कर्त्तव्य विमुख न हुआ। सत्य है कि वह असफल रहा, परन्तु उसकी असफलता ऐसे कारणों से हुई, जो उसके अधिकार से बाहर थे। दुर्भिक्षों ने उसके शासन-काल की समृद्धि को नष्ट कर शान्ति तथा व्यवस्था को पूर्णतया भंग कर दिया। उसको क्रूर तथा रक्त-पिपासु कहना अत्यन्त अनुचित होगा। बरनी और इब्नबतूता के वर्णन में पर्याप्त सामग्री यह सिद्ध करने के लिये है कि वह रक्त के विचार से रक्त बहाना न चाहता था। वह अपने शत्रुओं के प्रति भी उदारता और दया का बर्ताव कर सकता था। उसके सामने एक विशाल साम्राज्य की समस्यायें थी, परन्तु उसका दुर्भाग्य कि उसके पास योग्य तथा पूर्ण सहयोग देने वाला सहकारी वर्ग न था। उसकी न्याय-परायणता और सम-दृष्टि की नीति को भी उन्होंने दोष-पूर्ण सिद्ध करने का प्रयत्न किया। समकालीन विद्वानों के वर्णन में हमको कोई प्रमाण और युक्ति इस प्रकार की नहीं मिलती जिससे हम उसे पागल कह सकें। उसकी जल्दबाजी, उसकी प्रकृति, दैनिक घटनायें, तथा उसके पदाधिकारियों की अयोग्यता, उसकी असफलता का प्रमुख कारण बनी। उसे कोई भी सेनापति ऐसा न मिला जो कि किसी स्थान पर विद्रोह को शान्त कर व्यवस्था स्थापित कर सकता। प्रत्येक स्थान पर सम्राट् को स्वय जाकर स्थिति को सम्भालना पड़ता था। एक आदमी के लिए प्रत्येक स्थान पर स्वयं जाकर प्रबन्ध करना असम्भव था, परन्तु फिर भी प्रत्येक स्थान पर जाना और परिस्थिति को सम्भालना उसके अथक परिश्रम तथा महानता के द्योतक हैं। सुल्तान की इतनी अनुपस्थिति रहने पर भी देहली में कोई उपद्रव न होना भी उसकी न्यायप्रियता तथा सद्व्यवहार को प्रमाणित करता है। सिक्के का चलाना उसकी कुशाग्रबुद्धि की देन है। परन्तु वहाँ भी उस अभागे को भाग्य ने धोखा दिया। प्रत्येक घर टकसाल में परिणित हो गया। सुल्तान ने फिर भी उस सिक्के को वापिस किया और कोष से सोने के सिक्के लौटा दिये।

मुहम्मद तुगलक इतिहास में ऐसा उदाहरण है कि अपनी योग्यता, वीरता, न्यायप्रियता तथा समाज-सुधार आदि गुण से सम्पन्न होते हुये भी वह जीवन भर असफल ही रहा।

## "फीरोज तुग़लक"

**प्रारम्भिक जीवन:**—फ़ीरोज़ सन् १३०९ ई० में पैदा हुआ। उसका पिता सिपह सालार रजब सुल्तान गयासुद्दीन का भाई था। उसकी माँ अबोहर के भाटी राजा की पुत्री थी। आश्चर्य है कि राजपूत माँ के होते हुये भी फीरोज़ इतना कट्टर हो गया। सुल्तान गयासुद्दीन ने अपने जीवन काल में फीरोज़ से बहुत अच्छा बर्ताव

किया और उसे उच्च पदों पर नियुक्त किया। बरनी की प्रसिद्ध पुस्तक तारीख फीरोजशाही हमें प्रमाणित करती है कि मुहम्मद तुगलक उसे अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था।

सिंहासनारूढ़ होना:—ठाठा के निकट मुहम्मद तुगलक की मृत्यु हो गई। मृत्यु से शाही कैम्प में खलबली मच गई। समस्त सेना में निराशा के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। मंगोल सैनिक जो लूट के लालच से सुलतान की सेना में भर्ती हो गये थे, शाही कैम्प को लूटने लगे, और सेना के लिये राजधानी तक लौटना कठिन समस्या प्रतीत होने लगी। सुल्तान के कोई पुत्र न होने के कारण उत्तराधिकारी की समस्या अलग प्रस्तुत हो गई। बरनी जो उस समय कैम्प में उपस्थित था लिखता है कि सुल्तान ने स्वयं फीरोज़ को उत्तराधिकारी चुना था। अतः सबने फीरोज़ से प्रार्थना की कि सिंहासन स्वीकार कर सब सेनापतियों तथा शाही परिवार की रक्षा करे।

फीरोज धार्मिक वृत्ति का मनुष्य था और सिंहासन की अपेक्षा मक्का की यात्रा अधिक पसन्द करता था। अमीरों के दबाव के कारण वह अन्त में गद्दी स्वीकार करने को बाध्य हो गया। तुरन्त सेना में नये जीवन तथा स्फूर्ति का संचार हो गया। निराशा आशा में परिणत हो गई। इधर देहली में ख्वाजा-जहाँ ने मुहम्मद के एक कल्पित पुत्र को गद्दी पर बिठा दिया और देहली की स्थिति को सम्भाला। जब फीरोज वहाँ पहुँचा तो उसने अपने व्यवहार की व्याख्या देकर विश्वास दिलाया, कि उसने केवल स्थिति को सम्भालने के लिये ऐसा किया था और उसने क्षमा चाही। *फीरोज़ को भी ख्वाजा निर्दोष प्रतीत हुआ, परन्तु अमीरो के कहने से उसे समाना की* जागीर पर जाने की आज्ञा दी गई। मार्ग में शेरखाँ ने उसका वध कर दिया। इस प्रकार फीरोज ने एक निर्दोष तथा विश्वासपात्र पदाधिकारी को जिसने सम्पूर्ण जीवन तुगलक वंश की निष्काम सेवा की थी, अपनी दुर्बलता के कारण अमीरों के कहने से खो दिया।

फीरोज़ का व्यक्तित्व :—फीरोज़ तुगलक १३५१ ई० में गद्दी पर बैठा वह इस उच्च पद के लिये अयोग्य था। यह सत्य है कि वह उत्तरदायी पदों पर पदासीन रह चुका था। उसने मुहम्मद तुगलक के राज्यकाल में पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर लिया था परन्तु वह सैन्य-कला और विज्ञान से सर्वथा शून्य था। जो १४ वी *शताब्दी के सम्राट के लिये सर्वोत्तम विशेषता समझी जाती थी।* समकालीन इतिहासकार उसकी अत्यन्त-प्रशंसा करते हैं, और लिखते हैं कि इतना नम्र, दयालु, सत्यवादी, तथा पवित्र सुल्तान देहली की गद्दी पर कभी नही बैठा। इस प्रशंसा का

अधिकतर कारण यह है कि फीरोज ने उस धर्मवाद को जो मुहम्मद तुगलक के समय में स्थगित हो गया था, फिर से लागू कर काजी तथा मौलवियों को विशेषाधिकार दे तथा उनके प्रति श्रद्धा का बर्ताव कर धार्मिक पुरुषों को अत्यन्त सन्तुष्ट रक्खा। यदि हम उसकी कीर्ति तथा उसके चरित्र का अधिक ध्यान से सिंहावलोकन करें तो हम दूसरे ही परिणाम पर पहुँचते हैं। हमें अनुभव होता है कि फीरोज कट्टर मुसलमान था। जो अपने धर्म के अतिरिक्त किसी अन्य धर्म को अच्छी दृष्टि से देखना पसन्द नही करता था। अपने शासन में वह शास्त्र के सिद्धांतों पर अमल करता था और त्योहार तथा अन्य धार्मिक अवसरों पर एक कट्टर मुसलमान के समान कार्य करता था। वह हिन्दुओं तथा अन्य धर्मावलम्बियों को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिये बाध्य किया करता और ऐसा करने पर उनको जजिया से मुक्त कर देता था। कट्टर होने के कारण वह अन्य धर्म के अनुयायियों को देशनिकाला, अथवा मृत्यु-दण्ड देने में कुछ भी हिचक न करता था। एक ब्राह्मण जिस पर यह अभियोग लगाया था कि उसने एक मुसलमान को इस्लाम धर्म की ओर से विमुख करने का प्रयत्न किया था। महल के सामने ही जीवित जला दिया गया। जाज नगर के आक्रमण में सुल्तान जगन्नाथ की मूर्तियों को नष्ट-भ्रष्ट कर देहली में लाया और वहाँ उनका अत्यन्त निरादर किया। मुसलिम इतिहास में उसने प्रथमबार ब्राह्मणों पर जजिया कर लगाया तथा अमीरों पर सुन्दर वस्त्र तथा सुनहरी आभूषण पहनने का प्रतिबन्ध लगाया। उसने सोने-चाँदी के बर्तनों में खाना खाना बन्द कर दिया। झंडों के ऊपर तसवीरें बनाना बन्द कर दिया गया। क्योंकि इससे मूर्ति-पूजा का आभास होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि फीरोज एक कट्टर मुसलमान था।

वह दुर्बल प्रकृति का मनुष्य था। काजी और मुल्लाओं की संगति के कारण वह उनके हाथ की कठपुतली बन गया था। वह राज्य का कोई कार्य बिना उनकी सम्मति के न कर सकता था। सैनिक गुणों का उनमें सर्वथा अभाव था। और कठिन परिस्थिति में जब विजय-थोड़े-से पुरुषार्थ से प्राप्त हो सकती थी, वह प्रायः असम्मान पूर्वक वापिस आ जाता तथा अस्थायी-संधि करने के लिये बाध्य हो जाता था।

अपने भाई मुहम्मद तुगलक की भांति वह उच्चकोटि का विद्वान् भी न था, और साम्राज्य की कठिन समस्याओं को जो उसके भाई के राज्य-काल में उत्पन्न हो गई थी, सुलझाने में सर्वथा अयोग्य था। परन्तु कुरान-भक्ति तथा धर्म उसे वासनाओं पर अधिकार प्राप्त न करा सके। एक आक्रमण के समय तातारखाँ ने उसके डेरे में प्रवेश किया तो उसने सुल्तान को आधा नंगा तथा बिस्तर के नीचे शराब के प्याले छिपाये पड़ा पाया।

अपने सहधर्मियों के साथ फीरोज का व्यवहार अत्यन्त उदार था। वह गरीब मुसलमानों तथा विधवाओं को अपनी लड़कियों की शादी करने तथा जीवन निर्वाह आदि के लिये दान देता था। उसने गुप्तचर-विभाग तथा कठोर दंड देना स्थगित कर दिया। उसने अपनी प्रजा की भलाई के लिये अन्य कई कार्य किये। कृषकों के लिये सिंचाई की सुविधा के लिये उसने यमुना नदी से एक नहर निकलवाई। उसने देहली में उच्चकोटि का औषधालय खुलवाया, जहाँ लोगों को दवाई बिना मूल्य वितरण की जाती थी। वह शिकार का शौकीन था, अत उसने देहली के निकट एक विशाल जंगल की व्यवस्था की जहाँ शिकारी जानवरों की व्यवस्था की गई। इसके अतिरिक्त उसने अपने राज्यकाल में अन्य कई सुधार किये परन्तु सब के होते हुए भी हम कह सकते हैं कि फीरोज की दुर्बलता तुर्क साम्राज्य के पतन में विशेष सहायक हुई, और हमें नैपोलियन के शब्द, जो उसने अपने भाई जोज़फ से कहे थे याद आ जाते हैं। उसने कहा था कि "जब मनुष्य एक बादशाह को दयालु बादशाह कहें तो समझ लेना कि उसका शासन असफल रहा है।" फीरोज का उदाहरण इस कथन की सत्यता प्रमाणित करता है।

बंगाल का आक्रमण १३५३ से १३५४ तक—मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के पश्चात् बंगाल स्वतन्त्र हो गया था। हाजी इलियास, बंगाल के गवर्नर ने शमसुद्दीन के नाम से अपने आपको बंगाल का स्वतन्त्र शासक घोषित किया। सुल्तान ने एक सेना लेकर उसके विरुद्ध प्रयान किया, और वहाँ पहुँच कर एक घोषणा की जिसमें हाजी की गलतियाँ प्रकट की, और बताया कि मैं स्वयं न्यायोचित राज्य करने का प्रयत्न करूँगा, उसने जो सुविधायें जनता को देने का वचन उस घोषणा पत्र द्वारा दिया वह प्रगट करती हैं कि वह युद्ध से कितना बचना चाहता था। उसने घोषित किया कि हाजी इलियास लखनौती और तिरहुत प्रदेश पर अधिकार कर प्रजा के साथ वहाँ अन्यायपूर्वक व्यवहार कर रहा है। वह स्त्रियों को, जिनकी सब धर्मों में रक्षा तथा आदर किया गया है, प्राण दण्ड देने में संकोच नहीं करता। उसने न्याय विरुद्ध अनेकों कर लगा कर दुर्व्यवहार करना आरम्भ कर दिया है। और प्रजा का सम्मान, स्त्रियों के सतीत्व तथा जनता की सुरक्षा की कोई व्यवस्था न कर उसने दण्ड पाने योग्य आचरण किये हैं। इसलिये हम लखनौती की समस्त जनता से अपील करते हैं कि ऐसे अन्यायी शासक को छोड़ हमारी शरण में आ जावें, और हम उनके वेतन तथा जागीर की आमदनी का दुगुना उन्हें देंगे।

जब हाजी इलियास को सुल्तान के आगमन का पता चला तो वह इकदला के किले में दाखिल हो गया ? फीरोज न उसका घेरा डाल दिया परन्तु उसने इलियास

को किले से बाहर निकलवाने के लिये एक चाल चली; उसने सेना को पीछे हटने की आज्ञा दी जिससे कि हाजी समझे कि देहली की सेना भाग रही है। और पीछा करने के लिये बाहर निकल आये—ऐसा ही हुआ; तुरन्त फीरोज ने अपनी सेना को युद्ध करने का आदेश दिया, दोना सेनाओं में घोर युद्ध हुआ। जब हाजी इलियास ने देखा कि वह परास्त हो जायेगा तो उसने फिर भाग कर इकदला के दुर्ग में शरण ली। शाही सेना ने पूर्णशक्ति से किले का घेरा डाला, परन्तु स्त्रियों की चीख-पुकार तथा मृतक सिपाहियो के परिवारों की हृदय-विदारक चीखो ने सुल्तान के हृदयों को द्रवित कर दिया। और जब वह विजय-प्राप्ति के बिल्कुल निकट था, तो यह सोच-कर कि इस रक्त-पात का अन्तिम न्यायाधीश के यहाँ उत्तर देना होगा, उसने घेरा उठाने की तथा देहली प्रस्थान की आज्ञा दी। जब उसके सेनापति तातारखाँ ने आये हुये बंगाल प्रान्त को देहली साम्राज्य में मिलाने के लिये कुछ और दिन ठहरने की प्रार्थना की तो वह यह कहकर चल दिया कि इस प्रान्त को देहली में मिलाने से कोई लाभ नहीं।

दूसरा आक्रमण १३५६-१३६० ई०:—बंगाल से लौटने पर सुल्तान अपने शासन-प्रबन्ध में व्यस्त हो गया। उसे बंगाल का तनिक भी ध्यान न रहा। परन्तु इसी समय बगाल पर दूसरा आक्रमण आवश्यक हो गया। पूर्वी बंगाल का प्रथम स्वतन्त्र शासक फ़खरुद्दीन जफरखाँ देहली आया और उसने हाजी इलियास के दुष्कृत्यों तथा दुर्व्यवहार की शिकायत की और सुल्तान से मुसलमानों की रक्षा की प्रार्थना की। सुल्तान ने उसकी अच्छी आव-भगत की, और तुरन्त एक विशाल सेना लेकर बंगाल पर आक्रमण करने का आदेश दिया। परन्तु इसी बीच हाजी इलियास का देहान्त हो चुका था। और उसका पुत्र जिसका नाम सिकन्दर था उसकी जगह राज्य करने लगा था। अपने पिता की भाँति उसने भी अपने आपको इकदला दुर्ग में बन्द कर लिया। क़िले का घेरा डाल दिया गया। उसने इतनी शक्ति से घेरा जारी रक्खा कि सिकन्दर को सधि करनी पड़ी। उसने जफरखाँ को सुनार गांव तथा उसका निकटवर्ती प्रदेश देने का वचन दिया और चालीस हाथी तथा असंख्य भेंटे सुल्तान की सेवा में भेजी परन्तु जफरखाँ ने, जिसकी प्रार्थना पर यह आक्रमण हुआ था, बगाल के बदले देहली में ही निवास-स्थान को अच्छा समझा। देहली के जीवन ने उसे इतना प्रभावित किया। इस प्रकार इस युद्ध का कोई फल न हुआ। यदि चाहता तो फीरोज समस्त बगाल को तुग़लक साम्राज्य में मिला सकता था परन्तु अपनी दुर्बलता के कारण उसने इसे मिलाने की कोई कोशिश ही न की।

बंगाल के आक्रमण पर जाते हुए अपने भाई मुहम्मद तुगलक अर्थात् जूनाखाँ

की स्मृति में उसने जौनपुर नगर बसाया जो आगे चलकर सुन्दर तथा प्रभावशाली नगरों में गिना जाने लगा।

जाज नगर:—बंगाल से लौटते समय उसने जाज नगर के राजा पर आक्रमण किया। जाज नगर (उडीसा) अत्यन्त धन-धान्य पूर्ण प्रदेश था। वहाँ का राजा एक ब्राह्मण था, जब उसने मुसलिम आक्रमण की सुनी तो उसने भाग कर जगन्नाथपुरी के द्वीप में शरण ली। पुरी का मन्दिर लूट लिया गया और वहाँ की मूर्ति समुद्र में फेंक दी गई। अन्त में राजा ने सन्धि कर ली और बहुत से हाथी तथा प्रति वर्ष कर देने का वचन दिया।

नगर कोट:—१३६०—१३६१ ई० में सुल्तान मुहम्मद तुगलक ने नगर कोट पर विजय प्राप्त कर उसे तुगलक साम्राज्य में मिला लिया था। परन्तु उसके शासन-काल के अन्तिम चरण में राजा ने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया था। अतः नगर कोट के मन्दिर का जिसकी हिन्दुओं ने बहुत प्रतिष्ठा की थी, तथा जहाँ उन्होंने अत्यन्त धन जमा किया था, विध्वंस करने के लिये फीरोज ने उस पर आक्रमण कर दिया। नगर कोट का घेरा डाला गया और जब घेरा डाले छः महीने व्यतीत हो गये तो राजा ने आत्म-समर्पण कर दिया। फीरोज ने उसे क्षमा कर दिया और असंख्य धन भेंट ले विदा हुआ।

ठाठा विजय १३६२—६६ ई० :—ठाठा आक्रमण फीरोज़ के राज्य-काल की मुख्य घटना है।

आक्रमण का कारण :—मुहम्मद तुगलक के साथ किये गये सिन्धी लोगों के वर्ताव का बदला लेना था। सुल्तान एक विशाल सेना ४५० हाथी तथा पाँच हजार नावों की नाविक सेना ले सिन्ध की ओर बढ़ा। सिन्ध के शासक जाम ने उसका सामना करने के लिये एक विशाल सेना का आयोजन किया, परन्तु लड़ाई होने से पहले ही फीरोज की सेना में महामारी फैल गई और लगभग एक चौथाई घोड़े और सैनिक मर गये। ऐसी दशा में भी सुल्तान ने सिन्ध-सेना पर आक्रमण कर दिया और उन्हें पराजित करके किले में शरण लेने के लिये बाध्य कर दिया, इसके बाद सेना की बुरी दशा देखकर सुल्तान ने गुजरात जाकर नये सिपाही भरती करने तथा युद्ध-सामग्री लेने जाना उचित समझा। परन्तु पथदर्शकों की मक्कारी तथा क्रूरता से सेना कच्छ की खाड़ी पर जा पहुँची। इधर दुर्भिक्ष तथा महामारी का प्रकोप और भी बढ़ गया। अन्न का मूल्य बहुत बढ़ गया। लोग भूखों मरने लगे। भूख के कारण सिपाहियों ने खाल उबाल कर खाई और जानवरों आदि को भी खाया। रेगिस्तान में पानी के अभाव में समस्त सेना मृत्यु तथा निराशा के स्वप्न देखने लगी।

भी न था। अकबर बिना किसी भेद-भाव के हिन्दू, मुसलमान, ईसाई या अन्य सभी सम्प्रदायों को एक दृष्टि से देखता था। साम्प्रदायिकता उसे छू भी न गई थी इसके बदले फीरोज अत्यन्त संकुचित-हृदय व्यक्ति था। जो धर्म तथा सम्प्रदाय से तनिक भी ऊपर न उठ सकता था। यही कारण था कि यद्यपि उसके सुधारों से हिन्दुओं तथा अन्य सम्प्रदायों को भी लाभ हुआ तो भी उसकी धार्मिक नीति से उनकी भावनाओं को इतनी ठेस लगी कि वे कभी भी साम्राज्य के विश्वासपात्र न बन सके। जब कि अकबर की नीति से तमाम प्रजा मुसलिम, और हिन्दू साम्राज्य के लिए अपना रक्त बहाने के लिए उद्यत रहते थे।

माल विभाग :—अलाउद्दीन ने जागीर प्रथा को बन्द कर दिया था फीरोज तुगलक ने यह प्रथा फिर आरम्भ कर दी। उसने समस्त साम्राज्य को जागीरों में तथा जागीरों को जिलों में विभक्त कर दिया। इस प्रकार इसने मध्य-कालीन सामन्तवादी प्रथा आरम्भ की। इन जागीरों के अतिरिक्त सरकारी पदाधिकारियों को वेतन भी मिलता था। इस प्रकार उन्होंने बहुत-सा धन एकत्रित कर लिया। उसने सब लोगों की पेंशन तथा खिताबों की जाँच करवाई। और जिनकी पेंशन बन्द कर दी गई थी अथवा जिनके खिताब छीन लिए गये थे उनसे न्यायाधीश के यहाँ प्रार्थना

बड़ी कठिनाई के साथ सुल्तान गुजरात पहुँचा। वहाँ उसने नई भरती आरम्भ की और सैनिक तथा खाद्य सामग्री एकत्रित की। जब सेनापति ने कहा कि पुराने सैनिकों की दशा बहुत बुरी है तथा उनके घोड़े मर गये हैं, और महामारी के कारण उनके पास पैसा भी शेष नहीं रह गया है ताकि वह घोड़े खरीद सकें तो उसने उन्हें पेशगी रुपया दे घोड़े तथा अन्य शस्त्र खरीदने की व्यवस्था की, परन्तु इस पर भी कुछ लोग अपनी विपत्ति से दुखी हो देहली वापिस भागने लगे। उनके रोकने के लिये पहरा लगा दिया गया और देहली में वजीर को आदेश मिला कि गुजरात से भागे हुए सैनिकों को नैतिक दण्ड दें। ऐसा ही किया गया। सेना सुसज्जित कर सुल्तान ने पुनः सिन्ध पर आक्रमण किया। परन्तु सिन्धियों की वीरता के कारण बड़ी कठिनाई से सिन्धु नदी को पार करके आक्रमण हुआ। घोर युद्ध हुआ, जिसमें सिन्धियों ने अत्यन्त वीरता दिखाई जिसे देखकर फीरोज़ ने देहली से और सहायता मँगाई, खानजहाँ ने बदायूँ, कन्नौज, जौनपुर इत्यादि स्थानों से सैनिक सहायता भेजी।

देहली सेना की दिनोदिन वृद्धि को देख जाम ने आत्म-समर्पण कर दिया। उसके साथ अच्छा बर्ताव किया गया और उसे पेंशन देकर देहली रक्खा गया और उसका भाई उसकी जगह शासक बना दिया गया। इस प्रकार बड़ी कठिनाई, सेनापतियों की वीरता तथा खानजहाँ की भेजी हुई सामयिक सहायता से ठाठा पर विजय प्राप्त हुई।

दक्षिण :—मुहम्मद तुगलक के समय दक्षिण में बहमनी तथा विजय नगर राज्य स्थापित हो चुके थे। फ़ीरोज़ के समय देहली के सेनापतियों ने दौलताबाद स्थित बहमनी राज्य पर आक्रमण कर उसे फिर देहली साम्राज्य में मिलाने की आज्ञा चाही परन्तु सुल्तान आँखों में आसू भर कर कहने लगा कि मैं और अधिक मुसलिम रक्त नहीं बहाना चाहता। इसलिए फीरोज की दुर्बलता के कारण दक्षिण सदैव के लिए तुगलक-साम्राज्य से अलग हो गया।

फीरोज़ का राज्य प्रबन्ध :—फ़ीरोज़ शान्ति-प्रिय मनुष्य था। उसकी शासन व्यवस्था प्रशंसनीय है। उसकी अध्यक्षता में देहली राज्य कट्टर मुसलिम राज्य बन गया। जो अन्य मुसलिम सम्प्रदायों तथा हिन्दुओं का पूर्ण विरोधी था। सुल्तान की अनुदारता उसके हिन्दुओं पर लगे प्रतिबन्धों से प्रकट होती है।

फीरोज़ ने मुहम्मद तुगलक के शासन काल में पर्याप्त अनुभव प्राप्त किया था। वह समझ गया था कि किन विभागों में क्या २ सुधार की आवश्यकता है। प्रजा की शान्ति तथा सुख की वृद्धि सुल्तान का आदर्श बन गया। परन्तु इसीलिए फ़ीरोज़ की अकबर से तुलना करना सर्वथा भूल है। फ़ीरोज़ में अकबर की उदारता का शतांश

भी न था। अकबर बिना किसी भेद-भाव के हिन्दू, मुसलमान, ईसाई या अन्य सभी सम्प्रदायों को एक दृष्टि से देखता था। साम्प्रदायिकता उसे छू भी न गई थी इसके बदले फीरोज अत्यन्त संकुचित-हृदय व्यक्ति था। जो धर्म तथा सम्प्रदाय से तनिक भी ऊपर न उठ सकता था। यही कारण था कि यद्यपि उसके सुधारों से हिन्दुओं तथा अन्य सम्प्रदायों को भी लाभ हुआ तो भी उसकी धार्मिक नीति से उनकी भावनाओं को इतनी ठेस लगी कि वे कभी भी साम्राज्य के विश्वासपात्र न बन सके। जब कि अकबर की नीति से तमाम प्रजा मुसलिम, और हिन्दू साम्राज्य के लिए अपना रक्त बहाने के लिए उद्यत रहते थे।

माल विभाग :—अलाउद्दीन ने जागीर प्रथा को बन्द कर दिया था फीरोज तुगलक ने यह प्रथा फिर आरम्भ कर दी। उसने समस्त साम्राज्य को जागीरों में तथा जागीरों को जिलों में विभक्त कर दिया। इस प्रकार इसने मध्य-कालीन सामन्तवादी प्रथा आरम्भ की। इन जागीरों के अतिरिक्त सरकारी पदाधिकारियों को वेतन भी मिलता था। इस प्रकार उन्होंने बहुत-सा धन एकत्रित कर लिया। उसने सब लोगों की पेंशन तथा खिताबों की जाँच करवाई। और जिनकी पेंशन बन्द कर दी गई थी अथवा जिनके खिताब छीन लिए गये थे उनसे न्यायाधीश के यहाँ प्रार्थना पत्र देकर उचित फैसला प्राप्त करने के लिए कहा गया, जिससे कि मुहम्मद तुगलक द्वारा शरअ के विरुद्ध किये गये फैसले शरअ संगत किये जा सकें। भूमि की दशा की जाँच कराकर उसने उचित भूमि-कर लागू कराया। ख्वाजा हिसामउद्दीन जुनैद, माल-विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। उसने समस्त साम्राज्य में घूम कर एक रिपोर्ट तैयार की जिसमें उसने माल-विभाग में कुछ सुधार प्रस्तावित किये। भूमि का कर कम कर दिया गया और कृषकों को कर का भय और भी कम हो गया। गवर्नर नियुक्ति के समय वार्षिक भेंट लेना बन्द कर दिया, क्योंकि गवर्नर यह भेंट जनता से ही वसूल करके देता था। देहली के निकट अनेक बाग लगवा कर उसने राजकीय आय में विशेष वृद्धि की। इसके अतिरिक्त सिंचाई की व्यवस्था से कृषि की आय बढ गई। इस प्रकार देहली और दोआब की आमदनी से राजकोष भरा रहने लगा।

अन्य कर:—भूमि-कर के अतिरिक्त अन्य कई कर सुल्तान की आय के साधन थे। अनधिकार-कर स्थगित कर दिये गये। फीरोज अपनी पुस्तक फीरोजशाही में लिखता है कि उसने २३ छोटे २ कर क्षमा कर दिये। उसने शरअ द्वारा निर्धारित कर अर्थात खिराज, जकात, जजिया और खाम लागू रखे। लूट का माल, जो किसी आक्रमण अथवा विजय में प्राप्त होता, शरअ के अनुसार राजा और सेना में विभक्त हो जाता था। कुछ भाग राजकोष में जमा हो जाता था और शेष सैनिकों को मिलता

था। इसके अतिरिक्त राज्य एक प्रकार का सिंचाई-कर वसूल करता था जो पैदावार का $\frac{1}{10}$ भाग होता था। इस नीति से प्रजा में संतोष और समृद्धि हुई और व्यापार, तथा कृषि को विशेष प्रोत्साहन मिला। भाव गिर गये और जीवन में आवश्यक वस्तुओं की कमी का कोई अभाव अनुभव न हुआ। राजकोष में कोई कमी नहीं आई। और वह मुसलिम-सस्थाओं को पर्याप्त धन दान देने योग्य रह सका।

फीरोज़ की नहरें :—देहली के निकट फीरोज़ाबाद नामक नगर बसाने के पश्चात् सुल्तान को वहाँ पानी की बहुत न्यूनता प्रतीत हुई। इस विचार से तथा कृषि में पानी की कमी को दूर करने के विचार से उसने चार नहरें निकलवाईं :—

पहली सतलुज से घाघर तक जिसकी लम्बाई ९६ मील थी।

दूसरी मन्डवाई से हिसार होती हुई अरसनी तक, जहाँ हिसार में फीरोज़ा किला स्थित है।

तीसरी घाघर से फीरोज़ाबाद तक।

चौथी जमुना से फीरोज़ाबाद तक।

सेना :—फीरोज़ का सैनिक-प्रबन्ध सामन्तवादी था। सेना के स्थायी सैनिकों को जागीर दे दी जाती थी तथा अस्थायी सिपाही राजकोष से वेतन पाते थे। इसके अतिरिक्त तीसरी प्रथा भूमिकर अथवा अन्य कर में से कुछ प्रतिशत सैनिकों को दे देने की भी थी। शाही सेना में अस्सी से नब्बे हजार तक घोड़े थे। अश्वारोहियों को अच्छे घोड़े लाने का आदेश था। सैनिकों के साथ बहुत अच्छा वर्ताव किया जाता था और उन्हें सब प्रकार की सुविधायें दी जाती थीं। परन्तु सुल्तान की अधिक उदारता के कारण सैनिक स्तर गिर गया। क्योंकि उसकी दया के कारण बूढे तथा निकम्मे सिपाही भी सेना में लगे रहते थे। इसके अतिरिक्त उसने एक नया नियम बनाया; जिसके अनुसार यदि कोई सैनिक अयोग्य हो जाता, तो उसे अपने पुत्र या दामाद को भी सैनिक सेवाओं में भेजने का अधिकार दिया गया। इससे लाभ उठाकर योग्य तथा वीर सिपाही आराम से घर पडे रहते और अनुभवहीन युवक सैनिक सेवाओं के लिये भेजे जाते। इस प्रकार सैनिक व्यवस्था दूषित हो गई थी।

न्याय :—फीरोज़ का कानून शरम का कानून था। कुरान के अनुसार न्याय करने की व्यवस्था की गई, मुफ्ती कानून बताता था तथा काजी फैसला सुनाता था। यदि कोई यात्री मार्ग में मर जाता तो जागीरदार काजी तथा अन्य मुसलमानों को बुलाकर यह देखते कि उसके वदन पर कोई घाव इत्यादि तो नही है। इस प्रकार मुर्दा चीड़-फाड़ करने के पश्चात उसका अन्त्येष्टि संस्कार किया जाता था। दण्ड-विधान अत्यन्त कठोर था परन्तु फीरोज ने उसकी कठोरता कम कर दी और नम्रतापूर्वक शिष्ट आचरण करना चाहा।

अन्य सुधार :—सुल्तान ने गरीबो की सहायता के लिये कई नियम बनाये। उसने कोतवाल को आज्ञा दी कि वह निठल्ले मनुष्यों की एक सूची बनाये जिससे उन आदमियो को योग्यतानुसार कार्य दिया जा सके। जो आदमी अच्छी तरह लिख पढ सकते हैं उन्हें शाही महल में नौकर रखा जाता और जो व्यवसायिक वृत्ति रखते उन्हें शाही कारखानो में भेज दिया जाता और जो किसी प्रकार के दास-सेवक होना चाहते उन्हें उचित सिफारिश-पत्र दे नौकर करा दिया जाता था। निर्धन मुसलमानो की लडकियो की शादी का प्रबन्ध करने के लिये सुल्तान ने एक अलग विभाग खोला, जिससे उसकी हैसियत के अनुसार शादी के व्यय के लिये रुपया मिलता था। इस प्रकार गरीबो की सहायता कर सुल्तान ने मुसलिम वर्ग के लिये बडा प्रशसनीय कार्य किया।

उसने मुहम्मद के गुनाहो तथा कठोर दण्डो के प्रायश्चित स्वरूप जिन्हें मुहम्मद ने प्राणदण्ड दे दिया था उनके उत्तराधिकारियो को तथा जिनके अग-भग कर दिये गये थे, उन्हें स्वय बडी-बडी भेंट दे विदा किया जिससे उनकी आत्माए सुल्तान को क्षमा कर उसके दोष को कम कर देवें और वह भगवान् के वहाँ दण्ड का अधिकारी न हो। यह क्षमा उन्हें लिखित रूप में गवाही सहित देनी होती थी और यह लिखित पत्र सुल्तान के मकबरे में रक्खे हुए बक्स में डाल दिये जाते थे।

स्वय औषधिज्ञान से दिलचस्पी रखने के कारण सुल्तान ने देहली में एक औषधालय की स्थापना कराई, जहाँ मुफ्त दवाइयाँ बाँटी जाती थी। और अनुभवी हकीम मरीजो का निरीक्षण करते थे।

**दास विभाग** —फीरोज के शासन-काल की विचित्र बात उसका दास-विभाग था। साम्राज्य के प्रत्येक भाग से गवर्नर उसकी सेवा में दास भेजते थे। जिन्हें राज्य की ओर से दासवृत्ति मिलने लगती थी, और उनके भोजन तथा वस्त्र का प्रबन्ध राज्य की ओर से होता था। उन्हें अपनी-अपनी योग्यतानुसार कार्य दे दिया जाता था। फीरोज के समय इनकी सख्या एक लाख अस्सी हजार थी। इनका प्रबन्ध कराने के लिए एक अलग विभाग स्थापित करना पडा। इतना विशाल विभाग जिसमें सब प्रकार के दास होगे, तुगलक पतन का विशेष कारण बना।

**भवन निर्माण** —फीरोज प्रसिद्ध-भवन निर्माता था। प्रारम्भिक मुसलमान शासक युद्ध में इतने व्यस्त रहे कि उनका ध्यान इस ओर गया ही नहीं। फीरोज पहिला यवन शासक था, जिसने इस ओर अच्छी प्रगति दिखलाई। उसने फीरोजाबाद, फतहाबाद, जोनपुर इत्यादि कई नगर बसाये थे। उसने मस्जिद, महल, मठ तथा

यात्रियों की सुविधा के लिये सरायें बनवाईं। इसके अतिरिक्त अनेकों इमारतों की मरम्मत कराई। वह आधुनिक समय की भांति पहिले इमारतों के नक्शे बनवाता और जब वह प्रमाणित हो जाते तो उसके लिए धन स्वीकृत किया करता था।

सुल्तान प्राचीन ऐतिहासिक स्मारकों की रक्षा का बड़ा ध्यान रखता था। उसने अशोक की एक लाट खिज्राबाद से तथा एक मेरठ से मंगवा कर देहली में स्थापित करवाई। उसने उस पर लिखित वृतान्त का अनुवाद करना चाहा, परन्तु समय की भाषा से भिन्न होने के कारण ब्राह्मण उसका अनुवाद करने में सफल न हो सके।

**फीरोज के अन्य मनोरंजन:**—फीरोज को बाग लगवाने का बड़ा शौक था। उसने १२०० बाग लगवाये और इस प्रकार राजकीय आय की अत्यन्त वृद्धि की।

**फीरोज का विद्या-प्रेम:**—सुल्तान अत्यन्त विद्या-प्रेमी था वह विद्वान मनुष्यों का बहुत आदर करता था। और उन्हें पेंशन देता था। वह इतिहास साहित्य का बड़ा प्रेमी था। ज़िया बरनी और उसके समकालीन इतिहासकारों ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तकें इसी समय लिखी थीं। उसने बहुत से कालिज खुलवाये और मठ स्थापित कराये प्रत्येक कालिज के साथ एक मस्जिद बनवाई। इन कालिजों में उसने विदेशों से प्रसिद्ध शिक्षक बुलवाये। इनमें अलाउद्दीन का नाम जो धर्म तथा न्याय शिक्षक था, बड़ा प्रसिद्ध है।

**खान जहाँमकबूल:**—फीरोज का ऐतिहासिक वर्णन उसके प्रसिद्ध वजीर खान जहाँ मकबूल का उल्लेख किये बिना पूरा नहीं हो सकता। वह तिलंगाना का हिन्दू था, परन्तु उसने मुसलमान धर्म स्वीकार कर लिया था। अपनी योग्यता तथा स्वामि-भक्ति के कारण मुहम्मद तुगलक के समय वह मुल्तान का जागीरदार बनाया गया। जब फीरोज़ गद्दी पर बैठा तो मकबूल प्रधान मन्त्री बना दिया गया। वह इतना स्वामि-भक्त तथा विश्वासपात्र था कि उसके ऊपर तमाम राज्य-प्रबन्ध छोड़ सुल्तान वर्षों तक के लिये राजधानी से अनुपस्थित हो जाता था। मकबूल बड़ी योग्यता से राज-प्रबन्ध करता। यही कारण था कि सुल्तान की अनुपस्थिति में देहली में सदैव शान्ति रही और कोई षड्यन्त्र नाम को भी न हुआ।

मकबूल विलास-प्रिय मनुष्य था। कहा जाता है कि उसके महल में १२०० रानियां थीं और उसके अनेक पुत्र थे जिनको राज्य में पेंशन मिलती थी। १३७० ई० में इसके देहान्त के पश्चात् इसका पुत्र जूनाशाह वजीर बनाया गया।

**फीरोज के अन्तिम दिन:**—फीरोज के अन्तिम दिन बड़े दु:ख से व्यतीत हुए। दलबन्दी तथा षड्यन्त्रों ने उसकी शान्ति सर्वथा भंग कर दी। वृद्ध होने के

कारण फीरोज ने राजप्रबन्ध अपने मन्त्री के सुपुर्द कर दिया, परन्तु महत्वाकांक्षी तथा गर्वपूर्ण होने के कारण शक्ति प्राप्त कर वह उसे सभाल न सका। उसने अमीरो से बुरा बर्ताव करना आरम्भ कर दिया, और स्वय राजसत्ता हड़प करने के विचार से राजकुमार मुहम्मद को अपने मार्ग से हटाने की चेष्टा करने लगा। उसने फीरोज को यह कह कर बहकाया कि राजकुमार कुछ असतुष्ट अमीरो से मिलकर सुल्तान का वध करने तथा गद्दी पर अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है। इस प्रकार उसने सुल्तान से अपने विरोधियो को गिरफ्तार करने की आज्ञा ले ली। जब मुहम्मद को यह पता लगा तो उसने प्रधानमंत्री को मरवाने की एक तरकीब सोची। सुल्तान उससे वैसे मिलने को तैयार न था। अतः उसने अपनी स्त्रियो के हरम में जाने की आज्ञा चाही। जब उसे आज्ञा मिल गई तो स्वय एक पालकी में बैठ अन्दर चला गया। जब वह पालकी से बाहर निकला तो हरम में भगदड मच गई, परन्तु इससे पहिले कि वह बन्दी बनाया जावे वह सुल्तान के पैरो पर गिर पडा और बोला कि मैं निर्दोष हूँ, और मेरे विरुद्ध जो भी शिकायतें प्रधान मत्री ने की हैं, वह सर्वथा मिथ्या हैं। इनका आधार केवल मत्री की आकाक्षायें हैं, जिन्हे वह राजगद्दी प्राप्त कर पूरी करना चाहता है। इस प्रकार उसने मन्त्री को पदच्युत करने का आज्ञा-पत्र प्राप्त कर लिया। मन्त्री को जब यह पता लगा, तो वह मेवात की ओर भाग गया। अब मुहम्मद उत्तराधिकारी घोषित कर दिया गया, और सुल्तान के वृद्ध होने के कारण वह स्वय राज्य करने लगा। परन्तु वह स्वयं भी भोग विलास में व्यस्त हो राज-कार्य की ओर उदासीन रहने लगा। विश्वासपात्र तथा स्वामिभक्त पदाधिकारियो के समझाने पर भी वह ऐसा ही करता रहा। अत वे उसका विरोध करने लगे। विरोध इतना बढा कि गृह-युद्ध होने की सभावना हो गई। अमीरो ने वृद्ध सुल्तान की दुहाई दी और फीरोज ने स्वय उपस्थित हो स्थिति को सभाला। मुहम्मद वहाँ से भाग गया और फीरोज स्वय शासन करने लगा। उसने अपने पौत्र तुगलकशाह को उत्तराधिकारी नियुक्त किया और उसे राज्य सौंप दिया। ८० वर्ष की अवस्था में १३८१ ई० में उसका देहान्त हो गया।

फीरोज का चरित्र:—मुस्लिम इतिहासकारो के अनुसार फीरोज आदर्श बादशाह था। धर्मान्ध तथा नम्र यह प्रजा प्रिय शासक अपने सह-धर्मियो का ही ध्यान रखता था। उसके सब साधन, उसकी सब उदारता, उसकी दानशीलता उन तक ही सीमित थी। उसमें मुहम्मद तुगलक जैसी योग्यता भी न थी। उसके समस्त शासन को देखकर हम केवल इसी निर्णय पर पहुँचते हैं कि फीरोज मध्य श्रेणी का मनुष्य था। जब वह गद्दी पर बैठा, तब साम्राज्य छिन्न भिन्न था, और प्रत्येक प्रान्त में

गवर्नर तथा अमीर स्वतन्त्र होने की चेष्टा कर रहे थे। फीरोज ने उन विश्वासघातक अमीरों को दण्ड देने तथा साम्राज्य को दृढ़ बनाने का कोई प्रयत्न भी नही किया। यह न अच्छा सेनापति ही था न अच्छा प्रबन्धक ही। उसके आक्रमण उसकी अयोग्यता तथा दुर्बलता के प्रतीक हैं। यदि खानजहाँ मकबूल सहायता न पहुँचाता तो समस्त सेना सहित फीरोज़ सिन्ध में ही नष्ट हो जाता। इसने जीता हुआ बंगाल मुस्लिम रक्त बहाने का बहाना ले छोड़ दिया। समस्त ठाठा-आक्रमण उसकी अदूरदर्शिता तथा अयोग्यता का प्रमाण है। उसे उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ भी नही कहा जा सकता। अपनी दयालुता से वह अपने सुधारो को अर्थहीन कर देता। अयोग्य सेवको को बनाये रखने के लिये सब प्रकार के बहाने मुन उन्हें पद पर बनाये रख वह निरन्तर सेना को पतन की ओर ले गया। कहा जाता है कि एक बार सुल्तान ने एक सिपाही को यह कहते हुए सुन लिया कि वह अपना घोड़ा निरीक्षक के सामने पेश न कर सका। सुल्तान ने स्वयं कहा कि जाओ, निरीक्षण क्लर्क को कुछ भेंट देकर मामला ठीक कर लो। सिपाही ने अपनी निर्धनता-वश आर्थिक लाचारी प्रगट की तो स्वयं सुल्तान ने एक सोने का सिक्का क्लर्क को देने के लिये दे दिया और इस प्रकार सिपाही को प्रमाण-पत्र प्राप्त कराने मे सहायता की। इसी प्रकार एक बार टकसाल अधिकारियो पर यह दोप लगाया कि वह शाशगनी नाम के सिक्कों में खोट मिला चोरी करते हैं। दोप सर्वथा सत्य था, वास्तव में वह ऐसा ही किया करते थे। सुल्तान ने इन सिक्कों की जाँच करने की आज्ञा दी। जाँच के समय टकसाल अध्यक्ष ने सुनारों को कोयलों में चाँदी छिपाकर जाँच होने वाले सिक्कों की चाँदी गलाने के लिये भेजने की आज्ञा दी। फल यह हुआ कि कोयलों में मिश्रित चाँदी तथा सिक्के को चाँदी मिलाकर पूर्ण बैठ गई। इस प्रकार स्वयं टकसाल अध्यक्ष ने टकसाल के अधिकारियो का दोप सिद्ध न होने दिया और इस प्रकार उन्हें बेईमानी करने का प्रोत्साहन दिया। इसी प्रकार के उदाहरण सुल्तान तथा उसके पदाधिकारियों के नैतिक पतन को प्रगट करते हैं

उसकी व्यवस्था पूर्णतया धार्मिक थी। भारतीय इतिहास में सिकन्दर, लोदी या औरंगजेब काल को छोड़कर कभी इतना पक्षपात देखने को नहीं मिलता। उसके सैनिक, आर्थिक तथा राजनैतिक सब मामलों में शरअ का आदेश देखा जाता था। परिस्थिति तथा स्वतन्त्र विचार को उसके यहाँ कोई स्थान न था। उसने ब्राह्मणों से भी इसलिये जजिया लेना आरम्भ कर दिया, क्योंकि शरअ में इससे कोई मुक्त न था। जज़िया को उसने तीन श्रेणियों में विभक्त किया। अमीरों पर ४० टनका मध्यमवर्ग पर २० तथा निम्नवर्ग पर १० टन का जज़िया था। इस प्रकार पितृ-प्रेम

का उतावला फीरोज़ केवल मुसलमान प्रजा का ही पिता था। हिन्दू तथा अन्य प्रजा उसकी संतान होने का सौभाग्य प्राप्त न कर सकी।

फीरोज़ कट्टर सुन्नी था। फतूहात फीरोज़शाही मे उसने स्वयं लिखा है कि 'मैंने मन्दिर नष्ट करके मस्जिदें बनवाई' सुन्नी वर्ग से भिन्न वर्ग जैसे शिया, मुलाहिद इत्यादि का वह इतना ही शत्रु था जितना हिन्दू वर्ग का। शियो तथा मुलाहिदो के सरदार रुकुनुद्दीन को प्राण-दण्ड दे उसने श्रेय प्राप्त किया। सूफियो के साथ भी उसने इसी प्रकार अत्यन्त कठोर बर्ताव किये। इस प्रकार फतूहात में अन्य अनेक वर्गो के दबाने के लिये वह अपनी अत्यन्त प्रशसा करता है। इसके अतिरिक्त रुपये तथा पद का प्रोत्साहन दे उसने अनेक मनुष्यो को मुसलमान बनने के लिये प्रोत्साहित किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि फीरोज की नीति तथा शासन में बुराई तथा भलाई का विचित्र सम्मिश्रण है। अत: उसे उच्चकोटि का सम्राट् किसी प्रकार नही कहा जा सकता।

# अन्तिम तुग़लक,सुल्तान तथा तैमूर आक्रमण

पतन के कारण :—फीरोज तुगलक की मृत्यु के पश्चात् तुग़लक-साम्राज्य, जो एक रियासत के बराबर रह गया था, पतन की ओर चल दिया। मुहम्मद तुगलक के समय के विद्रोह इसे ले बैठे। फीरोज तुगलक ने उसे सम्भालने के लिये कुछ न किया और न उसमे इतना पौरुष ही था कि विछिन्न देशो को पुन: साम्राज्य में सम्मिलित कर लेता। उसकी नीति का फल यह हुआ कि केन्द्र बलहीन होता चला गया और एक एक प्रान्त शनै. २ साम्राज्य से अलग होना आरम्भ हो गया। महत्वाकांक्षी अमीर तथा गवर्नर विद्रोह कर अपनी स्वतन्त्रता स्थापित करते गये और केन्द्र कुछ न कर सका। १३वी शताब्दी में मुसलमान साम्राज्य का मूल सिद्धांत शक्ति ही था। जब तक सुल्तान का आतक साम्राज्य पर छाया हुआ था तब तक सब कुछ ठीक था परन्तु ज्यो ही यह भय कम हुआ वह विराश की ओर चल देता था। फीरोज के समय में सम्राट् का भय जनता के हृदय से कम हो गया था। अत राज्य पतन की ओर चल दिया। फीरोज से लोग प्रेम करते थे, परन्तु उससे डरते न थे। अत, साम्राज्य का मूल आधार नष्ट हो गया। फिर साम्राज्य कैसे बना रह सकता था। फीरोज़ की धार्मिक नीति ने भी पतन में सहायता की। भारतवर्ष जैसे विशाल देश में जहाँ मुसलमानों की सख्या १० प्रतिशत से अधिक न थी। बहुसख्यक दल के धर्म को

घृणा, तथा उनकी भावनाओं को सर्वथा कुचल कर शान्तिपूर्वक राज्य करना असम्भव था। प्रत्येक मामले में मुल्लाओं और मौलवियों के शब्द को भगवद्वाक्य समझना, उचित अनुचित करने के लिये तैयार रहना सर्वथा अनर्थ था। राज-दरबार का शानदार जीवन व्यतीत करने वाले मुसलमान वह मुसलमान न रह गये जो दिन-रात तलवार चला कर भी न थकते थे। जागीर प्रथा में अनेक बुराइयां निहित थीं तथा प्राय: जागीरदार स्वतन्त्रता स्थापित करने के लिये तैयार रहता है। इसलिये फ़ीरोज़ ने जागीर प्रथा को आरम्भ कर पतन को निमन्त्रण दिया। फीरोज के ग़ुलामों की संख्या लगभग दो लाख हो गई थी। परिवार की व्यवस्था तथा ग़ुलामों में बलबन व इल्तुतमिश जैसे लोगों का असर असंतोष का कारण बन गया। वे स्वयं दल-बन्दी तथा षड्यन्त्रों में भाग लेने लगे। अन्तिम तुग़लकों की अयोग्यता ने दोआब के जागीरदारों व हिन्दु मुकद्दमो को स्वतन्त्र आचरण करने के अवसर प्रदान कर समस्त साम्राज्य को अस्त-व्यस्त कर डाला। ऐसे समय में तैमूर आक्रमण ने उसको पूर्णतया नष्ट कर तुगलक वंश को समाप्त कर दिया।

फीरोज के उत्तराधिकारी :—फीरोज का उत्तराधिकारी उसका पौत्र तुगलक शाह था। वह गयासुद्दीन तुग़लक द्वितीय के नाम से गद्दी पर बैठा। इस अनुभवहीन नवयुवक को साम्राज्य की कठिनाइयों का ध्यान तक न था। अतः वह राजकार्य की परवाह न कर भोग-विलास में व्यस्त रहने लगा। इससे अमीर तथा उच्च पदाधिकारियों की सहानुभूति उसकी ओर से जाती रही। जब उसने राजकुमार जफरखाँ के पुत्र अबूबकर को बिना किसी दोष के काल-कोठरी में डाल दिया, तो उन्होंने उसके विरुद्ध एक षड्यन्त्र किया। षड्यन्त्रकारी महल में प्रविष्ट हो गये। जब सुल्तान को यह पता लगा, तो वह जमुना की ओर निकल गया; परन्तु एक षड्यन्त्रकारी ने उसका पीछा किया और वह अभी जमुना पार भी न कर पाया था कि उसको पकड़ लिया और वहीं मार डाला। अब षड्यन्त्रकारी ने अबूबकर को मुक्त कर बादशाह घोषित कर दिया। उसका प्रभाव दिनों-दिन बढ़ना आरम्भ हो गया। इसी समय सूचना मिली कि समाना का अमीर सुल्तानशाह खुशदिल-जो फीरोज़शाह के पुत्र मुहम्मद को परास्त करने के लिये भेजा गया था—मारा गया। इससे मुहम्मद का उत्साह बढ़ गया और उसने समाना प्रदेश पर अधिकार कर लिया। देहली में भी उसका दल उपस्थित था अतः सैनिक तैयारी कर उसने देहली की ओर प्रस्थान किया। अब एक घोर युद्ध होने की सम्भावना हो गई, मेवात के बहादुर नाहिर ने अबूबकर का साथ दिया और उसकी सहायता से अबूबकर ने मुहम्मद को फीरोज़ाबाद के निकट परास्त किया। परास्त मुहम्मद दोआब की ओर भाग गया, तथा उस

प्रान्त में लूट-मार करना आरम्भ कर दिया। भिलसा के निकट ठहर उसने अपनी सेना को ठीक किया, और तत्पश्चात् देहली की ओर गया, परन्तु पानीपत के निकट फिर परास्त हुआ। इस पर भी मुहम्मद ने हिम्मत न खोई। इसी समय अबूबकर बहादुर ताहिर मेवाती से सहायता प्राप्त करने गया। मुहम्मद के दल ने अवसर देख मुहम्मद को देहली आने का निमन्त्रण दिया। वह देहली में प्रवेश करने में सफल हुआ। और फीरोजाबाद में नासिरुद्दीन मुहम्मद के नाम से १३९० ई० में सुल्तान बन बैठा। अपनी शक्ति दृढ बनाने के लिये उसने फीरोजी गुलामो को निकाल बाहर किया। क्योंकि वह अबूबकर के दल में थे। अब मुहम्मद ने अपने पुत्र इसलाम खाँ को अबूबकर के विरुद्ध भेजा, अबूबकर परास्त हुआ, और उसने बहादुर ताहिर सहित आत्मसमर्पण कर दिया। सुल्तान ने बहादुर ताहिर को क्षमा कर दिया, परन्तु अबूबकर को मेरठ के किले में बन्द कर दिया, जहाँ कुछ दिनो पश्चात् उसका देहान्त हो गया। मुहम्मद बादशाह हो गया परन्तु उसी समय दोआब के जमींदारो ने विद्रोह कर उसकी शान्ति भंग कर दी, इधर बहादुर ताहिर ने देहली के समीपवर्ती प्रदेश में लूट-मार आरम्भ कर दी। सुल्तान स्वयं उसके विरुद्ध सेना लेकर गया और उसको अपने किले में शरण लेने के लिये बाध्य कर दिया।

मुहम्मद की मृत्यु तथा उसके उत्तराधिकारी:—सन् ११९४ ई० में मुहम्मद का देहान्त हो गया। उसकी जगह उसका पुत्र हुमायूँ गद्दी पर बैठा, परन्तु वह कुछ ही दिनो बाद एक स्थानीय विद्रोह में मर गया। अब मुहम्मद का छोटा लडका नासिरुद्दीन महमूद तुगलक के नाम से गद्दी पर बैठा, परन्तु समस्त साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो चुका था। बंगाल स्वतन्त्र हो चुका था। दोआब के अमीर अपने आपको स्वतन्त्र समझते थे। ख्वाजाजहाँ ने जौनपुर में स्वतन्त्र-सत्ता स्थापित कर ली। उत्तर में खोखरो ने विद्रोह कर दिया। गुजरात, खांदेश, मालवा ने भी उनका अनुसरण किया। देहली में कुछ अमीरो ने फीरोज तुगलक के पौत्र नसरतखाँ को गद्दी पर बैठा कर सुल्तान घोषित कर दिया। अत. देहली में भी दो सुल्तान हो गये। जिनमें प्राय: युद्ध होता रहता था। कभी एक दल, तो कभी दूसरा दल परास्त हो जाता। ऐसी विषम दशा में १३९७ ई० में तैमूर एक विशाल सेना ले भारत पर चढ आया।

तैमूर:—तैमूर का जन्म १३३६ ई० में समरकन्द से ४० मील के फासले पर कैच्छ के स्थान पर हुआ था। उसके पिता का नाम अमीर तरगाई था। वह गुरकमवर्ग का सरदार था। ३३ वर्ष की अवस्था में वह तुर्कों का सरदार हो गया और फारिस तथा अन्य समीपवर्ती देशो से युद्ध करता रहा। फारिस के गृह-युद्ध के

कारण वह फारिस पर अधिकार प्राप्त करने में सफल हुआ। तत्पश्चात् मध्य एशिया के अन्य देशों पर आधिपत्य स्थापित होने के पश्चात् वह भारत की ओर बढ़ा। यहाँ बिल्कुल अशान्ति फैली हुई थी। उसके आक्रमण का ध्येय साम्राज्य स्थापना था, लूटना न था। वरन् जैसा कि जफ़रनामा तथा मलफूज़ात तैमूरी में लिखा है कि विधर्मियों का विनाश करना ही तैमूर का ध्येय था शत-प्रतिशत ठीक नहीं। तैमूर की सेनाओं के अग्रदल ने तैमूर के पौत्र पीर मुहम्मद के नेतृत्व में सिन्ध नदी को पार किया, और उच्छ पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् मुल्तान का घेरा डाला। छः मास के उपरान्त इसका पतन हो गया। इसी समय तैमूर अपने समस्त साम्राज्य से एक विशाल सेना एकत्रित कर भारत पर चढ़ आया। २५ सितम्बर सन् १३९८ ई० को उसने सिंध नदी को पार किया।

**तैमूर का भारत पर आक्रमण** :—जब वह दीपालपुर पहुँचा तो जनता, मुसाफिर काबुली नामक पीर मुहम्मद द्वारा नियुक्त वहाँ के गवर्नर का वध कर, नगर छोड़कर भाग गई, और भटनेर के किले में शरण ली। तैमूर ने किले का घेरा डाला और उसकी सेना टिड्डीदल की भाँति चारों ओर फैल गई। राय दुलीचन्द वीरता पूर्वक लड़ा, परन्तु उसने भी निराश होकर आत्मसमर्पण कर दिया। तैमूर ने उसे क्षमा कर दिया; परन्तु उसने दीपालपुर के शरणार्थियों को कठिन दण्ड दिया। स्त्री, मनुष्य, बच्चे मौत के घाट उतार दिये गये। उनका समस्त धन लूट लिया गया। राय दुलीचन्द का भाई और पुत्र इस क्रूरता को सहन न कर सके। उन्होंने युद्ध कर मर जाना श्रेयस्कर समझा। फलस्वरूप युद्ध फिर आरम्भ हो गया। तैमूर ने पुनः किले पर आक्रमण करने की आज्ञा दी और उन्हें परास्त किया। अब तैमूर ने नगर को विध्वंस करने के लिए कहा। परन्तु नगर-निवासियों ने घोर युद्ध के ही पश्चात् उसे देना स्वीकार किया। नागरिकों की वीरता देखकर तैमूर चकित रह गया। सारा नगर विध्वंस कर दिया गया और नगर को लूट कर आग लगा दी गई।

भटनेर से तैमूर सिरसुती पहुँचा, जिसे आसानी से जीत लिया गया जब वह समाना से ३४ मील दूर कैथल पहुँचा तो उसने देहली पर आक्रमण करने की तैयारी की। जिस मार्ग से वह गुजरा वहाँ के लोग नगर छोड़कर भाग जाते थे। उन्हें लूटता, नष्ट-भ्रष्ट करता तथा आग लगाता तैमूर देहली पहुँचा। वह छः मील की दूरी पर फीरोज के जहाँनुमा नामक सुन्दर महल में ठहरा। यहाँ पहुँच कर उसने एक लाख हिन्दू बन्दी, जो उसने अब तक कैद किये थे, मार डाले। उसने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि खाने और घोड़े तथा अन्य जानवरों के चारे का

कोई प्रबन्ध नही किया जावेगा। उसने आज्ञा दी कि निकटवर्ती प्रदेश को लूट मार कर इसका प्रबन्ध करें। फिर क्या था विनाशकारी शक्तियां जागृत हो उठी। सैनिको

को हर प्रकार के अन्याय करने की स्वतन्त्रता मिल गई। उनके दल के दल आस-पास के गाँवों में जाते और यहाँ लूट-खसोट, मार-काट आरम्भ करने लगे। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। अब उसने एक युद्ध-सभा की जिसमें तै किया कि सुविधा-पूर्वक रहने तथा विजय प्राप्त करने के लिये बहुत-सी खाद्य वस्तुएँ तथा अन्य सामग्री एकत्रित की जावे, और तै पाया कि लोनी के किले में जो देहली के पास ही था और जिस पर तैमूर ने पहिले ही से आधिपत्य स्थापित कर लिया था, सामग्री एकत्रित की जावे, ऐसा ही हुआ। यह प्रबन्ध करने के पश्चात् वह देहली पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगा। इधर महमूद सुल्तान तथा मल्लू इकबाल ने भी एक सेना एकत्रित करनी आरम्भ कर दी और १०००० घुड़सवार और ४०००० पदल तथा १२५ हाथियों की सेना तैयार की। दोनों दलों में देहली के निकट युद्ध हुआ। देहली सेना अत्यन्त वीरता से लड़ी, परन्तु असंख्य आक्रमणकारियों के सामने सफलता प्राप्त न कर सकी। महमूद और मल्लू इकबाल युद्ध-स्थान से भाग गये, और नगर पर तैमूर का अधिकार हो गया। नगर की लूट-मार तथा कत्ल व खून का वर्णन नहीं किया जा सकता। सैनिकों के दुष्कृत्य तथा दुर्व्यवहार को देखकर हिन्दू व्यापारियों ने स्वयं लड़ते हुए प्राण देना अच्छा समझा, उन्होंने स्वयं अपने स्त्री और बच्चे आग में फेंक दिये, और स्वयं लड़कर प्राण देने को उद्यत हो गये। तैमूर के सैनिक और भी क्रूर हो गये। देहली, सीरी, जहाँपनाँह और पुरानी देहली के चारों ओर आग लगाकर पूर्णतया लूटकर उनके निवासियों को अधिकतर कत्ल कर, और प्रत्येक प्रकार के दुर्व्यवहार कर संतुष्ट हुए। तैमूर १५ दिन देहली में ठहरा और आमोद-प्रमोद में व्यस्त रहा। पन्द्रह दिन के बाद उसे ध्यान आया कि वह विधर्मियों का विनाश करने की शपथ ले भारतवर्ष आया था। अतः उसका कर्त्तव्य है कि अपनी शपथपूर्ति का अधिकाधिक प्रयत्न करे। इसलिये वह फीरोज़ाबाद की ओर बढ़ा और उस नगर को उजाड़ कर मेरठ आया। यहाँ इलियास, अफ़गान तथा मौलाना अहमद थानेश्वरी सैफी ने वीरता-पूर्वक उसका सामना किया, परन्तु तैमूर ने किले को नष्ट-भ्रष्ट कर विजय प्राप्त की, और नगर को लूटने तथा नागरिकों को मृत्यु दण्ड की आज्ञा दी। इतना पर्याप्त न समझ उसने मीनारों और दीवारों को नष्ट करने तथा हिन्दुओं के घरों को जलाने की आज्ञा दी। यहाँ से वह हरिद्वार की ओर बढ़ा। वहाँ हिंदुओं तथा मुसलमान में घोर युद्ध हुआ; और सम्भव था कि तैमूर परास्त हो जाता, परन्तु पीर मोहम्मद जो अग्र दल के साथ भारतवर्ष भेजा गया, यहाँ तैमूर से आ मिला, और स्वयं युद्धकार्य संभाल लिया। उसकी सहायता से तैमूर की विजय हुई। समस्त प्रदेश उजाड़ दिया गया। अब शिवालिक के पहाड़ी

प्रांतों के राजाओं को परास्त करता; तैमूर जम्मू पहुँचा, और वहाँ के राजा को परास्त कर मृत्यु का भय दिखा इस्लाम धर्म स्वीकार करने को तैयार किया। यहाँ काश्मीर को उजाड़ता हुआ खिज्रखाँ को लाहौर, मुल्तान, दीपालपुर सुपुर्द कर तैमूर समरकन्द लौटा।

**तैमूर के आक्रमण का प्रभाव:**—तैमूर के आक्रमण ने समस्त भारतवर्ष को अस्त-व्यस्त कर दिया। देहली-साम्राज्य बिलकुल छिन्न-भिन्न हो गया। देहली के विनाश को पूर्ण करने के लिये उसी समय एक भयंकर दुर्भिक्ष तथा महामारी फैली जिसमें असंख्य मनुष्य तथा पशु चल बसे और कृषि को बहुत क्षति पहुँची। नये नये सामन्त पैदा हो गये। जहाँ जिसने अवसर प्राप्त किया अधिकार कर बैठा। सन् १३९९ ई० में सुल्तान नसरतशाह ने, जो दोआब में भाग गया था, देहली पर अधिकार कर लिया। परन्तु शीघ्र ही इकबालखाँ, जो देहली के निकटवर्ती प्रदेश का जागीरदार था, राजधानी पर अधिकार करने में सफल हुआ। सन् १४०१ ई० में सुल्तान महमूद उससे आ मिला। परन्तु चूँकि वास्तविक सत्ता इकबाल के हाथ में थी अतः वह उसे बुरा लगने लगा। उसने जौनपुर के शासक सुल्तानशाह शर्की से सन्धि कर इकबाल को निकालना चाहा। परन्तु शरकी सुल्तान ने सहायता देने से स्पष्ट शब्दों में मना कर दिया। अतः महमूद कन्नौज के निकट बस गया। इसी समय इकबाल ने देहली राज्य को व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया। उसने ग्वालियर के राजा तथा इटावा के जमींदार को दण्ड दे, अपना आधिपत्य स्वीकार करने के लिये बाध्य किया। अब वह सुल्तान के विरुद्ध चला। परन्तु खिज्रखाँ ने, जिसे तैमूर सुल्तान, लाहौर इत्यादि देकर गया था, उसे परास्त किया। वह युद्ध-स्थल से भाग गया। ऐसे अवसर पर दौलतखाँ लोदी ने महमूद को देहली की गद्दी के लिये निमंत्रण दिया। परन्तु अपनी अयोग्यता के कारण वह शीघ्र ही अप्रिय हो गया। सन् १४१८ ई० में उसका देहान्त हो गया। अब अमीरों ने दौलतखाँ को गद्दी देनी चाही। परन्तु उसने केवल सेनाध्यक्ष हो प्रबन्ध करना अच्छा समझा। इसी समय काकाठेर और अमरोहा प्रान्त के विद्रोह को शांत करने के लिये उसे देहली से अनुपस्थित होना पड़ा। खिज्रखाँ को देहली की दशा का पता हो चुका था। ऐसी दशा में उसने देहली पर अपना अधिकार करना चाहा। वह मुल्तान से चला और १४१४ ई० में ४ मास के घेरे के पश्चात् दौलतखाँ को आत्म-समर्पण के लिये बाध्य किया। इस प्रकार देहली सैयद वंश के हाथ लगी।

## प्रश्न

१—गयासउद्दीन तुगलक ने अपने शासन प्रबन्ध को ठीक करने के लिये क्या किया।

गया था। नसीरउलमुल्क की मृत्यु के बाद फीरोज ने मुल्तान की जागीर खिज्रखां को दी। फीरोज के देहात के पश्चात् जब देहली-साम्राज्य में खलबली मची, और मल्लू इकबाल ने देहली पर अधिकार कर लिया तो इकबाल के भाई सारंगखां ने १३९५ ई० में खिज्रखां को मुल्तान के किले में घेर लिया। परन्तु वह निकल भागने में सफल हुआ। १३९८ ई० में वह तैमूर से मिल गया, जिसने जाते समय उसे मुल्तान, लाहौर, दीपालपुर, इत्यादि प्रदेश का स्वामी बना दिया। देहली की राजनैतिक स्थिति ने उसे शक्ति प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया, और १४१४ ई० में उसने दौलतखां को परास्त कर राजधानी पर अधिकार कर लिया। यद्यपि खिज्रखां एक स्वतन्त्र शासक की भांति आचरण करता था, उसने स्वयं को तैमूर का प्रतिनिधि ही घोषित किया। उसका खिताब भी इस बात का द्योतक है। सिक्के व खुतबा भी तैमूर और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी के नाम का पढ़ा जाता था। कभी कभी खिज्रखां तैमूर की सेवा में भेंट तथा कर भी भेज दिया करता था।

**सुव्यवस्था की स्थापना:** —देहली पर अधिकार करने के पश्चात् उसने प्रारम्भिक व्यवस्था स्थापित करने की सोची। उसने गरीबों के पालन,पोषण के लिए भूमिदान दी। गरीबों की संख्या राजनैतिक खलबली के कारण अधिक बढ गई थी। शासन अच्छा बनाने के लिए पदों का फिर से वितरण हुआ। सहारनपुर की जागीर सैयद सरदार मलिक सलीम को देदी गई। सुल्तान महमूद के समय के सब पदाधिकारी अपने अपने पदों पर सुरक्षित कर दिये गये।

**दोआब में शान्ति-स्थापना:**—देहली साम्राज्य के सामने सबसे महत्व-पूर्ण प्रश्न दोआब तथा अन्य अधिकृत प्रान्तों में शान्ति स्थापित करना था। १४१४ ई० में वजीर ताजउलमुल्क ने काटाहर प्रान्त को ठीक किया। राय हरिसिंह बिना युद्ध के भाग गया, परन्तु शाही सेना ने उसका पीछा किया और वह आत्म-समर्पण करने के लिये बाध्य किया गया। इसके पश्चात् कम्पिल, ग्वालियर तथा चन्दावर के सरदारों ने आधीनता स्वीकार की तथा कर देना आरम्भ किया। जलेसर, चन्दावर के हिन्दू सरदार से लेकर मुसलमानों को दे दिया गया।

**उत्तरी सीमा:**—इसके पश्चात् खिज्रखां का ध्यान उत्तरी सीमा की ओर गया। वहाँ तुर्क बच्चे ने बहुत अशान्ति पैदा कर रक्खी थी। उन्होंने मलिक सिन्धु का वध कर सरहिन्द के किलों पर अधिकार कर लिया था। जब शाही सेना उनके विरुद्ध भेजी गई तो वे पर्वतीय-प्रदेश की ओर भाग गये। १४१८ ई० में उन्होंने पुन: उपद्रव किया, परन्तु समाना के गवर्नर जीरकखां ने उसे दबा दिया। दोआब में

२—मुहम्मद तुगलक को किन योजनाओं के कारण बदनाम किया जाता है । ये योजनायें क्यों असफल रहीं ।

३—मुहम्मद तुगलक का तुगलक साम्राज्य किस प्रकार छिन्न भिन्न होना प्रारम्भ हो गया ।

४—फीरोज तुगलक तथा सुधारों के विषय में तुम क्या जानते हो ।

५—फीरोज तुगलक के व्यक्तित्व पर नोट लिखो ।

६—तुगलक वंश के पतन के क्या कारण थे ।

७—तैमूर के आक्रमण का वर्णन करो तथा बताओ कि उसके आक्रमण का भारत पर क्या प्रभाव पडा ।

## अध्याय २७

# सैयद वंश

**तत्कालीन भारत:**—खिज्रखाँ ने गद्दी पर अधिकार कर लिया था परन्तु उसकी स्थिति अच्छी न थी । उसे बादशाह का पद धारण करने में भी संकोच होता था । अतः उसने अपने आपको तैमूर का प्रतिनिधि अर्थात वायसराय घोषित कर राज्य-कार्य आरम्भ किया । इसके अतिरिक्त देहली-साम्राज्य का गौरव तथा क्षेत्र तैमूर-आक्रमण के पश्चात् और भी कम हो गया था । क्योंकि प्रांतीय-शासक स्वतन्त्र हो बैठे थे । राजधानी में सत्ता प्राप्त करने के लिए अनेक दल बन गये थे । सिद्धांतहीन अवसर-वादी नेता जिधर लाभ देखते उधर ही हो जाते थे । दोआब के जमींदारों ने, जो मुसलमानों के आरम्भ काल से ही विरुद्ध रहे थे, कर देना बन्द कर दिया था । इनमें इटावा, कटहर, कन्नौज तथा बदायूं मुख्य थे, जिन्होंने केन्द्रीय शक्ति की सर्वथा अवहेलना करनी आरम्भ कर दी ।

मालवा, जौनपुर, गुजरात पूर्णतया स्वतन्त्र हो चुके थे । वे अपने अपने निकटवर्ती राज्यों से लड़ने में व्यस्त रहते और प्रायः देहली-साम्राज्य के अधिकृत प्रदेश पर भी आक्रमण करते रहते थे । राजधानी के निकट मेवाती लोग स्वतन्त्र आचरण कर रहे थे, और कर देना बन्द कर दिया था । उत्तरी सीमा पर खोखर, मुल्तान और लाहौर तक लूट कर ले जाते थे । इस प्रकार चारों ओर अशांति का साम्राज्य था । खिज्रखाँ इतना शक्तिशाली न था, कि उसको दूर कर पुनः सुदृढ़ राज्य स्थापित करता ।

**खिज्रखाँ:**—(१४१४ से १४२१ ई० तक) खिज्रखाँ एक सैयद था । बचपन में मुल्तान के गवर्नर मलिक नसीरुलमुल्क मरदान दौलत ने उसका पालन पोषण

किया था। नसीरउलमुल्क की मृत्यु के बाद फीरोज़ ने मुल्तान की जागीर खिज्रखाँ को दे दी। फीरोज के देहांत के पश्चात् जब देहली-साम्राज्य में खलबली मची, और मल्लू इकबाल ने देहली पर अधिकार कर लिया तो इकबाल के भाई सारंगखाँ ने १३९५ ई० में खिज्रखाँ को मुल्तान के किले में घेर लिया। परन्तु वह निकल भागने में सफल हुआ। १३९८ ई० में वह तैमूर से मिल गया, जिसने जाते समय उसे मुल्तान, लाहौर, दीपालपुर, इत्यादि प्रदेश का स्वामी बना दिया। देहली की राजनैतिक स्थिति ने उसे शक्ति प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया, और १४१४ ई० में उसने दौलतखाँ को परास्त कर राजधानी पर अधिकार कर लिया। यद्यपि खिज्रखाँ एक स्वतन्त्र शासक की भाँति आचरण करता था, उसने स्वयं को तैमूर का प्रतिनिधि ही घोषित किया। उसका खिताब भी इस बात का द्योतक है। सिक्के व खुतबा भी तैमूर और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी के नाम का पढ़ा जाता था। कभी कभी खिज्रखाँ तैमूर की सेवा में भेंट तथा कर भी भेज दिया करता था।

सुव्यवस्था की स्थापना: –देहली पर अधिकार करने के पश्चात् उसने प्रारम्भिक व्यवस्था स्थापित करने की सोची। उसने गरीबों के पालन,पोषण के लिए भूमिदान दी। गरीबो की संख्या राजनैतिक खलबली के कारण अधिक बढ गई थी। शासन अच्छा बनाने के लिए पदों का फिर से वितरण हुआ। सहारनपुर की जागीर सैयद सरदार मलिक सलीम को देदी गई। सुल्तान महमूद के समय के सब पदाधिकारी अपने अपने पदों पर सुरक्षित कर दिये गये।

दोआब में शान्ति-स्थापना:—देहली साम्राज्य के सामने सबसे महत्व-पूर्ण प्रश्न दोआब तथा अन्य अधिकृत प्रान्तों में शान्ति स्थापित करना था। १४१४ ई० में वजीर ताजउलमुल्क ने काटाहर प्रान्त को ठीक किया। राय हरिसिंह बिना युद्ध के भाग गया, परन्तु शाही सेना ने उसका पीछा किया और वह आत्म-समर्पण करने के लिये बाध्य किया गया। इसके पश्चात् कम्पिल, ग्वालियर तथा चन्दावर के सरदारों ने आधीनता स्वीकार की तथा कर देना आरम्भ किया। जलेसर, चन्दावर के हिन्दू सरदार से लेकर मुसलमानों को दे दिया गया।

उत्तरी सीमा:—इसके पश्चात् खिज्रखाँ का ध्यान उत्तरी सीमा की ओर गया। वहाँ तुर्क बच्चे ने बहुत अशान्ति पैदा कर रक्खी थी। उन्होंने मलिक सिन्धु का वध कर सरहिन्द के किलों पर अधिकार कर लिया था। जब शाही सेना उनके विरुद्ध भेजी गई तो वे पर्वतीय-प्रदेश की ओर भाग गये। १४१० ई० में उन्होंने पुनः उपद्रव किया, परन्तु समाना के गवर्नर जीरकखाँ ने उसे दबा दिया। दोआब में

फिर उपद्रव हो गया। यह भाग सदैव देहली के निकट होते हुए भी साम्राज्य का सबसे उपद्रवी भाग रहा था। काठाहेर के हरिसिंह ने फिर उपद्रव कर दिया परन्तु इस बार जब ताजउल्मुल्क ने उस पर आक्रमण किया तो वह कुमायूँ प्रदेश में भाग गया।

इसी प्रकार इटावा के राय सरवर का विद्रोह बदायूँ के अमीर महावतखाँ ने शान्त किया। १४१६ ई० में स्वयं खिज्रखाँ ने काठाहेर की ओर प्रस्थान किया। कोल, सम्भल तथा बदायूँ प्रान्त पर जहाँ महावतखाँ ने स्वयं विद्रोह कर दिया था, सुल्तान ने आक्रमण किया। परन्तु इसी समय उसे ज्ञात हुआ कि देहली में उसके विरुद्ध षड्यन्त्र हो गया है। अतः वह देहली आया, और षड्यन्त्रकारियों को प्राण-दण्ड दिया।

**दोआब में पुनः उपद्रवः**—इसी समय इटावा, काठाहेर प्रान्त में पुनः विद्रोह हो गया। राय सरवर ने फिर कर भेजना बन्द कर दिया और स्वतन्त्र शासक की भाँति आचरण करने लगा। राय हरिसिंह ने भी ऐसा ही किया। दोआब प्रान्त के यह उपद्रव देहली की दुर्बलता प्रगट करते हैं। ताजउल्मुल्क इनके विरुद्ध सेना लेकर भेजा गया, और उसने उन्हें फिर आत्म-समर्पण करने के लिए बाध्य किया।

**मेवाती उपद्रवः**—मेवाती उपद्रव, जो देहली में फिर हो रहा था, खिज्रखाँ ने स्वयं शान्त किया। १४२१ ई० में ताजउल्मुल्क का देहांत हो गया। उसकी स्वामि-भक्ति तथा परिश्रम ऐसे समय में सराहनीय हैं।

**खिज्रखाँ की मृत्युः**—ग्वालियर और इटावा के उपद्रव को शान्त करने के बाद खिज्रखाँ बीमार पड़ गया, और १४२१ ई० में इस संसार से चल बसा।

**खिज्रखाँ का व्यक्तित्वः**—खिज्रखाँ ने एक सच्चे सैयद की भाँति आचरण किया। उसने व्यर्थ में किसी का रक्त नहीं बहाया। यदि वह शासन सुधार की ओर ध्यान न दे सका तो उसका दोष नहीं, क्योंकि उस समय के उपद्रवों ने उसे इतना समय न दिया कि वह सुधार इत्यादि की ओर भी ध्यान देता।

**मुबारिकखाँः**—मरते समय खिज्रखाँ ने अपने पुत्र मुबारिकखाँ को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। अतः अमीरों की स्वीकृति से वह गद्दी पर बैठा और अपने पिता की भाँति इसने भी अमीरों और मलिक को उनके पदों पर स्थापित कर दिया, तो भी खिज्रखाँ की भाँति इसके समय में उपद्रव होते रहे।

**सीमा प्रान्त पर विद्रोहः**—सर्वप्रथम जसरथ खोखर और तुगानराय ने सीमा-प्रान्त पर विद्रोह किया। खिज्रखाँ के देहान्त की सूचना पर वह सतलज को पार कर लुधियाना तक लूटता चला गया। फिर उसने सरहिन्द का घेरा डाला परन्तु

उसे न ले सका। यह खबर सुनकर सुल्तान स्वयं समाना की ओर बढ़ा। जसरथ ने तुरन्त सरहिन्द का घेरा उठा लिया और लुधियाना आ गया। शाही सेना ने उसका पीछा किया। परन्तु वह पर्वतीय प्रदेश में भाग गया।

इस प्रदेश की उचित व्यवस्था कर मुबारिक देहली वापिस आ गया, परन्तु तुरन्त ही उसे सूचना मिली कि जसरथ खोखर ने रावी पार कर ली है, और लाहौर पर आक्रमण करना चाहता है। परन्तु लाहौर के गवर्नर ने उसे परास्त किया।

**खोखरों की पराजय:**—इसी बीच में देहली, सरहिन्द और दिपालपुर से सहायता आ गई और खोखरो को पूर्णतया परास्त किया गया। इधर दोआब में काठाहेर, इटावा, कम्पिल इत्यादि में फिर उपद्रव हो गये, परन्तु वे शान्त कर दिये गये।

सत्य यह है कि ग्वालियर, मेवात, इटावा, काठाहेर सर्वथा उपद्रव की जड बने रहे और सैयद सुल्तान उन्हें कभी भी पूर्णतया अपने आधिपत्य में न कर सके। वे उपद्रव की सूचना पा उनके विरुद्ध जाते और एक वर्ष का कर लेकर चले आते।

१४२८ ई० में जसरथ खोखर ने फिर कलानौर का घेरा डाला, और जब लाहौर का गवर्नर सिकन्दर उसका सामना करने के लिए पहुँचा तो जशरथ ने उसे परास्त कर दिया। इस सफलता से प्रोत्साहित हो जसरथ ने जालधर पर आक्रमण कर दिया। परन्तु उस पर अधिकार प्राप्त न कर सका। इसीलिए वह वापिस कलानौर चला गया। सिकन्दर की पराजय की सूचना प्राप्त कर समाना और सर्हिद के गवर्नर उसकी सहायता को गये। परन्तु उनसे पहले ही सिकन्दर ने जसरथ को दूसरे युद्ध में परास्त कर पर्वतीय प्रदेश में शरण लेने के लिये खदेड दिया।

**पौलाद विद्रोह:**—सब से गम्भीर विद्रोह पौलाद विद्रोह था। यह तुर्क बच्चा सैयद सलीम का एक दास था। सलीम के पुत्रो ने उसे विद्रोह का प्रोत्साहन दिया। उसने एक विशाल सेना एकत्रित कर भटिण्डा के किले में डेरा डाल दिया, तथा खोखर सरदारो को अपनी ओर मिला लिया और काबुल के मुगल गवर्नर से ही मिल कर उसे सहायतार्थ बुला लिया। मुगल गवर्नर ने सरहिन्द की सेना को मार भगाया, तथा लाहौर और समस्त पजाब को लूट लिया। सुल्तान ने अपनी सेना मुल्तान के गवर्नर इमादउलमुल्क की सहायता के लिए भेजकर काबुलियो तथा पौलाद को परास्त किया।

**सुशासन प्रबन्ध के हेतु पदाधिकारियों में परिवर्तन:**—अब सुल्तान ने अपने प्रबन्ध को अच्छा बनाने के विचार से अपने पदाधिकारियो में कुछ परिवर्तन किये। जिन से अमीरो में बहुत असन्तोष तथा क्षोभ फैला। उन्होने सुल्तान के

विरुद्ध षड्यन्त्र रचने आरम्भ किये। जब १४३४ ई० में सुल्तान मुबारिकबाद नामक नगर को जो उसने अपने नाम पर बसाया था, देखने गया तो उन्होंने उसका वध कर दिया।

**मुबारिक का चरित्र तथा उसके शक्तिहीन उत्तराधिकारी**:—मुबारिक एक दयालु तथा उदार बादशाह था। मुबारिक के पश्चात कई निर्बल तथा शक्तिहीन शासक हुए। वे उस अशान्ति ज्वाला को, जो चारों ओर धधक रही थी, शान्त न कर सके।

**सैयदों का अन्तिम बादशाह आलमशाह**:—जब अलाउद्दीन आलमशाह गद्दी पर बैठा तो उसने देहली छोड़ बदायूँ को राजधानी बनाया (बदायूँ आधुनिक बरेली कमिश्नरी में एक जिला है, जो किसी समय रुहेलों का केन्द्र था) यह अवसर देख १४५१ ई० में अफगान दल के नेता बहलोल लोदी ने देहली पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस प्रकार लोदी वंश की स्थापना हुई। आलमशाह बदायूँ में राज्य करता रहा, वहाँ १३५८ ई० में उसका देहान्त हो गया। उसके साथ सैयद वंश भी समाप्त हो गया।

### प्रश्न

१—खिज्रखाँ सैयद ने किस प्रकार देहली पर अधिकार किया ?

२—खिज्रखाँ ने किस प्रकार साम्राज्य में शान्ति तथा सुरक्षा स्थापित करने का प्रयत्न किया ?

३—मुबारिकशाह के वध का क्या कारण था ?

## अध्याय २८

# लोदी वंश

**साम्राज्य का विनाश**:—सैयद-काल में तथा उसके पश्चात् देहली-साम्राज्य लगभग समाप्त हो गया था। पूरा भारतवर्ष स्वतन्त्र राज्यों तथा जागीरों में विभाजित हो गया था। दक्षिण, गुजरात, मालवा, जौनपुर, बंगाल इत्यादि स्वतन्त्र हो चुके थे। पंजाब का उत्तरी भाग, लाहौर, दीपालपुर, सरहिन्द से लेकर हांसी; हिसार तथा पानीपत तक बहलोल लोदी के अधिकार में थे। महरोली की ओर देहली से चौदह मील सरायलाडू तक का प्रांत अहमदखाँ मेवाती के अधिकार में था। सम्भल प्रान्त में दरियाखाँ लोदी का राज्य था। दोआब में अनेक जागीरदार तथा प्रभावशाली जमींदार

स्वतन्त्र शासकों जैसा आचरण करते थे। सैयद सुल्तानो ने साम्राज्य के इस सर्वना को रोकने का पर्याप्त प्रयत्न किया परन्तु सफल न हो सके।

लोदी वंश :—कुछ समय के लिये बहलोल ने शासन प्रबन्ध में प्रयाप्त प्रगति प्रदर्शित की और साम्राज्य के प्राचीन गौरव की पुन स्थापना के लिये भरस प्रयत्न किया।

गद्दी को दृढ़ बनाना —बहलोल ने देहली की गद्दी अलाउद्दीन सैयद मन्त्री हामिदखां की सहायता से प्राप्त की थी। अतएव वह हामिदखां की बाबत ब खबरदारी रखता था कि कही पिछले स्वामी अलाउद्दीन सैयद को धोखा देने वाल आदमी उसको भी धोखा न दे दे। उसने पहले हामिद से कहा कि वह स्वय बादशा हो जाये और उसे सेनापति का पद प्रदान कर दे। परन्तु उसने यह स्वीकार न क वजीर ही रहना श्रेयस्कर समझा।

बहलोल का शासन :—बहलोल ने यद्यपि गद्दी प्राप्त कर ली तथा अपने मन्त्री की बढती हुई शक्ति तथा उसका उचित अनुचित हस्तक्षेप उसके दि में खटकने लगे, अत उसने उसे अपने मार्ग से हटाना चाहा। उसने अपने सार्थ अफगानो से कहा कि वह मन्त्री के सामने कुछ गँवारपन का बर्ताव करें। जब उन्हो ऐसा ही किया तो मन्त्री ने बहलोल से इसका कारण पूछा, उसने उत्तर दिया वि अफगान सीधे सादे लोग हैं। उनको शिष्टाचार नही आता। वैसे यह हृदय के ब सीधे हैं। आप कोई चिंता न करें। मन्त्री को विश्वास हो गया। अगले दिन उन से कुछ मन्त्री से मिलने गये, और जाने की आज्ञा पा दरबान से झगडा कर बैठे हामिदखां को जब यह पता लगा तो उसने बहलोल के कथानुसार उन्हें सीध समझ कर अन्दर आने की आज्ञा दे दी। परन्तु उसे बडा आश्चर्य हुआ, जब बहलोल के चचेरे भाई कुतुबखा ने छिपाई हुई हथकडिया निकाल कर उसके सामन रक्खी और बोला कि आपको कुछ दिन बन्दी रहना पडेगा। जब वजीर ने इसक कारण पूछा तो उसने कहा कि आपने पिछले स्वामी के प्रति विश्वासघात किया है अत आपके व्यवहार का विश्वास नही किया जा सकता। इस प्रकार बहलोल ने हामिदखां को अपने मार्ग से हटा कर अलाउद्दीन सैयद से देहली की गद्दी पर बैठने की प्रार्थना की, परन्तु उसने सर्वथा नकारात्मक उत्तर दिया। अब बहलोल ने अमीरो को धन तथा पद का प्रलोभन दे तथा सेना को भेंट दे उनकी सहानुभूति अपनी ओर कर ली। यद्यपि सुलतान बहलोल ने अपना नाम 'खुतबे' में जोड दिया तो भी देहली में ऐसे लोग थे, जो बहलोल को सुल्तान स्वीकार न करते थे। और जब बहलोल उत्तर-पश्चिम की व्यवस्था ठीक करने के लिए गया, तो उन्होंने

जौनपुर के शरकी बादशाह महमूदशाह को देहली पर अधिकार करने का निमंत्रण दिया। इधर महमूदशाह की बेगम ने, जो अलाउद्दीन सैयद की पुत्री थी, महमूद पर जोर डाला कि वह अलाउद्दीन की पुनः गद्दी-प्राप्ति में सहायता करे। अन्यथा वह स्वयं एक सेना लेकर देहली पर आक्रमण करे। इस प्रकार लाचार होकर महमूद ने एक विशाल सेना लेकर देहली पर आक्रमण किया, तथा अपनी सेना ' । एक भाग बहलोल का सामना करने के लिये सरहिन्द की ओर भेजा, परन्तु यह सेना परास्त हुई, और महमूदशाह शरकी ने देहली का घेरा छोड़ जौनपुर जाने में ही अपनी भलाई समझी। महमूद की पराजय का लोगों पर प्रभाव पड़ा। छोटे-छोटे अन्य जागीरदारों जैसे, मेवात, सम्भल, कोल,साकेत आदि ने उसकी आधीनता स्वीकार कर ली।

जौनपुर संघर्ष :—यद्यपि दोआब के अमीर व सरदार पूर्णतया परास्त हुए, तथापि इससे सुल्तान को शांति प्राप्त न हो सकी। क्योंकि उसका सबसे बड़ा शत्रु, जौनपुर का बादशाह अभी जीवित था। इधर महमूद की बेगम ने फिर शरकी-बादशाह को देहली पर आक्रमण करने के लिये बाध्य किया। उसने इटावा प्रदेश पर अधिकार करना चाहा, परन्तु सेनापति कुतुबखाँ तथा राजा प्रताप मैनपुरी के जागीरदार की मध्यस्थता से संधि हो गई। जौनपुर के बादशाह ने संधि की शर्तों को पूरा न किया और इसके बदले देहली सेनापति कुतुबखां लोदी को बन्दी बना लिया। इसी समय जौनपुर के बादशाह महमूदशाह का देहान्त हो गया और जौनपुर के अमीरों ने बहलोल से सन्धि कर ली। परन्तु इस संधि में वह कुतुबखां लोदी अर्थात् देहली-सेनापति को मुक्त करने की शर्त लिखना भूल गया। इस पर तीसरी बार पुनः युद्ध हो गया। इसमें महमूदशाह का भाई जलालखां कैद हो गया। इसी समय जौनपुर में एक क्रांति हुई, जिसमें हुसैनशाह गद्दी पर बैठा। उसने चार वर्ष तक के लिये संधि कर ली। कुतुबखां और जलालखां मुक्त कर दिये गये। परन्तु शीघ्र ही दोनों राज्यों में, जब बहलोल सुल्तान की ओर गया हुआ था, फिर युद्ध छिड़ गया। इस बार अहमदखां मेवाती तथा बियाना का गवर्नर ईसाखां भी जौनपुर के शाह से जा मिले। परन्तु फिर संधि हो गई और तय पाया कि जिसके अधिकार में जो प्रदेश हैं, वह उसी के हैं। फिर भी संघर्ष चलता रहा।

इस संघर्ष में जौनपुर की बेगम मलिकजहाँ भी एक बार बन्दी हो गई। परन्तु अन्त में हुसैनशाह हार गया, और जौनपुर बहलोल के कब्जे में आ गया। वहाँ की गद्दी पहले उसने कुतुबखां लोदी को और उसके पश्चात् अपने बड़े पुत्र को दे दी।

ग्वालियर पर अधिकार :—तत्पश्चात् बहलोल ने ग्वालियर के राजा पर आक्रमण किया। इस बादशाह ने शरकी बादशाह हुसैनशाह का साथ दिया था। राजा ने अधीनता स्वीकार कर ली।

बहलोल की मृत्यु :—१४८० ई० में जलाली के निकट बहलोल का देहात हो गया।

बहलोल का कार्य :—बहलोल अफगान बादशाहों में उच्च स्थान रखता है। यद्यपि निरन्तर युद्ध में व्यस्त रहने के कारण उसको शासन प्रबन्ध करने का समय प्राप्त न हुआ। उसने देहली के गौरव को ऊंचा किया। व्यक्तिगत दृष्टि से वह उत्साही, वीर, उदार, नम्र तथा ईमानदार व्यक्ति था। कोई साधु उसके यहाँ से निराश न लौटता, वह अत्यन्त न्यायप्रिय शासक था। ठाठ-बाट उसे पसन्द न था। अपने अफगान साथियों के साथ वह बराबरी का बर्ताव करता था। यदि उनमें कोई बीमार हो जाता तो वह स्वयं उनके घर जाता था। सामाजिक उत्सवों पर वह कभी गद्दी पर नही बैठा। कहा जाता है कि उसने एक इतना बड़ा सिंहासन बनवाना चाहा जिस पर सब अफगान सरदार बैठ सकें। परन्तु यह सत्य प्रतीत नही होता। हाँ, इतना अवश्य है, कि वह अपने आप को अफगानों का सुल्तान न मान कर केवल उनमें से ही अपने को एक मानता था।

सिकन्दर शाह :—बहलोल की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र निजाम शाह गद्दी पर बैठा जो सिकन्दर बादशाह के नाम से घोषित हुआ। उसकी माँ एक सुनार की लड़की थी। कुछ सरदारो ने उसका विरोध किया, और उनमें से कुछ ने बहलोल के दूसरे पुत्र बरबकशाह को तथा कुछ ने बहलोल के पोते आजम हुमायूँ को गद्दी पर बैठाना चाहा। परन्तु अन्त में खानखाना फार्मूली तथा अन्य अमीरों की सहायता से सिकन्दर सफल हुआ। सिकन्दरशाह कट्टर मुसलमान था। कट्टरता उसकी विशेषता थी, जिसके कारण लोगो ने उसे गद्दी के लिये चुना।

शासन व्यवस्था संभालना :—गद्दी पर अधिकार पाने के पश्चात् सिकन्दर समस्त राज्य की व्यवस्था ठीक करने में व्यस्त हो गया। वह स्वयं रिवाड़ी के गवर्नर आलमखाँ के विरुद्ध गया। शाही सेना के आगमन की सूचना पाकर वह भाग गया और उसकी जागीर खानखाना लोदानी को दे दी गई। इसके पश्चात् सुल्तान ने अपने भाई बरबकशाह से जिसने जौनपुर में एक स्वतन्त्र शासक की भाँति बादशाह का खिताब धारण कर लिया था पत्र व्यवहार करना आरम्भ कर दिया। और बरबकशाह के सेनापति को बन्दी बना लिया। सेनापति के साथ सिकन्दर ने अच्छा बर्ताव किया। उससे प्रसन्न होकर सेनापति सिकन्दर से मिल गया और

अपने पहले स्वामी के विरुद्ध युद्ध करने लगा। इससे जौनपुर सेना अस्त-व्यस्त हो भाग निकली। उसका पीछा किया गया। बरबकशाह आत्म-समर्पण करने को बाध्य हो गया। परन्तु क्योंकि हुसैनशाह शरकी, जो इस समय बिहार में था और जौनपुर पर फिर अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा था; इसलिए सिकन्दर ने अपने भाई बरबकशाह को जौनपुर का राज्य फिर से देना उचित समझा, और उसके साथ अपने कुछ विश्वासपात्र अमीर भी सहायता के लिये भेज दिये, जिससे कि बरबकशाह की आकांक्षायें भी अधिक प्रोत्साहित न हो सकें।

जौनपुर का प्रबन्ध करने के पश्चात सुल्तान कानपुर की ओर बढ़ा। जहाँ उसका भतीजा आज़मशाह हुमायूँ राज्य करता था। बहलोल की मृत्यु के बाद उसने भी गद्दी के लिये अपना अधिकार प्रकट किया था। सिकन्दर के गद्दी पर बैठने के पश्चात वह भी एक स्वतन्त्र शासक की भाँति आचरण करता था। आजम परास्त हुआ और उसकी जागीर महमूदखाँ लोदी को दे दी गई।

तत्पश्चात् ग्वालियर, बियाना और आगरे के गवर्नरों को परास्त कर १४९२ ई० में सुल्तान देहली वापस आया।

**जौनपुर के जमींदार और हुसैनशाह शरकी** :—यद्यपि सिकन्दर को जौनपुर में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई, तथापि जौनपुर के जमीदार बहुत शक्तिशाली हो गये, जिसके कारण बरबकशाह को जौनपुर छोड़ना पड़ा। उसने महमूदखां फ़ारमूली उपनाम काला पहाड़ के यहाँ शरण ली। सुल्तान जमीदारों के विरुद्ध अपनी सेना लेकर पहुँचा और घोर संग्राम के साथ उन्हें परास्त किया। उसने पुनः बरबकशाह को जौनपुर का शासन सौंप दिया। परन्तु ज्योंही सुल्तान ने देहली की ओर प्रस्थान किया, जमीदारों ने विद्रोह कर दिया। इस बार सुल्तान बरबकशाह की अयोग्यता से इतना क्षुब्ध हुआ कि उसने उसे कैद कराकर मँगा लिया और उसे अपने विश्वसनीय अफसरों के अधिकार में छोड़ स्वयं सेना लेकर जौनपुर की ओर गया। परन्तु मार्ग की कठिनाइयों तथा खाने की उचित व्यवस्था न होने के कारण उसकी सेना में महामारी फैल गई और वह पूर्णतया अस्त-व्यस्त हो गई। सुल्तान की इस दशा से लाभ उठाकर जौनपुर के जमीदारों ने हुसैनशाह शरकी को जौनपुर पर फिर अधिकार करने का निमन्त्रण दिया। तुरन्त हुसैन एक सेना लेकर बिहार से रवाना हुआ। परन्तु खानखाना ने बनारस के निकट उसे परास्त किया। हुसैनशाह बंगाल भाग गया और शेष जीवन वहीं व्यतीत करता रहा। इस प्रकार जौनपुर में शरकी राज्य पुनः स्थापित करने की अन्तिम चेष्टा भी असफल रही। बिहार आसानी से सुल्तान के अधिकार में आ गया। जौनपुर तथा बिहार का समस्त प्रदेश खानख़ाना

को दे दिया गया। और सुल्तान ने स्वय अपने पदाधिकारी उसका प्रबन्ध करने के लिये भेजे।

बंगाल:—अपनी सैनिक दशा तथा विहार की व्यवस्था ठीक करने के पश्चात् सुल्तान ने बगाल पर आक्रमण किया। परन्तु कुछ समय बाद बगाल से सधि हो गई। इससे दोनो की सीमायें निश्चित कर दी गई तथा बगाल के बादशाह ने वचन दिया कि वह दिल्ली से भागे हुए अमीरो को कभी शरण न देगा।

अफ़गान और सिकन्दर—अब सिकन्दर ने अपना ध्यान अफगान जागीरदारो की ओर केन्द्रित किया, उसने प्रमुख अफगान जागीरदारो के हिसाब की जाँच कराई। उनमें इतनी त्रुटियाँ निकली कि वह आश्चर्यचकित रह गया। परन्तु यह जाँच अफगान सरदारो को बहुत अखरी। अत जब सुल्तान ने इन त्रुटियो को कठोरता से ठीक करना चाहा तो हैबतखाँ इत्यादि ने सुल्तान के विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा, जिसमें उन्होने राजकुमार, फतहखाँ को भी सम्मिलित करना चाहा। परन्तु माता की शिक्षानुसार फतहखाँ ने समस्त षड्यन्त्र का भेद सिकन्दरशाह से खोल दिया। तदनुसार षड्यन्त्रकारियो को कठोर दण्ड दिया गया। १४९५ ई० में सिकन्दर सम्भल की ओर गया और वहाँ की स्वास्थ्यप्रिय जल-वायु का लाभ उठाने तथा निकटवर्ती अफगान सरदारो पर आधिपत्य स्थापित रखने के लिये चार वर्ष वहाँ ठहरा रहा।

आगरे की स्थापना.—अपने अनुभव से सिकन्दरशाह इस परिणाम पर पहुँचा कि ग्वालियर, धौलपुर, कोल, बियाना, इटावा आदि प्रदेशो पर अनुशासन रखने तथा वहाँ के उपद्रवो को शीघ्रतया शान्त करने के लिए वर्तमान आगरे के स्थान पर एक शहर तथा छावनी का होना अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार १५०४ ई० में वर्तमान आगरे की नीव डाली गई। १५०४ ई० में आगरे में एक भीषण भूकम्प आया। जिसके कारण समस्त नगर उजड गया और सुन्दर सुन्दर विशाल भवन धराशायी हो गये।

अन्तिम दिन—सिकन्दरशाह के अन्तिम दिन राजपूत विद्रोह तथा मुसलमान गवर्नरो को शान्त करने में व्यतीत हुए। ग्वालियर तथा धौलपुर में कभी भी उपद्रव हो जाता था। १५०६ ई० में नरवर का घेरा हिन्दू और मुसलमानो में भीषण युद्ध का कारण बन गया। १५१० में चन्देरी पर विजय प्राप्त हुई। और १५१७ ई० में उसका देहान्त हो गया। और इब्राहीम लोदी गद्दी पर बैठा।

शासन-प्रबन्ध—अपने जीवन भर युद्ध में प्रवृत्त रहने के कारण सिकन्दर को प्रबन्ध का अधिक समय न मिला। तो भी उसने अच्छी व्यवस्था की। उसने

# लोधी साम्राज्य

काबुल
गजनी
पेशावर
काशमीर
लो
पन्जाब
धी
सा
म्रा
कन्नौज
ग्वालियर
ज्य
बिहार
बंगाल
बरहानपुर
गोंडवाना

बंगाल
की
खाड़ी

समस्त शक्ति अपने हाथों में केन्द्रीभूत कर ली। अफ़ग़ान सरदारों पर उसने अपना अधिकार भली भाँति स्थापित किया। उसने जागीरदारों के हिसाब का निरीक्षण कराया, और जो ग़बन पाया गया उसे कठोरता से वसूल कराया तथा उन जागीरदारों को दण्ड दिया। प्रान्तीय गवर्नरों पर सुल्तान का इतना आतंक था कि सुल्तान के आज्ञा-पत्रों को प्राप्त करने के लिये वह नगर से दो-तीन मील की दूरी पर आते थे। तथा उन्हें जनता में घोषित करते थे। उसने एक सुसंगठित गुप्तचर विभाग का आयोजन किया, जो छोटी-छोटी बातों की सही सूचना बादशाह को देता था। इस प्रकार प्रजा की छोटी-छोटी बातों की भी इतनी ठीक सूचना सुल्तान तक पहुँच जाती थी कि उन्हें सुल्तान में दिव्य शक्ति का आभास होता था। सुल्तान ग़रीब मुसलमानों का बहुत ध्यान रखता था और प्रति वर्ष उनकी एक सूची बना उन्हें छः महीने का खाद्य-पदार्थ दान देता था। उसने अनाज पर चुंगी क्षमा कर दी तथा कृषि एवं व्यापार को विशेष प्रोत्साहन दिया। परन्तु सिकन्दर एक कट्टर मुसलमान था। अतः उसके समय में देहली राज्य एक बार धर्मान्ध हो गया। बुद्धन ब्राह्मण-सम्बन्धी किंवदन्तियाँ इसे पुष्ट करती हैं। वह इस प्रकार की हैं:—

एक बार बुद्धन ब्राह्मण ने यह कह दिया कि उसका धर्म इतना ही श्रेष्ठ है, जितना इस्लाम। इस पर तुरन्त एक धार्मिक सभा हुई कि उक्त ब्राह्मण को क्या दण्ड दिया जाय। निर्णय यह हुआ कि यह इस्लाम धर्म और प्राण-दण्ड में से किसी एक को स्वीकार करे। बुद्धन ने धर्म-परिवर्तन के बदले मरना श्रेयस्कर समझा। सिकन्दर का युग अनुदारता का युग था। अपने धर्म का वह इतना कट्टर था कि उसने मथुरा के समस्त मन्दिरों को विध्वंस कर अतुल धन लूटा, यह समय समस्त विश्व में धार्मिक उदारता का अभाव था। यूरप का इतिहास इसका साक्षी है। अतः सिकन्दर की कट्टरता क्षम्य है।

सिकन्दर का व्यक्तित्व:—सिकन्दर एक सुन्दर, सुडौल, तथा हृष्ट-पुष्ट पुरुष था। वह आखेटप्रिय था। अपने धर्म का वह कट्टर अनुयायी था। मुल्ला मौलवियों की संगति उसे बहुत प्रिय थी। हिन्दुओं के प्रति उसका व्यवहार बहुत कठोर था। उन्हें स्वधर्मों पर आरूढ़ रहने तथा अन्य धार्मिक क्रियायें करने की पूर्ण स्वतन्त्रता न थी।

इब्राहीम लोदी:—इब्राहीम के समय में अफ़ग़ान गवर्नमेन्ट की रूप रेखा बदल गई। वह एक चिड़चिड़ा और जिद्दी बादशाह था। उसके स्वभाव के कारण ही अफ़ग़ान अमीरों की सहानुभूति उसके प्रति न रही। जैसा कि उल्लेख आ चुका है,

समस्त शक्ति अपने हाथों में केन्द्रीभूत कर ली। अफ़ग़ान सरदारों पर उसने अपना अधिकार भली भाँति स्थापित किया। उसने जागीरदारों के हिसाब का निरीक्षण कराया, और जो ग़बन पाया गया उसे कठोरता से वसूल कराया तथा उन जागीरदारों को दण्ड दिया। प्रान्तीय गवर्नरों पर सुल्तान का इतना आतंक था कि सुल्तान के आज्ञा-पत्रों को प्राप्त करने के लिये वह नगर से दो-तीन मील की दूरी पर आते थे। तथा उन्हें जनता में घोषित करते थे। उसने एक सुसंगठित गुप्तचर विभाग का आयोजन किया, जो छोटी-छोटी बातों की सही सूचना बादशाह को देता था। इस प्रकार प्रजा की छोटी-छोटी बातों की भी इतनी ठीक सूचना सुल्तान तक पहुँच जाती थी कि उन्हें सुल्तान में दिव्य शक्ति का आभास होता था। सुल्तान ग़रीब मुसलमानों का बहुत ध्यान रखता था और प्रति वर्ष उनकी एक सूची बना उन्हें छः महीने का खाद्य-पदार्थ दान देता था। उसने अनाज पर चुंगी क्षमा कर दी तथा कृषि एवं व्यापार को विशेष प्रोत्साहन दिया। परन्तु सिकन्दर एक कट्टर मुसलमान था। अतः उसके समय में देहली राज्य एक बार धर्मान्ध हो गया। बुद्धन ब्राह्मण-सम्बन्धी किंवदन्तियाँ इसे पुष्ट करती हैं। वह इस प्रकार की हैं:—

एक बार बुद्धन ब्राह्मण ने यह कह दिया कि उसका धर्म इतना ही श्रेष्ठ है, जितना इस्लाम। इस पर तुरन्त एक धार्मिक सभा हुई कि उक्त ब्राह्मण को क्या दण्ड दिया जाय। निर्णय यह हुआ कि यह इस्लाम धर्म और प्राण-दण्ड में से किसी एक को स्वीकार करे। बुद्धन ने धर्म-परिवर्तन के बदले मरना श्रेयस्कर समझा। सिकन्दर का युग अनुदारता का युग था। अपने धर्म का वह इतना कट्टर था कि उसने मथुरा के समस्त मन्दिरों को विध्वंस कर अतुल धन लूटा, यह समय समस्त विश्व में धार्मिक उदारता का अभाव था। यूरुप का इतिहास इसका साक्षी है। अतः सिकन्दर की कट्टरता क्षम्य है।

सिकन्दर का व्यक्तित्व:—सिकन्दर एक सुन्दर, सुडौल, तथा हृष्ट-पुष्ट पुरुष था। वह आखेटप्रिय था। अपने धर्म का वह कट्टर अनुयायी था। मुल्ला मौलवियों की संगति उसे बहुत प्रिय थी। हिन्दुओं के प्रति उसका व्यवहार बहुत कठोर था। उन्हें स्वधर्म पर आरूढ़ रहने तथा अन्य धार्मिक क्रियायें करने की पूर्ण स्वतन्त्रता न थी।

इब्राहीम लोदी:—इब्राहीम के समय में अफ़ग़ान गवर्नमेन्ट की रूप रेखा बदल गई। वह एक चिड़चिड़ा और जिद्दी बादशाह था। उसके स्वभाव के कारण ही अफ़ग़ान अमीरों की सहानुभूति उसके प्रति न रही। जैसा कि उल्लेख आ चुका है,

अफगान अपने बादशाह को अपना सहकारी समझते थे और यही कारण था कि उनमें से प्रभावशाली व्यक्ति जब अवसर पाते विद्रोह कर देते थे उनकी स्वामि-भक्ति सुल्तान की शक्ति पर निर्भर थी। यदि सुल्तान शक्तिशाली हुआ तो वे स्वामिभक्त रहे और यदि वह निर्बल हुआ तो उन्होंने स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने का भरसक प्रयत्न प्रारंभ कर दिया। सिकन्दर ने उन्हें अपने काबू में रक्खा और जब कभी उन्होंने सिर उठाया उसने तुरन्त उन्हें दबा दिया। परन्तु जब इब्राहीम ने उनकी स्वतन्त्रवृत्ति को दबाना चाहा तो वे बिगड़ खड़े हुए। और जब उसने बलपूर्वक उन्हें दबाने का प्रयत्न किया तो उन्होंने पूर्ण रूप से विरोध किया। क्योंकि वह समझते थे कि उनकी जागीर उन्हें किसी की दी हुई जागीर नहीं, बल्कि उन्होंने उसे उष्ण रक्त की आहुति देकर प्राप्त किया है। इस प्रकार इब्राहीम के सामने एक कठिन परिस्थिति हो गई। सामन्तवादी या जागीरदारी प्रथा की वह पराकाष्ठा थी। हिन्दू सिकन्दर की धार्मिक नीति से असन्तुष्ट हो लोदी शासन को विदेशी शासन समझ उसके विनाश का स्वप्न देख रहे थे। इस प्रकार अफ़गान-साम्राज्य का अन्त समय निकट प्रतीत होने लगा। यदि इब्राहीम लोदी अमीर जागीरदारों को सन्तुष्ट कर कुछ समय तक साम्राज्य को बनाये भी रखता तो भी उसका पतन अवश्य होता क्योंकि सामन्तवादी सिद्धांत में पतन निहित है। परन्तु इब्राहीम ने अत्यधिक प्रतिबन्ध द्वारा शासनश्रृंखला को अत्यन्त कठोर करना चाहा। अतः विनाश और भी निकट आ गया। अमीर षड्यन्त्र में व्यस्त रहने लगे। बाबर को निमन्त्रण दिया गया। तथा १५२६ ई० में पानीपत के युद्धस्थल में इसका अन्त हो गया।

**अमीरों का उपद्रव :**—जैसा कि पहले लिखा गया है कठोर व्यवहार के कारण इब्राहीम के प्रति अमीरों की कोई सहानुभूति न रही, अतः उन्होंने उसके भाई शहजादे जलाल को जौनपुर की गद्दी पर बैठा कर साम्राज्य में उपद्रव करना चाहा। जलाल कालपी से जौनपुर पहुँचा, और उस पर आधिपत्य स्थापित कर राज्य करने लगा। खानजहाँ लोदी के समझाने से लोदी सरदारों को अपनी त्रुटि का ज्ञान हुआ। उन्होंने जलाल को वापिस बुलाना चाहा। परन्तु जलाल ने जौनपुर छोड़ने से इन्कार कर दिया। तब सुल्तान ने स्वयं पत्र-व्यवहार द्वारा जलाल को समझाना चाहा। परन्तु वह न माना। इस पर क्रुद्ध होकर सुल्तान ने जलाल को पकड़ने का आदेश जारी किया। उसके प्रभावशाली साथियों को भेंट आदि दे सुल्तान ने उन्हें अपनी ओर मिला लिया। अब जलाल ने आजम हुमायूँ को अपनी ओर मिला लिया। दोनों ने अवध के गवर्नरों को निकाल अवध पर अधिकार कर लिया परन्तु शीघ्र ही आजम ने उसका साथ छोड़ दिया। अब इब्राहीम स्वयं उन्हें दबाने के लिए

कालपी की ओर अग्रसर हुआ, और उस पर अधिकार कर लिया। जलाल आगरे की ओर भाग गया। यहाँ गवर्नर ने उससे सधि कर ली। इब्राहीम क्रोधान्ध हो गया और जलाल के वध की आज्ञा निकाली। यह सुनकर जलाल ने ग्वालियर के राजा की शरण ली। इब्राहीम ने आगरे आकर इस प्रान्त का शासन प्रबन्ध ठीक किया तथा आजम को ग्वालियर पर आक्रमण करने के लिये भेजा। जलाल मालवा से गोडवाना चला गया यहाँ जमीदारो ने उसे गिरफ्तार कर इब्राहीम की सेवा में लाकर उपस्थित किया। इब्राहीम ने उसका वध करा दिया।

इब्राहीम को आजम का विश्वासघात भी याद था। अत उसने एक बहाने से उसे ग्वालियर से बुलाया, और उसके पुत्र सहित उसे कैद में डाल दिया। तथा उसके दूसरे पुत्र को, जो कडा का शासक था, गवर्नरी से पदच्युत कर दिया।

इब्राहीम के विश्वास-घातक व्यवहार से अमीर बहुत क्षुब्ध हुये, उन्होंने एक सेना एकत्रित की और इब्राहीम का सामना करने चले परन्तु परास्त हुये।

**मेवाड का पुनरुत्थान :**—इब्राहीम लोदी के समय मेवाड अत्यन्त प्रतिष्ठित रियासत हो गई थी। राणा सग्रामसिंह के नेतृत्व में मेवाड ने अनेकों सग्राम जीते थे। इब्राहीम को इसे विजय करने की प्रबल इच्छा हुई। एक विशाल सेना लेकर वह मेवाड की सीमा पर पहुँच गया। परन्तु परास्त हुआ उसके कुछ सैनिक भी राणा की ओर मिल गये। परन्तु उन सैनिकों तथा उनके सेनापति रजाहुसैन ने राणा के साथ विश्वासघात किया, और अगले दिन इब्राहीम के सेनापतियों से मिल राणा को परास्त करने में सहयोग दिया।

**अमीरों का खुला विद्रोह** —लोदी अमीर इब्राहीम के बर्ताव से बहुत असन्तुष्ट थे। आजम के कत्ल ने उन्हें अपनी जीवन-रक्षा के लिये चिन्तित कर दिया। जब हुसैनखाँ फारमूली का सोते हुये वध कर दिया गया, तो विरोध चरम सीमा पर पहुँच गया। इसी समय इब्राहीम ने पजाब के गवर्नर दौलतखाँ लोदी के पुत्र के साथ दुर्व्यवहार किया तो असतोष की आग लग गई। सुल्तान ने दौलतखाँ को अपने दरबार में बुलाया था। परन्तु दौलतखाँ ने यह कह कर कि मैं शाही खजाने के साथ कुछ काल उपरान्त आऊँगा। अपने पुत्र दिलावरखा को इब्राहीम की सेवा में भेज दिया। यह बात इब्राहीम को बुरी लगी, तथा उसने उसे बन्दीगृह दिखाते हुए दिलावरखाँ को बतलाया कि सुल्तान की आज्ञा की अवहेलना करने का यह परिणाम होता है। दिलावरखाँ ने उस समय तो क्षमा माग कर अवसर को टाल दिया। परन्तु पजाब पहुँच कर अपने पिता दौलतखा को सब घटना सुनाई। दौलतखाँ को यह बात बहुत बुरी लगी। प्रतिशोध की भावना उसमें जागृत हो उठी।

बाबर का पंजाब पर आक्रमण :—दौलतखां ने बाबर को भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दिया, जो १५२५ ई० में भारत* पर चढ़ आया। जब वह लाहौर पहुँचा तो उसने देहली की सेना को एकत्रित पाया। परन्तु उसने उसे परास्त किया और लाहौर पर अधिकार कर वह आगे बढा। दौलतखां को बाबर के लाहौर पर अधिकार करने की बात समझ न आई। क्योंकि वह पंजाब पर अपना स्वतन्त्र अधिकार करना चाहता था। परन्तु फिर भी उसने अपनी भावना का प्रदर्शन न किया। कुछ समय बाद बाबर को इसका पता चल गया और उसने जालन्धर तथ सुल्तानपुर की जागीर, जो दौलतखां को दे दी थी, उससे वापिस ले उसके पुत्र दरियाखां को दे दी।

बाबर का भारत पर पुनः आक्रमण :—बाबर ने सोचा कि भारतवर्ष में आगे बढने से पूर्व अपनी सेना को संगठित करना उचित होगा। वह काबुल लौट गया और पूरी तैयारी कर अगले वर्ष भारतवर्ष पर चढ़ आया। उस समय राणा सांगा भी अफगानों से क्षुब्ध था। अतः उसने बाबर को सहायता का वचन दिया। इस प्रकार भारत की परिस्थिति अपने अनुकूल समझ बाबर पानीपत के मैदान में आ डटा। और २१ अप्रैल सन् १५२६ ई० इब्राहीम को परास्त कर मुगल साम्राज्य की नीव डाली।

इब्राहीम का शासन काल :—यद्यपि इब्राहीम जागीरदारों के प्रभाव से ईर्षा करता था और उनकी शक्ति को पूर्णतया समाप्त करना चाहता था तथापि वह प्रजा के हित का सदैव ध्यान रखता था। उसके शासन काल में अन्न की बहुतायत रही, और इसी कारण सब वस्तुओं के भाव बहुत मन्दे थे। इसका यह भी कारण था, कि सुल्तान सब कर अन्न इत्यादि के रूप में लेता था। अतः अन्न का कभी अभाव अनुभव ही न हुआ। अन्न के बाहुल्य के कारण सभी वस्तुओं के भाव मन्दे थे।

## प्रश्न

१—लोदी साम्राज्य का संस्थापक कौन था? उसने किस प्रकार अपने साम्राज्य को दृढ़ किया ?

२—सिकन्दर लोदी के शासन काल की मुख्य घटनाओं पर प्रकाश डालो।

३—इब्राहीम लोदी किस प्रकार लोदी वंश के पतन का कारण हुआ।

## अध्याय २६

# उत्तरी भारत की रियासतें

सल्तनत के प्रभुत्व की सीमा —मुहम्मद बिन तुगलक के शासनकाल में दिल्ली सल्तनत अपने व्यापकतम रूप में थी। हिमालय से कोरोमण्डल तट तक तथा सिन्धु से उत्तर-पश्चिम में पूर्वी बगाल तक, समूचा देश दिल्ली के अधीन था। किन्तु दिल्ली की सल्तनत इस समस्त प्रदेश पर अपना पूरा प्रभुत्व स्थापित नही कर सकी थी। हुगली से लेकर गोदावरी तक विस्तृत उडीसा प्रदेश अभी तक नतमस्तक नही हो पाया था। राजपूताना और मध्य भारत का पर्वती प्रदेश भी अविजित अवस्था में ही पडा था। उपद्रव, एव अराजकता आये-दिन की बात थी। परिणाम यह हुआ कि मुहम्मद तुगलक के शासन काल में ही तैलगाना तथा विजयनगर जैसे बडे प्रदेश स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर मुस्लिम शासन से मुक्त हो गये। तत्पश्चात् विदेशी अमीरो के महान् विद्रोह के फलस्वरूप बहमनी राज्य की स्थापना होने पर दक्षिण में दिल्ली के प्रभुत्व का चिन्ह सर्वथा विलीन हो गया। बहमनी राज्य की स्थापना के पश्चात् शीघ्र ही बङ्गाल भी पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो गया।

सल्तनत के खण्डित होने का यह क्रम फीरोज तुगलक के शासन काल में भी न रुक सका। फीरोज पुन गुजरात तथा सिन्ध पर दिल्ली का प्रभुत्व स्थापित करने में सफल था। सुदूर पूर्व में बगाल उसके हाथ से निकल गया, परन्तु १४ वी शताब्दी के अन्तिम चरण में, जब अन्तिम तुगलकशाह बालावस्था में था, गुजरात और जौनपुर स्वतन्त्र हो गये। तैमूर के आक्रमण ने तो सल्तनत की रीढ ही तोड दी, मालवा तथा खानदेश तक उससे पृथक् हो गये। दोआब, रुहेलखण्ड तथा पजाब अभी दिल्ली सल्तनत से सम्बद्ध थे, किन्तु सामन्ती अमीर, उपद्रवो और दलबन्दियो का घर बने हुये थे। यही कारण था कि सैयद शासको को अपनी समस्त शक्ति उन निरकुशो पर अकुश रखने के असफल प्रयत्नो में लगानी पडी। पर्याप्त प्रयत्नो के फलस्वरूप लोदी शासन-काल में जौनपुर और बिहार पर पुन प्रभुत्व स्थापित किया जा सका।

परन्तु दिल्ली सल्तनत के ह्रास का मुसलमानो के प्रभुत्व पर कोई प्रभाव नही पडा। क्योकि पतन के फलस्वरूप जो स्वतन्त्र राज्य स्थापित हुये थे वे मुस्लिम राज्य ही थे।

हिंदू प्रभुत्व :—उपरोक्त कथन का यह अभिप्राय नही कि हिन्दुओ का प्रभुत्व तथा शक्ति पूर्णतया क्षीण हो गई थी। हिमालय के उपप्रदेश—केवल काश्मीर

बाबर के आक्रमण
के पूर्व
भारतीय राज्य १५२५ ई.
काश्मीर
पेशावर
लाहौर
सरहिन्द
मुल्तान
पानीपत
दिल्ली
सम्भल
राजपूत राज्य
सिंध
कन्नौज
ग्वालियर
बनारस
मालवा
गुजरात
बंगाल
खानदेश
अहमद
नगर
बरार
गोंडवाना
बीदर
बीजापुर
गोलकुण्डा
विजयनगर
बंगाल की खाड़ी
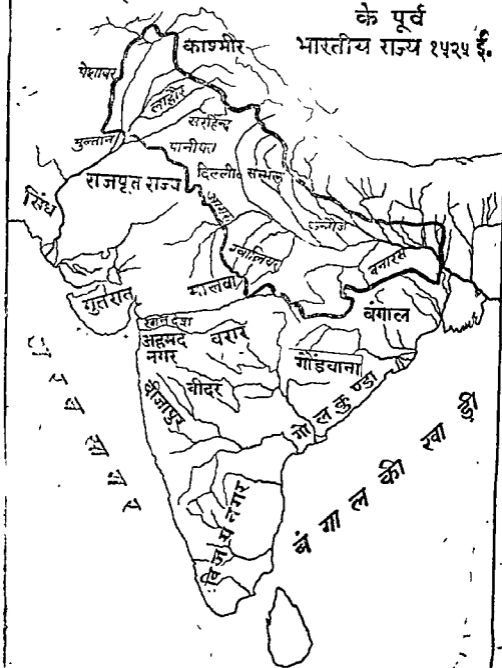
को छोड़कर, जिसपर १३०७ ई० में मुसलमानों का प्रभुत्व स्थापित हो गया था—कांगड़ा, नैपाल और भूटान सर्वथा स्वतन्त्र सत्ता बनाये रहे। हिमालय की तराई का विस्तृत प्रदेश—जिसमें रुहेलखण्ड का पर्याप्त भाग और अवध का उपाहाड़ी प्रदेश सम्मिलित है—विजित नही हो सके थे। मारवाड़ और रेगिस्तानी प्रदेश से लेकर पूर्व में मध्यभारत के पार गोंडवाना के जंगली प्रदेश तथा उड़ीसा के अर्द्धविजित प्रदेश तक का समस्त भू-भाग हिन्दुओं की शक्ति का दुर्जेय दुर्ग था। हिन्दू, राजपूत, और आदिवासी राज्यो का यह 'मध्य केन्द्र' था, तथा इसका हिमालय के पर्वतीय राज्यो तथा विजयनगर और वारंगल के दक्षिणी राज्यों से कोई सम्बन्ध न था। प्रताप रुद्र द्वितीय के पश्चात् वारंगल का राज्य बहुत शक्तिहीन हो गया। १४ वीं शताब्दी में तीव्र गति के साथ उसका ह्रास होता गया और अन्त में १४२३ ई० में वह बहमनी राज्य में मिला लिया गया। किन्तु हिन्दू शक्ति के 'मध्य केन्द्र' पर मुसलमानों का प्रभुत्व स्थापित नही हो सका। इसका कारण यहाँ के राजपूतों तथा आदिवासियो की शूर-वीरता, अदम्य साहस तथा यहाँ के सघन जंगल थे जिन्हें उत्तर की ओर से वेध कर आक्रमण करना यदि असम्भव नही तो कठिन अवश्य था।

एक ओर दिल्ली, जौनपुर और बंगाल के मुस्लिम नवाबों का राजपूताना, मध्यभारत तथा उड़ीसा से निरंतर संघर्ष होता रहा तो दूसरी ओर गुजरात, खानदेश और मालवा की मुस्लिम रियासतों का गुट राजपूताना और मध्य भारत के हिन्दू शासकों के रक्त-पिपासु रहे। विजयनगर और बहमनी राज्य के बीच में भी तनाव था। इन दोनों में भी रायचूर के कृष्णा तुंगभद्रा दोआब में मुठभेड़ होती रहती थी। इनकी मुठभेड़ और संघर्ष के परिणामस्वरूप नवीन राजनीतिक शक्ति और परिस्थितियाँ उत्पन्न होती थीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में फिर विभाजक मुस्लिम शक्तियाँ सजग हो उठी थी। जिसके फलस्वरूप अनेक रियासतें बन गईं जो निरंतर संघर्ष करती रहती थी।

## बंगाल

बङ्गाल की अवस्था :—मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी के आधिपत्य-काल में ही बंगाल ने यथार्थ रूप में एक पृथक् राज्य का स्वरूप धारण कर लिया था। देहली के प्रभुत्व को तो इसने स्वीकार कर लिया था परन्तु इस स्वीकृति में वास्तविकता नही थी। यह तो समय की माँग थी। १२०५ ई० में अपनी मृत्यु से पूर्व बख्तियार खिलजी ने पूर्व में नदिया और उत्तर में कूचबिहार पर्यन्त अपने पाँव फैला लिये थे। लखनौती की पुरानी हिन्दू राजधानी को उसने अपना अड्डा बनाया था। आगे चलकर बंगाल राज्य और भी विस्तृत हो गया और छोटा नागपुर तथा ब्रह्मपुत्र के

पूर्वी प्रदेश भी उसके प्रभाव में आ गये। बख्तियार के उत्तराधिकारियों के शासन-काल में इसका विस्तार और अधिक हो गया। १२२५—२६ ई० के पास सुल्तान इल्तुतमिश ने बिहार पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् अपने पुत्र को बंगाल भेजा। उसने वहाँ के मुसलमान सूबेदार को मार डाला तथा स्वयं लखनौती को राजधानी बना शासन करने लगा।

तत्पश्चात् देहली के अनुशासन में बंगाल पर एक के पीछे दूसरे कितने ही सूबेदारों ने शासन किया। इनमें से एक ने १२५३ ई० में पुनः दिल्ली के प्रति विद्रोह किया। किन्तु अन्त में उसे नतमस्तक होना पड़ा। १२६७ ई० में तुगरल बंगाल का सूबेदार हुआ। वह बलबन के यहाँ दास रह चुका था। १२७६ ई० में उसने स्वयं को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। दिल्ली की शाही सेनाओं को दो बार उसने परास्त भी किया। बलबन ने जाजनगर तथा पूर्वी बंगाल में सोनार गाँव तक उसका पीछा किया, तथा १२८२ ई० में उसका अन्त कर दिया। तत्पश्चात् १३३१ ई० तक बलबन वंशीय पांच सूबेदारों ने बंगाल पर शासन किया। बलबन का द्वितीय पुत्र बुगराखां इन पाँच सूबेदारों में सर्वप्रथम था। देहली में रह कर संघर्षों में लिप्त रहने के स्थान पर दूरस्थ बंगाल जाना ही उसने अधिक पसंद किया। पुत्र होने के कारण कदाचित् दिल्ली के सिंहासन पर भी वह बैठ सकता था किन्तु दिल्ली के संघर्ष कुछ ऐसे थे जिनके सामने उसने बंगाल जाना अधिक अच्छा समझा।

बुगराखां की मृत्यु के पश्चात उसका दूसरा पुत्र बंगाल का शासक बना। उसकी मृत्यु के पश्चात् बंगाल में गृह-युद्ध की आग भड़क उठी। उसको दमन करने के लिये गयासउद्दीन तुगलक ने बंगाल पर चढ़ाई की तथा वहाँ दिल्ली का प्रभुत्व पुनः स्थापित कर दिया। इस समय तक मुस्लिम शासन का विस्तार पूर्वी बङ्गाल में वर्तमान ढाका जिले में स्थित सोनार गाँव तक हो गया।

बङ्गाल विभाजन :—स्वयं बङ्गाल भी अपनी सीमाओं के भीतर आंतरिक संघर्ष और गुटबन्दियों से मुक्त न था। १२९७ ई० के लगभग बङ्गाल दो भागों में विभक्त हो गया। सोनार गाँव तथा लखनौती में प्रतिद्वन्दी नवाब शासन करने लगे। १३५२ ई० तक यह विभाजन इसी रूप में चलता रहा। किन्तु मुहम्मदबिन-तुगलक के प्रभुत्व को ये दोनों भाग मानते रहे।

इलियासशाह :—१३४५ में इलियासशाह बंगाल तथा लखनौती का शासक हुआ। १३५२ ई० में उसने सोनार गाँव पर भी अधिकार कर लिया। कहा जाता है कि उसने उड़ीसा में जाजनगर और उत्तरी बिहार में तिरहुत पर भी चढ़ाई की थी।

फीरोज़तुगलक ने इसी इलियासशाह के विरुद्ध चढ़ाई की, किन्तु सफल न हो सका। अन्त में १३५६ ई० में, दिल्ली ने बंगाल की स्वतन्त्रता को स्वीकार लिया किन्तु शीघ्र ही इलियासशाह की मृत्यु हो गई।

**इलियासशाह के उत्तराधिकारी:**—इलियासशाह के उत्तराधिकारी बङ्गाल पर १४०७ ई० तक शासन करते रहे। उसके पुत्र सिकन्दरशाह ( १३५७—९३ ) को फीरोज़शाह तुगलक से टक्कर लेनी पड़ी। परन्तु उससे उसे विशेष आघात नहीं हुआ। अनुकूल शर्तों पर उसने दिल्ली की मान्यता स्वीकार करली। उसने अपनी राजधानी में कुछ शानदार इमारतें भी बनवाईं। उसने अपने विद्रोही पुत्र को सोनार गाँव का स्वतन्त्र शासक बने रहने दिया। उसके पीछे एक वर्ष तक आज़म ने शासन किया। आज़म ने साहित्यप्रेमी के नाते अच्छी ख्याति प्राप्त की।

**हिन्दू राजपरम्परा :**—१४०७ ई० में इलियास वंश के पश्चात हिन्दू राज परम्परा का श्रीगणेश हुआ। इस परम्परा का सस्थापक राजा कंस था। प्राप्त विवरण से विदित होता है कि वह कट्टर हिन्दू था। बिना राजसी उपाधियों के उसने १४०७ से १४१४ ई० तक शासन किया। उसके पुत्र एव पौत्र ने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया। सम्भवत: उनके धर्म-परिवर्तन के कारण ही बंगाल की जनता ने भी बहु संख्या में इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया तभी से आज तक पूर्वी बगाल में मुसलमानों का बहुमत स्थापित है।

**हुसैनशाह:**—इस परम्परा का इलियास के वंशज ने अस्त कर दिया। तत्पश्चात् कुछ काल तक अबीसीनियाँ के हब्सी दासो का शासन यहाँ प्रचलित रहा। १४९३ ई० में यहाँ की गद्दी अरबी सैयदों के हाथ में चली गई। अरबी सैयदों में पहिला नवाब हुसैनशाह था उसने १४९३ से १५१८ ई० तक शासन भार सम्भाला और पर्याप्त सिद्धि प्राप्त कर गौरवान्वित हुआ।

**परिवर्तन:**—हुसैनशाह ने दिल्ली के सिकन्दर लोदी की सेनाओं का प्रतिरोध किया। आसाम पर उसने आक्रमण किया। उसके पौत्र पर १५३८ ई० में मुगल बादशाह हुमायूँ ने विजय प्राप्त की। किन्तु बहुत काल तक वह भी अपना प्रभुत्व बगाल पर स्थापित न कर सका। सुप्रसिद्ध अफगान शासक शेरखाँ सूर ने उस पर अपना अधिकार जमा लिया। १५३९ ई० में शेरखाँ ने स्वय को बंगाल और बिहार का शासक घोषित कर दिया। आगे चलकर सूरवंश के दिल्ली पर अधिकार हो जाने के पश्चात बंगाल पर सूर वंश के सम्बन्धी शासन करते रहे। शेरखाँ की मृत्यु के पश्चात् गृह युद्ध उठ खड़ा हुआ। उसे शान्त करने के हेतु सम्राट् अकबर ने बंगाल पर आक्रमण किया। दो बार सफल आक्रमण करने के पश्चात् १५७५—७६ में बंगाल

दिल्ली की सल्तनत में सम्मिलित कर लिया गया। किन्तु पूर्ण रूप से प्रभुत्व कई वर्ष पश्चात ही स्थापित हो सका। उड़ीसा पर भी अकबर ने विजय प्राप्त कर उसे अपने शासन में ले लिया।

बंगाल के इस स्वतन्त्र इतिहास से दिल्ली की सल्तनत की कमजोरी का परिचय मिलता है। साथ ही साथ आये दिन के उपद्रव इस बात के द्योतक हैं कि जनता ने इंच २ भूमि पर रक्त बहाकर अपने प्रदेश को परतन्त्र होने न दिया। दिल्ली और बंगाल के बीच जौनपुर का राज्य ओट का काम करता था, बंगाल के सुल्तानों का इतिहास अधिकांशतः लड़ाइयों से परिपूर्ण है। उनमें से कुछ अपनी हिन्दू प्रजा को सहानुभूति की दृष्टि से देखते थे। कुछ ने अपने साहित्य प्रेम का भी अच्छा परिचय दिया। हुसैनशाह के पुत्र नसरतशाह ने महाभारत का संस्कृत से बंगला में अनुवाद कराया, बंगला साहित्य के इतिहास में स्वयं हुसैनशाह का उल्लेख भी आदर और प्रेम के साथ किया जाता है।

१५२८ ई० में, नसरतशाह के शासन-काल से ही, पुर्तगीज़ बंगाल में आ गये। चटगाँव में उनके दुर्व्यवहार के कारण नसरतशाह को उनके विरुद्ध कार्यवाही करनी पड़ी, जिसका प्रतिशोध उन्होंने बन्दरगाह को जलाकर लिया।

## उड़ीसा

खारवेल के पश्चात् का उड़ीसा का इतिहास अन्धकार में है। १०७४ ई० में ययाति केसरी ने उड़ीसा पर अधिकार कर लिया। उसके उत्तराधिकारी—केसरी वंशज ११३२ ई० तक यहाँ शासन करते रहे। फिर १५ वीं शताब्दी तक दक्षिण के निवासियों का शासन रहा। फिर सूर्यवंशियों का शासन स्थापित हुआ। सूर्यवंशियों में प्रताप, रुद्र, गजपति (१५०४—३८) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उसके मन्त्री ने सिंहासन पर अधिकार प्राप्त कर लिया, किन्तु वह भी सिंहासन पर अधिक समय तक आरूढ़ न रह सका। बंगाल के दाऊदखाँ ने उसे गद्दी से उतार दिया। उड़ीसा में अफ़ग़ानों के शासन का पूर्णतया अन्त १६०० ई० के लगभग हुआ। उस समय जैसा कि ऊपर उल्लेख आ चुका है, अकबर ने उड़ीसा पर अधिकार प्राप्त कर लिया।

## जौनपुर

ख्वाजाजहाँ:—अन्तिम तुग़लक शासक के मन्त्री ख्वाजाजहाँ ने अपने शक्तिविहीन स्वामी को त्याग कर जौनपुर में एक नवीन स्वतन्त्र सत्ता स्थापित की। स्मरण रहे कि अपने चचेरे भाई मुहम्मद बिन तुग़लक की स्मृति में फीरोज़ तुग़लक ने गोमती के किनारे जौनपुर नगर बसाया था। ख्वाजाजहाँ को तुग़लकों से 'मलिकउलशर्क' की

उपाधि प्राप्त हुई थी। शीघ्र ही वह इतना शक्ति-सम्पन्न होगया कि लखनौती तथा जाजानगर भी उसे भेंट देने लगे।

**इब्राहीम शर्की (१४०२—३६)**—जौनपुर की गद्दी पर इब्राहीम शर्की बहुत ही महत्वपूर्ण तथा प्रभावशाली शासक हुआ। उसने दिल्ली से कनौज को प्राप्त किया।। यहाँ उसने सुव्यस्थित शासन-पद्धति स्थापित की। कला तथा साहित्य को उसने पर्याप्त रूप से प्रोत्साहन दिया, कितन ही विद्वानो को अपने दरबार में आमन्त्रित किया। इस प्रकार पूर्व में जौनपुर को उसने मुस्लिम ज्ञान तथा सस्कृति का केन्द्र बनाया। १४२७ ई० के लगभग इब्राहीम ने दिल्ली को भी आतकित कर दिया, और यमुना स्थित कालपी पर आधिपत्य जमाने के लिये वह मालवा के शासक से युद्ध में सलग्न हुआ।

**हुसैनशाह शर्की (१४५६—७६)**—इब्राहीम के पुत्र महमूद ने भी मालवा से सघर्ष जारी रक्खा। १४५२ ई० में उसन दिल्ली को भी धमकी दी। बनारस के निकट चुनार पर उसन अधिकार कर लिया। अन्तिम शर्की सुल्तान हुसैनशाह ने उडीसा पर भी आक्रमण किया। ग्वालियर के शासक को भी उसन भेंट देन के लिये बाध्य किया, १४७३ में दिल्ली पर आक्रमण कर हुसैनशाह न उसके निकटवर्ती इलाके पर अधिकार कर लिया। किन्तु वहाँ उसे परास्त होना पडा और बहलोल लोदी ने उसे पीछे हटाने के लिए बाध्य कर दिया। अगले वर्ष उसन पुन आक्रम किया परन्तु फिर असफल रहा। अन्त में बहलोल लोदी के नतृत्व में दिल्ली की सेनाओ ने आगे बढ कर जौनपुर पर अधिकार कर लिया। हुसैनशाह बहिष्कृत कर दिया गया, और बहलोल लोदी के एक पुत्र न जौनपुर के शासन की बागडोर सम्भाली। जौनपुर के इस नवीन शासक न बहिष्कृत हुसैनशाह के साथ मिलकर षड्यन्त्र रचा और अपना भाई दिल्ली के सुल्तान सिकन्दर लोदी के विरुद्ध उपद्रव कर दिया। किन्तु १४९३ ई० में उसे पराजित होना पडा। इस प्रकार शर्की राज्य का अ त हो गया, और हुसैनशाह ने शरणार्थी के रूप में बगाल में अपना जीवन व्यतीत किया।

**जौनपुर की समालोचना**—इन अल्पकालिक शर्की राज्य ने साहित्य व कला को बडा प्रोत्साहन दिया। अनेक विद्वानो न यहाँ आकर शरण ली और जौनपुर सहज ही विद्या का केन्द्र बन गया। इस काल में निर्मित भव्य भवन आज तक हमारी प्रशसा का पात्र बने हुए हैं। सुन्दर सदन, भव्य भवन तथा गगनचुम्बी अट्टालिकाओं के हेतु जौनपुर बहुत प्रतिष्ठ हुआ। यह भारत का 'शीराज' कहा जान लगा जो सर्वथा इस नाम के उपयुक्त था। जौनपुर की मस्जिदें अपनी एक भिन्न विशेषता लिये हुए हैं।

अटाला मसजिद जौनपुर

राणा कुम्भा का विजय स्तम्भ

## काश्मीर

आन्तरिक कलह :—काश्मीर बहुत दिनों तक मुसलमान आक्रमणकारियों की पहुँच से बाहर रहा और वे उस पर आक्रमण नही कर सके। किन्तु आन्तरिक कलह और घरेलू संघर्ष उसे घुन की भांति खाये जा रहा था। जयसिंह (११२८-५५) काश्मीर का बहुत ही शक्तिशाली राजा था उसकी मृत्यु के पश्चात् घरेलू-संघर्ष और भी प्रबल हो उठा, और पूरी दो शताब्दियो तक एक भी इतना शक्तिशाली एवं चतुर शासक वहाँ उत्पन्न नही हुआ जो आन्तरिक कलह का दमन कर राज्य को सुव्यवस्थित तथा संगठित रूप में चला सकता। परन्तु मुसलमानो का काश्मीर पर आधिपत्य न होना उनकी किसी कमी का परिचायक नही वरन् काश्मीर की दूरी, प्राकृतिक बाधायें इत्यादि आक्रमण को प्राय: असम्भव कर रही थी। अन्यथा काश्मीर के पास ऐसी कोई भी सुसंगठित सन्य सबलता नही थी जो आक्रमण को विफल कर सकती।

शाहपीर :—चौदहवी शताब्दी के प्रथम चरण में कन्धार के शाह ने काश्मीर पर आक्रमण किया था और पर्याप्त धनराशि बटोर कर ले गया था। पर्शियन योद्धा शाहपीर ने, काश्मीर की अस्त-व्यस्त अवस्था से लाभ उठा कर आक्रमण किया और हिन्दू राज्य के अन्तिम प्रतिनिधि का नाश कर १३३७-३८ में काश्मीर में अपना राज्य स्थापित कर लिया। उसके, तथा उसके उत्तराधिकारियों के शासन-काल में काश्मीर में इस्लाम धर्म का प्रसार हुआ और यहाँ के निवासियो में से अधिक ने धर्म-परिवर्तन कर लिया। उपासना-गृहो में हिन्दू मूर्तियों के स्थान पर मुसलमान सन्त स्थानापन्न हो गये थे। किन्तु यह सब होने पर भी पुरातन रीति-रिवाज, प्रथा एवं विश्वास को जनता न छोड़ सकी, और उनका पूर्ववत् पालन करती रही। शासकों ने भी जनता के विश्वासों और रीति रिवाजो में विशेष हस्तक्षेप नही किया। शाहपीर ने स्वयं अपनी योग्यता, तथा शक्ति का उपयोग किया। बहुतेरे दुख:प्रद करों से जनता उन्मुक्त की गई। भूमि-कर केवल पैदावार का छठा भाग नियुक्त कर दिया गया।

उत्तराधिकारी :—शाहपीर के १३ उत्तराधिकारियों ने काश्मीर पर राज्य किया। उत्तराधिकारियो में बुतशिकन सिकन्दर (१३८६-१४१०) और जैनुल आब्दीन (१४२१ से १४७२ तक) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सिकन्दर ने जनता पर इस्लाम धर्म का आरोपण किया। उसने तैमूर के प्रभुत्व को स्वीकार कर अपने राज्य को नृशंस तैमूर के आक्रमण से बचा लिया। सिकन्दर तथा उसके धर्मांध अमात्यों ने अधिकांश मन्दिरो को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। यहाँ के कितने ही ब्राह्मणो को मुसलमान बनने के लिये बाध्य किया। जैनुल आब्दीन को 'काश्मीर का

अकबर' कहा जा सकता है। उसने १४२१ से १४७२ ई० तक शासन किया। उसके शासन-काल में काश्मीर समृद्धशाली हुआ। वह हिन्दुओं के प्रति सहनशील था। अनेक संस्कृत ग्रन्थों, जैसे महाभारत तथा कल्हण विरचित राजतरंगिणी का उसने फारसी में अनुवाद करवाया। उसका राजदरबार ऐश्वर्य सम्पन्न था। सिंचाई के साधन पुनर्जीवित किये गये। शाल दुशाले, कागज और कशीदाकारी के घरेलू उद्योगों को अत्यधिक प्रोत्साहन दिया गया। वह निःसन्देह 'काश्मीर का अकबर' ही था।

**मुगलों का आधिपत्य:**—अगली अर्द्ध शताब्दी में काश्मीर की अराजकता एवं अव्यवस्था से लाभ उठाकर मुगल सम्राट् बाबर के चचेरे भाई मिरजा हैदर ने आक्रमण कर उस पर अपना अधिकार जमा लिया और हुमायूँ सम्राट् का वायसराय बनाकर १५५१ ई० तक काश्मीर पर शासन करता रहा। उसकी मृत्यु के उपरान्त पुराने राजकुल ने पुनः अपना स्थान ग्रहण कर लिया। किन्तु शीघ्र ही गाजीशाह ने आक्रमण कर अपना अधिकार स्थिर कर लिया, और अगले तीन वर्ष तक शासन सम्भालता रहा। आन्तरिक संघर्ष के कारण गाजीशाह की शक्ति बहुत क्षीण हो गई और अन्त में १५७६ ई० में मुगलो ने काश्मीर पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। गाजीशाह को, अपनी इच्छा से सिंहासन परित्याग के उपलक्ष में, अकबर ने अपने दरबार के अमीरो में स्थान देकर सम्मानित किया।

आधिपत्य स्थापित होते ही अकबर ने काश्मीर की यात्रा की। यह उसकी सर्वप्रथम यात्रा थी। इसके पश्चात् वह एक बार और काश्मीर आया। अकबर के उत्तराधिकारियों, विशेषतया जहाँगीर के लिये काश्मीर विशेष आकर्षण का केन्द्र बन गया। वे प्रायः ग्रीष्मऋतु यही बिताते थे। अपनी सुरम्य स्थलियों के कारण काश्मीर न केवल एशिया में ही प्रत्युत् विश्व में भी अपनी ख्याति बनाये हुये है।

## सिन्ध और मुल्तान

इतिहास का विशेष अध्ययन बताता है कि सिन्ध का सूबा सदैव दिल्ली सल्तनत का विद्रोही सूबा रहा। पर्याप्त काल-पर्यन्त इसके शासक अपने को खलीफाओं का प्रतिनिधि घोषित करते रहे और इस प्रकार उन्होंने स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली। १०१० ई० में गजनी के सुल्तान महमूदने सिन्ध पर विजय प्राप्तकी औरतब से सिन्ध उसके प्रभुत्व में बना रहा। तत्पश्चात् १०५३ ई० में स्थानिक राजपूतों की एक शाखा सुमराओ ने शक्ति पकड़ ली और लगभग ३०० वर्ष तक वे सिन्ध पर शासन करते रहे। उन्होने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। उनकी सत्ता न तो विशेष विस्तृत थी और न अधिक प्रभावशाली ही थी। आये दिन उन पर दिल्ली की सेना तथा मंगोल धावे बोलते रहते थे। नासिरुद्दीन कुबैचा ने मुल्तान और उच्छ

पर आक्रमण कर सुमरा सरदारों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। मुहम्मद बिन-तुगलक और उसके उत्तराधिकारी ने भी अपने प्रभुत्व और सत्ता को सिन्ध में स्थापित करने का प्रयत्न किया, तथा फीरोज तुगलक ने ठट्टा के जाम साहब पर विजय प्राप्त कर ली। १३५१ के लगभग सुमरा सरदारों को एक दूसरे स्थानिक कबीले सम्मार ने पददलित कर अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी। सम्मार स्वयं को जमशेद का वंशज बताते थे तथा स्वयं को जाम घोषित करते थे। इसी जाम पर फीरोज़ ने विजय प्राप्त की थी। कुछ समय बाद अरगुन वंश ने सिन्ध छीन लिया।

अरगुन कन्धार के निवासी थे। मुगल सल्तनत के संस्थापक बाबर के प्रभुत्व से उन्हें कन्धार छोड़ना पड़ा, और वे सिन्ध में आकर बस गये। हुमायूँ ने अपने पर्य्यटन काल में कुछ समय सिन्ध में व्यतीत किया था। अरगुनों के पश्चात् उन्हीं के वंश की एक और शाखा, जो 'तरखान' कहलाती थी, सिन्ध में आई। ये तरखान सिंध में उस समय तक शासन करते रहे जब तक कि सिन्ध १५९२ ई० में मुगल-साम्राज्य का अङ्ग न बना लिया गया।

मुलतान :—इल्तुतमिश द्वारा कुबेंचा की पराजय से लेकर तैमूरलंग के आक्रमण तक मुल्तान दिल्ली के साथ रहा। सैयदों के समय में यह दिल्ली से सर्वथा पृथक् हो गया और एक अरब शेख वंश ( लंगा वंश ) के शासन में आ गया। इस वंश के अन्तिम शासक को १५२५ ई० में सिन्ध के शाह हुसैन अरगुन ने परास्त किया। तत्पश्चात् हुमायूँ के काल में मुल्तान पुनः दिल्ली से सम्बद्ध हो गया।

## गुजरात

गुजरात की उपजाऊ तथा श्रीसम्पन्न भूमि बहुत काल तक मुस्लिम आधिपत्य से बची रही। १२९७ ई० में अलाउद्दीन ने गुजरात पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात दिल्ली की सल्तनत से सम्बद्ध हो जाने पर भी यहाँ के शासक समानरूप से दिल्ली के प्रभुत्व को न मान सके। चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में गुजरात पुनः स्वतन्त्र हो गया किन्तु मुस्लिम शासन ज्यों का त्यों रहा; क्योंकि वह मुसलमान के ही आधिपत्य में स्वतन्त्र हुआ। जफरखाँ यहाँ का सूबेदार था। वह राजपूत से मुसलमान बना था। उसने मुजफ्फरशाह की उपाधि से स्वयं को विभूषित किया।

प्रारम्भ में मुजफ्फरशाह की शक्ति सीमित थी। वह अनेक विरोधी राजपूत और जङ्गली भीलों से घिरा था। उसका अधिकृत प्रदेश भी सीमित था। समुद्र तथा पहाड़ियों के मध्य का प्रदेश ही उसके शासन में था परन्तु वह एक सशस्त्र और

सक्रिय शासक था। उसने अपना प्रभुत्व ड्यू और झालावाड़ तक विस्तृत कर लिया। कुछ समय के लिये १४०७ ई० में मालवा पर भी उसका अधिकार स्थापित हो गया।]

**अहमदशाह:**—तत्पश्चात् उसका पौत्र अहमदशाह गद्दी पर बैठा। अहमद शाह को हम गुजरात की महानता का वास्तविक अधिष्ठाता कह सकते हैं। उसने अहमदाबाद नगर बसाया। आगे चलकर यही नगर उसके राज्य की राजधानी बन गया। बाद में मुगलों के अन्तर्गत होने पर भी यह नगर राजधानी हो बना रहा। स्वतन्त्र मुस्लिम शासन और बाद के मुगल शासनकाल के स्मृति-चिन्हों से, विशेषकर उस काल की सुन्दर इमारतों से यह नगर भरपूर है।

अहमदशाह ने सम्पन्न शासन का उपभोग किया। अनेक भव्यप्रासादो से उसने अहमदाबाद के सौन्दर्य को चार चाँद लगाये। अपने पितामह के पदचिन्हों पर चलकर उसने मालवा के विरुद्ध संघर्ष जारी रक्खे। वह काठियावाड़ को अपने अधिकार में रखने का प्रयत्नशील रहा। इसके अतिरिक्त उसने खानदेश और बहमनी के सुल्तानों से भी लोहा लिया।

**मुहम्मद शाह बीगड़:**—जहां तक अहमदशाह के चरित्र का सम्बन्ध है, वह एक कट्टर मुसलमान था। किन्तु अपने राज्य में उसने शान्ति स्थापित रक्खी और न्याय की सुप्रथा को दूषित नही होने दिया। उसके पश्चात् दूसरा महत्वपूर्ण शासक मुहम्मद शाह बीगड़ हुआ। वह इस राजवंश का सर्वोत्तम शासक था। खानदेश और मालवा से उसने भी कौटुम्बिक संघर्ष जारी रक्खा। काठियावाड़ से चम्पानेर और गिरिनार के पहाड़ी दुर्गों पर उसने अपनी विजयपताकायें फहराईं। वह सिन्ध के डेल्टा तक पहुँच गया था और वहाँ के बलूचियों का उसने दमन किया था। द्वारिका के समुद्री डाकुओं का दमन करने के हेतु उसने पर्य्याप्त रूप से एक वृहत् बेड़ा तय्यार कराया। अपने शासन के अन्तिमकाल में उसने पुर्तगीजों पर भी आक्रमण किया। वे पच्छिमी तट पर दुर्दमनीय शक्ति का रूप धारण करते आ रहे थे। मिश्र के 'ममलूक' मुल्तान से गठबन्धन कर उसने पुर्तगीज बेड़े पर आक्रमण किया और उस व्यापार को, जो उनके अधीन हो गया था पुनः लेने का प्रयत्न किया। १५०८ ई० में उसकी ख्याति ड्यू में पुर्तगीज विजय के कारण नष्ट हो गई और समुद्री तट से होने वाला पूर्ण व्यापार पुर्तगीजों के हाथों में चला गया।

**मुहम्मदशाह बीगड़ का व्यक्तित्व:**—मुहम्मदशाह बीगड़ का व्यक्तित्व असाधारण था। कहा जाता है कि उसकी मूँछ इतनी बड़ी थी कि वह उन्हें अपने सिर के ऊपर लपेट कर रखता था। वह खाना भी भारी मात्रा में खाता था। विष का उस पर कोई प्रभाव ही न पड़ता था। उसके विचित्र व्यक्तित्व की अनेक किंवदन्तियाँ

योरुप तक प्रचलित थी। न्याय-प्रियता की दृष्टि से, उदारता की दृष्टि से, धर्मयुद्ध तथा इस्लाम के प्रचार की दृष्टि से, समझ बूझ तथा बुद्धिमता-पूर्णनिर्णयों की दृष्टि से वह मान्य था। एक इतिहासकार के सच्चे शब्दों में वह गुजरात का सब से बड़ा शासक था।

उत्तराधिकारी :—बीगड के पुत्र मुजफ्फरशाह द्वितीय (१५११-१५१६) ने मालवा के मुसलमान शासक की रक्षा करने के लिए मेवाड़ के राणा संग्रामसिंह का सामना किया।

बहादुरशाह :—दो अन्य अल्पकालिक और अशान्त शासकों के पश्चात् बहादुरशाह गुजरात की गद्दी पर बैठा। वह बहादुर था और उसने अपने राज्य की संघर्षमयी परम्परा को साहस के साथ ज्यो का त्यो रखा। सर्वप्रथम उसने बहमनी सुल्तानो की अव्यवस्थित स्थिति की ओर दृष्टिपात किया और खानदेश तथा बरार को अपने प्रभुत्व में आने के लिये बाध्य किया। तत्पश्चात् उसने मालवा पर आक्रमण किया। माडू को चारो दिशाओं से घेर कर उस पर अधिकार किया। इसके साथ २ रायसिन, भिलसा तथा चन्देरी के दृढ दुर्गों पर भी अपनी विजय-पताका फहराई। (१५३१-३२ ई० में) मालवा गुजरात में सम्मिलित कर लिया गया। द्यू में जो उसकी सेना नियुक्त थी उसने सफलता के साथ पुर्तगीजों के आक्रमणों को विफल कर दिया। १५३४ ई० में उसने मेवाड पर आक्रमण किया। परन्तु हुमायूँ ने, जो उससे असन्तुष्ट था, राजपूतो की रक्षा की। और उसे पहिले मालवा और तत्पश्चात् चम्पानेर, काम्बोद और अन्त में ड्यू में प्राण रक्षा के लिए भागने को बाध्य कर दिया।

इस प्रकार मुगल सम्राट् ने गुजरात पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। किन्तु बहादुरशाह सौभाग्यवान् था। बगाल में शेरशाह के विद्रोह ने हुमायूँ को आगरा लौटने के लिये बाध्य कर दिया। बहादुरशाह ने अवसर से लाभ उठा कर शीघ्र ही खोई हुई शक्ति को पुन. प्राप्त कर लिया, और मुगल अधिकारियों को गुजरात से भगाने में सफलता प्राप्त की। १५३५ ई० में पुर्तगीजों से उसका संघर्ष हुआ, जिसमें वह १५३७ ई० में वीर गति को प्राप्त हुआ।

बहादुरशाह का व्यक्तित्व :—बहादुरशाह एक महान् शासक था। उदारता की दृष्टि से गुजरात के शासको में वह विशेष स्थान रखता है उसकी मृत्यु के पश्चात् गुजरात की शक्ति तीव्र गति से क्षीण होती गई। धक्के तो उसे पहिले ही से लग रहे थे परन्तु रोकने वाला शक्तिशाली बहादुर था। उसके निधन पर ही गुजरात पतनोन्मुख हो गया। किन्तु दुर्बल शासकों और घरेलू संघर्षों के मध्य में भी चालीस

वर्ष तक उसकी स्वतन्त्र सत्ता स्थिर रह सकी। यह इस बात की द्योतक है कि गुजरात के शासन की नींव एक प्रभूत शिला पर रक्खी गई थी जिसको नष्ट होते २ भी लगभग अर्द्ध शताब्दी व्यतीत हो गई। १५७२ ई० में अकबर ने उस पर आधिपत्य स्थापित कर लिया और इसके अन्तिम शासक ने अपनी गद्दी त्याग दी। सिंहासनच्युत शासक ने १५८३ ई० में पुनः विद्रोह कर दिया, परन्तु वह शान्त कर दिया गया। किन्तु १५९२—९३ तक जब तक कि विद्रोही शासक की मृत्यु नहीं हो गई, गुजरात पूर्णतया मुगल आधिपत्य में न आया।

## मालवा

नर्मदा के उत्तर में भारत का बहुत उपजाऊ केन्द्रीय पठार है। जनसाधारण में यह विश्वास प्रचलित है कि यहाँ कभी सूखा नहीं पड़ता। यही मालवा विशेष है। यहाँ बहुत दिनों तक परमार राजपूत शासन करते रहे। धार उनकी राजधानी थी। इल्तुतमिश ने मालवा पर आक्रमण किया और उज्जैन के मन्दिरों को धराशायी किया। किन्तु वह मालवा में मुस्लिम-शासन नहीं स्थापित कर सका। अलाउद्दीन के शासन-काल में मालवा दिल्ली सल्तनत में शामिल हुआ। १३९९ ई० से कुछ पूर्व दिलावरखाँ गोरी यहाँ का शासक था। १४०१ ई० में तैमूर के आक्रमण से उत्पन्न ग्रस्त-व्यस्त परिस्थिति से लाभ उठा कर उसने मालवा को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। हिन्दू नगर धार को उसने अपनी राजधानी बनाया।

होशंगशाह :—उसके सुप्रसिद्ध पुत्र होशंगशाह (१४०१—३४) ने नर्मदा के तट पर होशंगाबाद नगर बसाया, और धार को छोड़कर माण्डू में उसने अपनी राजधानी बदल दी। अनेक इमारतें बनवाकर उसने माण्डू के सौन्दर्य में विशेष वृद्धि की। गुजरात के सुल्तान से उसने अनेक लड़ाइयाँ लड़ीं। अन्त में उसे सन्धि करने के लिये विवश होना पड़ा, उड़ीसा में जाजनगर पर भी उसने आक्रमण किया। उत्तर में जौनपुर और दक्षिण में बहमनी राज्य से भी उसे संघर्ष करना पड़ा। इन संघर्षों में कई अवसरों पर परास्त होने पर भी वह अपनी सत्ता बनाये रहा।

१४३५ ई० में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र सिंहासनारूढ़ हुआ। अपने क्रूर तथा नृशंस व्यवहार से उसने अपने अमात्य मुहम्मद खिलजी को अपना विरोधी बना दिया। मुहम्मद खिलजी ने अपने स्वामी को विष देकर मरवा डाला। तत्पश्चात् ३३ वर्ष तक (१४३६ से १४६९ ई० तक) उसने राज्य किया।

मुहम्मद खिलजी का व्यक्तित्व :—यह एक कट्टर मुसलमान तथा साहसी योद्धा था। मालवा के यवन शासकों में वह सर्वाधिक प्रसिद्ध है। उसके शासन-काल में राज्य का सब से अधिक विस्तार हुआ। गुजरात के निकटवर्ती सुल्तान से अपने पूर्वजों

की भाँति वह भी युद्ध-संलग्न रहा। जौनपुर दक्षिण तथा मेवाड़ के राजपूतों से भी उसने संघर्ष किया।

उत्तराधिकारी :—उसके उत्तराधिकारी गयासुद्दीन ने शान्ति के साथ १५०१ ई० तक शासन किया। उसके पश्चात् उसके पुत्र नासिरुद्दीन ने अल्पकालिक और अशान्तिपूर्ण राज्य का उपभोग किया। कहा जाता है कि अपने पिता को विष देने के पश्चात् वह गद्दी प्राप्त कर सका था।

महमूद खिलजी :—तत्पश्चात महमूद खिलजी (१५११—३१ ई०) में गद्दी पर बैठा। मेदिनीराय की सहायता से उसने अपनी स्थिति सुदृढ बना ली। किन्तु मेदिनीराय की सेना, जो मुस्लिम सरदारों के उपद्रवों को शान्त करने के हेतु बुलाई गई थी, सशक्त होती गई, और अन्त में मेदिनीराय तथा उसकी बलवती सेना को बहिष्कृत करने के लिये महमूद को गुजरात से सुल्तान की सहायता अपेक्षित हुई। तत्पश्चात मेवाड़ के उदीयमान राणा संग्रामसिंह के साथ युद्धक्षेत्र में उसे मुँह की खानी पड़ी। उसने दुर्भाग्यवश गुजरात के उत्तराधिकार के मामले में हस्तक्षेप किया। फलस्वरूप वहाँ के सफल सुल्तान बहादुरशाह ने उसके विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। इस युद्ध में बहादुरशाह ने माण्डू पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। मालवा को अपने राज्य में विलीन कर महमूद को उसके परिवार सहित बन्दी बना चम्पानेर के दुर्ग में १५३१ ई० में निर्वासित कर दिया।

इस प्रकार मालवा गुजरात राज्य का एक अङ्ग हो गया। इसके कुछ कालोपरान्त हुमायूँ ने जब गुजरात पर आक्रमण किया तो उसने १५३५ ई० में मालवा पर भी विजय प्राप्त कर ली। बहादुरशाह माण्डू से बहिष्कृत कर दिया गया। तत्पश्चात् अगले वर्ष ही यहाँ के मुगल शासक ने स्वयं को स्वतन्त्र घोषित करने का प्रयत्न किया। किन्तु जब दिल्ली की सल्तनत शेरशाह सूरी के हाथो में चली गई तो उसने विद्रोही तत्वों का दमन कर देश को दो भागों में विभक्त कर अपने दो विश्वासपात्र नायकों को वहाँ के शासन की बाग-डोर सौंप दी। शुजाखाँ माण्डू का शासक १५५५ तक अपनी मृत्यु पर्य्यन्त प्रायः स्वतन्त्र रूप से ही शासन करता रहा। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र बाजबहादुर ने शासन सम्भाला। १५६१ ई० में अकबर के सेनापति आदमखाँ और पीर मोहम्मद ने क्रूरता के साथ मालवा की भूमि को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। तत्पश्चात् मालवा की स्थिति मुगल सल्तनत के एक सूबे की रह गई। और राजपूत रजवाड़ो पर अंकुश रखने के लिये इसको सल्तनत का अङ्ग बनाना परमावश्यक हो गया।

मेवाड़:—तुर्क सल्तनत के टूटने पर जहाँ अनेकों मुसलिम राज्य स्थापित हुये। वहाँ राजपूताने में मेवाड़ राज्य भी प्रबल हो उठा। अलाउद्दीन खिलजी ने मेवाड़ पर विजय प्राप्त कर इस राज्य को अपने साम्राज्य में विलीन कर लिया था परन्तु अलाउद्दीन खिलजी की शक्ति टूटने पर गुहिलोत वंश की एक उपशाखा के कुमार हमीर ने चितौड़ पर फिर अधिकार कर मेवाड़ की स्वतन्त्रता स्थापित की। इस शाखा के पास सीसोद गांव की जागीर थी अतः हमीर और उसके वंशज सीसोदिया नाम से प्रसिद्ध हुये। १५ वीं शताब्दी में राणा कुम्भा के समय में मेवाड़ की शक्ति बहुत बढ़ गई। राणा कुम्भा ने १४३३ ई० से १४६६ ई० तक राज्य किया। उसने मालवा और गुजरात के सुल्तानों के साथ अनेकों युद्ध किये। मालवा के सुल्तान पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष में उसने चित्तौड़ गढ़ में एक विजय स्तम्भ बनवाया था। राणा कुम्भा ने अनेकों मन्दिर और किले बनवाये। वह एक उच्च कोटि का विद्वान' कवि, नाट्यकार और संगीतज्ञ था।

राणा कुम्भा के उत्तराधिकारियों में राणा सांगा बहुत प्रतापी राजा हुआ। १५०६ ई० में वह मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। उसने अपने निकटवर्ती राजाओं से अनेकों युद्ध किये। उसके शरीर पर घावों के ८० चिन्ह थे। उसकी एक आँख तथा एक पैर भी युद्ध में जाता रहा था उसने मालवा, गुजरात और दिल्ली के लोदी सुल्तानों के साथ सफलतापूर्वक युद्ध किये। इससे उसकी शक्ति इतनी बढ़ गई कि उत्तरी भारत में कोई राज्य उसकी बराबरी न कर सकता था अतः वह लोदी साम्राज्य के टूटने पर राजपूत राज्य स्थापित करने की सोचने लगा।

## खानदेश

नर्मदा के दक्षिण में अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने वाले राज्यों में खानदेश का द्वितीय स्थान था। ताप्ती की घाटी से लेकर पूर्व में यह बरार पर्य्यन्त विस्तृत था। यह दक्षिण मालवा से संलग्न है। हैहय तथा अश्वदेश नामक प्राचीन प्रदेश यही है। इसकी प्राचीन राजधानी नर्मदा के तट पर स्थित महिष्मति या महेश्वर थी। फीरोज तुग़लक ने अपने एक भतीजे तथा अनुयायी मलिकराज फरु'खी को यह सूबा प्रदान कर दिया। परन्तु मलिकराज ने १३९९ ई० में अपनी मृत्यु से पूर्व फिर यहाँ स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली।

नासिरखाँ:—उसके पुत्र नासिरखाँ ने राज्य पर्याप्त वृद्धि की। तथा असीरगढ़ के सुदृढ़ पहाड़ी दुर्ग पर, जो एक हिन्दू अहीर राजा के आधिपत्य में था, शासन जमा लिया। ताप्ती के तट पर उसने बुरहानपुर नामक नगर बसाया। यहीं उसने

अपनी राजधानी स्थापित की। वहमनी तथा गुजरात के सुल्तानों से सघर्ष में वह असफल सिद्ध हुआ।

आदिलखाँ द्वितीय (१४५७—१५०३) :—आदिलखां द्वितीय ने गुजरात के शासन भार को अपने कन्धो से उतार फेंकने के हेतु घोर सघर्ष किया। १५१० ई० में राज्य अराजकता तथा विद्रोहों का आखेट वन गया। गुजरात के मुहम्मदशाह बीगड ने इसे अराजकता से उन्मुक्त किया। तत्पश्चात् गुजरात के सुल्तानों द्वारा सरक्षित और उनकी मित्रता की छत्रछाया में खानदेश उन्नति करता रहा। १५७२ ई० में राजा अली ने अकबर के पुत्र मुराद का साथ दिया, जो उस समय अहमदनगर पर आक्रमण कर रहा था। १५९७ ई० में उसका पुत्र बहादुरशाह गद्दी पर आरूढ़ हुआ। बहादुर ने मूर्खतापूर्वक मुगलो से युद्ध की घोषणा कर दी और स्वय असीरगढ के दुर्ग में जा छिपा। एक दीर्घ घेरे के पश्चात् मुगलो ने इस पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। असीरगढ के पतन के साथ २ खानदेश की स्वतन्त्रता का पतन हो गया।

उत्तरी भारत की रियासतों पर दृष्टिपात :—इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तरी भारत आरम्भ में कई छोटी छोटी परन्तु शक्तिशाली रियासतों में विभक्त था। ये रियासतें पारस्परिक द्वेष तथा ईर्ष्या का ज्वलन्त उदाहरण हैं। ये रियासतें वीरत्व-शून्य न थी किन्तु केन्द्र की कमी थी जैसी हर्ष के बाद थी और जिस प्रकार इस परिस्थिति से लाभ उठाकर दिल्ली सुल्तानो ने एक सुदृढ़ मुसलमान-साम्राज्य स्थापित कर इस कमी को पूरा किया। इसी प्रकार मुगल बादशाहों ने विभाजन तथा केन्द्र रहित भारत से लाभ उठाकर मुगल साम्राज्य का सूत्रपात किया। इस प्रकार इतिहास हमें सचेत करता है कि हम सयोजक शक्तियो का प्रयोग कर विभाजक शक्तियो से भारत की रक्षा करें।

## प्रश्न

१—तुग़लक साम्राज्य के पतन के बाद उत्तरी भारत में कौन स्वतन्त्र रियासतें बनीं ?
२—जौनपुर राज्य का सक्षिप्त इतिहास लिखो।
३—बगाल, मालवा और गुजरात राज्यों का इतिहास वर्णन करो।
४—मेवाड ने किस प्रकार अपनी शक्ति को सगठित किया ?
५—इन स्वतन्त्र राज्यो ने साहित्य व कला की क्या उन्नति की ?

अध्याय ३०

# बहमनी राज्य

बहमनी शब्द की आलोचना :—बहमनी शब्द पर भिन्न २ इतिहासकारों का भिन्न २ मत है। कुछ का मत है कि ब्राह्मणों से बहमनी बना है; कुछ का मत है कि यह बहमन शब्द इस्फन्दयार के पुत्र बहमन से सम्बन्धित है। फ़रिश्ता के मतानुसार बहमनी राज्य का संस्थापक हसन गंगू नामक दिल्ली के एक ब्राह्मण का सेवक था। उसकी ईमानदारी से प्रभावित होकर ब्राह्मण ने हसन की सिफ़ारिश दिल्ली सुल्तान से की, और शनैः शनैः उन्नति करता हुआ वह शक्ति-सम्पन्न हो गया। अपने स्वामी को अमरत्व प्रदान करने के हेतु उसने अपने नाम में गंगू (कंकू) को जोड़ा तथा राज्य को बहमनी राज्य घोषित किया। जहाँ तक फ़रिश्ता के इस रोमांचकारी विवरण के तथ्य का सम्बन्ध है, सम्भव है कि सत्य हो क्योंकि वे समय ही ऐसे थे। कभी कोई गड़रिया सम्राट् बना, कभी सक्का राजा बना, तो यह भी बहुत सम्भव है कि एक मजदूर भी अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर सका हो किन्तु इतिहासकारों का बहुमत इससे पृथक् है। इनके मतानुसार 'बहमन' शब्द इस्फन्दयार के पुत्र 'बहमन' से तथा कंकू (गंगू) बहमन के पिता 'कायको' से सम्बन्धित है। इससे प्रगट होता है कि वह फारिस के सुल्तान बहमनशाह का वंशज था।

बहमनी राज्य की संस्थापना :—मुहम्मद बिन-तुग़लक अपने में ही शासन सत्ता केन्द्रित रखता था। फल यह हुआ कि उसके जीवन काल में असन्तोष की आग दहकने लगी। दक्षिण विशेष रूप से असन्तोष का गृह था। जब उसने अजीज खुम्मार द्वारा कुछ अमीरों का वध करा दिया तो क्षोभ पराकाष्ठा पर पहुँच गया। यहाँ के अमीरों ने एक वृद्ध अमीर इस्माईलमख को अपना सुल्तान चुनकर स्वयं सत्ता स्थापित कर ली मुहम्मद बिन तुग़लक ने आक्रमण कर उन्हें परास्त किया, परन्तु तात्कालिक गुजरात उपद्रवों को शान्त करने के हेतु अस्त-व्यस्त अवस्था में ही दक्षिण को छोड़ उसे गुजरात जाना पड़ा। इसी बीच में इस्माईलमख ने प्रमुख षड्यन्त्रकारी हसन के लिए अपना राजपद त्याग दिया। उथल-पुथल के दिनों में सिंहासन संभालने में पर्याप्त दक्ष, हसन ने १३४७ ई० में दौलताबाद का सिंहासन हस्तगत किया। सौभाग्यवश चार वर्ष अनन्तर मुहम्मद तुगलक के निधन पर फीरोज दिल्ली का सुल्तान हुआ। वह अपने निकटवर्ती उपद्रवों को शान्त करने में इतना उलझा रहा कि जीवन पर्यन्त दक्षिण की ओर दृष्टिपात करने का उसे अवकाश ही न मिला,

भौर हसन ने समय का सदुपयोग करते हुए अपनी सल्तनत की नीव सुदृढ की। उसने गुलबर्गा अपनी राजधानी बनाई।

**सीमा** :—हसन ने अनेक हिन्दू और मुसलमान सुल्तानो को परास्त कर राज-कर देने को बाध्य किया। उसने गोआ, दभोल, कोल्हापुर तथा तैलिंगाना जीत लिये। हसन बहमनशाह की मृत्यु के समय राज्य सीमा दौलताबाद के पूर्व से वर्तमान हैदराबाद-स्थित भैरंगिरि तक तथा उत्तर में बेंगडा से दक्षिण में कृष्ण नदी तक विस्तृत थी।

**हसन की मृत्यु** :—सन् १३५६ ई० में स्वास्थ्य बिगडने के कारण हसन इस संसार से चल बसा। मरने से पूर्व उसने अपने पुत्र मुहम्मद को उत्तराधिकारी घोषित किया। अपने सब अमीरो तथा फौजी अफसरो को बुलाकर मुहम्मद के प्रति स्वामि-भक्ति की सद्भावनायें बनाये रखने का उसने आदेश दिया।

**हसन का शासन** :—सुल्तान अलाउद्दीनशाह न्यायप्रिय सुल्तान था। उसने पवित्रता के साथ जनता को समृद्धिशाली बनाया। उसने अपने राज्य को चार सूबो में विभक्त किया। गुलबर्गा, दौलताबाद, बरार तथा बीदर, ये चार सूबे थे। प्रत्येक सूबे में एक शासक था जो असीम शक्तियो का उपयोग करता था। इन सूबेदारों की शक्ति कही अराजकता में परिणत न हो जाये इस विचार से उनका निरीक्षण किया करता था।

**मुहम्मदशाह प्रथम (१३५६—७५ ई०)** :—सिंहासनारूढ के उपलक्ष में अतुल धनराशि व्यय करके मुहम्मदशाह ने सर्वप्रथम सैन्य सगठन का कार्य सम्पन्न किया। विजयनगर, तैलिंगाना, वारंगल इत्यादि से वह आजीवन युद्ध में संलग्न रहा। वारंगल पर आक्रमण कर उसने कृष्णदेव के पुत्र विनायकदेव को परास्त कर गोलकुण्डा प्राप्त किया तथा एक बहुमूल्य रत्न-जटित सिंहासन भी उसकी भेंट किया गया। युद्ध का तात्कालिक कारण विनायक देव का सुल्तान के लिए प्रेषित घोडों पर अधिकार कर लेना था। तत्पश्चात् विजयनगर पर आक्रमण किया गया। राय ३०००० घोडे, १००००० पैदल तथा ३०० हाथी लेकर कृष्णा तथा तुङ्गभद्रा के मध्यस्थ भूमि पर आ डटा। उसने मुद्गल दुर्ग को जीतकर मुस्लिम घेरे को अस्त-व्यस्त कर दिया। सुल्तान ने यह सुनकर, १५ हजार घोडे, ५० हजार पैदल तथा तोप बन्दूकों के सहित स्वयं सैन्य-सचालन किया। हिन्दू परास्त हुए। किन्तु विजय-नगर की दुर्ग स्थिति इतनी दृढ थी कि सुल्तान कई दिन में भी उस पर अधिकार न कर सका। अन्त में चाल चलकर उसने अपनी सेना को पीछे हटाया। उसकी सेना को रणभूमि में पराङ्मुख देख हिन्दू पीछे दौडे और बुरी भांति शत्रु के चंगुल में

फँस गये। राय भाग निकला किन्तु अन्य फौजी अफसर, निरीह जनता तथा बालवृद्ध, स्त्री-मनुष्य नृशंसता के साथ मौत के घाट उतारे गये।

मुहम्मदशाह की मृत्यु :—१७ वर्ष ७ माह शासन करके मुहम्मद इस संसार से चल बसा। उसके प्रारम्भ के कुछ वर्ष तो शान्ति से व्यतीत हुये, अन्यथा उसका समस्त जीवन रक्तरंजित ही रहा।

मुहम्मदशाह का व्यक्तित्व तथा शासन :—वह बहुत ही सजग तथा नियम का पक्का था। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय दोनों शासनों का उसने पुनः संगठन किया। वैसे वह बड़ा निर्दयी, नृशंस तथा कट्टर मुसलमान था। निर्दोष हिन्दू जनता का पाशविक वध इसका ज्वलन्त उदाहरण है। वकील, वजीर, पेशवा, कोतवाल, सदरेजहाँ, अर्थमन्त्री, पर राष्ट्र विभाग के वजीर तथा नाजिर, इन आठ वजीरों का उसने एक मन्त्रि-मण्डल बनाया। मिश्र के खलीफा से सुल्तान ने अपने लिए 'दक्खिन के बादशाह' का मान्यता-पत्र भी प्राप्त किया था।

मुजाहिदशाह (१३७३—६७) :—मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र मुजाहिदशाह चार वर्ष के अल्पकाल के लिए सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने गद्दी पर बैठते ही विजयनगर के राजा बुक्कराय को पराजित कर उसे दोआब के क्षेत्र से निकाल दिया। किन्तु सुल्तान के चचा ने, जिसको उसकी कर्तव्य-विमुखता पर सुल्तान ने कभी बुरा भला कहा था, उसका वध कर दिया।

कमजोर उत्तराधिकारी :—सुल्तान की मृत्यु के पश्चात् उसकी बहिन ने हसनकांगू के पुत्र मुहम्मदशाह को सिंहासनारूढ़ कराया। वह अत्यन्त शान्तिप्रिय सुल्तान था। काव्य और दर्शन में विशेष रुचि रखने के कारण वह प्रजा में द्वितीय अरस्तू के नाम से प्रसिद्ध हुआ। १३६७ ई० में ज्वर से इस सुल्तान का देहान्त हो गया। उसके पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र गयासउद्दीन सिंहासनारूढ़ हुआ। किन्तु वह बड़ा विलासप्रिय एवं दुर्व्यसनों में लिप्त सुल्तान था। उसका शासनकाल अराजकता एवं शाही महल के उपद्रवों का काल रहा। एक तुर्की गुलाम लालचिन की कन्या अतीव सुन्दर थी उस पर मुग्ध होकर सुल्तान सौंदर्य-जाल में इतना फँसता गया कि उसे हरम में प्रविष्ट करने को उतारू हो गया। लालचिन ने मोह में फँसाकर सुल्तान की आँखें फोड़ दीं। तत्पश्चात् उसका भाई शम्सउद्दीन गद्दी पर बैठा। किन्तु सुल्तान की दो शहजादियों ने, जिनका विवाह दाऊद के दो पुत्र फीरोज तथा अहमद से सम्पन्न हुआ था, शम्सउद्दीन को सिंहासन से च्युत कराने में सफल सहायता प्रदान की। शम्सउद्दीन को अंधा कर तथा लालचिन का वध कर फीरोजशाह बहमनी के नाम से नवम्बर १३६७ ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ।

**फीरोजशाह (१३६७—१४२२) :**—फीरोजशाह बहमनी एक वीर सिपाही था। कहा जाता है कि उसने अपने २५ वर्ष के शासनकाल में २४ युद्ध किये। तैलिंगाना के अधिकाश भाग पर उसका आधिपत्य हो गया उसकी लड़ाइयों में दो लड़ाइयाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। १३६८ ई० में विजयनगर के राजकुमार बुक्का ने मुद्गल दुर्ग जीतने की लालसा से इतना आकस्मिक आक्रमण किया कि फीरोजशाह किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गया। किन्तु एक काजी ने आगे बढ कर प्रण किया कि वह राजकुमार का वध करेगा। काजी ने चाल चलकर भंडेले का रूप धर छावनी की एक नर्तकी से मैत्री स्थापित की, और नाच गाने के प्रदर्शन में काजी ने बुक्का की छाती में छुरी पैरा दी। छावनी में अराजकता तथा अस्त-व्यस्तता फैल गई। समय से लाभ उठा कर फीरोज ने कृष्णा पार कर वृद्ध हरिहर को, अमूल्य भेंट देने को, बाध्य किया। विजयनगर तथा बहमनी राज्य में दूसरा युद्ध एक सुनार की सुन्दरी को लेकर हुआ। इसका नाम निहाल था। निहाल के सौंदर्य ने विजयनगर के उत्तराधिकारी देवराय को अपनी ओर आकृष्ट किया। निहाल बहमनी राज्य में उत्पन्न हुई थी। अब वह दोनों राज्यों में रार की पिंदिया बनी। फलस्वरूप युद्ध छिडा। राय की हार हुई। अतुल धनराशि देकर उसने शान्ति क्रय की।

**फीरोज की पराजय :**—१४२० ई० के लगभग फीरोज ने वारंगल के सीमास्थ पागल के सुदृढ दुर्ग पर आक्रमण किया। वारंगल के प्रमुख ने विजयनगर के राय द्वितीय से मिलकर आक्रमण को विफल कर सुल्तानी सेना को अस्त-व्यस्त कर दिया। कहा जाता है कि स्थिति ऐसी विषम हो गई थी कि यदि फीरोज का भाई अहमद उसे गद्दी छोड़ने को उद्यत न करता तो देवराय समस्त दोआब पर अधिकार कर लेता। सेना ने अहमद को अपना सुल्तान मान लिया।

**फीरोज की मृत्यु :**—गद्दी त्यागने के कुछ ही कालोपरात फीरोज की मृत्यु हो गई। फीरोज का बड़ा बेटा हसनशाह शासन भार संभालने में अयोग्य था। उस समय शासन-व्यवस्था सभालने के लिए योद्धा होना परमावश्यक था। हसन योद्धा नहीं, प्रेमी था। निहाल के रूप-जाल में फस उसका हाल वेहाल होगया। अमीरों ने अहमदखाँ को ही गद्दी पर बैठा दिया।

**फीरोज के कार्य :**—फीरोज हमारे सम्मुख एक वीर योद्धा के रूप में आता है। साथ ही साथ यह महान् निर्माता भी था। गुलबर्गा से कुछ हट कर उसने एक नवीन नगर की नींव डाली। यह नगर फीरोज़ाबाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। भव्य-भवनों का निर्माण कर इसके सौन्दर्य में चार चाद लगाए। इन निर्मित भवनों में वहाँ की महान् मसजिद का स्थान प्रमुख है जो लम्बी मीनारों को उठा कर आज भी उसके यशगान गा रही है।

अहमदशाह (१४२२—३५) :—गद्दी पर बैठते ही भाई फीरोज की पराजय का प्रतिशोध, विजयनगर से लिया। प्रदेश को निर्दयतापूर्वक लूटा, २० हजार निरीह अबलाओं तथा के घाट उतारा। बड़ा भारी जश्न मनाया गया और अहमद ने वली प्राप्त की। अन्त में सुल्तानी शर्तों पर संधि होगई। तत्पश्चात् अह दृष्टि डाली। उसने हिन्दू शासन को नष्ट कर अपनी सल्तनत में शासनकाल में एक बार केवल उसे गुजरात के सुल्तान के सम्मुख परा उसने उत्तरी सीमा की रक्षा के हेतु गाविलगढ तथा नरताल के पहाड़ी निर्माण कराया। अपनी राजधानी गुलबर्गा से बीदर को बदली। हिन्दू शान्त करने के लिए तैलंगाना पर आक्रमण अहमद का अन्तिम प्रयास था। उसने अपने उत्तराधिकारी जफरखाँ को शासन-दायित्व सौंप कर गद्दी का किया, तथा १४३५ ई० में रुग्णावस्था में संसार से कूच किया।

अहमद का व्यक्तित्व:—अहमद कट्टर एवं निर्दयी मुसलमान था। धर्म में अन्धविश्वासी था कि हिन्दुओं के प्रति सहिष्णुता तो उसमें नाममात्र को भी नहीं फारिस के एक सन्त से प्रभावित होकर उसने शिया मत अन्गीकार कर लिया। शेख अजरी को 'वहमननामा' बनाने के उपलक्ष में उसने ७००००० टनका प्रदान कि तथा २५००० टनका आने जाने के व्यय-स्वरूप और भेंट किये।

अलाउद्दीन द्वितीय (१४३५—१४४७) :—१४३५ ई० में अहमद के ज्येष्ट पुत्र जफ़रखाँ अलाउद्दीन के नाम से गद्दी पर बैठा। शासन के प्रारम्भिक काल में अलाउद्दीन न्यायप्रिय तथा साहसी सुल्तान की भाँति कार्य वाहन करता रहा; किन्तु अन्त में भोगविलास का आखेट बन गया। उसने अपने भाई महमूद के प्रति इतना ढीला वर्ताव किया कि वह विजयनगर के शासक से मिलकर सुल्तान को ही निर्मूल करने लगा। सुल्तान ने उसे परास्त किया तथा उसके दोष को क्षमा करके उसे रायचूर की जागीर प्रदान कर दी। तत्पश्चात् उसे अपनी मलिका के उपद्रव का भी सामना करना पड़ा। मलिका के रुष्ट होने का कारण सुल्तान का कोंकन के नवाब की दुहिता से प्रेम करना था।

खान देश के शासक नासिरखाँ ने गुजरात के सुल्तान तथा दक्षिण के कुछ अमीरों की सहायता से बरार पर आक्रमण किया। अलाउद्दीन ने इस पर भी विजय प्राप्त की। इस विजय के उपलक्ष में विजयी सेनापति मलिक-उल-तुगर को, जो विदेशी था, उपाधियों से विभूषित किया गया। इस पर शिया तथा सुन्नियों (विदेशी

तथा दक्षिणवासी) के बीच आन्तरिक सघर्ष उठ खडा हुआ। परिणाम यह हुआ कि दक्षिण में मुस्लिम राज्य की एकता भग हो गई।

अलाउद्दीन का सबसे अन्तिम कृत्य अपने भतीजे सिकन्दरखाँ के नेतृत्व में होने वाले विद्रोह को शान्त करना था। इसी बीच विजयनगर से भी इसका सघर्ष चल रहा था। विजयनगर के राजा ने इस बार कुछ श्रेष्ठतर सेना का सगठन किया था–विदेशी मुसलमान, घुडसवार, तीरदाज उसकी सेना में सम्मिलित थे। परिणाम यह हुआ, कि उसने रायचूर दोआब पर आक्रमण कर मुद्गल पर आधिपत्य स्थापित कर लिया, तथा बीजापुर के प्रदेश पर आतक छा दिया। किन्तु अन्त में हिन्दुओ को ही इस बार भी शान्ति का प्रस्ताव भेजना पडा।

अलाउद्दीन की मृत्यु —सन् १४५७ ई० में रक्तपात का जीवन समाप्त हुआ, और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ट पुत्र हुमायूँ अपने कनिष्ठ भ्राता हसन को, जिसे अमीरो ने गद्दी पर बिठा दिया था, आसानी से गद्दी से उतार कर, सिंहासनारूढ हुआ। यही से बहमनी राज्य का ह्रास प्रारम्भ होता है।

हुमायूँ (१४५७—६०) —अलाउद्दीन के निधन पर आरूढ हुआ। एक इतिहासकार के शब्दों में 'उसका क्रोध हिन्दू और मुसलमान किसी को भी नही छोडता था। दोषी तथा निर्दोषी दोनो ही उसके क्रोध की चक्की में पिसते थे। वह एक के दोष करने पर समस्त परिवार को मौत के घाट उतार देता था।' अत उसके निधन पर प्रजा में जश्न मनाये गये।

निजामशाह (१४६१ ६३) —हुमायू की मृत्यु के पश्चात् उसका नववर्षीय पुत्र निजामशाह मलिका की देखरेख में सिंहासनारूढ हुआ। मलिका ने योग्यता के साथ सिंहासन-भार वहन किया। हुमायूँ के शासन-काल में ही सल्तनत को एक बडा योग्य मन्त्री ख्वाजा मुहम्मदगावा प्राप्त हो गया था। अत उसकी सच्ची लगन तथा अपनी योग्यता से मलिका ने अपने पति हुमायूँ की कालिमा पोछने का भरसक प्रयत्न किया। दुर्भाग्यवश १४६३ ई० में बाल सुल्तान की हृदयगति बन्द होन से मृत्यु हो गई।

मुहम्मदशाह तृतीय (१४६३ ८२) —निजामशाह की मृत्यु के पश्चात् उसका कनिष्ट भ्राता मुहम्मदशाह तृतीय गद्दी पर बैठा। उसके शासन-काल में पतनोन्मुख बहमनी राज्य ने पुन आँखें खोली। किन्तु इन सब उन्नतियो का श्रेय सुयोग्य मलिका तथा अध्यवसायी ख्वाजा गावा को ही है। विजयनगर से युद्ध करके बेलगाँव तथा गोआ पर पुन आधिपत्य स्थापित किया गया। लूट की दृष्टि से काञ्जीवरम पर आक्रमण किया गया। किन्तु इस अभागे सुल्तान ने अपने स्वामिभक्त

अहमदशाह (१४२२—३५) :—गद्दी पर बैठते ही अहमदशाह ने अपने भाई फीरोज की पराजय का प्रतिशोध, विजयनगर से लिया। राजधानी के समीपवर्ती प्रदेश को निर्दयतापूर्वक लूटा, २० हज़ार निरीह अबलाओं तथा आबाल वृद्धों को मौत के घाट उतारा। बड़ा भारी जश्न मनाया गया और अहमद ने वली (संत) की उपाधि प्राप्त की। अन्त में सुल्तानी शर्तों पर संधि होगई। तत्पश्चात् अहमद ने वारंगल पर दृष्टि डाली। उसने हिन्दू शासन को नष्ट कर अपनी सल्तनत में वृद्धि की। अपने शासनकाल में एक बार केवल उसे गुजरात के सुल्तान के सम्मुख पराङ्मुख होना पड़ा। उसने उत्तरी सीमा की रक्षा के हेतु गाविलगढ तथा नरताल के पहाड़ी दुर्गों का पुनः निर्माण कराया। अपनी राजधानी गुलबर्गा से बीदर को बदली। हिन्दू अराजकता को शान्त करने के लिए तैलगाना पर आक्रमण अहमद का अन्तिम प्रयास था। तत्पश्चात् उसने अपने उत्तराधिकारी ज़फ़रखाँ को शासन-दायित्व सौंप कर गद्दी का परित्याग किया, तथा १४३५ ई० में रुग्णावस्था में संसार से कूच किया।

अहमद का व्यक्तित्व:—अहमद कट्टर एवं निर्दयी मुसलमान था। धर्म में इतना अन्धविश्वासी था कि हिन्दुओं के प्रति सहिष्णुता तो उसमें नाममात्र को भी नहीं थी। फारिस के एक सन्त से प्रभावित होकर उसने शिया मत अंगीकार कर लिया था। शेख अजरी को 'बहमननामा' बनाने के उपलक्ष में उसने ७००००० टनका प्रदान किये तथा २५००० टनका आने जाने के व्यय-स्वरूप और भेंट किये।

अलाउद्दीन द्वितीय (१४३५—१४४७) :—१४३५ ई० में अहमद के ज्येष्ट पुत्र ज़फ़रखाँ अलाउद्दीन के नाम से गद्दी पर बैठा। शासन के प्रारम्भिक काल में अलाउद्दीन न्यायप्रिय तथा साहसी सुल्तान की भाँति कार्य वाहन करता रहा; किन्तु अन्त में भोगविलास का आखेट बन गया। उसने अपने भाई महमूद के प्रति इतना ढीला वर्ताव किया कि वह विजयनगर के शासक से मिलकर सुल्तान को ही निर्मूल करने लगा। सुल्तान ने उसे परास्त किया तथा उसके दोष को क्षमा करके उसे रायचूर की जागीर प्रदान कर दी। तत्पश्चात् उसे अपनी मलिका के उपद्रव का भी सामना करना पड़ा। मलिका के रुष्ट होने का कारण सुल्तान का कोंकन के नवाब की दुहिता से प्रेम करना था।

खान देश के शासक नासिरखाँ ने गुजरात के सुल्तान तथा दक्षिण के कुछ अमीरों की सहायता से बरार पर आक्रमण किया। अलाउद्दीन ने इस पर भी विजय प्राप्त की। इस विजय के उपलक्ष में विजयी सेनापति मलिक-उल-तुग़र को, जो विदेशी था, उपाधियों से विभूषित किया गया। इस पर शिया तथा सुन्नियों (विदेशी

तथा दक्षिणवासी) के बीच आन्तरिक सघर्ष उठ खडा हुआ। परिणाम यह हुआ कि दक्षिण में मुस्लिम राज्य की एकता भग हो गई।

अलाउद्दीन का सबसे अन्तिम कृत्य अपने भतीजे सिकन्दरखाँ के नेतृत्व में होने वाले विद्रोह को शान्त करना था। इसी बीच विजयनगर से भी इसका सघर्ष चल रहा था। विजयनगर के राजा ने इस बार कुछ श्रेष्ठतर सेना का सगठन किया था–विदेशी मुसलमान, घुडसवार, तीरंदाज उसकी सेना में सम्मिलित थे। परिणाम यह हुआ, कि उसने रायचूर दोआब पर आक्रमण कर मुद्गल पर आधिपत्य स्थापित कर लिया, तथा बीजापुर के प्रदेश पर आतंक छा दिया। किन्तु अन्त में हिन्दुओ को ही इस बार भी शान्ति का प्रस्ताव भेजना पडा।

अलाउद्दीन की मृत्यु:—सन् १४५७ ई० में रक्तपात का जीवन समाप्त हुआ, और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ट पुत्र हुमायूँ अपने कनिष्ठ भ्राता हसन को, जिसे अमीगे ने गद्दी पर बिठा दिया था, आसानी से गद्दी से उतार कर, सिंहासनारूढ हुआ। यही से बहमनी राज्य का ह्रास प्रारम्भ होता है।

हुमायूँ (१४५७—६०):—अलाउद्दीन के निधन पर आरूढ हुआ। एक इतिहासकार के शब्दो में 'उसका क्रोध हिन्दू और मुसलमान किसी को भी नही छोडता था। दोषी तथा निर्दोषी दोनो ही उसके क्रोध की चक्की में पिसते थे। वह एक के दोष करने पर समस्त परिवार को मौत के घाट उतार देता था।' अत उसके निधन पर प्रजा में जश्न मनाये गये।

निजामशाह (१४६१-६३):—हुमायू की मृत्यु के पश्चात् उसका नववर्षीय पुत्र निजामशाह मलिका की देखरेख में सिंहासनारूढ हुआ। मलिका ने योग्यता के साथ सिंहासन-भार वहन किया। हुमायूँ के शासन-काल में ही सल्तनत को एक बडा योग्य मन्त्री ख्वाजा मुहम्मदगावा प्राप्त हो गया था। अत उसकी सच्ची लगन तथा अपनी योग्यता से मलिका ने अपने पति हुमायूँ की कालिमा पोछने का भरसक प्रयत्न किया। दुर्भाग्यवश १४६३ ई० में बाल सुल्तान की हृदयगति बन्द होने से मृत्यु हो गई।

मुहम्मदशाह तृतीय (१४६३-८२):—निजामशाह की मृत्यु के पश्चात् उसका कनिष्ट भ्राता मुहम्मदशाह तृतीय गद्दी पर बैठा। उसके शासन-काल में पतनोन्मुख बहमनी राज्य ने पुन आँखें खोली। किन्तु इन सब उन्नतियो का श्रेय सुयोग्य मलिका तथा अध्यवसायी ख्वाजा गावा को ही है। विजयनगर से युद्ध करके बेलगाँव तथा गोआ पर पुन आधिपत्य स्थापित किया गया। लूट की दृष्टि से काजीवरम पर आक्रमण किया गया। किन्तु इस अभागे सुल्तान ने अपने स्वामिभक्त

तथा शुभचिंतक वजीर का वध करवा दिया जिससे बहमनी राज्य गर्त में डूबने के लिये केवल एक धक्के की प्रतीक्षा करने लगा। कोन्दपल्ली में हिन्दू मन्दिर नष्ट कर उसके वृद्ध ब्राह्मण पुजारी की हत्या भी जनता में अशुभसूचक मानी गई।

महमूदशाह (१४८२-१५१८) :—मुहम्मदशाह तृतीय के पश्चात् उसका बारह-वर्षीय पुत्र महमूदशाह गद्दी पर बैठा। वह इतना भोगविलास में लिप्त हुआ कि दीन-दुनिया का कुछ भी ध्यान न रहा। परिणाम यह हुआ कि प्रान्तीय गवर्नर अपनी २ स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने में व्यस्त हो गये। यूसुफ आदिलशाह सर्वप्रथम गवर्नर था जिसने बीजापुर में अपनी स्वतन्त्रता घोषित की। उसका अनुसरण दौलताबाद के शासक मलिक अहमद ने किया। बरार में इमादुल्मुल्क ने अपना स्वतन्त्र सिक्का चलाया। इस प्रकार १४९० ई० में अहमदनगर बीजापुर तथा बरार के सूबेदारों ने अपनी अपनी स्वाधीन सत्ता स्थापित करली। तैलंगाना के शासक कुतुब-उल-मुल्क ने गोलकुण्डा में कुतुबशाही वंश की स्थापना की। बहमनी वंश के पास अब केवल बीदर शेष रहा। वह भी अमीर बारिद जैसे निर्दयी के मन्त्रित्व में था, जिसने सुल्तान को हर एक वस्तु के लिये परमुखापेक्षी बना दिया था। १५१८ ई० में महमूदशाह की मृत्यु के पश्चात् तीन और शासक हुये। अन्तिम शाह कलीमुल्लाहशाह था, जो सन् १५२४ में गद्दी पर बैठा। कलीमुल्लाह को गद्दी से उतार कर कासिम बारिद के एक कुटुम्बी ने सिंहासन पर अधिकार जमा लिया। इस प्रकार १७९ वर्ष पर्यन्त शासन कर बहमनी राज्य १५२६ ई० में अधोगति को प्राप्त हुआ।

१५२६ ई० में बहमनी राज्य नष्ट होकर पांच स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त हो गया।

१. बरार में इमादशाही राज्य
२. अहमदनगर में निजामशाही राज्य
३. बीजापुर में आदिलशाही राज्य
४. गोलकुण्डा में कुतुबशाही राज्य
तथा ५. बीदर में बारिदशाही राज्य।

बहमनी राज्य पर दृष्टिपात :—१३४७ ई० से १५२६ ई० तक के १७९ वर्षीय बहमनी राज्य में १४ सुल्तान हुये। जिनमें से अधिकतर विलासप्रिय सुल्तान तो अधोगति काल में हुए और कट्टर तथा अन्धविश्वासी एवं मद्यप इस राज्य के उत्कर्ष काल में हुये। रक्तपिपासु तथा स्त्रीगामी सुल्तान इतने लम्बे काल में कोई विशेष चिरस्मरणीय वस्तु इतिहास को प्रदान न कर गये। डा० स्मिथ का यह कथन, कि 'इस वंश की भारत को क्या देन है या किस रूप में भारत को उससे लाभ हुआ ठीक ठीक

बताना कठिन है," अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है। तत्कालीन दक्षिणी इतिहास षड्यन्त्रों और उपद्रवों की कथन कहानी है। जनता के साथ क्रूरता असीम अत्याचार, प्रतिहिंसा, प्रतिशोध का बर्ताव होता था। निरीह तथा निर्दोष जनता के रक्तरंजित गारे पर बहमनी राज्य की नींव डाली गई। हिन्दुओं के रक्त से बहमनी सल्तनत के दुर्गों पर प्लास्टर किया गया था। निहत्थी जनता को सामूहिक रूप से मौत के घाट उतारा जाता था। स्त्रियों पर अमानुषिक अत्याचार किये जाते थे।

शाहीमहल के षड्यन्त्र, प्रान्तीय गवर्नरों की क्रांतियाँ, साम्प्रदायिक झगड़े तथ अन्य २ अमानुषिक कृत्यों से दक्षिणी इतिहास के पन्ने रंगे पड़े हैं। किन्तु दक्षिण के उस कालिमा-पूर्ण राजनीतिक क्षितिज से प्रकाश-रश्मियां भी झाँकती हैं। बहमनी वंश के संस्थापक की योग्यता और क्षमता से कौन प्रभावित न होगा? क्या अभागे महमूद गवन (गावां) की बुद्धिमता से परिपूर्ण भूमि-कर की व्यवस्था मरुस्थल में नखलिस्तान से कुछ कम महत्व रखती है? जहां तक शिक्षा का सम्बन्ध है, लगभग प्रत्येक गाँव या कस्बे में एक मुल्ला मस्जिद में रहता था तथा शिक्षण कार्य भी चलाता था। प्रमुख नगरों में मकतब खोले गये थे। फारसी तथा अरबी पढ़ने वालों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाती थी। सिंचाई के लिय उसके बनाये हुये कितने ही जलाशय आज भी दृष्टि-गोचर होते हैं।

किन्तु जन-साधारण का जीवन सुखमय न था। किसानों पर अत्याचार करने में एक, किन्तु रणक्षेत्र में अव्वल दर्जे की निकम्मी सेना भूमि-कर के भरोसे पर रखी जाती थी। दक्षिण की स्थिति कितनी दयनीय थी। काफिरों पर जजिया लगा दिया जाता था। जजिया से उन्मुक्त होने का एक मात्र साधन इस्लाम धर्म का अंगीकार करना था।

शिक्षा-सम्बन्धी प्रोत्साहन मुल्लाओं को था पंडितों को नहीं। हिन्दू अपनी संस्कृति को प्राणों का मूल्य देकर बचाते थे। पंडित दमन नीति से भयभीत होकर सुदूर ग्रामों में शरण लेते थे महमूद गावान ने शिक्षा-सम्बन्धी सुधार अवश्य किये, किन्तु वे सब थे मुसलमानों के ही लिये।

हाँ, दक्षिण के सुल्तान महान् निर्माता थे। गाविलगढ़ तथा नरनाल के पर्वती दुर्ग आज भी श्रेष्ठता की दृष्टि से भव्य तथा सुदृढ़ गढ़ माने जाते हैं। औसा तथा परेंदा के दुर्ग सैनिक दृष्टि से अपना विशेष महत्व रखते हैं। बीदर में महमूद गावान का निर्मित मकतब तथा गुलबर्गा की जामा-मस्जिद फारिस की ललित कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है। मुहम्मद कासिम उपनाम फरिश्ता इसी काल की देन है। फीरोज शाह का ८०० वीरांगनाओं तथा ३०० अपनी विवाहिता स्त्रियों से सम्पर्क विलासिता

की पराकाष्ठा का द्योतक है। किन्तु कहा जाता है कि फीरोज अपनी ३०० विभिन्न जाति तथा प्रान्त की स्त्रियों से उनकी ही मातृ-भाषा में वार्तालाप करता था, यह उसके प्रकाण्ड पाण्डित्य का भी द्योतक है।

### प्रश्न

१—बहमनी वंश की स्थापना किस प्रकार हुई ?
२—बहमनी वंश में कौन कौन २ मुख्य शासक हुये ?
३—बहमनी वंश के शासन का मूल्यांकन करो।
४—मुहम्मद गावान पर एक टिप्पणी लिखो।

## अध्याय ३१

# विजयनगर का राज्य

स्थापना:—अलाउद्दीन के शासन-काल से पूर्व मुस्लिम प्रभुत्व दक्षिणी भारत में न पहुँच सका। अलाउद्दीन के वीर सेनानी मलिक काफूर ने अति भयावने आक्रमण कर दक्षिण में हिन्दू राज्य की जड़ें हिला दी। इसमें दक्षिण की हिन्दू जनता आतंकित हो गई। आगे चल कर मुहम्मद तुगलक ने हिन्दू राज्यों का सर्वथा उन्मूलन कर, उनके हृदयों में मुसलमानों के प्रति बुरी-से-बुरी भावना जाग्रत कर दी। हिन्दू संस्कृति, हिन्दू प्रभुत्व, तथा हिन्दू सभ्यता बुरी भाँति नष्ट-भ्रष्ट कर डाली गई। इस महान् धार्मिक संकट से दक्षिणी भारत में त्राहि २ मच गई।

संगम नामक व्यक्ति के पाँच पुत्र इस आपत्काल की देन हैं। उन्होंने हिन्दू संस्कृति की रक्षा की। वे अदम्य साहसी, अपूर्व प्रतिभाशाली एवं अध्यवसायी वीर थे। हरिहर, बुक्का तथा उनके अन्य तीन भाइयों ने १३३६ ई० में तुङ्गभद्रा नदी को पार कर एक नवीन नगर की नींव डाली। यही नगर विजयनगर के नाम से प्रख्यात हुआ। इस नगर की स्थिति अत्यन्त सुरक्षित थी। एक अभिलेख के शब्दों में—"हेमकूट इसके परकोटे तथा तुङ्गभद्रा इसके लिये खाई का काम देती थी। इसका रक्षक विश्व-रक्षक राजा हरिहर था।"

उसी हिन्दू अधोगति-काल में गुरु माधव (विद्यारण्य) दक्षिण में हिन्दू संस्कृति तथा धर्म को सुरक्षित रखने में प्रयत्नशील थे। मुसलमानों का कृष्णा नदी के दक्षिण की ओर अग्रसर होना हिन्दू संस्कृति के विनाश का प्रतीक समझ कर विजयनगर के संस्थापकों से मिल उन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षा की। विजयनगर राज्य की स्थापना का उद्देश्य दक्षिण में मुसलमानों के प्रवेश और विस्तार को रोकना ही नहीं था वरन्

विदेशियों के आक्रमण से हिन्दू संस्कृति तथा धर्म की रक्षा करना भी था। सन् १३४३ ई० में हरिहर का स्वर्गवास हो गया। तत्पश्चात् उसका भाई बुक्काराय नवस्थापित राज्य को सुसंगठित करने के लिए सलग्न हुआ। बुक्काराय धर्म-सहिष्णु था। उसने माधवाचार्य तथा सायण के नेतृत्व में विद्वानों की एक संस्था नियुक्त की। उपनिषदों पर खोज की गई। वैष्णव तथा जैन-धर्म में सामञ्जस्य करने की चेष्टा की गई। दक्षिण के अधिकाश राजाओ ने बुक्का का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। परिणाम यह हुआ कि विजयनगर राज्य की सीमा सागर से सागर तक बढाने में बुक्का को अधिक कठिनाइयों का सामना न करना पड़ा। किन्तु जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, बहमनी सल्तनत की उत्तर में स्थापना विजयनगर राज्य के लिये सदा सघर्षमयी सिद्ध हुई। रायचूर के सम्पन्न तथा उपजाऊ दोआब इन दोनो नवस्थापित राज्यो के लिए विष-बीज था।

बुक्का के पुत्र राजकुमार काम्पन ने काजीवरम के समीपस्थ प्रदेश के शासकों को अपनी अधीनता में कर लिया। उसने मदुरा के सुल्तान की सत्ता का सर्वनाश भी कर दिया। सौभाग्य से अन्तिम होयसाल नरेश वीर बल्लाल मदुरा के मुसलमानों से युद्ध करता हुआ परमधाम को सिधारा। उसके उत्तराधिकारी भी क्षीण हुए और निर्बल होने के कारण शीघ्र ही लुप्त हो गए। इस होयसाल राज्य के खडहरों की नीव पर ही सगम के पुत्र पाँचो भाइयों ने स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर होयसालों की धरोहर को संभाला। आगे चलकर काम्पन ने श्री रंगम और मदुरा के महान् मन्दिरो में पुनः प्राण-प्रतिष्ठा की तथा तामिल देश में हिन्दू धर्म का प्रारम्भिक रूप पुनः स्थापित किया।

हरिहर द्वितीय (१३७६—१४०४):—१३७६ ई० में बुक्का की मृत्यु हुई। उसके बाद हरिहर द्वितीय सिंहासनारूढ हुआ। यही सर्वप्रथम राजा था जिसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। यद्यपि हरिहर तथा बुक्का ने सहन-शक्ति उपार्जित कर ली थी, किन्तु फिर भी उन्होंने राजकीय उपाधि धारण न की। होयसाल बल्लाल, जो कि अति प्रभावशाली था, तब तक जीवित था, और सम्भव है कि हरिहर ने राजसी उपाधि को उसके भय से न धारण करना ही श्रेयस्कर समझा हो।

हरिहर द्वितीय के शासन-काल में बहमनी सल्तनत का भार मुहम्मदशाह के कंधों पर था। फलतः निर्विघ्न रूप से हरिहर दक्षिण में अपने पूर्वजों का कार्य सम्पन्न करता रहा। मैसूर, धारावार, काँजीवरम, चिंगलपट तथा त्रिचनापल्ली को जीतकर उसने अपने राज्य में विलीन कर लिया। मदुरा के पाण्ड्य प्रदेश पर उसके

सेनापति ने विजय प्राप्त कर पाण्ड्य-राजकुल पुनः स्थापित कर दिया। हरिहर ने गोआ से मुसलमानों को निकाल बाहर किया। १४०४ ई० में हरिहर का स्वर्गवास हुआ।

**देवराज (१४०६-१४२२):**—तत्पश्चात् देवराज प्रथम गद्दी पर बैठा। बहमनी सल्तनत में निहाल के प्रति उसके अधप्रेम का वर्णन आ चुका है। उसमें जो क्षति विजयनगर को उठानी पड़ी उसका भी उल्लेख किया जा चुका है। १४१७ ई० में पुनः दोनों में युद्ध हुआ। इस बार विजय श्री देवराज के हाथ रही।

**वीर विजयराय**—देवराय की मृत्यु के पश्चात् विजयराय सिंहासन पर बैठा, पर वह केवल नौ वर्ष राज्य कर इस संसार से चल बसा। उसके बाद उसका पुत्र देवराय द्वितीय सिंहासनारूढ हुआ, जिसने १४४६ ई० तक राज्य किया। इस अभागे राजा को बहमनी सुल्तानों से अविरत युद्ध करना पड़ा और सदैव पराजत हो उनकी इच्छा-पूर्ति करता रहा।

**देवराय द्वितीय :**—जैसा कि बहमनी सल्तनत के अध्याय में उल्लेख किया जा चुका है, सन् १४३५ ई० में देवराय द्वितीय ने बहमनी आक्रमण को विफल किया। इस बार उसने विदेशी मुसलमानों को अपनी सेना में भर्ती कर लिया था। देवराय द्वितीय के शासन-काल में दो प्रसिद्ध यात्री आये, जिन्होंने महत्वपूर्ण विवरण दिये हैं। अतः उसके शासन का महत्व इसलिये भी अधिक बढ गया। इटली-निवासी निकोलो कौण्टी तथा हिरात-निवासी अब्दुल रज्जाक ने यहाँ आकर विजयनगर तथा उसके महाराजा के सम्बन्ध में जो जानकारी वर्णन की है हम उनके ऋणी हैं।

**निकोलो कौण्टी:**—देवराय द्वितीय के सिंहासनारूढ से कुछ कालोपरान्त ही निकोलो कौण्टी इटली से भारत आया। विजयनगर से प्रभावित होकर उसने उसकी पर्याप्त प्रशंसा की है। विजयनगर को उसने ६० मील की परिधि में बसा हुआ लिखा है। बहु-विवाह तथा सती की प्रचलित प्रथा का उसने उल्लेख किया है। विजयनगर के महाराजा को उसने भारतके सभी महाराजों से अधिक शक्तिशाली बताया है। उसके १२००० पत्नियाँ थी, तथा चार हजार तो, जहाँ वह जाता था, साथ-साथ जाती थी। कितने ही उत्सवों और त्यौहारों का उसने अच्छा विवरण दिया है। तत्कालीन प्रचलित रीति-रिवाज एवं अंधविश्वासों पर भी उसके लेख प्रकाश डालते हैं। युद्ध के भाँति-भाँति के हथियारों, उस काल की मुद्राओं तथा गोलकुण्डा की हीरे की खानों और दास-प्रथा का उसने उल्लेख किया है। विशाल सेना का वर्णन भी उसने किया है।

अब्दुलरज्जाक:—बीस वर्ष पश्चात् देवराय द्वितीय के दरबार में रज्जाक आया। नगर की किलेबन्दी, भव्य-भवनों, भोगविलास के साधन तथा श्री सम्पन्नता का विस्तृत वर्णन उसके लेखो में मिलता है। वह लिखता है कि "विजयनगर एक ऐसा शहर है कि जिसका सानी पहले कभी नही देखने में आया, न कभी यह सुना कि इस तरह का कोई दूसरा शहर दुनिया में और कही भी है।" रज्जाक के उल्लेखों से विदित होता है कि वह काल ही रक्तपात से परिपूर्ण था। केवल वहमनी सुलतान ही अमानुषिक रक्तपात करते थे ऐसा नही, वरन् कुछ हिन्दू भी पीछे नही थे। सिंहासन पर आधिपत्य स्थापित करने के हेतु देवराय के भाई ने स्वयं महाराजा के प्राण लेने का घातक प्रयत्न किया था। इस हत्या के पश्चात् शीघ्र ही १४४३ ई० में पुन. वहमनी. सुल्तान ने आक्रमण किया। इस वार राय का ज्येष्ठ पुत्र वीरगति को प्राप्त हुआ। इसी समय सिंहलद्वीप पर आक्रमण होने का उल्लेख भी मिलता है।

साहित्य-प्रेम:—देवराय द्वितीय के शासन-काल में कन्नड़ साहित्य की विशेष उन्नति हुई। कन्नड़ 'भारथ' के रचयिता कुमार व्यास तथा अन्य कई कवि और लेखकों का इसी काल में प्रादुर्भाव हुआ। धर्म के विषय में राज्य की नीति उदार थी। विदेशो से व्यापार विकसित अवस्था में था।

मल्लिकार्जुन तथा विरूपाक्ष (१४४६-८५ तक):—सन् १४४६ के लगभग देवराय का निधन हुआ। तत्पश्चात् उसके दो पुत्र मल्लिकार्जुन तथा विरूपाक्ष क्रमश: सिंहासनारूढ हुए और सन् १४६५ ई० तक शासन भार सम्भालते रहे। ये शक्तिहीन राजा थे, अतः राजनीतिक अव्यवस्था, असन्तोष, राजकुल के प्रति व्यापक क्रोध, आये-दिन की बात थी। वहमनी सुल्तान तथा उड़ीसा के गजपति राजा के सयुक्त आक्रमण हुए, जिन्होंने विजयनगर की ख्याति को धूल में मिलाकर तथा उसके राज्य को नोच-नोच कर ही दम लिया।

नवीन राजवंश—तैलंगाना के प्रभावशाली शासक नरसिंह सलुवा ने संगम-कुल के अन्तिम राय को अपदस्थ किया। यह इतिहास में 'सिंहासन पर प्रथम अधिकार चेष्टा' के नाम से प्रसिद्ध है। सलुवा निश्चय ही चन्द्रगिरि का एक शक्तिशाली सामन्ती सरदार था। राज्य के सभी सामन्त तथा सरदारों ने उसकी दक्षता एवं राजनीति-पटुता से प्रभावित होकर उसे अपना महाराजा चुन लिया।

सलुवा ने सामन्तों की आशा तथा विश्वास को शीघ्र ही पूरा कर दिखाया। वहमनी आक्रमणों से राज्य की रक्षा की। बाढ़ के दिनों में ही कावेरी को पार कर

उसने राय को पराजित कर सेरिंगपट्टम की स्थापना की। सलूवा नरसिंह का दक्षिण के अधिकाश भाग तथा करनाटक से तेलंगाना तक के समस्त प्रदेश पर अधिकार हो गया। मुसुलीपट्टम तथा कांची पर उसने आसानी से अधिकार स्थापित कर लिया। उदयगिरि तथा पेनुकोंद के दुर्गों पर उसने शीघ्र ही अधिकार कर लिया। कहने का तात्पर्य यह है कि जो अभीष्ट था वह प्राप्त हो गया। जिसे सगम-कुल के क्षीण राय न कर सके वह सलूवा ने कर दिखाया। "जैमिती भारतम्" का उसी के नाम समर्पण इस बात का द्योतक है कि वह साहित्यप्रेमी था। १४८६ ई० में महाराजाधिराज की उपाधि धारण कर १४६७ ई० पर्यन्त शासन करता रहा।

नरसा नायक (तीसरा राजवंश):—सलूवा नरसिंह के पश्चात् उसका बेटा इम्मादी नरसिंह गद्दी पर बैठा। किन्तु वह अपने सेनापति नरसा नामक द्वारा अपदस्थ किया गया। यह सिंहासन पर द्वितीय 'अधिकार चेष्टा' के नाम से सुविख्यात है। इस नवीन राजवंश में कृष्णदेव राय सबसे अधिक प्रभावशाली शासक हुआ।

कृष्ण देवराय (१५०६-३०):—इस कुल का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि कृष्णदेव राय था। उसके शासन तथा जीवन का विवरण अनेक स्रोतो से उपलब्ध होता है। शासन-सत्ता हाथ में लेते ही राय कृष्णदेव ने सर्वप्रथम शान्ति तथा सुव्यवस्था स्थापन का कार्य किया। राज्य की आर्थिक स्थिति सुधार, मध्य प्रदेश के जंगली सरदारों को अपने वश मे कर, अम्मादूर के विद्रोही राज्य के विरुद्ध उसने सैनिक कार्यवाही की। कृष्णदेव राय ने उड़ीसा की राजकुमारी से विवाह कर लिया। इस प्रकार उसने समस्त पूर्वी प्रदेश पर प्रभुत्व स्थापित किया। पश्चिम में सालसट तक विजय प्राप्त की। किन्तु इन सब में सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटना रायचूर और मुकदल के दुर्गों पर अधिकार करने की है। जैसा कि उल्लेख आ चुका है, यही रायचूर तथा मुकदल, बहमनी और विजयनगर के बीच रार की पिदिया थे। अन्त में कृष्णदेव राय ने बीजापुर की भूमि पर पैर रखा और गुलबर्गा के दुर्ग को धराशायी किया। रायचूर की हार ने बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह का प्रभाव और प्रतिष्ठा दोनों ताक में रख दिए। किन्तु विजय के स्वप्न छोड़ आदिलशाह दक्षिण में मुसलमानों का गुट्ट बनाने में संलग्न हुआ और हिन्दू विजय से इतने मदहोश हो गए कि अन्त में पराङ्मुख हुए।

कृष्णदेव का चरित्र:—कृष्णदेव राय के प्रभुत्व में समस्त दक्षिणी भारत था। मद्रास प्रेजीडेन्सी, मैसूर, त्रावणकोर और कोचीन की रियासतें भी इनमें सम्मि-

लित थीं। पुर्तगीज इतिहास-लेखक पाये जिसने स्वयं राय को देखा था, इस प्रकार लिखता है—"राय का कद मध्यम था, रंग उजला, मुखाकृति भली तथा वदन कुछ दोहरा था। उसका प्रभाव अत्यधिक था। स्वभाव का प्रसन्नचित्त व्यक्ति था। एक महान् शासक, न्यायप्रिय, कभी कभी आकस्मिक क्रोध तथा आवेश का आखेट भी बन जाता था। वह संस्कृत तथा तेलगू साहित्य का प्रेमी भी था। 'मनुचरित' का रचयिता अलसानीपेदन्ना उसके 'अष्ट दिग्गजों' में से था।

कृष्णदेव का शासन:—पाये के वर्णन से विदित होता है कि शासन सुव्यवस्थित ढंग से होता था। नगर श्रीसम्पन्न तथा जनता सुखी थी। राय एक अच्छा निर्माता भी था। उसने अपनी राजधानी को अतीव सुन्दर बनाया। विट्ठल स्वामी और हजाराराय स्वामी के सुन्दर मन्दिर भी उसी ने बनवाए। नागलपुर का नवीन नगर भी उसी ने बनवाया। इस प्रकार सन् १५३० ई० के लगभग कृष्णदेव राय का निधन हुआ। उसके पश्चात् उसका एक भाई अच्युतराय गद्दी पर बैठा।

अच्युतराय (१५३०—४२ ई०):—अच्युतराय के शासन के आरम्भ में ही आदिलशाह ने रायचूर एवं मुकदल के दुर्ग पुनः अपने अधिकार में कर लिये। उसका स्वभाव हिन्दुओं के हित के लिये विनाशकारी सिद्ध हुआ। वह मन्दिरों और ब्राह्मणों का पालनकर्त्ता था, तथा वैष्णव-सम्प्रदाय का अनुयायी था। सन् १५४२ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

सदाशिवराय तथा रामराय:—अच्युतराय की मृत्यु के पश्चात् उसके भाई का पुत्र सदाशिवराय गद्दी पर बैठा। किन्तु वास्तविक सत्ता उसके मन्त्री रामराय के हाथ में थी, वह तो केवल नाममात्र का राजा था। रामराय कृष्णदेवराय के एक मन्त्री का पुत्र और साथ ही इस महान् राजा का जामाता था। उसने सदाशिव की रक्षा कर मुकुट उसके सिर पर रखवाया। आगे चलकर रामराय इतना शक्तिशाली हो गया कि १५६३ ई० में सदाशिव के नाम दानपत्रों में आने भी बन्द हो गये क्योंकि उसने यथार्थत राजा की उपाधि धारण कर ली थी। यही से विजयनगर का ह्रास प्रारम्भ होता है। १५४३ ई० में रामराय ने बीजापुर के विरुद्ध अहमदनगर तथा गोलकुण्डा से संगठन किया तथा १५५८ ई० में बीजापुर से अहमदनगर के विरुद्ध गठबन्धन किया। इस प्रकार रामराय के सैनिकों ने युद्ध में जो क्रूरता एवं नृशंसता दिखाई वह फरिश्ता के शब्दों में इस प्रकार है'—

"अलीआदिलशाह ने रामराय से सहायता-याचना की थी। दोनों ने मिलकर हुसैन निजामशाह के राज्य को विभक्त कर लिया और इस हद तक नष्ट-भ्रष्ट किया

कि पुरन्दर से जूनेर तक और अहमदनगर से दौलताबाद तक कहीं आबादी का कोई चिन्ह नहीं दिखाई देता था। विजयनगर के काफिरों ने, जो बहुत दिनों से ऐसे अवसर की खोज में थे, अपनी मूर्खता के प्रदर्शन में कोई कमी न छोड़ी। उन्होंने मुसलमान स्त्रियों की इज्जत लूटी, मस्जिदों को धूल में मिलाया, तथा पाककुरान को अपमानित करने में तनिक भी नहीं चूके।" इस प्रकार सैनिकों के क्रूर कृत्यों, तथा स्वयं रामराय के अपने मुसलमान मित्र के प्रति दुर्व्यवहार से भयभीत होकर दक्षिण के मुसलमानों ने अपना संयुक्त मोर्चा बनाकर हिन्दुओं का नाश करने का बीड़ा उठाया।

विजयनगर का पतन :—सन् १५६५ ई० में तालिकोट का युद्ध मुसलमानों का विजयनगर पर प्रतिशोध स्वरूप था। जिसमें हिन्दू परास्त हुए तथा रामराय मारा गया। पराजित होने पर भी हिन्दुओं को आशा थी कि नगर सुरक्षित रह जायेगा, किन्तु मुसलमानों ने आकर निरीह तथा निर्दोष जनता का अमानुषिक वध कर डाला। स्त्री, पुरुष, बच्चे और वृद्ध किसी को भी नहीं छोड़ा। राजघराने के निकम्मे लोग पहिले ही हाथियों पर हीरे जवाहरात लादकर भाग गये थे। नगर का चिन्ह मिटा डाला। हिन्दू-संस्कृति-रक्षक विजयनगर आज भग्नखंडहरों में जंगली जानवरों का निवास-स्थान बन रहा है।

तिरुमल, चौथी अनधिकार चेष्टा:—रामराय जब युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो गया तब उसका भाई तिरुमल कठपुतली राजा सदाशिव को विजयनगर से पेनुकोण्ड में ले गया। कहा जाता है कि वहाँ उसने उसकी हत्या कर स्वयं को सिंहासनारूढ़ किया। इसे इतिहास में विजयनगर के शासकों में चौथा राजवंश कह कर पुकारेंगे। तिरुमल को भी एक बार यवनों का आक्रमण सहना पड़ा। किन्तु उस आक्रमण को उसने विफल कर दिया। तिरुमल वीर सेनापति तथा विद्वान् था।

श्रीरंगा:—तिरमल के पश्चात् उसका द्वितीय पुत्र श्रीरंगा गद्दी पर बैठा, तथा उसके अन्य पुत्र राम और वेंकटपति क्रमशः सेरिंगपटम तथा मदुरा के अधिपति नियुक्त हुए। पेनुकोन्ड पर उसके शासन-काल में मुसलमानों ने चढ़ाई की तथा श्रीरंगा को बन्दी बनाकर द्रुतगति से नाशोन्मुख राज्य को पुनः चन्द्रगिरि राजधानी बनाने को बाध्य किया।

वेंकटपतिः—१५८६ ई० में श्रीरंगा की मृत्यु के पश्चात् वेंकटपति सिंहासन पर बैठा। उसने १६१४ ई० तक राज्य किया। उसने अपनी आँखों से ही राज्य का पतन देखा। उसकी जहाँ शक्ति थी वहीं स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने लगे। वेंकटपति

इतना शक्ति हीन था कि उस गिरते हुए राज्य को न सभाल सका और अन्त में उसने वोदयर के आधिपत्य को स्वीकार कर लिया, किन्तु वह दक्षिणी प्रान्तो पर अपना प्रभुत्व बनाने में सफल रहा।

**श्रीरगा द्वितीय**—१६१४ ई० में वेंकटपति के निधन पर उसका दत्तक पुत्र श्रीरगा द्वितीय गद्दी पर वैठा। राज्य का ह्रास अब तक पूर्ण हो चुका था। राजभक्त तथा राजद्रोही दोनो के समान रूप से दो दल थे। जगाराय नामक एक राजद्रोहियों के सरदार ने राजघराने के सभी सदस्यो को मौत के घाट उतार दिया। किन्तु भगवत्कृपा से एक बच्चा इस दुर्घटना से बच गया। इसका तजौर पहुँचाने का भार एक स्वामिभक्त सरदार यचमा नायक ने किया। तजौर के रघुनाथ ने बच्चे का सरक्षण प्रदान कर जगाराय का युद्ध क्षेत्र में आह्वान किया। जगाराय युद्ध में काम आया तथा यही बच्चा राम द्वितीय के नाम से सिंहासन पर बैठाया गया।

**राम द्वितीय**—स्थिति से लाभ उठाकर मुसलमानो ने आक्रमण आरम्भ कर दिये। चन्द्रगिरि से वेल्लौर को राजधानी बदलनी पडी। राम द्वितीय की यचमा नायक के बहनोई चेन्ना नामक स्वामिभक्त सरदार ने बहुत सहायता की।

**श्रीरगा तृतीय**—राम का उत्तराधिकारी श्रीरगा तृतीय हुआ। उसी के शासनकाल में मैसूर के चिक्कादेवराय ने प्राचीन विजयनगर के बचे खुचे अधिकाश भाग पर अधिकार जमा लिया। मैसूर की सफलताओ के पश्चात् श्रीरगा का नाम इतिहास के पृष्ठो में लुप्त हो गया। अठारहवी शताब्दी में उसके वशजो ने अपने पूर्वजों की जागीर को मुगलो की कृपा से पुन प्राप्त किया। सन् १७४६ ई० में मरहठो ने इस पर अधिकार कर लिया।

## विजयनगर राज्य पर आद्योपान्त दृष्टिपात

**शासन व्यवस्था**—कहने की आवश्यकता नही कि उत्तर के मुसलमानो की चेष्टाओ को विफल करने के हेतु विजयनगर राज्य की स्थापना हुई। हिन्दू धर्म को सुरक्षित करना इनका मुख्य धर्म था। अत ब्राह्मण के प्रभाव से नवीन राज्य की नीव सुदृढ बनाने के हेतु शासन व्यवस्था स्थायी रूप से की गई। हरिहर तथा बुक्का जैसे साहसी तथा महत्वाकाक्षी वीर सेनानियो ने शीघ्र ही न्याय तथा शाति स्थापित कर दी। विजयनगर का राज्य अनेक प्रान्तो में विभक्त था। डाक्टर स्मिथ के मतानुसार जिलो की सख्या २०० थी। इन प्रान्तो का शासन प्रातपतियो के अधीन होता था। राज्य को वे एक निश्चित कर तथा समय पडने पर सेना देते थे। परम्परा के अनुसार न्याय कार्य सचालन किया जाता था। जनता सुखी थी। ग्राम पचायतें

पूर्ववत् चल रही थी। भूमि-कर ही राज-आय का प्रमुख अंग था। लगान मुद्राओं के रूप में लिया जाता था। हरिहर प्रथम के शासन-काल में कर माल या पैदावार के रूप में नहीं लिया जाता था। दण्ड-विधान कठोर न था; किन्तु कुछ अपराधों का दण्ड बर्बरतापूर्ण होता था।"

सामाजिक व्यवस्था:—जनता मुख्यत: दो भागो में विभक्त थी। एक तो अतुल धन-राशि का उपभोग करने वाले थे तथा दूसरे कुटिया में जीवन-यापन करने वाले। पारस्परिक झगडे निवटाने के लिए मल्ल-युद्ध प्रचलित था। किन्तु यह मल्ल-युद्ध बिना मन्त्री की आज्ञा के नही होते थे। जीतने वाला पराजित की सम्पूर्ण सम्पत्ति पर अधिकार कर लेता था। उसे बडी अच्छी दृष्टि से देखा जाता था। सती तथा बहु-विवाह-प्रथा प्रचलित थी। किन्तु औरतें पढी-लिखी, मल्ल-युद्ध करने वाली, ज्योतिष-विद्या में पारंगत तथा कोकिलवयनी थीं। गोश्त बाजार में बिकता था। किन्तु गाय या बैल के गोश्त पर बड़ा नियंत्रण था। कोई भी गाय या बैल का गोश्त न बेच सकता था, न खा सकता था, राजा स्वयं उस पर आरूढ़ रहते थे। पशु बलि आमतौर से प्रचलित थी। ब्राह्मणों का सम्मान होता था तथा वे शासन-भार संभालते थे। नूनिस ने ब्राह्मणों के विषय में लिखा है कि ये बड़े ईमानदार, व्यवहार-कुशल, दक्ष, गणितज्ञ होते थे। भोग-विलास तथा ऐश्वर्य में दिन बिताये जाते थे। बाजारों में वीराङ्गनायें रहती थी। उनकी देख-रेख के हेतु पुलिस के सिपाही भी नियुक्त थे, जो अपना वेतन उन पर लगाए गए कर द्वारा प्राप्त करते थे।

साहित्य और कला:—विजयनगर के राजा संस्कृत तथा तैलगू साहित्य के बड़े प्रेमी थे। कृष्णदेवराय एक कुशल कवि था, वह आन्ध्र का भोज भी कहा जाता था। उसका दरबार अष्ट दिग्गजो से सुशोभित रहता था। अलासानी पेद्दना उन सब में अधिक प्रसिद्ध था। इसी काल की दूसरी देन महान् कवि नन्दी टिम्मन है, जिसने 'पारिजात अपहरण' की रचना की। कन्नड़ 'भारथ' के रचयिता कुमार व्यास तथा अन्य कई कवि तथा प्रख्यात लेखक इसी राज की देन है।

निर्माणकला:—इमारतों के निर्माण में विजयनगर के शासकों ने पर्याप्त मौलिकता का परिचय दिया है। उन्होंने एक विशेष निर्माण-शैली को विकसित किया है। मदुरा की राजसी इमारतें आज भी स्थिर हैं। सुन्दर मन्दिर उसी काल की देन हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस उद्देश्य को लेकर इस राज्य की स्थापना

की गई थी वह बहुत अंशो में पूर्ण हुई। त्राहि-त्राहि करती हुई हिन्दू-संस्कृति तथा धर्म को आश्रय मिला। पर्याप्त-काल तक विजयनगर का राज्य चलता रहा। यह इस बात का द्योतक है कि दक्षिण के हिन्दू अपनी सत्ता स्थिर रखना चाहते थे—राज-लिप्सा से नही वरन् धर्म-लिप्सा से। पतन तो अन्त में सबका ही होता है और पतन विजयनगर का भी हुआ, किन्तु हिन्दू-धर्म, कर्म, संस्कृति, इत्यादि का संरक्षण करने के हेतु इसकी नीव डाली गई थी, वह इसने हर प्रकार से पूर्ण की।

### प्रश्न

१—विजयनगर राज्य की स्थापना कैसे हुई ?
२—देवराज द्वितीय के विषय में तुम क्या जानते हो ?
३—कृष्णदेव राय का परिचय दो।
४—विजयनगर के विषय में विदेशियो ने क्या लिखा है ?
५—विजयनगर राज्य का महत्व बताओ।

———

## अध्याय ३२

# मध्यकालीन भारत की सभ्यता

### भारत मे मुस्लिम राज्य

(अ) सफलता के कारण —मुहम्मद साहब एक धर्म के प्रवर्तक ही नही, वरन् एक सैनिक राष्ट्र के जन्मदाता भी है। उनके अनुयायियो ने अपने धर्म-प्रचार के लिए विधर्मियो से युद्ध करना अपना सबसे बडा कर्त्तव्य समझा। इन युद्धो में विजय प्राप्त करने के तीन प्रमुख कारण थे—युद्ध कला, अनुशासन तथा धार्मिक जोश। पैगम्बर साहब स्वय एक सफल सेनापति थे। इस्लाम की पंच-वक्ती नमाज, रमजान के व्रत तथा अन्य धार्मिक क्रियाओ ने उनमें आश्चर्यजनक संगठन तथा अनुशासन उत्पन्न कर दिया। इनका विश्वास था कि भगवान् ने स्वय एक विशेष धर्म की पूर्ति के हेतु उन्हे संसार में भेजा और यह ध्येय विधर्मियो को बुद्धिबल अथवा सैन्य बल से इस्लाम धर्म स्वीकार कराने से पूर्ण हो सकता है।

(आ) विधर्मियों के साथ बर्ताव:—मुहम्मद साहब ने अन्य धर्मों के प्रति सहानुभूति दिखाई थी, परन्तु उनके अनुयायियों ने पराजित जातियों के साथ कठोर अन्याय किया। वे मौत के घाट उतार दिये गए। प्रथम उन्हे इस्लाम-धर्म स्वीकार करने को बाध्य किया जाता, अन्यथा उन्हें एक विधर्मी की निम्न स्थिति स्वीकार करनी पड़ती, जिसमें उन्हें धार्मिक कर 'जजिया' देना पड़ता था। विधर्मियों पर बड़े प्रतिबंध लगाए जाते थे। उमर द्वितीय नामक श्रेष्ठ खलीफा ने ईसाईयो तथा यहूदी व्यापारियों से मुस्लिम-व्यापारियों की अपेक्षा दूना कर लागू कर दिया था। यहाँ तक कि उसने ईसाईयों की वेष-भूषा तक पर प्रतिबंध लगा दिया था और उन्हें एक विशेष प्रकार की ही पोशाक पहनने को बाध्य किया था। उमर द्वितीय के एक दूसरे नियमानुसार अन्य धर्मावलम्बियों को राज्य में कोई पद नही दिया जा सकता था। अनुदारता की यह नीति अन्य मुस्लिम-संस्थाओं में भी देखने में आई। राजकीय-आय को ही लीजिए, इसके सात साधन थे—(१) जजिया जो विधर्मियों पर लगाया जाता था, (२) आय का वह भाग जो मुसलमान जागीरदारों से लिया जाता था, (३) व्यापारिक कर जो मुसलमान व्यापारियों से कम तथा अन्य धर्मावलम्बियों से अधिक लिया जाता था, (४) जकात जो मुस्लिमों से उनकी दान-संस्थाओं के लिए लिया जाता था, (५) विदेशी यात्रियों से कर, (६) लूट का १/५ भाग और (७) खिराज अर्थात् भूमि-कर जो केवल अन्य धर्मावलम्बियों से लिया जाता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक स्थान में मुसलमानों तथा अन्य धर्मावलम्बियों के मध्य भेद-भाव रखा जाता था। यह नीति समयानुकूल न होने के कारण मुस्लिम-साम्राज्य के विनाश का कारण हुई।

(आ) विधर्मियों के साथ बर्तावः—मुहम्मद साहब ने अन्य धर्मों के प्रति सहानुभूति दिखाई थी, परन्तु उनके अनुयायियो ने पराजित जातियों के साथ कठोर अन्याय किया। वे मौत के घाट उतार दिये गए। प्रथम उन्हे इस्लाम-धर्म स्वीकार करने को बाध्य किया जाता, अन्यथा उन्हें एक विधर्मी की निम्न स्थिति स्वीकार करनी पड़ती, जिसमें उन्हें धार्मिक कर 'जजिया' देना पड़ता था। विधर्मियों पर बड़े प्रतिबंध लगाए जाते थे। उमर द्वितीय नामक श्रेष्ठ खलीफा ने ईसाईयों तथा यहूदी व्यापारियों से मुस्लिम-व्यापारियो की अपेक्षा दूना कर लागू कर दिया था। यहाँ तक कि उसने इसाईयों की वेष-भूषा तक पर प्रतिबध लगा दिया था और उन्हें एक विशेष प्रकार की ही पोशाक पहनने को वाध्य किया था। उमर द्वितीय के एक दूसरे नियमानुसार अन्य धर्मावलम्बियो को राज्य में कोई पद नही दिया जा सकता था। अनुदारता की यह नीति अन्य मुस्लिम-संस्थाओं में भी देखने में आई। राजकीय-आय को ही लीजिए, इसके सात साधन थे—(१) जजिया जो विधर्मियों पर लगाया जाता था, (२) आय का वह भाग जो मुसलमान जागीरदारों से लिया जाता था, (३) व्यापारिक कर जो मुसलमान व्यापारियों से कम तथा अन्य धर्मावलम्बियों से अधिक लिया जाता था, (४) जकात जो मुस्लिमों से उनकी दान-संस्थाओं के लिए लिया जाता था, (५) विदेशी यात्रियो से कर, (६) लूट का १/५ भाग और (७) खिराज अर्थात् भूमि-कर जो केवल अन्य धर्मावलम्बियों से लिया जाता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक बात में मुसलमानों तथा अन्य धर्मावलम्बियों के मध्य भेद-भाव रखा जाता था। यह नीति समयानुकूल न होने के कारण मुस्लिम-साम्राज्य के विनाश का कारण हुई।

(इ) सम्मिश्रण का अभावः—मुसलमानों का भारत में आना नवयुग का प्रारम्भ है। सर्वप्रथम अरब लोग यहाँ आए, वे तुर्कों से कही अधिक सभ्य थे। उस समय भारतीय-समाज अस्त-व्यस्त दशा में था। हर्ष के एक शताब्दी पश्चात् भारतवर्ष अनेकों छोटी-छोटी रियासतों में विभक्त हो गया था। यद्यपि राजनैतिक दृष्टि से भारत का पतन हो चुका था। उसका साहित्यिक तथा दार्शनिक स्तर ऊँचा था। जब अरब लोग भारतीय विद्वानों के सम्पर्क में आए तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्हें स्वयं की सभ्यता निम्न प्रतीत हुई। अलबरूनी हिन्दू-सभ्यता की बहुत सराहना करता है।

परन्तु हिन्दुओं की आध्यात्मिकता ने उन्हें सांसारिक-जीवन से उदासीन बना दिया था और इसीलिए उनमें रचनात्मक-कार्यों का अभाव हो गया था। यही कारण

था कि भारत की अधिकतर जनता ने मुसलमानो की क्रूरता को उदासीनता के साथ सहन कर लिया। दूसरे 'भारत की सैनिक-जाति' जो ससार में अपनी रण-कुशलता तथा साहस के लिए प्रसिद्ध थी, प्रथम तो सख्या में कम थी, दूसरे पारस्परिक-मतभेद के कारण एक सूत्र में सकलित नही हो सकती थी। फल यह हुआ कि वह जाति परास्त हुई और विद्रोहियों ने उन्हें घृणा तथा निरादर की दृष्टि से देखा। परन्तु यह विजय कवल शारीरिक विजय थी, मानसिक नही। मानसिक विजय की ओर उदासीन मुसलमान-राज्य इसीलिए सदैव उपद्रव, शान्ति तथा समृद्धि के साथ राज्य न कर सका। अध्यात्म-वाद-हीन तुर्क भारत के मानसिक स्तर तक न पहुँच सका। यदि वह ऐसा कर सकता तो भारतीय इतिहास करोडो अवलाओ के क्रन्दन तथा असख्य मनुष्यों की चीत्कार एव रक्तपात से परिपूर्ण न होकर इस ससार के सामने अपना मस्तिष्क वडे गौरव के साथ ऊँचा कर सकता।

इस्लाम धर्म की सादगी तथा उसका एकेश्वर-वाद, उसकी बहुत प्रशसा की जाती है, हिन्दुओ के लिए कोई नवीन वस्तु न थी। एकेश्वर-वाद का सिद्धात मुहम्मद साहब के जन्म से भी सहस्रो वर्ष पूर्व हिन्दुओ को विदित था। उपनिषदों तथा भक्ति-सम्प्रदाय के भिन्न-भिन्न मतो में इसका बहुत पहले ही विश्लेषण किया जा चुका था। यही कारण था कि उनके इस सिद्धात ने, जो सभव है और देशों में प्रभावपूर्ण सिद्ध हुआ हो, यहाँ कोई विशेष प्रभाव न डाल सका। यही कारण था कि दोनो जातियाँ एक दूसरे से खिचती गईं। यदि मुसलमान हिन्दू-सभ्यता को श्रेष्ठ समझ उसके निकट आने का प्रयत्न करते, और इस प्रकार उन पर शारीरिक विजय के स्थान पर मानसिक विजय प्राप्त करते, तो आज का भारतीय इतिहास किन्ही और घटनाओ से ओत-प्रोत होता।

परन्तु इसका अर्थ यह नही कि तुर्क शासन के अत तक हिन्दू और मुसलमानों में कोई सन्निकटता नही आई। धीरे-धीरे मुसलमानो ने समझ लिया कि हिन्दू धर्म पूर्ण तया नष्ट होने वाला नही। यही नही उन्होंने समझ लिया कि भारत की अधिकतर जनता मुसलमान होने को भी तैयार न थी। दूसरी ओर इस्लाम की भी भारत से चले जाने की सम्भावना न थी। इस प्रकार दोनो धर्मों ने खूब समझ लिया कि दोनो को ही भारत में रहना है। अत. दोनो सभ्यताओ ने एक दूसरे के निकट आने का प्रयत्न किया। यदि तुर्कों तथा अफगानो ने अपनी धर्मान्धिता के कारण दोनो जातियो में कटुता उत्पन्न न की होती तो दोनो का सम्बन्ध अत्यन्त दृढ हो जाता। परन्तु इस कटुता को दूर करने के लिये हिन्दू तथा मुसलमान सतो ने सराहनीय उद्योग किया। सतो का यह प्रयत्न भक्ति आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध है।

भक्ति का अर्थ ईश्वरोपासना से है। इस आन्दोलन के संचालक ऐसे ईश्वर भक्त लोग थे जिन्होंने मनुष्य मात्र को चाहे वे किसी धर्म अथवा सम्प्रदाय के हों समदृष्टि से देखा। वे जाति भावना तथा छूत-छात से ऊपर उठ चुके थे। नेकी चाहे किसी में हो उनके लिये आदरणीय थी। ईश्वरोपासना तथा मनुष्य मात्र को समदृष्टि से देखना यह लोग मुक्ति का साधन समझते थे। इनमें निम्नलिखित महापुरुष उल्लेखनीय हैं—

ख्वाजा मुइन्नुद्दीन चिश्ती:—यह मध्य एशिया के एक सिद्ध पुरुष थे। इन्होंने अजमेर में आकर भक्ति का प्रचार किया और लोगों को समझाया कि प्रत्येक धर्म का मूल स्रोत एक ही है। इसलिए हमारा कर्तव्य है कि मनुष्य मात्र को, चाहे वह किसी भी मत या सम्प्रदाय का हो, उदारता की दृष्टि से देखें। १२३६ ई० में उनका देहांत हो गया और इन्हें अजमेर में ही दफना दिया गया, जहां इनकी दरगाह अब तक विद्यमान है। उस पर हर साल एक समारोह होता है। मुसलमान दरगाहों में मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह एक पवित्र स्थान समझी जाती है।

बाबा फरीद :—ये प्रेम के पुजारी थे। इन्होंने लोगों को एक दूसरे से प्रेम करने की शिक्षा दी। इन्होंने लोगों को समझाया कि यदि हम ससार में शांति स्थापित करना चाहते हैं तो दूसरों की इच्छाओं तथा रिवाजों को उदारता से देखें। यह मुहम्मद तुगलक के समकालीन थे। इनका जन्मस्थान मुल्तान था। लेकिन इन्होंने पाक पटन को अपने प्रचार का केन्द्र बनाया।

हिन्दू धर्म में भी इसी प्रकार के बहुत से प्रचारक हुये जिन्होंने परमेश्वर के सच्चे प्रेम पर बहुत जोर दिया और बाह्य रीति रिवाजों पर ध्यान देने की निन्दा की। इन्होंने भगवान विष्णु की पूजा को बहुत महत्व दिया। इसलिये इनका पथ वैष्णव पंथ के नाम से प्रसिद्ध है। इस पंथ की दो शाखायें थीं—एक रामशाखा, दूसरी कृष्ण-शाखा। द्वितीय शाखा के प्रचारक स्वामी रामानुज तथा वल्लभाचार्य थे। स्वामी रामानुज दक्षिणी भारत में बारहवी शताब्दी में पैदा हुए। वल्लभाचार्य का जन्म १४७९ ई० में हुआ। इन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक भागवत टीका सुबोधनी में अपने सिद्धांतों का स्पष्टीकरण किया। उन्होंने बतलाया कि आत्मा और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं। और आत्मा भी परम भक्ति द्वारा परमेश्वर में लीन हो जाती है।

रामानन्द :—इनका जन्म १४ वी शताब्दी में हुआ। बनारस को इन्होंने अपनी शिक्षा का केन्द्र बनाया यह छूत-छात तथा ऊँच-नीच के घोर विरोधी थे इन्होंने हिन्दी भाषा में अपना ही प्रचार कार्य किया।

यह भगवान् राम के उपासक थे। कबीर इन्ही के शिष्यों में से थे।

चैतन्य :—प्रसिद्ध यग भक्त चैतन्य महाप्रभु का जन्म १४८५ ई० में हुआ। इन्होने भी कृष्ण प्रेम का पाठ पढ़ाया। उनका कहना था कि भक्ति द्वारा आत्मा ब्रह्म म विलीन हो सकती है।

कबीर —कबीर स्वामी रामानन्द के चेले थे। यह पन्द्रहवी शताब्दी के प्रसिद्ध सुधारको में गिने जाते है। जातिपाति के ये सर्वथा विरोधी थे। वे मूर्ति पूजा के कट्टर विरोधी थे। हिन्दू मुसलमान दोनो ही इनके शिष्य थे। यह एक ब्रह्म को मानने वाले थे। इनका विश्वास था कि हमारी आत्मा, परमात्मा से माया द्वारा पृथक है। यदि हम माया के परदे को हटादें तो हमें प्रतीत हो ज वे कि आत्मा और परमात्मा एक ही है।

गुरु नानक —इनका जन्म १४६६ ई० में मौजूदा ननकाना साहब जिला शेखपुरा में हुआ। कबीर की तरह यह भी मूर्ति पूजा तथा जाति-पाति के विरोधी थे और एकेश्वर वाद के मानने वाले थे। आतमा और परमात्मा के विषय में भी उनके विचार कबीर से मिलते जुलते थे। सिक्ख धर्म का अभ्युदय इन्ही के द्वारा हुआ।

मुगलकाल में सूरदास तथा तुलसीदास ने उत्तरी भारत में और सत तुकाराम, एकनाथ तथा रामदास ने भक्ति मार्ग को दक्षिणी भारत में विशेष प्रोत्साहन दिया।

साहित्य व कला :— इस भक्ति धारा का सबसे बडा प्रभाव देशी भाषाओं के साहित्य पर पडा, हिन्दी गुजराती, बगला, मराठी आदि भाषाओ में भक्ति रस के कवियो ने अपनी-अपनी रचनायें लिखी—बगला में चडीदास की कविता, राजस्थानी में मीरा के पद, मैथिली में विद्यापति पदावली अत्यन्त प्रसिद्ध है इनके अतिरिक्त कबीर, रसखान तथा जायसी ने हिन्दी साहित्य को अमूल्य निधि प्रदान की— इस प्रकार इस काल में देशी साहित्य में विशेष प्रगति हुई।

मध्यकालीन भारत में कला-कौशल तथा वास्तुविद्या में आश्चर्यजनक उन्नति हुई। कुतुब की लाट, जौनपुर के शर्की सुल्तानों की बनवाई हुई जामा मस्जिद, माडू तथा अहमदाबाद की अन्य मसजिदें हिन्दू मुस्लिम मिश्रित शैली के अद्‌भुत नमूने है। हिन्दू राजाओ ने भी कला को उन्नति में अत्यन्त सहयोग दिया। कोनार्क का सूर्य मन्दिर तथा चित्तौड का विशाल स्तम्भ इसके प्रतीक है।

(ई) भारत में इस्लाम की उन्नति :—भारत में इस्लाम की उन्नति का कारण उनका धार्मिक सिद्धान्त नही था। उनका धर्म एक सबल शक्ति का धर्म

था, जो कभी-कभी तलवार के बल पर मानना पड़ता था। पद-लोलुपता तथा विशेष अधिकार-प्राप्ति भी उनकी उन्नति में सहायक थी, क्योंकि मुसलमान ही उच्च-पदों तथा अन्य विशेषाधिकारों को प्राप्त कर सकते थे। यदि सिद्धान्तवाद पर इसका प्रचार हुआ होता तो सैकड़ों वर्ष तक दोनों जातियाँ अलग न रहने पातीं, अपितु जिस प्रकार हूण, कुशन, सिथियन आदि भारतीय वर्ग में विलीन हो गये, इसी प्रकार यह दोनों वर्ग भी एक हो एक महान् राष्ट्र को जन्म देते, और आज पाकिस्तान की मांग और उसके फलस्वरूप यह भीषण नर-संहार भारतीय गौरव को लज्जित न करता।

(ठ) शासन का रूप.—मुगल साम्राज्य, जैसा कि और स्थानों पर तथा और देशों में भी रहा, खिलाफत से अनुशासित होता था। बादशाह केवल राजनैतिक नेता था। शरअ के नियम उसको मान्य होते थे; यह नियम मुल्ला और मौलवी उसको बताते थे। इस प्रकार मुसलमान बादशाह इन धर्मान्ध मौलवियों पर निर्धारित रहते थे। जो उन्हें बता दिया जाता, उसी प्रकार का आचरण वह करते। यही कारण है कि वात्सल्य-प्रेम, जो राजा और प्रजा में होना चाहिए, इन बादशाहों में देखने को भी नहीं मिलता। राजाओं का दूसरा आधार सेना थी, जो अधिकतर मुसलमानों की बनी थी, इसमें भी मुल्ला तथा मौलवी धर्म का जोश उत्पन्न कर साम्राज्य को रक्त से सिंचित करने का प्रबन्ध करते थे। उनका कहना था कि "जो मरेगा वह शहीद होगा, जो जीतेगा गाजी कहलायेगा"। इस प्रकार मुल्ला और मौलवियों का समस्त समाज में बड़ा प्रभाव हो गया और उनके कथनानुसार मन्दिरों का विध्वंस, बलात् धर्म-परिवर्तन इत्यादि राज्य के प्रमुख कार्य समझे जाने लगे और वे बादशाह जिन्होंने ऐसा करने का अधिक प्रयत्न किया, वे अधिकाधिक प्रशंसनीय समझे जाते रहे। धर्मान्ध मुसलमान उसके सामने ही अथवा उसकी मृत्यु के बिलकुल पश्चात् ही, साम्राज्य का पतन देख यह शिक्षा भी ग्रहण न कर पाते कि यह नीति ही विनाशकारी है और इसमें संशोधन की पूर्ण आवश्यकता है। फ़ीरोज तथा सिकन्दर लोदी की प्रशंसा तथा मुहम्मद तुगलक व अलाउद्दीन की आलोचना इसका प्रतीक है। उन्हीं के प्रभाव का परिणाम था कि हिन्दू वर्ग इतनी घृणा की दृष्टि से देखा जाता रहा और दोनों जातियाँ एक दूसरे के सन्निकट न आ सकीं। पहले आक्रमणकारी ऐसा कोई वर्ग लेकर नहीं आये थे, अतएव वह शीघ्र ही यहाँ के लोगों से मिल गये।

(ऊ) जनता पर प्रभावः—मुस्लिम साम्राज्य ने, शासक वर्ग अर्थात् मुसलमानों में विलासप्रियता का संचार किया। राज्य के उच्च-पद मुसलमानों के अधिकार में थे, जो गुणों पर ही नहीं वरन् बादशाह की इच्छा पर निर्भर थे। अत्यधिक धन-

प्राप्ति ने उनमें बहुत-सी कुत्सित भावनाएँ उत्पन्न कर दी, जिनके कारण मुस्लिमो का पुराना साहस और शक्ति अधोगति को प्राप्त हो गये। प्रारम्भिक मुसलमान जिन्होंने इल्तुतमिश, बलबन और अलाउद्दीन की सेनाओ को अत्यन्त पुरुषार्थी तथा साहसी बनाया था, जो इस्लाम की शान के लिये जान पर खेल गये, उनके वशज मुसलमान मध्य श्रेणी के मनुष्य हो गये, जिनमें अपने पूर्वजो जैसा न साहस था और न योग्यता। इसके अतिरिक्त उनके प्रति प्रदर्शित पक्षपात ने उन्हें और नष्ट कर दिया। इस प्रकार आत्म-सम्मान, शक्ति तथा साहस को नष्ट कर वे पतन की ओर चल दिये, क्योंकि वे अल्प-सख्यक थे। अत वे धल मिट्टी के कार्य से मुक्त हो, जिसमें हिन्दुओ तथा अन्य जातियो को लिप्त रहना पडता था, स्वच्छ जीवन व्यतीत करने के अभ्यस्त हो गये। उनके पास भूमि थी, जिसकी आय का केवल $\frac{1}{10}$ भाग उन्हें राज्य को देना पडता था। इस प्रकार उनके पास धन प्रचुर मात्रा में बच जाता था, जिससे वे विलासमय जीवन व्यतीत करते थे।

इसके विरुद्ध हिन्दू जाति पर दूसरे ही प्रकार का प्रभाव पडा। वे सदैव अपने ऊपर लगे प्रतिबन्धो से क्षुब्ध तथा असन्तुष्ट रहे। इसी कारण वे हमेशा उपद्रव तथा विद्रोह करते रहे। मुस्लिम बादशाहो ने, मूल कारण न समझ, इनको दबाने में समय नष्ट किया तथा कठोर से कठोर नीति का बर्ताव करते रहे। हिन्दुओ से अत्यधिक कर लिया जाता था। जियाउद्दीन बरनी लिखता है कि "हिन्दुओ से उपज का ५० प्रतिशत लिया जाता था, इसके कारण वे अति निर्धनता का जीवन व्यतीत करते थे। उनका जीवन बहुत निम्न श्रेणी का था।" श्री यदुनाथ सरकार लिखते हैं कि "इस कारण हिन्दू बौद्धिक विकास समाप्त हो गया और उच्च हिन्दू वर्ग की स्फूर्ति समाप्त हो गई।" श्री सरकार का यह मत सत्य प्रतीत नही होता। इसमें सन्देह नही कि मुसलमानो की क्रूरता, उनका रक्तपात, उनका निरादर इतिहास में मोटे अक्षरो में लिखा जायेगा, परन्तु यह कहना कि इससे हिन्दू-वर्ग का विकास पूर्णतया रुक गया और उनकी उच्च भावनायें लुप्त हो गई, असत्य है। समस्त मुस्लिम-काल में यह देखने में नहीं आता। अकबर और जहाँगीर के समय में कई बडे कवि, दार्शनिक राजनीतिज्ञ तथा सेनाध्यक्ष पैदा हुए। इनमें तुलसीदास, सूरदास, टोडरमल, मानसिंह तथा बीरबल के नाम सर्व-प्रसिद्ध है। भक्ति सम्प्रदाय के जन्मदाता स्वामी रामानुज, रामानन्द, कबीर, चैतन्य महाप्रभु तथा नानक ससार रहेंगे। हिन्दू-वर्ग के लिये गौरव का विषय है कि इस क्रूरता तथा घोर दमन के काल में भी उन्होने अपनी उच्च भावनायें नही खोई। ससार के इतिहास में ऐसा उदाहरण कदाचित् ही मिले। परन्तु

यह सत्य है कि हिन्दू-समाज अपनी दैनिक क्रियाओं में ही व्यस्त रहा, साहित्यिक तथा राजनैतिक विषयों की ओर उसका कम ध्यान गया।

(ए) सामाजिक दशा:--इस काल में मुसलमानों के साथ पक्षपात का वर्ताव किया जाता था। उनके हितों का सबसे पहिले ध्यान रखा जाता था। परन्तु मुसलमानों में भी श्रेणियां थी। कुछ बादशाह उच्च श्रेणी के अतिरिक्त किसी मनुष्य को उच्च पद पर नियुक्त नहीं करते थे। उदाहरणार्थ बलवन की दृष्टि में उच्च वर्ग का होना सबसे बड़ी विशेषता थी।

मदिरापान तथा विलासिता बारहवी, तेरहवी शताब्दी की साधारण कुरीतियां थी। बलवन ने इनपर प्रतिबन्ध लगाये। स्वयं उनके अनुसार आचरण कर, सामाजिक जीवन के स्तर को ऊँचा किया। अलाउद्दीन ने राजनैतिक कारणों से मदिरापान तथा अन्य उत्सवों पर प्रतिबन्ध लगा दिये। इन कठोर नियमों का परिणाम यह हुआ कि यह बुराइयां कुछ दूर हो गई। परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् कुतुबुद्दीन मुबारिकशाह गद्दी पर बैठा तो यह सब कुरीतियां और अधिक उग्र रूप धारण कर गई। स्वयं बादशाह अपनी मित्र-मण्डली सहित नाचता-गाता फिरने लगा। परन्तु गयासुद्दीन तुगलक तथा मुहम्मद के समय में ये बुराइयां फिर कुछ कम हो गई। फीरोज तुगलक के समय यद्यपि शासन कुछ ढीला हो गया था परन्तु इस ओर जनता का स्तर ऊँचा ही रहा।

दास प्रथा भी प्रचलित थी। फीरोज के समय स्वयं बादशाह के दासों की संख्या एक लाख अस्सी हजार हो गई। केवल राजा ही नही वरन् दास भी दास रख सकते थे। दास खुले बाजार में भेड़-बकरियों की भांति बिकते थे। योग्य दास उच्च से उच्च पद पर पहुँच सकते थे। कुतुबुद्दीन, इल्तुतमिश, बलवन तथा फीरोज का राज्य-मंत्री आदि दास इसके ज्वलंत उदाहरण है।

स्त्रियो को स्वतन्त्रता न थी। वह महापुरुषो के मकबरों के दर्शन करने भी न जा सकती थी। फीरोज तुगलक ने उन स्त्रियों को, जो इस आज्ञा का उल्लंघन करती थी, कठोर दंड का भागी ठहराया। मुस्लिम समाज की यह दशा इस काल में रही।

हिन्दू-समाज अपने राजनैतिक पतन के कारण अवनति की ओर अग्रसर हो गया था। हिन्दू इतने संकुचित तथा घमंडी हो गये कि यदि कोई उनसे अन्य देश के विद्वान की चर्चा करता था, तो उन्हें बुरा लगता था।

मुसलमानों को हिन्दू घृणा की दृष्टि से देखते थे, और उनको म्लेच्छ कहते थे। वे उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करना न चाहते थे। उन्होंने मुसल-

मानो से यहाँ तक सम्बन्ध-विच्छेद किया कि उन्होंने सरकारी न्यायालयों में न्याय-कराने का भी बहिष्कार कर दिया। वे प्राय. अपने मामले अपने नियमानुसार ग्राम-पचायतो द्वारा ही तय करते रहे, और केवल सरकारी अभियोग ही उनमें जाते थे। हिन्दू-मुसलमानो में किसी प्रकार का विवाह-सम्बन्ध न होता था, क्योकि हिन्दू समझते थे कि ऐसा करने से वे अपवित्र हो जायगे। उन्होंने अपनी मर्यादा तथा बौद्धिक विकास की रक्षा की। उसकी रक्षा के लिए लाखो पुरुषो तथा अबलाओ को अपने जीवन की वलि देनी पडी। इतिहास ऐसे उदाहरणो से भरा पड़ा है। रशीद-उद्दीन ने अपनी जायचा-उल-तवारीख में उनकी ईमानदारी, न्यायप्रियता और विश्वास पात्र होने की वडी प्रशसा की है।

राजनैतिक पतन ने, तथा विदेशी शासन की क्रूरता ने उनका नैतिक पतन कर दिया। अत्यधिक कर, जजिया और अमानुषिक वर्ताव ने उनकी कमर तोड़ दी। उनको स्वच्छ वस्त्र पहिनने तथा घोडे की सवारी करने की आज्ञा न थी। मुसलमानो ने भरसक प्रयत्न किया कि इनके मस्तिष्क में विनम्रता भरें, परन्तु यह सम्भव न हो सका। उपयुक्त समय आया तो सब सुपुप्तवृत्तियाँ, जो क्रूरता के कारण मृतप्राय हो गई थी, अत्यधिक वेग से उग्र हो उठी। यद्यपि इसका एक प्रभाव पड़ा कि इससे धर्म-परिवर्तन को प्रोत्साहन मिला। निर्धनता तथा क्रूरतापूर्ण व्यवहार से पीडित होकर, विशेष अधिकारो तथा धन-लोलुपता के शिकार बहुत से हिन्दू मुसलमान हो गये।

हिन्दुओ में सती और शिशुवध की प्रथा थी। परन्तु राजाज्ञा बिना कोई स्त्री सती नही हो सकती थी। गधे की सवारी मान-हीन समझी जाती थी और गधे पर चढाकर किसी का प्रदर्शन कराना, एक प्रकार का नैतिक दड समझा जाता था। लोगो का जादू तथा आश्चर्यजनक बातो में विश्वास था। दानशीलता सर्वप्रिय थी। लड़की का उत्पन्न होना अच्छा न समझा जाता था। कहा जाता है कि राजपूत-वर्ग में प्रायः लड़की का जन्मते ही वध कर दिया जाता था।

(ए) साहित्य:—इस छोटे से इतिहास में ४०० वर्ष के साहित्य का वर्णन करना दरिया को कूजे में भरने के समान है। अतः इसमें केवल उसकी रूप-रेखा ही वर्णन की जा सकती है। यह कहना अनुचित होगा कि प्रारम्भिक मुसलमान बादशाह केवल क्रूर विजेता ही थे, उनके समय में कोई साहित्यिक प्रगति नही हुई। कुछ मुसलमान बादशाहो ने साहित्यिक उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया; और उनकी छत्र-छाया मे बडे-बडे कवि तथा लेखको का प्रादुर्भाव हुआ। इनमें अमीर खुसरो का नाम

उल्लेखनीय है। उसका रचनाकाल नासिरुद्दीन से अलाउद्दीन तक रहा। यह उच्च कोटि का लेखक तथा कवि था। उसका गद्य एक गीत, गद्य था। उसकी प्रसिद्ध पुस्तक 'खाजियान-उल-फतूह" उसकी शैली को पूर्णतया प्रकट करती है। कवि तथा लेखक होने के अतिरिक्त वह उच्च कोटि का गायनाचार्य भी था। खुसरो का समकालीन दूसरा कवि मीरहसन देहलवी था। वह बलबन के पुत्र राजकुमार महमूद की सेवा में प्रविष्ट हुआ। उसने अपना एक दीवान भी संकलित किया, तथा शेख निजाउद्दीन की जीवनी भी संग्रह की।

उसका समकालीन दूसरा प्रसिद्ध कवि बदरुद्दीन था जो बद्रेछच के नाम से प्रसिद्ध है। यह भी मुहम्मद तुगलक की सभा का रत्न था। उसकी प्रशंसा में उसने अनेकों कवितायें लिखी थी। इतिहासकारों में जियाउद्दीन बरनी (तारीख फीरोजशाही) माइने उल मुल्तानी, यहियाबिन-अहमद तथा काजी मिनहाज सिराज बहुत प्रसिद्ध है।

मुहम्मद तुगलक के दरबार में अन्य प्रसिद्ध कवि, दार्शनिक तथा साहित्यिक थे, उनमें मौलाना मुई उद्दीन उमरानी का नाम अधिक प्रसिद्ध है। फीरोज के समय ख्वाजा अहमद थानेश्वरी तथा काजी मुक्तादर शहनाई अत्यन्त उच्च कोटि के कवि थे। यह मुसलमान विद्वान् संस्कृत से सर्वथा उदासीन न थे। यह कहना भूल है कि संस्कृत पुस्तकों का अनुवाद सर्व-प्रथम अकबर ने प्रारम्भ किया। अरब विजेताओं के समय में बहुत से विद्वानों ने हिन्दू-ओषधि-ज्ञान, दर्शन, ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त किया। महमूद गजनवी के समय अलबरुनी ने कई संस्कृत पुस्तकों का अनुवाद अरबी में किया। नगरकोट के किले से फीरोज तुगलक ने एक पुस्तकालय पर बड़ी सुरक्षापूर्वक अधिकार प्राप्त किया, और मौलाना इज्जउद्दीन को आज्ञा दी कि वह उनमें से दर्शन तथा अध्यात्म-वाद की पुस्तकों का अनुवाद करे।

हिन्दुओं की छत्रछाया में जो साहित्यिक उन्नति हुई, वह वर्णन नही की जा सकती। यह कहना, कि मुस्लिम-काल में हिन्दू मस्तिष्क, सर्वथा ऊसर रहे, भ्रम है। इस काल में उच्च कोटि के साहित्यिक तथा दार्शनिक चमके। रामानुज ने अपनी ब्रह्म सूत्र की व्याख्या इसी काल में की। धर्म मीमांसा तथा शासन प्रदीपिका की रचना इसी समय हुई। इसके अतिरिक्त योग तथा न्याय पर कई प्रसिद्ध पुस्तकें लिखी गई। जैन-नैयायिक सूरी का जन्म इसी शताब्दी में हुआ। भक्ति-साम्प्रदाय के प्रवर्तकों ने अपनी रचनायें इसी समय की। जयदेव की 'गीत-गोविन्द' नामक पुस्तक बारहवी शताब्दी में लिखी गई। इसके अतिरिक्त हिन्दू नाटक, साहित्य की इस

समय में विशेष प्रगति हुई। इनमें ललित-विग्रह राजु जयदेव लिखित हमीर-मद-मर्दन आदि अनेको पुस्तकें प्रसिद्ध है। ज्योतिष शास्त्र में भी कई पुस्तकों की रचना हुई। प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य १११४ ई० में पैदा हुआ था। इतिहास साहित्य में कल्हन की राजतरगिणी बारहवी शताब्दी की प्रसिद्ध पुस्तक है। परन्तु मिथिला और बगाल में, जहाँ मुस्लिम शासन की क्रूरता इतनी न पहुँच सकी थी, अधिक साहित्यिक उन्नति हुई। बिहार में विद्यापति ठाकुर तथा बगाल में रघुनन्दन मिश्र प्रकाड पण्डितो में है। भाषा साहित्य में चन्द्रबरदाई का 'पृथ्वीराज रासो' तथा जगनिक का 'आल्हा खड' और सारगधर का 'हमीर रासो,' तथा 'हमीर काव्य' प्रसिद्ध है। अमीर खुसरो ने भी हिन्दी भाषा की विशेष प्रशसा की है, और उसन कुछ काव्य भी लिखा है। नामदेव मरहठी भाषा ही में लिखता था। स्वामी रामानन्द अपना व्याख्यान भाषा में ही देते थे।

इस प्रकार हम देखते है कि भाषा साहित्य पर्याप्त ऊचा था। प्रान्तीय साम्राज्य जैसे विजयनगर, बगाल, जौनपुर, गुजरात साहित्य तथा कलाकौशल की उन्नति में बडे सहायक हुए।

(औ) कला—मुस्लिम आक्रमण से पहले भारतवर्ष में एक विशेष प्रकार की कला का विकास हो चुका था। यहां कलाविदो ने अत्यन्त सुन्दर मन्दिर तथा मठ व विहारो के निर्माण में भारतीय कला का उच्चतम परिचय दिया। हिन्दू तथा बौद्ध काल में राजाओ के आश्रय में कला को विशेष प्रोत्साहन मिला। प्राचीन भवनो के भग्नावशेष इसके प्रतीक हैं। जब मुसलमानो ने हिन्दू विशेषज्ञो को अपनी शरण में ले लिया तो उन्होने उनकी रुचि के अनुसार कला में विशेष परिवर्तन किया। यह परिवर्तन सादगी की ओर था जैसा कि मुसलमान धर्म म पाई जाती है। मुसलमान आक्रमणो से भारतीय कला की शान्ति भग न हुई। वह आक्रमण काल में अपने विकास की ओर बढती रही। हिन्दू कारीगरो ने अपने मुसलमान-स्वामियो के लिये वैसा ही शातिपूर्वक कार्य करना आरम्भ कर दिया, जैसा कि वे अपने स्वामियो के लिये करते थे। उन्होने उनकी रुचि के अनुसार परिवर्तन किये, किसी विदेशी आदर्श को देखकर नही। मुस्लिम इमारतो को देखकर प्रसिद्ध समालोचक हैविल लिखता है कि "मुस्लिम-काल की इमारतें अपनी भारतीयता को पूर्ण प्रकट करती है। उनमें विदेशी काल की परिछाया बिल्कुल प्रकट नही होती। यह आवश्यक है कि उनकी रुचि अधिक सादगी की ओर थी। अत: इस प्रकार का परिवर्तन कला में दृष्टि गोचर होने लगा।"

तुर्क अफगान केवल रक्त-पिपासु न थे। उनमें से कुछ कला तथा सभ्यता का भी विशेष आदर करते थे। उनके कुछ क्रूर योद्धा तथा बादशाह, जैसे कुतुबुद्दीन, अला-उद्दीन भव्य-भवन निर्माण के अत्यन्त प्रेमी थे। उन्होंने बहुत से हिन्दू तथा जैन-मन्दिरों को मस्जिद में परिवर्तित कराया। इस प्रकार हिन्दू तथा मुस्लिम कला के सम्मिश्रण में एक प्रकार की समानता, जो हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों में दृष्टि-गोचर होती थी, बहुत सहायक सिद्ध हुई। बीच में बड़ा आँगन तथा चारों ओर कमरे, दूसरी सजावटें जो हिन्दू तथा मुसलमानों ने अपने पूर्वजों से ली थी। इसीलिये जिन मन्दिरों में यह विशेषता थी वह आसानी से मस्जिदों में परिवर्तित कर दिए गये। एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि देहली में जो इमारतें बनाई गईं, उनमें परिवर्तन अधिक दृष्टि गोचर होता है और दूरस्थ प्रान्तों में कम।

आरम्भ में अरब विजय के समय में, तथा महमूद गजनवी के आक्रमण के काल में कोई मुसलमानी प्रभाव भारतीय कला पर न पड़ा। अरब-विजेताओं तथा महमूद गजनवी ने भारतीय-कला की बड़ी प्रशंसा की। दासवंशीय सुल्तानों में कुतुबुद्दीन ने कुतुब मसजिद तथा कुतुबमीनार का निर्माण आरम्भ कराया, जिन्हें इल्तुतमिश ने पूरा कराया। अलाउद्दीन का देहली-स्थित अलाई दरवाजा दर्शनीय वस्तु है। फीरोज तुगलक ने भवन-निर्माण-कला को विशेष प्रोत्साहन दिया। जौनपुर में तुर्की सुल्तान तथा बंगाल के हुसनशाही वंश के समय में अनेक सुन्दर भवनों का निर्माण प्रकट करता है कि मुसलमान सुल्तान केवल तलवार के बल पर धर्म-प्रसार करने वाले अथवा शुष्क सेनाध्यक्ष ही न थे वरन् कला-प्रेमी भी थे। उनके हृदय में सैनिक-वीरता तथा क्रूरता के साथ-साथ कलात्मक भावनायें छिपी हुई थीं, जो उनकी मानवी प्रकृति का परिचय देती हैं।

## प्रश्न

१—तुर्कों ने विधर्मियों के साथ कैसा वर्ताव किया ?

२—हिन्दुओं और मुसलमानों में तुर्क-शासन में अधिक सम्पर्क क्यों स्थापित न हो सका ? इस सम्पर्क को स्थापित करा के लिए हिन्दू और मुसलमान सन्तों ने क्या योग दिया ?

३—तुर्क-शासन का रूप कैसा था ?

४—तुर्क सल्तनत काल मे भारत की सामाजिक-दशा कैसी थी ?

५—तुर्कों ने सा य व कला की उन्नति में क्या प्रगति की ?

## अध्याय ३३

# १२०० ई० से १५२६ ई० तक के भारत पर दृष्टिपात

**अस्थिरता तथा अराजकता की व्याख्या :**—भारत में १२०० ई० से १५२६ ई० तक का मुसलमान-काल संघर्ष तथा विद्रोह से ओतप्रोत है, अतः एक साधारण पाठक को मुस्लिम शासक असभ्य, बर्बर, धर्मान्ध, अन्यायी एवं पाशविक वृत्तियों के दास प्रतीत होते हैं, जिन्होंने अपने अमानुषिक कृत्यों से भारत-भूमि को पदाक्रान्त कर दिया। निरीह भारतीय जनता को तलवार के घाट उतारा, करोड़ों का धर्म भ्रष्ट कर मुस्लिम-धर्म अंगीकार करने को बाध्य कर, गगनचुम्बी भवनों तथा मन्दिरों की ललितकला को भू-कणों में विलीन कर, प्राचीन हिन्दू-धर्म तथा हिन्दू संस्कृति का सर्वनाश कर डाला। परन्तु मुस्लिम शासकों की केवल इतनी ही आलोचना पर्याप्त नहीं। इतिहास शास्त्र के गम्भीर विद्यार्थी को मुस्लिम-शासकों की वास्तविक समालोचना एवं उसका मूल्यांकन करने से पूर्व गहन अध्ययन की आवश्यकता है। सर्वप्रथम उनको यह ध्यान रखना परमावश्यक है कि अपने पूर्ववर्ती हिन्दू सम्राटों से वे दो बातों में भिन्न थे। प्रथम वे इस देश के निवासी न थे, वरन् भिन्न देशों से यहाँ आये। भारतीय वातावरण के अनुकूल अपने आप को बनाने के हेतु उन्हें कुछ समय की भी आवश्यकता थी। इस अनुकूलता में संघर्ष निहित था। उन्हें भारत में उचित स्थान प्राप्त करना आवश्यक था और इस इच्छा में भी संघर्ष अनिवार्य रूप से निहित था। अन्यथा चप्पा-चप्पा भूमि-मार्ग पर मर मिटने वाले तथा रणवेदी पर जीवन-उत्सर्ग कर विजयश्री को वरण करने वाले भारतीय राजपूत वीर अपनी स्वतन्त्रता को एक विदेशी जाति के हाथों में किस प्रकार समर्पित कर देते ? निस्संदेह, पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष तथा आत्माभिमान उन्हें एकता के सूत्र में संकलित न होने देते थे। परन्तु इसमें भी कोई संदेह नहीं कि जहाँ तक किसी वर्ग-विशेष के अधिकृत प्रदेश का प्रश्न था, वह वर्ग उसकी एक-एक इंच भूमि के ऊपर प्राणों की आहुति देने के हेतु कटिबद्ध था और यदि दुर्भाग्यवश अपने अस्तित्व के मूल्य पर भी विजयश्री का वरण न कर सका हो तो वह अपनी अपहृत स्वतन्त्रता को पुनः प्राप्त करने के हेतु उपयुक्त अवसर को लालायित भी रहता था। यही नहीं, वरन् साधारण जीवन में भी वह एक प्रकार का जत्था बनाकर—जिसे आज के सभ्य शब्दों में गुरिल्ला सेना कह सकते हैं, मुसलमान शासकों का शान्ति एवं समृद्धि भंग कर राज्योन्मूलन के लिए उद्यत रहता था। उसकी अन्तरात्मा

मानमर्य्यादा एवं भूत की भव्य-भावनायें किसी भी प्रकार विदेशी राज्य को सहन करने की आज्ञा न देती थी। यही मूल कारण था कि जब कोई सुलतान संकट व्यस्त हो समस्त राज्य पर दृष्टिपात न कर सका तो यह वर्ग तत्क्षणीय विद्रोह की भभकती हुई भट्टी में यवन-शासन को भस्मीभूत कर स्वतन्त्र शासक बन बैठा। परन्तु पराजय पर पराजय तथा प्रत्येक पराजय संबन्धित सामूहिक प्राण-दण्ड प्राप्त करते-करते अंत में उन्हें मुसलमान-सत्ता मान्य होती गई। परिणाम यह हुआ कि क्रांतिकारी-शक्तियाँ दिन प्रति-दिन निर्बल होती गईं तथा हिन्दू-विद्रोहों की सख्या क्षीण होती चली गई। यही कारण है कि बलबान का इतिहास जहाँ हिन्दू-विद्रोहिओं के रक्त से रंजित है तथा अलाउद्दीन जहाँ हिन्दुओं की आर्थिक कमर तोड़ने के लिए बाध्य होता है, वहाँ मुहम्मद तुगलक तथा फीरोज तुगलक हिन्दुओं से इतने भयभीत प्रतीत नही होते। मुहम्मद तुगलक हिन्दुओं की शक्तिहीनता के कारण ही राजकीय मामलों में धर्मान्धता तथा मुस्लिम सिद्धान्तवाद का बहिष्कार कर मनुष्यवाद को ग्रहण कर सका। इसका यह अभिप्राय कदापि नही कि सामूहिक कठोर दण्ड के सम्मुख हिन्दुओं का स्वातन्त्र्य-प्रेम सदैव के लिए नतमस्तक हो गया। अनुभव ने उन्हें अधिक विवेकशील एवं अवसरवादी बना दिया। अब वे क्रांतिकारी असफलता प्राप्त करने के स्थान पर क्रांति को सफल बनाने की प्रतीक्षा करने लगे। यही कारण है कि जहाँ हम दास तथा खिलजी वंशों के शासन-काल में अनेक विद्रोह असफलता को प्राप्त हुए देखते हैं, वहाँ मुहम्मद तुगलक और अन्य पठान वंशों के शासन-काल में हमें न्यून परन्तु सफल हिन्दू विद्रोह दृष्टिगोचर होते हैं। विजयनगर साम्राज्य, राणा संग्रामसिंह का उन्नति-शिखर पर आरूढ़ हो भारत में पुनः हिन्दू साम्राज्य-स्थापन के सुखद स्वप्न देखना इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। अतः यदि हम हिन्दू स्वातन्त्र्य-प्रेम तथा उसकी प्राप्ति के हेतु निरंतर सघर्ष के इस पहलू की उचित प्रशंसा न करें तो निश्चय ही हमें हिन्दू-सघर्ष से परिपूर्ण १५२३ ई० से पूर्व का मुस्लिम-इतिहास अराजकता, धर्मान्धता तथा अमानुषिक कृत्यों का पुञ्ज स्वरूप प्रतीत होगा। हिन्दुओं के लिए जहाँ स्वदेश-प्रेम, स्वतंत्र सत्ता, मान-महत्व की रक्षा एवं धर्मप्रियता का महत्वपूर्ण प्रश्न था। वहाँ मुसलमानों को भी अपना अस्तित्व स्थापित करने का महत्वपूर्ण प्रश्न था। जहाँ आत्माभिमानी हिन्दुओं के लिए संसार की किसी भी जाति द्वारा उनकी स्वतंत्रता अपहरण एवं आत्मसम्मान तथा मान-मर्य्यादा को ठेस पहुँचना असह्य था, वहाँ विधर्मियों से युद्ध कर गाजी तथा शहीद पद-प्राप्ति से स्वर्ण स्वप्न देखने वाले यवनों को भी यह सर्वथा असह्य था कि वे भारत की शस्य-श्यामला भूमि को छोड़कर अफगानिस्तान तथा तुर्किस्तान जैसे

ऊबड-खाबड भू-भाग पर अपने अस्तित्व-स्थापन की जटिल समस्या का आह्वान करें। इसीलिए घोर सग्राम हुए। सघर्ष में जन-धन की क्षति अवश्यम्भावी है अतः ऐसा ही हुआ। इसी को साधारण पाठक ने असभ्यता, क्रूरता, अमानुषिकता तथा धर्मान्धता इत्यादि का नाम दे इस मुस्लिम-काल के इतिहास के केवल बाह्य-रूप को देखा। इन अविरल सघर्षों का वास्तविक रूप हिन्दुओं का स्वातन्त्र्य प्रेम, मान-मर्यादा की रक्षा, मुसलमानों की अस्तित्व की स्थापना तथा इहलौकिक एव पारलौकिक सुख-समृद्धि की स्वर्ण कल्पना थी।

मुस्लिम इतिहास का दूसरा पहलू है मुस्लिम-धर्म का 'राज्यवाद का सिद्धात' जो इस निरतर आतरिक सग्राम की व्याख्या करता है। मुस्लिम राजत्व पद निर्वाचन पर निर्भर है। तदनुसार एक सुल्तान की मृत्यु के पश्चात् मुस्लिम जनता अपने किसी नागरिक को, जिस वह शासन करने के योग्य समझे, अपना सुलतान घोषित कर सकती थी। जन सिद्धात को उचित स्थान देते हुए हम यह भी कह सकते है कि मध्यकालीन युग में, जब मुस्लिम-साम्राज्य १००० मील लम्बे तथा २००० मील चौडे उत्तरी भारत में विस्तृत हो चुका था तथा जब यातायात के साधन भी इतने सुलभ न थे और यह भी सभव न था कि जनता किसी एक स्थान पर एकत्रित होकर अपना सुल्तान निर्वाचित कर ले, धार्मिक सिद्धातों में अन्धविश्वास रखने वाले मुसलमान निर्वाचन-सिद्धात को छोडकर आसानी से हिन्दू पैतृक-सिद्धात अपनाने को उद्यत न थे। फलत १२०० से १५२६ ई० पर्यन्त के मुस्लिम इतिहास में योग्यता, निर्वाचन तथा पैतृक-अधिकार में निरतर तुमुल युद्ध होता रहा। निर्वाचन सिद्धात का परित्याग न कर मुस्लिम जनता को पैतृक सिद्धात ग्रहण करने में अनेक विद्रोह तथा क्रातियों में होकर निकलना पडा। निर्वाचन सिद्धात में एक और भी कमी यह थी कि यह प्रत्येक मुस्लिम-नागरिक की स्वार्थान्धता एवं महत्वाकाक्षाओं को उद्दीप्त कर उसे राज-सत्ता प्राप्त करने का प्रोत्साहन देता था। परिणाम यह होता था कि सुल्तान के निधन पर योग्यता तथा निर्वाचन-सिद्धात से प्रेरित प्रत्येक अवसरवादी मुस्लिम नागरिक रिक्त सिंहासन पर ही नही, वरन् सुल्तान के जीवन-काल में भी,—जब वह वृद्धावस्था में हो अथवा किसी सकट में ग्रस्त हो, शासन-भार सँभालने में थोडी-सी कठिनाई अनुभव करता हो—उस पर अयोग्यता का दोषारोपण कर अपनी स्वार्थ-सिद्धि में प्रयत्नशील हो जाता। इसी के फलस्वरूप सुल्तान के जीवन-काल एव निधन पर घोर सघर्ष होता। इन्ही झगडो ने, जो प्राय. प्रत्येक सुल्तान के जीवन तथा मरण-काल में हुए, इस मुस्लिम-काल को अराजकता का रूप दे दिया। उक्त बात को पूर्णतया समझने के लिए समुचित

प्रतीत होता है कि यहाँ मुस्लिम राज्यवाद के क्रमिक विकास तथा उसके निर्वाचन सिद्धांत से पैतृक-सिद्धांत पर आने का परिचय दिया जावे।

कुतुबुद्दीन के राज्य-काल में मुहम्मद गोरी के अन्य प्रभावशाली दास जैसे ताजउद्दीन यलदज़ तथा नासिरुद्दीन कुबेचा अपने आपको भारतीय साम्राज्य का उतना ही अधिकारी समझते रहे, जितना कि कुतुबुद्दीन स्वयं था। अतः आजीवन राज्यसत्ता प्राप्त करने में प्रयत्नशील रहे। उसकी मृत्यु के पश्चात् अमीरों के एक वर्ग ने उसके पुत्र आरामशाह को, तो दूसरे वर्ग ने योग्यता के सिद्धांत पर इल्तुतमिश को सुलतान घोषित कर दिया। आरामशाह के विरुद्ध इल्तुतमिश ने सफलता प्राप्त की। इस प्रकार उसने पैतृक-सिद्धांत को ठेस पहुँचाकर योग्यतानुसार निर्वाचन-सिद्धांत को ही उत्तराधिकार का मापदण्ड ठहराया। इल्तुतमिश ने अपने जीवन-काल में ही अपने पुत्रों की अयोग्यता से क्षुब्ध हो अपनी सुयोग्य पुत्री रज़िया को अपना उत्तराधिकारी चुना। उसके निधन पर अमीरों को एक स्त्री का शासन सह्य न हुआ, परन्तु पुत्रों में से एक के पश्चात् दूसरा अयोग्य ही निकलता गया तो अंत में अमीरों को रज़िया ही गद्दी पर बैठानी पड़ी। जब उसके स्त्रीत्व ने एक हब्शी के-प्रेम द्वारा अपनी वास्तविकता का परिचय दिया तो वे क्षुब्ध हो उठे। परिणाम हुआ विद्रोह तथा रज़िया की मृत्यु, परन्तु तत्पश्चादपि अमीरों ने इल्तुतमिश के पुत्रों में ही राजगद्दी को सीमित रख पैतृक अधिकार पर आना चाहा। योग्यता अब भी उनका लक्ष्य रहीं। नासिरुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् पुत्र के अभाव में उसके जामाता बलबन का गद्दी प्राप्त करना पैतृक अधिकार का ही रूप था। परन्तु इसके पश्चात् बुगराखाँ के होते हुए उसके पुत्र कैकबाद को गद्दी पर बैठाना, पुत्रों की आकांक्षाओं को प्रज्ज्वलित रखने का अवसर प्रदान करना था। जिसको उदाहरण स्वरूप अपने समक्ष रख एक महत्वाकांक्षी पुत्र अपने पिता के जीवन-काल में ही गद्दी-प्राप्ति का प्रयत्न कर साम्राज्य की शांति भंग करने का प्रयत्न कर सकता था। परन्तु खिलजी-वर्ग ने कैकबाद की हत्या कर जलालुद्दीन खिलजी को सम्राट् घोषित कर पैतृक अधिकार को, जो एक सिद्धांत का रूप ग्रहण कर चुका था, विशेष क्षति पहुँचाई और सैन्य और सबलता को उत्तराधिकार का मापदण्ड ठहराया। उसके पश्चात् जब अलाउद्दीन ने उसके जीवन-काल में ही तथा पुत्रों के होते हुए भी जलालुद्दीन का वध कर राजसत्ता प्राप्त की तो पैतृक अधिकार की वह दृढ़ता जो उसने दास-वंश की छत्रछाया में पचासों वर्ष में प्राप्त की थी, सर्वथा नष्ट-भ्रष्ट हो गई। सैन्य-सबलता का सिद्धांत ही उत्तराधिकार का निर्णायक बन गया। यही कारण था कि हाजी मौला जैसे निम्न श्रेणी के व्यक्तियों ने भी

सम्राट् होने के सुखद स्वप्न देखने प्रारम्भ कर दिये। यह उक्त सिद्धांत उस समय अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ प्रतीत होता है, जब हाजी ने अपनी आकांक्षा क्रियान्वित करने का असफल प्रयास भी किया। हाजी का षड्यन्त्र यद्यपि असफल रहा, किन्तु उसने अन्य महत्वाकांक्षी एवं अवसरवादी व्यक्तियों के लिये द्वार खोल दिया। इस प्रकार विद्रोहों तथा षड्यन्त्रों को 'और भी प्रोत्साहन मिला। अलाउद्दीन के जीवन-काल में ही काफूर का गद्दी प्राप्त करने का षड्यन्त्र इसका ज्वलन्त उदाहरण है। मुबारिकशाह के पश्चात् खुसरो का गद्दी प्राप्ति के हेतु प्रयास इसका ही प्रतीक है। परन्तु गयासुद्दीन तुगलक के झण्डे के नीचे लगभग सब प्रभावशाली अमीरों का एकत्रित होना योग्यता के सिद्धांत की पुनरावृत्ति का उत्कृष्ट नमूना है। मुहम्मद तुगलक का अपने पिता के वध में सहायक होना महत्वाकांक्षी उत्तराधिकारियों को पथ-प्रदर्शन का कार्य कर सकता था। फीरोज तुगलक के जीवन-काल में ही उत्तराधिकार पर झगड़ा तथा उसके निधन पर अन्य तुगलक राजकुमारों का संघर्ष मुस्लिम पैतृक अधिकार की अनिश्चितता प्रकट करता है। सैयद तथा लोदी वंश भी उत्तराधिकार की इसी परिधि पर चकित रहा। इस प्रकार हम देखते हैं। कि उत्तराधिकारी के एक स्पष्ट सिद्धांत के अभाव में मुस्लिम साम्राज्य की शान्ति सदैव अशांति में परिणत होती रही। उत्तराधिकारी की अनिश्चितता में भीषण षड्यंत्र दुर्दान्त संघर्ष एवं प्रलयंकर विद्रोह निहित थे, फलस्वरूप योग्य से योग्य सम्राट् का शासन-काल भी कदाचित ही अछूता रह पाया। यद्यपि मुस्लिम जनता निर्वाचन सिद्धांत से कुछ पराङ्मुख होकर पैतृक अधिकार की ओर अग्रसर हो रही थी, तथापि ज्येष्ठ पुत्र, जैसा कि हिन्दुओं में था, अथवा संतान के अन्य निश्चित विशेषण के अभाव में सब पुत्रों अथवा सम्बन्धियों का राज्य-प्राप्ति का प्रयत्न करना और परिणाम स्वरूप उनका षड्यन्त्र तथा विद्रोह की आग सुलगाना स्वभाविक ही था। उनको रोकना किसी के भी हाथ की बात नहीं थी। आगे चलकर मुगल काल में भी उत्तराधिकार की यह अनिश्चितता साम्राज्य शांति में अत्यन्त बाधक रही। इस प्रकार हम देखते हैं कि १२०० ई० से १५२६ ई० तक का मुस्लिम काल आदि विद्रोह षड्यन्त्र, अथवा कठोर दण्ड इत्यादि से परिपूर्ण है, तो कोई सुल्तान दोषी नहीं, प्रत्युत उपरोक्त उत्तराधिकार का सिद्धान्त एवं उनकी अस्तित्व स्थापना की आकांक्षा इसकी उत्तरदायी है।

शासन.—देहली का मुस्लिम-शासन निरंकुश ऐक्यवाद था, जिसमें सुल्तान की इच्छा सर्वोपरि तथा उसका शब्द नियम था। समय तथा परिस्थिति भी इस प्रकार की थी कि ऐसा होना ही आवश्यक था। हिन्दू रियासतों का विरोध, मुस्लिम-

अमीरों की आकांक्षायें तथा मंगोल आक्रमण इत्यादि ने सुल्तान की समस्त सत्ता स्वयं में केन्द्रीभूत करने तथा समस्त विभागों पर अपना अधिकार स्थापित करने को बाध्य कर दिया। निर्बल तथा क्षीणकाय सुल्तानों के शासन-काल में माल-कर्मचारियों तथा जागीरदारों से त्रस्त जनता सदैव एक सबल शासक के सैन्य बल में शान्ति तथा व्यवस्था का संदेश देखती थी। उक्त कारणों ने मुस्लिम शासन को स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश बना दिया। निरंकुश तथा अवलम्बित मुस्लिम शासन का यह अर्थ नहीं कि जनता तथा उच्च वर्ग की उसमें कोई आवाज ही न थी, वरन् इसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि सुल्तान अपने परामर्श के हेतु मन्त्रियों, सेनापतियों, धार्मिक विद्वानों एवं प्रभावशाली अमीरों का एक समूह अपने चारों ओर रखता था, तथापि वह सर्वसम्मति अथवा उनके बहुमत से तनिक भी बाध्य न था। यह सब का मत प्राप्त करने के पश्चात् स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी इच्छानुकूल आचरण कर मान्य को अमान्य तथा अमान्य को मान्य कर सकता था।

इस प्रकार मुस्लिम राज्य राजतन्त्र सैनिक राष्ट्र था जिसमें प्रत्येक पदाधिकारी के लिये दैनिक शासन सम्बन्धी क्रियाओं के अतिरिक्त सैनिक सेवायें प्रदान करना भी परमावश्यक था। इस प्रकार निम्न श्रेणी के कर्मचारी से माल-विभाग के अध्यक्ष तथा प्रधान मन्त्री के लिये सैन्याधिकारी होना अनिवार्य था। कभी-कभी तो माल-विभाग के अध्यक्षों को सैन्य कार्य में इतना व्यस्त रहना पड़ता था कि वर्षों तक उन्हें अपने विभाग के निरीक्षण अथवा संचालन के लिये समय ही पर्याप्त नहीं होता था। दैनिक शासन संचालन के लिए समस्त साम्राज्य अनेक जागीरों में विभक्त था। जो योग्य सेना-नायकों की, जिन्हें मालिक अथवा अमीर कहते थे, अध्यक्षता में छोड़ दी जाती थी। इन अमीरों को एक प्रकार का गवर्नर तथा उनकी जागीरों को एक प्रांत कहा जा सकता है, ये अमीर अपने अधिकृत प्रदेश अर्थात जागीर में सीमित अधिकार रखते थे। ये अपनी स्वतन्त्रता पूर्वक सेना रख सकते थे, इस दृष्टि से उन्हें सुल्तान के सहायक राजा कहा जा सकता है। इससे स्पष्ट है कि इस प्रकार की व्यवस्था, जिसमें प्रभावशाली अमीरों की आकाक्षायें स्वयं निहित थी, साम्राज्य के लिये कितनी घातक सिद्ध हो सकती थी।

माल विभाग:—माल विभाग अनेक जागीरों में विभक्त था। पूर्ण मुस्लिम साम्राज्य के दैनिक-प्रबन्ध के लिये एक उच्च-पदाधिकारी, जिसे वज़ीर अथवा प्रधान मन्त्री कहते थे नियुक्त किया जाता था। वह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पद था। यह पद साम्राज्य के सभी विभागों द्वारा आदरणीय तथा सम्मानित था। यह विभाग सब

से अधिक प्रभावशाली भी था। बलबन जैसे मन्त्रियो के अधिकार में तो यह पद सुल्तान से भी अधिक प्रभावशाली हो जाता था। कभी-कभी तो उक्त पदाधिकारी इतना प्रबल तथा महत्वपूर्ण बन जाता था कि वह स्वय अन्य अमीरो की सहायता से निर्धारित करता था कि अमुक व्यक्ति सुलतान बनाया जावे अमुक नही। सब विभागो पर नियन्त्रण ही उसका कार्य था। उसकी सहायतार्थ बहुत से पदाधिकारी होते थे। यह सब मिलकर विजारत विभाग कहलाता था। इनमें ६ पदाधिकारी विशेप रूप से प्रभुत्व रखते थे—मुस्तौफी अथवा मालमन्त्री, मुशरिफ अर्थात् एकाउण्टेण्ट जनरल, ममलूक खास अर्थात् अध्यक्ष महल या गृह-विभाग, दीवाने मोहनसिब व दीवानेउलूफ अर्थात् धर्मगुरु या राज-पुरोहित तथा दीवान-ए-आरज अर्थात सेनाध्यक्ष। हम देखते है कि ये पदाधिकारी हिन्दू-पदाधिकारियो का फारसी नामकरण है, जो सिद्ध करता है कि इतिहास विकासमय है। इसमें प्रत्येक जाति अपनी पूर्व जाति के अनुभव पर ही अपनी व्यवस्था एव प्रबन्ध की भित्तियाँ खड़ी करती है। आरम्भ में केवल उपरोक्त विभाग तथा पदाधिकारियो द्वारा ही शासन-कार्य चलता रहा। परन्तु ज्यो-ज्यो साम्राज्य के विस्तार में वृद्धि होती गई, अधिक पदाधिकारियो की आवश्यकता पड़ती गई। फलस्वरूप नवीन विभाग स्थापित होते गये। वजीर के कार्य में आधिक्य देखकर इल्तुतमिश ने नायब वजीर अर्थात् सहायक प्रधानमन्त्री पद की स्थापना की, जिसे वर्तमानकाल में डिप्टी-प्राइम-मिनिस्टर के नाम से पुकारते है। इसी प्रकार बलबन ने माल-विभाग तथा सेना के हिसाब का पृथक-करण करने के हेतु रावत-ए-आरज नामक एक पदाधिकारी की नियुक्ति की, जिसका कार्य सैन्य व्यय का ब्योरा रखना था। इसी प्रकार अलाउद्दीन ने दीवान-ए-वकूफ नामक पद की स्थापना कर साम्राज्य के आय तथा व्यय का विभाग पृथक्-पृथक् कर दिया। आगे चलकर इसी प्रकार मुहम्मद तुगलक ने दुर्भिक्ष काल में कृषि को प्रोत्साहन देने तथा उसकी वृद्धि के हेतु एक पृथक कृषि-विभाग स्थापित कर उसे दीवान-ए-अमीर को ही अर्थात कृषि-मन्त्री को सौंप दिया। फीरोज तुगलक ने भी शाही भूमि का प्रबन्ध करने के लिये एक अलग विभाग स्थापित किया। इस प्रकार आवश्यकतानुसार विभागो की सख्या, जैसा कि वर्तमान काल में शरणार्थी-समस्या हल करने के हेतु शरणार्थी विभाग स्थापित किया गया है, वृद्धि होती चली गई तथा शासन-व्यवस्था और भी जटिल होती चली गई। परन्तु यह सदिग्ध है कि वह इतनी उपयोगी भी थी या नही जितनी कि बलबन-काल की सरल व्यवस्था थी।

भूमि-प्रबन्ध :—भूमि-प्रबन्ध इत्यादि के विषय में प्रारम्भिक देहली सुल्तानों

का कोई अनुभव न था। वे प्रकृति से सैनिक थे। इस विषय में उनका पथ-प्रदर्शन करने के लिए मुस्लिम माल-सिद्धान्त तथा गजनी सुल्तानों का प्रबन्ध जो पहले से उनके अधिकृत-प्रदेश में लागू था, उनके सम्मुख थे। तदनुसार उन्होंने, जैसा कि पहिले उल्लेख किया गया है, अपने अधिकृत-प्रदेश को जागीरों में विभक्त किया। इस प्रकार जागीर के रूप में दी हुई भूमि 'इक्ता' कहलाती थी, तथा जिन्हें वह भूमि प्रदान की जाती थी उन्हें मुक्ता कहते थे। 'इक्ता' प्राय: सैनिकों को कुछ निश्चित अवधि अथवा आजीवन हेतु प्रदान की जाती थी। प्रत्येक 'इक्ता' अथवा प्रदत्त भूमि में आय के दो प्रमुख साधन थे—धार्मिक कर जजिया तथा भूमि-कर आदि अन्य कर। इनमें से भूमि-कर आदि साधारणतया एक 'मुक्ता' को जीवन-पर्यन्त के लिए एक साथ प्रदान कर दिये जाते थे; तथा जजिया एक बार में केवल एक वर्ष के लिए प्रदान किया जाता था। 'मुक्ता' का कर्तव्य था कि वह अपनी प्रदत्त भूमि के कर एकत्रित करे और उसमें से अपना रुपया, जो प्रदत्त किया हुआ है, काटकर सुल्तानी खजाने में जमा करदे। यदि उसने कर संचय करने में कुछ कमी की है, तो वह कम धन उसके स्वयं के पुरस्कार में से काट लिया जाता था। अतः प्रत्येक जागीरदार अथवा 'मुक्ता' अधिक ही कर एकत्रित करने का सतत प्रयत्न करता था और इस प्रकार वह इतना अधिक एकत्रित कर लेता था कि संयोग से यदि किसी वर्ष दुर्भिक्ष इत्यादि के कारण न्यून कर एकत्रित हो, तो उस संचित धन से घाटे की पूर्ति कर सके। इस भांति स्वयं के पुरस्कार में किसी भी प्रकार से कमी न पड़ने देने का वह भरसक प्रयत्न करता था।

'इक्ता' अर्थात प्रदत्त भूमि के अतिरिक्त एक प्रकार की भूमि और थी, । 'खालसा' या 'मुमलकत' कहते थे। इनका सीधा सुल्तान से सम्बन्ध था। राजकर्मचारी ही इस खालसा भूमि-भोगी से कर वसूल करते थे।

भूमि की तृतीय श्रेणी राजाओं तथा जमींदारों के अधिकार में थी, जिन्होंने सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर एक निश्चित वार्षिक कर, जिसको 'खिराज' कहते थे, देने का वचन दे दिया था। फलस्वरूप उनकी रियासतें अथवा जायदादें उन्हीं पर छोड़ दी गई थीं।

उपरोक्त तीन श्रेणियों के अतिरिक्त भूमि की एक और श्रेणी भी थी जिसे 'मिलक' कहते थे। यह प्रशंसनीय राज-सेवा के पुरस्कार स्वरूप लोगों को भेंट की जाती थी। इसकी समस्त आय पर प्राप्तकर्ता का पूर्ण अधिकार होता था। सुल्तान का उसमें कोई अंश नहीं होता था। राजकीय आय का एक साधन 'लूट के माल'

का राज भाग था। किसी विजय-प्राप्ति के पश्चात् जब सेना को कुछ लूट का माल प्राप्त होता तो प्रत्येक सैनिक के भाग में से ⅕ अंश राज-कोष के लिये ले लिया जाता था।

इसके अतिरिक्त मुस्लिम जनता से एक कर 'जकात' भी लिया जाता था। यह एक प्रकार का दान था जो आय का $\frac{1}{40}$ अंश होता था। इस कर द्वारा मुस्लिम धर्म-संस्थाओं की सहायता की जाती थी। अन्य कर जिन्हें 'अब्वाब' कहते थे और जो मात्रा में भी कम ही थे, वसूल कर शिक्षा आदि में व्यय किये जाते थे।

इस प्रकार राजकीय आय के उपरोक्त पांच साधन थे—खिराज, भूमि-कर जजिया, तथा लूट का ⅕ अंश तथा जकात और अब्वाब आय $\frac{1}{40}$ अंश वसूल किया जाता था। ये कर मुद्रा तथा पदार्थ दोनों ही रूप में लिए जाते थे। प्रत्येक सुल्तान ने उपरोक्त पाँच प्रकार के कर ही लागू न रक्खे। उनकी संख्या एवं मात्रा प्रत्येक सुल्तान के शासनकाल में घटती-बढ़ती रही। कुतुबुद्दीन ऐबक ने उपरोक्त करों में से केवल शरअी कर लागू किये। इल्तुतमिश ने उसकी व्यवस्था में कोई परिवर्तन न किया। बलबन के शासनकाल में भूमि 'इक्ताओं' के रूप में सैनिकों में विभक्त थी। उसने सोचा कि 'इक्ता' भूमि की व्यवस्था अत्यन्त शोचनीय है। मूल सैनिकों अर्थात् मुक्ताओं में से, जिनको इल्तुतमिश ने भूमि प्रदान की थी, अधिकतर वृद्ध हो गये थे, कुछ मर गए थे और उनके उत्तराधिकारी उनके पुत्र अथवा विधवायें 'इक्ता' प्राप्ति के योग्य न थे, क्योंकि 'इक्ता-प्रदान' एक सैनिक के वेतन का ही दूसरा रूप था और इसलिए एक इक्ता के लिए यह अनिवार्य था कि वह आवश्यकतानुसार सैनिक सेवाएँ प्राप्त करे और यदि वह इसमें असमर्थ हो तो 'इक्ता' उससे हस्तान्तरित' कर दिया जावे। अतः बलबन ने सल्तनत के समस्त इक्ताओं की जाँच कराई और उचित संशोधन कर अयोग्य उत्तराधिकारियों से लौटाने तथा दूसरे योग्य सैनिकों को प्रदान करने की मंत्रणा की। परन्तु इस प्रकार जिन मुक्ताओं के इक्ता हाथ से जा रहे थे उन्होंने फखरुद्दीन कोतवाल-देहली से मिलकर यह संशोधन स्थगित कराया। परन्तु बलबन ने इक्ताओं की भूमि के निरीक्षणार्थ उचित पदाधिकारी नियुक्त किये, जिससे वे 'इक्ता' की राजकीय आय निश्चित समय पर राजकोष में एकत्रित करें तथा कोई अनुचित कार्यवाही न कर सकें। जलालुद्दीन जो अपने अधिकार को सुदृढ़ बनाना चाहता था, भूमि-व्यवस्था में किसी प्रकार का संशोधन कर असंतोष उत्पन्न नहीं करना चाहता था। परन्तु जब अलाउद्दीन गद्दी पर बैठा तो उसने इक्ता अथवा प्रदत्त भूमि में सुधार किया। उसने अनुचित इक्ता

वापिस ले लिया और अन्य उचित मनुष्यों को प्रदान किए। कुछ इक्ताओं को सर्वथा समाप्त कर उन्हें खालसा भूमि में सम्मिलित कर लिया।

अपनी विशाल सेना के लिए प्रचुर धन की आवश्यकता पूर्ति के हेतु उसने भूमि की उपज का ५० प्रतिशत कर लिया। इसके अतिरिक्त उसने चराई तथा घराइ कर लगाकर राजकीय आज में विशेष वृद्धि की। इस प्रकार उसने समस्त विस्तृत भूमि पर, जो चरागाह के रूप में पड़ी रहती थी, कर लगा दिया। यह जानने के लिए कि कितनी भूमि कृषि में है, जिससे भूमि कर की मात्रा निश्चित हो सके, उसने भूमि की नाप कराई। 'भूमि माप' की व्यवस्था हिन्दू-काल में भी थी। इस प्रकार नाप कराकर उसने प्रत्येक स्थान के पटवारी के कागजों में उचित संशोधन कराये।

अलाउद्दीन ने माल-विभाग में एक और भी दोष देखा। माल-कर्मचारी बहुत-सा भूमि-कर प्रत्येक वर्ष वसूल न कर अप्राप्त शेष धन में डाल देते थे। उसने उनके वेतन में वृद्धि कर उन्हें कर्त्तव्य-परायणता का पाठ सिखाया। इतने प्रोत्साहन पर भी ढील डालने वाले कर्मचारियों को उचित तथा कठोर दण्ड देकर उसने उन्हें कर्त्तव्यनिष्ठ होने को बाध्य किया।

उपरोक्त व्यवस्था तथा सुधारों को समस्त राज्य में लागू कर अलाउद्दीन ने साम्राज्य को एकता तथा समानता प्रदान की। राजकीय आय में विशेष वृद्धि हुई और सुल्तान को कभी आर्थिक कठिनाई उपस्थित नहीं हुई।

अलाउद्दीन के पश्चात् गयासुद्दीन तुगलक ने सैनिकों को प्रसन्न करने के हेतु उन्हें बहुत-सी भूमि इक्ता रूप में प्रदान की। उसने माल-विभाग का नियंत्रण कुछ ढीला कर दिया। उसने भूमि-कर की मात्रा भी कम कर दी। मुकद्दम चराई तथा घराई कर से भी मुक्त कर दिए गए। किन्तु हिन्दू-कृषकों के साथ उसने भी वही कठोरता का बर्ताव किया जो अलाउद्दीन ने किया था। दक्षिण की दूरी ध्यान में रखते हुए उसने एक 'नायब वजीर' की नियुक्ति की, जिसका कार्य दक्षिण के माल-विभाग का निरीक्षण करना था।

मुहम्मद तुगलक ने जैसा कि पहिले ही उल्लेख किया जा चुका है, भूमि कर में संशोधन करना चाहा। उसने प्रत्येक प्रान्त में उपज के आधार पर भिन्न-भिन्न दर नियुक्त करने की सोची। दोआब का प्रत्येक भाग उपजाऊ होने के कारण भूमि-कर में वृद्धि की गई। परन्तु कुछ तो कर-वृद्धि सदैव अप्रिय होती ही है और कुछ दुर्दान्त दुर्भिक्ष ने उसका सुधार मान्य नहीं होने दिया। दुर्भिक्ष पीड़ितों को तकावी बँटवा कर, कुँआ खुदवा कर, बीज द्रव्य दिवितरण कर और सरकारी

कृषि करके पर्याप्त सहायता की। यह सब कार्य एक विशेष पदाधिकारी की, जिसे अमीर-ए-कोही अर्थात् कृषि-मन्त्री कहा जा सकता है, सरक्षणता में सम्पन्न किया। अलाउद्दीन की भाँति उसने भूमि की नाप कराई।

फीरोज तुगलक ने मुहम्मद तुगलक के प्रबन्ध में महत्त्वपूर्ण संशोधन किये। उसने समस्त ऋण, जो दुर्भिक्ष इत्यादि के समय कृषकों ने लिए थे, क्षमा कर दिये। उसने माल-विभाग की कठोरता को ढीला कर दिया। कर की दर तै कर दी। समस्त भूमि की नाप कराकर सल्तनत की आय निश्चित कराई। शरअ के विरुद्ध जितने भी कर थे सब स्थगित कर दिये गये। मुहम्मद तुगलक ने जजिया के ऊपर अधिक ध्यान न देकर धार्मिक स्टेट के स्थान पर मानव स्टेट बनाना चाहा, परन्तु फीरोज ने जजिया को विशेष रूप से लागू कर अपने साम्राज्य को कट्टर मुस्लिम राज्य का रूप दिया।

फीरोज के पश्चात् देहली की सल्तनत अस्त-व्यस्त अवस्था में चलती रही। आगे चलकर लोदी सुल्तानों ने एक बार पुन माल-विभाग की सुव्यवस्था करनी चाही परन्तु अधिक सफल न हो सके।

इस प्रकार माल-व्यवस्था शरअ अनुकूलता एव समयानुकूलता के मध्य में चलती रही। आगे चलकर मुगल सम्राटों ने इनके अनुभवों से लाभ उठाकर उसे धार्मिक वितण्डावाद से मुक्त कर बिना भेदभाव के समयानुकूल बनाने का प्रयत्न किया।

सेना :—भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थिति कुछ इस प्रकार की थी कि वह सशस्त्र सेना के ही प्रयत्न से अपना अस्तित्व स्थापित रख सकता था। वास्तव में मुस्लिम सल्तनत का प्रारम्भ ही एक ऐसे सशस्त्र-सैनिक कैम्प के रूप में हुआ जो एक अर्द्ध-पराजित तथा सघर्ष-शाली जाति के मध्य में लगाया गया था। ऐसे देश में अपने अधिकार को पूर्णतया स्थापित करने, अधिकृत प्रदेश पर पूर्ण आधिपत्य रखने तथा मगोल आक्रमणों एवम् आतरिक आन्दोलनों से देश को सुरक्षित रखने के लिए समय तथा शक्ति दोनों की ही आवश्यकता थी। यही कारण था कि दिल्ली के सुल्तानों ने इस ओर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने युद्ध के लिये एक पृथक् विभाग को जन्म दिया जो एक राज्यमन्त्री की अध्यक्षता में कार्य सचालन करता रहा। उसका कर्त्तव्य था कि समस्त सेना को सुसगठित तथा अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित रखे। वह स्वय मुख्य भर्ती पदाधिकारी का कार्य करता था और स्वय एक सैनिक की युद्धकला तथा शक्ति देखकर उसका वेतन निर्धारित करता था। वर्ष में एक बार वह स्वय प्रत्येक सैनिक का निरीक्षण करता था और उसके अस्त्र-शस्त्र तथा घोडों का मुआइना करता

था। वार्षिक वेतन तथा पद-सम्बन्धी उन्नति अथवा अवनतित उसपर ही अवलम्बित थी। उसकी सिफारिश पर ही एक सैनिक को एक इक्ता अथवा प्रदत्त भूमि मिलती थी। सेना की प्रयाण-सम्बन्धी सभी तैयारियां उसकी आज्ञानुसार होती थी। वह सैन्य निरीक्षण का यह परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न करता था कि कोई कमी तो नही है। अधिकतर सुल्तानों के समय में ऐसा ही होता रहा। फीरोजशाह के समय में नम्रता के कारण सैनिक स्तर अत्यन्त निम्न हो गया। इल्तुतमिश, बलबन, अलाउद्दीन, गयासुद्दीन तथा मोहम्मद तुगलक के शासनकाल में मुस्लिम सेना अजेय रही। यही कारण था कि इनने अल्पकाल में समस्त भारत पर विजय प्राप्त कर देहली सुल्तान देश को बाह्य तथा आन्तरिक समस्त संकटों से दूर रख सके।

घुड़सवार :—अपने समकालीन योरुपीय तथा अन्य एशियाई सम्राटों और विजेताओं की भांति देहली सुल्तान भी सेना का घुडसवार अङ्ग विशेष ध्यान से देखते थे। उसकी सेना में घुडसवारो की संख्या बहुत होती थी। अलाउद्दीन की सेना में ७०००० घुड़सवार केवल देहली की छावनी में रहते थे। इनके अतिरिक्त समस्त साम्राज्य के अनेक मुक्ता सैनिक सेवा के लिये प्रतिक्षण कटिबद्ध रहते थे। भर्ती होते समय प्रत्येक घुड़सवार को अपना घोडा तथा अस्त्र-शस्त्र दिखलाने पडते थे। अला-उद्दीन ने घोडी को दाग देने की प्रथा से सिपाहियों की घोड़ा-सम्बन्धी बेईमानी और चालाकी को समाप्त कर दिया। अन्य योग्य सुल्तानों ने भी इस प्रथा को जारी रक्खा। फीरोज ने इस प्रथा को बन्द कर दिया। परिणाम यह हुआ कि घुड़सवार सेनान्वित क्षीण एवं मृतप्राय हो गई।

हाथी :—हाथी सेना का दूसरा प्रमुख अंग समझा जाता था। यह एक प्रकार का जीवित टैंक था जिस पर सवार होकर सेना में खलबली मचाने का कार्य सम्पन्न किया जाता था। हाथियों की रक्षा के लिये, जिससे कि वे घायल होकर समर-भूमि को न त्याग दें, उनके बदन पर लोहे की ढाले बाँध दी जाती थी, और उसकी शुण्ड की भी इसी प्रकार रक्षा कर उसके चारो ओर बडे-बड़े खांडे बांध दिये जाते थे, जिससे वह शत्रु-सेना में प्रविष्ट हो सूंड द्वारा शत्रु संहार करे। हाथी की इस उपयोगिता से प्रभावित होकर महमूद गजनवी के पुत्र ने स्वयं १६०० हाथी अपनी सेना में भर्ती किये। बलबन स्वयं एक हाथी को ५०० घुडसवारो के समान समझता था। मुहम्मद तुगलक की सेना में ३००० हाथी थे। बंगाल-विजय पर जाते हुये फीरोज की सेना में ४७० हाथी थे। इसी प्रकार अन्य सुल्तान भी हाथियों का पूर्ण महत्व समझ उसे सेना में सदैव उचित स्थान देते थे।

पैदल :—देहली सुल्तान एक अच्छी पैदल सेना भी रखते थे। पैदल सिपाही

'पायक' कहलाता था। इनमें प्रायः हिन्दू अथवा दास थे। इनमें अधिकतर वे मनुष्य भर्ती होते थे, जो अपनी निर्धनता के कारण घोड़ा अथवा अस्त्र-शस्त्र प्राप्त न कर सकते थे।

शस्त्र :—कुछ आग्नेय शस्त्र भी प्रयुक्त होते थे। अग्निवाण तथा अस्त्र-शस्त्र उस समय प्रयोग में थे। किले की सुदृढ़ दीवारों के भंजन के लिये कई प्रकार की मशीनें, जिनमें गोले तथा बारूद भरकर प्रयोग किये जाते थे, उस समय प्रचलित थे।

दुर्ग :—मध्यकाल में सैनिक-दृष्टि से दुर्गों का बहुत महत्व था। अतः सुल्तानों ने बहुत से किले बनवाये। प्रत्येक किले के चारों ओर सुविस्तृत खाई होती थी और अन्दर एक चारदीवारी होती थी। किसी-किसी में दूसरी तथा तीसरी चार दीवारी तक होती थी। इन दुर्गों में कुसमय के लिए अस्त्र-शस्त्र के अतिरिक्त खाद्य-सामग्री भी एकत्रित रक्खी जाती थी। यह एक प्रकार की छावनियाँ थी। मंगोल आक्रमण से देश की रक्षा करने के लिये सीमा-प्रान्त में तथा आन्तरिक विद्रोहों से रक्षा करने के लिये महत्वपूर्ण स्थानों पर दुर्ग बना, वहाँ एक सुसगठित सेना रखना प्रत्येक योग्य शासक का अनिवार्य कार्य समझा जाता था। इसीलिये बलबन, अलाउद्दीन, गयासुद्दीनने अनेक दुर्ग बना उन्हें कील-काँटे से तैयार रक्खा।

औषधियाँ :—अर्वाचीन सेना-व्यवस्था की भाँति ये सम्राट् भी रुग्णोपचार के साधन साथ में रखते थे। योग्य हकीम, दक्ष जर्राह सैनिकों के उपचारार्थ रक्खे जाते थे। सेना के साथ बाजे की भी व्यवस्था की जाती थी। शत्रु-सेना के समाचार विदित करने के हेतु एक प्रकार का स्काउटिंग विभाग अथवा गुप्तचर-विभाग भी सेना में रक्खा जाता था।

उपरोक्त वर्णन पढ़ने के बाद हम इस धारणा पर पहुँचते हैं कि १२०० से १५२६ ई० तक का मुसलमान काल भारतीय इतिहास में अपना विशेष स्थान रखता है।

## प्रश्न

१—तुर्क शासन में सदैव अराजकता रही इसके क्या कारण थे ?

२—तुर्क शासन प्रबन्ध पर एक टिप्पणी लिखो ?

३—तुर्क सुल्तानों की भूमि-व्यवस्था के विषय में तुम क्या जानते हो ?

४—तुर्क सुल्तानों के सैनिक-प्रबन्ध का विवरण दो ?

—:०:—

# इन्टरमीडिएट परीक्षा-पत्र

१९५३.

## (इतिहास मुख्य) प्रथम प्रश्न पत्र

### ग्रुप क—भारतीय इतिहास

समय ३ घंटे पूर्णाङ्क ५०

टिप्पणी—केवल पाँच प्रश्नों का उत्तर दीजिये। प्रत्येक भाग में से कम से कम दो प्रश्न चुनने चाहिएँ। सब प्रश्नों के अङ्क समान हैं।

### भाग (क)

१. प्राचीन भारत के इतिहास के मुख्य आधारों का वर्णन कीजिये और उनका महत्त्व बतलाइये।

२. वैदिक काल की राजनैतिक तथा सामाजिक अवस्था का वर्णन कीजिए।

३. बौद्ध धर्म का भारतीय समाज और संस्कृति पर क्या प्रभाव पड़ा?

४. मौर्य्य-शासन-पद्धति का वर्णन कीजिये।

५. कनिष्क के चरित्र तथा उसकी सफलताओं का वर्णन कीजिये। उसका भारतीय इतिहास में क्या स्थान है?

६. पल्लव कौन थे? उनका दक्षिण के इतिहास में क्या महत्त्व है?

### भाग (ख)

७. मोहम्मद इब्न कासिम का सिन्ध पर सरलता से विजय प्राप्त कर लेने के क्या कारण थे? उसके उत्तराधिकारी साम्राज्य विस्तार करने में क्यों असफल रहे?

८. मोहम्मद गोरी के आक्रमणों के समय भारत की राजनैतिक दशा कैसी थी? राजपूतों के विरुद्ध उसकी विजय के क्या कारण थे

९. अलाउद्दीन खिलजी के आर्थिक सुधारों का वर्णन कीजिए। उनका जनता पर क्या प्रभाव पड़ा?

१०. तुगलक साम्राज्य के पतन के क्या कारण थे? फीरोज तुगलक को इसका उत्तरदायी कहाँ तक ठहराया जा सकता है?

११. विजयनगर साम्राज्य की शासन व्यवस्था का संक्षेप में वर्णन कीजिए?

१२. भक्ति आन्दोलन से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

## ग्रुप ख—संसार का इतिहास

टिप्पणी—केवल पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिए। सब प्रश्नों के अंक समान हैं।

१. जलवायु तथा भौगोलिक स्थिति का मिस्र के इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ा? इस कथन का स्पष्टीकरण कीजिये कि "मिस्र नील नदी की पुत्री है"।

२. सुमेर लोग कौन थे? उनके धर्म तथा संस्कृति का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

३. हिब्रू धर्म की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

४. यूनान की सभ्यता के ह्रास के कारण बताइए।

५. कानून तथा शासन के क्षेत्र में रूमियों की क्या देन है?

६. मौर्य काल की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। विश्व की संस्कृति को इस काल की क्या देन है?

७. उमैया वंश के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं?

८. राजपूत काल के धर्म तथा समाज-संगठन की रूपरेखा पर प्रकाश डालिये।

९. जापान की संस्कृति पर चीन का क्या प्रभाव पड़ा?

१०. "बृहत्तर भारत" से आप क्या समझते हैं? यहाँ की कला तथा धर्म पर भारतवर्ष का क्या प्रभाव पड़ा?

११. मध्य युग की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए?

१२. निम्नलिखित में से किन्हीं चार पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :—
अमरना, अरस्तू, चंगेज खाँ, हारुन उल रशीद, बर्बर जातियाँ, मार्कोपोलो, कालिदास, पोप।

१९५४

# इण्टरमीडिएट परीक्षा

## प्रथम प्रश्न पत्र

## [भारतीय इतिहास अथवा विश्व (मुख्य)]

समय तीन घण्टे  पूर्णाङ्क ५०

टिप्पणी—परीक्षार्थी केवल खण्ड (क) भारतीय इतिहास अथवा खण्ड (ख) विश्व इतिहास में से प्रश्न करें।

खण्ड (क) भारतीय इतिहास

टिप्पणी—केवल पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिये। प्रत्येक भाग में से कम से कम २ प्रश्न चुनना चाहिए। सब प्रश्नों के अंक समान हैं।

भाग (क)

१ सिन्धु घाटी की सभ्यता और वैदिक सभ्यता की तुलनात्मक विवेचना कीजिए।

२. बुद्ध धर्म की उत्पत्ति तथा उसके विस्तार का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

३. चन्द्रगुप्त मौर्य कौन था? मेगस्थनीज के लेखों के आधार पर उसके शासन प्रबन्ध का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

४. गुप्त युग की सभ्यता तथा संस्कृति के प्रसार का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

५. दक्षिण पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति के प्रसार का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

भाग (ख)

६. महमूद गजनवी के आक्रमणों के पूर्व भारत की राजनैतिक दशा का वर्णन कीजिए।

७. इल्तुतमिश के राज्य काल की मुख्य घटनाओं का वर्णन संक्षेप में कीजिए। तेरहवीं सदी के शासकों में उसका क्या स्थान है?

८. फीरोज तुगलक के चरित्र तथा नीति की आलोचना कीजिए और बताइये कि वह तुगलक साम्राज्य के पतन के लिए कहाँ तक उत्तरदायी है?

९. दक्षिण के इतिहास में विजयनगर का क्या महत्व है?

१०. पानीपत के युद्ध में बाबर की विजय के क्या कारण थे?

११. मध्यकालीन युग में कौन-कौन से प्रमुख धार्मिक तथा सामाजिक सुधार हुए उनमें से किसी एक की शिक्षाओं का वर्णन कीजिए और बताइए कि उनका भारतीय समाज पर क्या प्रभाव पड़ा ?

खण्ड (ख) विश्व इतिहास

टिप्पणी—केवल पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिए। सब प्रश्नों के अंक समान हैं

१. मिस्रवासियों के धार्मिक विश्वासों को विस्तार-पूर्वक बताइये। इन विश्वासों का कला-कौशल तथा वास्तु-विद्या पर क्या असर पड़ा ?

२. हम्मूराबी के कानूनी संग्रह के विशेषतायें बतलाइए।

३. वैदिक कालीन सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक जीवन का वर्णन कीजिए।

४. फ्युनिशिया-के-निवासियों ने मानव सभ्यता की उन्नति में क्या योग दिया है ? इसका विस्तृत वर्णन कीजिए।

५. असीरियन (Assyrians) शासन-व्यवस्था की विवेचना कीजिए।

६. यहूदी सभ्यता का विश्व के इतिहास में क्या महत्व है ?

७. अब्बासी खलीफाओं के पतन के क्या कारण थे ?

८. योरप के सांस्कृतिक विकास में ट्यूटन जातियों ने क्या योग दान किया है ?

९. मध्यकालीन योरप में चर्च और राज्य के पारस्परिक सम्बन्ध का वर्णन

१०. निम्नलिखित में से किन्हीं चार पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :—

सूत्र साहित्य, सुकरात, प्लेटो (अफलातून), जस्टीनियन, आगस्टस सीजर, ईसाइयों तथा मुसलमानों का धर्म युद्ध, हलाकू खाँ, समुद्रगुप्त

# प्रथम प्रश्न पत्र
# भारतीय इतिहास

१. सिन्धु घाटी के निवासियों के जीवन की मुख्य विशेषताओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

२. वर्णाश्रम धर्म के आधार पर प्राचीन भारतवर्ष की समाज रचना की स्पष्ट कीजिये और उसके गुण तथा दोष पर प्रकाश डालिए।

३. अशोक की गिनती विश्व के महानतम सम्राटों में क्यों की जाती है? उसने के प्रसार के लिए क्या क्या प्रयत्न किए?

४. हर्ष चरित्र और ह्वेनसांग की भ्रमण कथा हर्षवर्धन के जीवन तथा उसकी पर क्या प्रकाश डालती है?

५. चोल साम्राज्य का संक्षिप्त इतिहास लिखिए और उसकी शासन-व्यवस्था र्णन कीजिए।

६. मोहम्मद गोरी के आक्रमणों के समय की भारत की राजनैतिक दशा का कीजिए? राजपूतों के विरुद्ध उनकी सफलता के क्या कारण थे?

७ कुतुबुद्दीन ऐबक की सफलताओं का स्पष्ट वर्णन कीजिये। भारतीय इतिहास सका क्या स्थान है?

८ अलाउद्दीन खिलजी की दक्षिण विजय का इतिहास संक्षेप में लिखिए?

९. मुहम्मद बिन तुगलक के चरित्र तथा उसकी नीति का संक्षेप में वर्णन ाए।

१०. भक्ति आन्दोलन के विषय में आप क्या जानते हैं? इस आन्दोलन का तवासियों के जीवन तथा उनके धर्म पर क्या प्रभाव पड़ा?

## द्वितीय प्रश्न पत्र

## भारतीय इतिहास

समय तीन घण्टे

पूर्णांक ५०

नोट—केवल पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिए और प्रत्येक भाग से कम से कम दो प्रश्नों के उत्तर देना आवश्यक है। सब प्रश्नों के अंक समान हैं।

भाग (क)

१. शेरशाह सूरी को अपना राज्याधिकार स्थापित करने में क्या-क्या कारण सहायक हुए, सविस्तार बतलाइए।

२. किन कारणों से, सम्राट् अकबर "राष्ट्रीय" सम्राट् माना जा है?

३. 'मुगल सम्राटों की 'दक्षिणी' नीति ने मुगल साम्राज्य की नींव खोखली क दी।' क्या आप इस कथन से सहमत हैं?

४. पेशवाओं के काल में, मराठा साम्राज्य के संगठन और शासन व्यवस्था क्या-क्या परिवर्तन हुए? आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

५. मुगल राज्यकाल में भारतीय साहित्य या कला के विकास पर प्रका डालिए।

भाग (ख)

६. डूप्ले की नीति की व्याख्या कीजिये और बतलाइए कि क्या यथार्थ में फ्रां को सरकार के असहयोग के कारण ही वह असफल हुआ?

७. "वारेन हेस्टिंग्ज की शासन नीति सराहनीय थी।" इस कथन की विवेचन कीजिए।

८. लार्ड डलहौजी के सुधारों का वर्णन कीजिए।

९. १८५४ के पश्चात् भारतीय शिक्षा-व्यवस्था के विकास की और उस परिणामों की व्याख्या कीजिए।

१०. सामाजिक सुधार के सम्बन्ध में महात्मा गांधी के क्या विचार थे औ उन्होंने इस क्षेत्र में क्या-क्या कार्य किए?

३. 'मुगल सम्राटों की 'दक्षिणी' नीति ने मुगल साम्राज्य की नींव खोखली दी।' क्या आप इस कथन से सहमत हैं?

४. पेशवाओं के काल में, मराठा साम्राज्य के संगठन और शासन व्यवस्था क्या-क्या परिवर्तन हुए? आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

५. मुगल राज्यकाल में भारतीय साहित्य या कला के विकास पर प्रक डालिए।

भाग (ख)

६. डूप्ले की नीति की व्याख्या कीजिये और बतलाइए कि क्या यथार्थ में फ्र की सरकार के असहयोग के कारण ही वह असफल हुआ?

७. "वारेन हेस्टिंग्ज की शासन नीति सराहनीय थी।" इस कथन की विवेच कीजिए।

८. लार्ड डलहौजी के सुधारों का वर्णन कीजिए।

९. १८५४ के पश्चात् भारतीय शिक्षा-व्यवस्था के विकास की ओर, उस परिणामों की व्याख्या कीजिए।

१०. सामाजिक सुधार के सम्बन्ध में महात्मा गांधी के क्या विचार थे अ उन्होंने इस क्षेत्र में क्या-क्या कार्य किए?